भारतीय
सम्पत्तिशास्त्र

[देश की आर्थिक दशा का दिग्दर्शन तथा उसकी दुरवस्था पर विचार]

लेखक—

डॉक्टर प्राणनाथ

विद्यालंकार, पी० एच० डी० (वीयना), डी० एस-सी० (लन्दन)

(प्रोफ़ेसर हिन्दू-विश्वविद्यालय)

प्रणेता—

'राष्ट्रीय आय-व्यय शास्त्र', 'राजनीति शास्त्र', 'शासन-पद्धति', 'मुद्रा-शास्त्र', 'इंग्लैण्ड का इतिहास', 'सभ्यता का इतिहास', 'कौटिल्य अर्थ-शास्त्र', 'सम्पत्ति शास्त्र' आदि

प्रकाशक—

वैद्य शिवनारायण मिश्र, भिषग्रत्न

प्रकाश पुस्तकालय,

कानपुर.

मूल्य पाँच रुपया

समर्पण
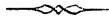
स्वदेशभक्त, विद्याप्रेमी, उदारचरित, स्वार्थत्यागी,
स्वदेशरक्षक, असहायों के सहायक, पूज्यवर
श्री बाबू शिवप्रसाद गुप्त जी को
यह ग्रंथ लेखक की ओर से
आदर प्रेम तथा विनयपूर्वक
समर्पित

भारतीय संपत्तिशास्त्र

लेखक का निवेदन।

स्वर्गीय सखाराम गणेश देउस्कर की लिखी "देश की बात" अनूठी वस्तु थी। जातीय जीवन की उन्नति तथा राजनैतिक जागृति में उसका जो भाग है वह भुलाया नहीं जा सकता। सरकार ने यद्यपि उसको छपने से बंद कर दिया, परंतु उसकी छाप तो प्रत्येक भारतवासी के हृदय पर अब तक अंकित है। बहुत समय के व्यतीत होने से उसकी समयोपयोगिता कुछ कुछ घट गई। इसपर भी उसका सौन्दर्य ज्यों का त्यों विद्यमान है।

देउस्कर की देश की बात के चिरकाल बाद प्रोफेसर राधाकृष्ण झा ने अपनी "भारत की सांपत्तिक अवस्था" को प्रकाशित कराया। ग्रंथ समयोपयोगी होने के साथ साथ दोष रहित है। इस ग्रंथ की सब से अधिक सुंदरता यही है कि यह पक्षपातशून्य है। इस ग्रंथ में सभी मतों पर एक सदृश विचार किया गया है। ग्रंथ की लेख शैली शान्ति तथा गांभीर्य से परिपूर्ण है। प्रोफेसर साहब धन्यवाद के योग्य हैं इसमें कुछ भी संदेह नहीं।

लेखक का ग्रंथ न तो देउस्कर की "देश की बात" है और न प्रोफ़ेसर झा की "भारत की साम्पत्तिक अवस्था।" कदाचित् पाठकगण, इसको दोनों ही के मध्य में स्थान दें। यही कारण है कि इसका नाम "**देश की सच्ची बात**" के साथ साथ **भारतीय संपत्ति-शास्त्र** रखा गया है। यदि देश की बात का यह ग्रंथ जीर्णोद्धार है तो झा के ग्रंथ में दिये गये आर्थिक प्रश्नों के जातीय तथा साम्यवादी रूप को यह प्रगट करता है। इसमें व्यावसायिक क्षेत्र में फ्रैडरिकलिस्ट का ही पथ ग्रहण

किया गया है। परंतु भौमिक क्षेत्र में साम्यवाद का अवलम्बन किया गया है। लेखक ताल्लुकेदारी तथा जमींदारी प्रथा के साथ साथ मालगुजारी तथा लगान को अन्याययुक्त समझता है। लेखक का मत है कि खेत छोटे छोटे भागों में विभक्त कर कृषिजीवी परिवार को मुफ़ में दे दिये जांय और यदि किसी की आमदनी डेढ़ सौ से अधिक हो तो उस पर भी व्यापारियों तथा व्यवसायियों के सदृश ही आमदनी कर (incometaxe) लगाया जाय। कृषि में कलों का प्रयोग भी लेखक उचित नहीं समझता। अन्य सब प्रश्नों में फ्रैडरिक लिस्ट तथा भारत के जातीयवादियों का ही पक्ष पोषण किया गया है। प्रकरणों तथा खंडों के विभाग में लिस्ट तथा साधारण संपत्ति-शास्त्र के क्रम को मिला कर काम किया गया है।

श्रीमान् शिवनारायण मिश्र जी ने इस ग्रंथ का उद्धार किया इसके लिये लेखक उनको हार्दिक धन्यवाद देता है। श्रीमान् श्रीकृष्णदत्त पालीवाल जी तथा गणेश जी ने प्रभा में तथा श्रीनर्मदाप्रसाद मिश्र जी ने श्री शारदा में इसके कुछ लेखों को प्रकाशित किया और श्री लाला दुर्गाप्रसाद जी ने ग्रंथ के छापने में विशेष सहायता दी। अतः यह सब के सब महाशय लेखक के धन्यवाद के पात्र हैं। श्री पूज्यवर बाबूशिवप्रसाद जीने इस ग्रंथ को देखकर बहुत पसन्द किया। हमारे लिये इससे बढ़कर सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है। हम विनीत भाव से यह ग्रंथ उन्ही को समर्पित करते हैं। "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये"।

काशी
२०-१-२१

प्राणनाथ।

प्रकाशक का निवेदन ।

देश की बात के बन्द हो जाने के बाद अब तक हिन्दी में एक भी ऐसा ग्रंथ नहीं छपा जो कि उसकी कमी को पूरा कर सके। देश की आर्थिक दशा बिगड़ने तथा ग़रीबी के बढ़ने में राज्य का जो हाथ है वह किसी से भी छिपा नहीं है। आवश्यकता थी कि जनता के संमुख एक ऐसी पुस्तक आती जो कि विस्तृत रूप से सरल भाषा में संपूर्ण रहस्यों को खोलकर रख देती। साथ ही उनको यह भी बताती कि उनका इष्ट क्या है? और किस तरह उसको प्राप्त किया जा सकता है।

मुझे यह सूचित करते हुए प्रसन्नता होती है कि प्रोफ़ेसर प्राणनाथ जी ने इस ग्रंथ को लिखकर देश की एक बड़ी भारी कमी को पूरा किया। उनके साम्यवादी तथा जातीयवादी विचार देश के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे। यद्यपि ग्रंथ बहुत ही बड़ा है तो भी पाठकों के लिये पर्याप्त अधिक रुचिकर सिद्ध होगा। पुरानी 'देश की बात' से यह "देश की सच्ची बात" हमारी समझ में किसी भी क़दर नीचे नहीं पड़ती। कुछ अंशों में तो यह उससे भी अधिक उत्तम है। आशा है हिन्दी पाठक अपनी पुरानी खोई हुई चीज़ को पुनः उपलब्ध कर प्रसन्न होंगे और वे उससे भी अधिक इसका आदर करेंगे।

सम्भव है पुस्तक का मूल्य कुछ अधिक जँचे किन्तु इसका कारण यह है कि इस पुस्तक का सम्पूर्ण कागज उस समय ख़रीद कर प्रेस भेज दिया गया था जब महायुद्ध के कारण कागज का भाव तिगना चौगना था। पुस्तक कुछ देर से प्रकाशित हो सकी इसके लिए उदार पाठक क्षमा करेंगे।

२० जनवरी १९२३.
कानपुर।

शिवनारायण मिश्र।

सहायक पुस्तकों की सूची।

१. आडमस्मिथ-An Inquiry in to the nature and causes of the Wealth of Nation.

२. फ्रैडरिक लिस्ट-The National System of Political Economy.

३. एच. सी. आडम-H. C. Adam's Finance.

४. रङ्गास्वामी आयंगर-The Indian Constitution.

५. टाउट-History of Great Britain.

६. क्रैसी-The Rise and Progress of the English Constitution.

७. 1916—18-1 Indian Industrial Commission.

८. Imperial Gazzeteer of India. Vol. III.

९. रानडे-Essays on Indian Economics.

१०. एल्फिस्टन-History of India.

११. मरे-History of India.

१२. रमेशचन्द्रदत्त-Economic History of British India.

१३. डिग्बी-Prosperous British India.

१४. अमृत बाजार पत्रिका की संख्या दिसंबर १४. १९. १९.

१५. लीडर, मार्च-११. १९२० दि स्टेट्समैन, मार्च ११. १९२०

१६. वैब्ब-Britain Victorious.

१७. दि मार्डन रिव्यू-अप्रिल, १९२०। दि इंडिपैन्डेन्ट, अप्रिल ११. १९२०।

१८. रशब्रकविलियम-India in the years 1917-1918.
१९. लवड़े । The History or Economics of Indian Famines.
२०. रमेशचन्द्रदत्त-The Famines in India.
२१. वी. जी. काले-Indian Economics.
२२. मोलैंड-An Introduction to Economics.
२३. 1911-12. Moral and Material Progress and Condition of India.
२४. 1919. the New Hazell Annual and Almanack.
२५. बालकृष्ण-Industrial decline in India.
२६. 1919. Indian Munitions Board Handbook.
२७. सी. डब्ल्यू. काटन-Handbook of Commercial Information for India.
२८. Inverstor's Year Book. (1919, 1920, 1921.)
२९. जीड्-Principles of Political Economy.
३०. यदुनाथ सरकार-Economics of British India.
३१. सैम्युअल वील-Buddhist Records of the western world.
३२. मनुस्मृति । गौतमधर्म्मसूत्र । कौटिलीय अर्थशास्त्र ।
३३. नरेन्द्रनाथ ला-Ancient Indian Hindu Polity.
३४. विश्वगुणादर्श चंपू ।
३५. Budget of the Government of India for 1918-19.
३६. रमेशचन्द्रदत्त-Early History of British India, Vol. I, II.
३७. वेदनपावल-Land system of British India.

३८. महाभारत, शान्तिपर्व ।
३९. विन्सन्ट. ए. स्मिथ–The Oxford History of India.
४०. 1919-1920. Report of the Non-official Committee on the Famine in Puri (Orissa).
४१. थोमासपेन–Rights of Men.
४२. रेवन्ज़–Evils of state of Ireland, their causes and their Remedy.
४३. लेग–Journal of Residence in Norway.
४४. हाविट्–Rural and Domestic Life of Germany.
४५. मिल–Principles of Political Economy.
४६. 1911. Census Report.
४७. दत्त–Prices Enquiry.
४८. एच. एच. मनु–Life and Labour in the Deccan Village.
४९. 1913. Atlas of Commercial Geography.
५०. जे. एफ. वार्कर–Modern Germany.
५१. 1912. Statistics of British India.
५२. 1913-14. Agricultural Statistics of India.
५३. कार्लमार्क्स–Capital.
५४. सातवलेकर-वैदिक सभ्यता ।
५५. विल्सन का ऋग्वेद । रामायण ।
५६. राईस डेविड्—The Buddhist India.
५७. आर् पालिन्—India Economics.
५८. राधाकुमुद मुकुर्जी—The History of Indian Shipping.

५६. ई. हावेल—Sculpture and Painting in Ancient India.

६०. The Wealth of India. "Article, Variation of Prices in India. From 1300 to 1912."

६१. कीन्ज—Indian Finance.

६२. अलकधारी—Currency in India.

६३. कनिंघम—Coins of Ancient India.

६४. रैप्सन—Indian Coins.

विषय-सूची।

प्रथम खंड।

प्रस्तावना—५-११६

पहिला परिच्छेद—जातीय समृद्धि—५—५०

दूसरा परिच्छेद—भारत सरकारकी आर्थिक नीति ५१-११६

द्वितीय खंड ।

कृषि तथा व्यवसाय–१२३-६७३

पहिला परिच्छेद–जातीय संपत्ति १२३—३६०

दूसरा परिच्छेद–जातीय संपत्ति पर स्वत्व तथा मालगुजारी की वृद्धि ३६०-४२६

तृतीय खंड ।

विनियम तथा राष्ट्रीय आय व्यय—६७७–८८१

पहिला परिच्छेद–भारत सरकार की व्यापारीय नीति ६७७–७०२

दूसरा परिच्छेद–भारत में मंहगी की समस्या ७०२-७५८

प्रथम खण्ड

प्रस्तावना

पहिला परिच्छेद

जातीय समृद्धि ।

(१)

जातीय संपत्तिशास्त्र ।

महाशय कस्ने से पूर्व सम्पत्ति शास्त्र ने बहुत महत्व नहीं प्राप्त किया था और न उसका शास्त्र के तौर पर उद्भव ही हुआ था। भिन्न भिन्न राष्ट्रों के शासक आर्थिक समस्याओं को कल्पना तथा तर्क द्वारा ही हल करने का यत्न करते थे। कवस्ने ने सार्वभौम बन्धुभाव तथा प्रेम को स्वयं-सिद्ध मान कर एक सम्पत्तिशास्त्र का निर्माण किया, जिसको वास्तव में सर्वभौम सम्पत्तिशास्त्र का नाम दिया जा सकता है। इस महाग्रन्थ में उसने ऐसे ऐसे नियमों के जानने का यत्न किया जिनसे सम्पूर्ण संसार समृद्ध हो सके। ग्रन्थ लिखते समय इस बात पर उसने कुछ भी ध्यान नहीं दिया कि, जातियों के भिन्न भिन्न स्वार्थ तथा भिन्न भिन्न हित भी हो सकते हैं।

आँग्ल सम्पत्तिशास्त्र के आचार्य आदम स्मिथ ने भी स्वक्ने का अनुकरण किया। वे भी सम्पत्तिशास्त्र को कोई स्थिर आधार न दे सके। आजकल संसार की जैसी राजनैतिक तथा सामाजिक अवस्था है उससे तो अभी चिरकाल तक शान्ति की कुछ भी आशा नहीं प्रतीत होती है। जातियों में समानभाव होने के स्थानपर पारस्परिक भयंकर घातक स्पर्धा है। वे एक दूसरे की शक्ति तथा समृद्धि को नहीं देख सकती हैं। परन्तु स्मिथ इस रहस्य को न समझ सके। आपने सार्वजनिक समानता तथा शान्ति को स्थिर समझ कर "जातीय सम्पत्ति का स्वरूप तथा कारण[१]" नामी अपूर्व पुस्तक लिखी और प्रकृतिवादियों के सदृश ही निर्हस्ताक्षेप[२] की नीति को पुष्ट किया। स्मिथ के अनन्तर जे० बी० से ने भी सम्पत्तिशास्त्र लिखा और पूर्वाचार्यों के सदृश ही निर्हस्ताक्षेप की नीति का समर्थन किया। परन्तु साथ ही उसने यह भी लिखा कि अबाधित व्यापार तथा निर्हस्ताक्षेप की नीति तभी संभव हैं जब कि एक सार्वभौम राष्ट्र संगठन[३] विद्यमान हो। उसके शब्द हैं, "पारिवारिक जनों

१ An Inquiry into the nature and causes of the wealth of Nation.

२ निर्हस्ताक्षेप = Non-Interference.

३ सार्वभौम राष्ट्रसंगठन = Universal federation.

का ध्यान रख कर जो सम्पत्तिशास्त्र बनाया जाय उसका नाम वैयक्तिक सम्पत्तिशास्त्र रखना चाहिये। उसी के सदृश जातियों का ध्यान रख कर जातीय सम्पत्तिशास्त्र और सम्पूर्ण संसार का ध्यान रख कर सार्वभौम सम्पत्तिशास्त्र का निर्माण करना चाहिये"। से के ऊपर लिखे विचार पर फ्रेडरिक लिस्ट से पूर्व तक किसी भी संपत्तिशास्त्रज्ञ ने ध्यान न दिया। सभी ने "प्रत्येक व्यक्ति तथा जाति का स्वार्थ सम्पूर्ण संसार के स्वार्थ पर निर्भर करता है" इस स्वयं-सिद्धि को आधार बना कर अपने अपने सम्पत्तिशास्त्रों का निर्माण किया। परन्तु विचित्रता की बात है कि, उनका नाम सार्वभौम सम्पत्तिशास्त्र रखने के स्थान पर उन्होंने जातीय सम्पत्तिशास्त्र ही रखा। प्रोफेसर कूपर तो सार्वभौम बन्धुभाव के प्रवाह में ऐसे बहे कि उन्होंने 'जाति तथा जातीयता' को भी वैय्याकरणों का ही आविष्कार समझ लिया।

सार्वभौम सम्पत्तिशास्त्र न लिखना चाहिये, ऐसा कहना साहस मात्र है। उसकी वैज्ञानिक शैलीपर वृद्धि करना नितान्त आवश्यक है। परन्तु साथ ही साथ जातीय सम्पत्तिशास्त्र की उपेक्षा करना भी उचित नहीं है। यह उचित होता यदि जातियों के स्वार्थ तथा हित समान होते। परन्तु शोक से कहना पड़ता है कि इस संसार में ऐसी स्वर्गीय अवस्था अभी तक नहीं आई है। जातियां स्वार्थवश

एक दूसरी की स्वतन्त्रता को पददलित करने पर हर समय तैयार रहती हैं। इस दशा में कौन ऐसी जाति होगी जो अपने संरक्षण के उपाय न करना चाहे और अपना जीवन परतंत्रता राक्षसीपर बलि कर देने को सन्नद्ध हो। इस लिए आत्मसंरक्षण के निमित्त सबको सतर्क रहना चाहिये।

इस सतर्क अवस्था में किसको सुख मिल सकता है? कौन जाति सैन्यावस्था में सुख मान सकती है? यह सब होते हुए भी किसी के कुछ भी वश में नहीं है। प्रत्येक जाति आत्मसंरक्षण के लिए सचिन्त है और तोप बारूद तथा जहाज़ों में अनन्त धन वृथा ही फूंक रही है। प्रत्येक को स्थलशक्ति तथा नौशक्ति बनने का ख़याल है। परन्तु आत्म-संरक्षण के इन सब उपायों के लिए सम्पत्ति की आवश्य-कता है। यही कारण है कि सम्पत्तिशास्त्र लिखते समय जातीय विचार को नहीं छोड़ा जा सकता है। प्राचीन सम्पत्तिशास्त्रज्ञ जिस सार्वभौम संगठन का स्वप्न देखते थे उसकी अभी आशा करना वृथा है। और यह तब तक संभव नहीं है जब तक कि संसार के सम्पूर्ण राष्ट्र समान शक्ति-शाली तथा एक सार्वभौम राष्ट्रसंगठन में सम्मिलित होने के लिए तत्पर न होवें।

कल्पना के तौर पर मानिये कि अभी एक सार्वभौम राष्ट्र-संगठन बन जाता है। होगा क्या? अति समृद्ध देश और

भी अधिक समृद्ध हो जावेंगे और अति दरिद्र देश और भी अधिक दरिद्र हो जावेंगे। जिस प्रकार अन्तरीय विनिमय की स्वतन्त्रता का परिणाम धन की असमानता है उसी प्रकार अन्तर्जातीय विनिमय की स्वतन्त्रता का परिणाम जातीय असमानता है। यदि यह न होता तो जातियों को स्वतन्त्र व्यापार[1] की नीति का विरोध करने की आवश्यकता ही क्या थी? यूरोप एशिया का दिन पर दिन शोषण कर रहा है। वह राजनैतिक बलपर यहां स्वतन्त्र व्यापार की नीति को चला रहा है। यही नहीं, यदि संसार के सभी राष्ट्र, यूरोपीय होवें या एशियाटिक, व्यापार में स्वतन्त्र व्यापार-नीति का अवलम्बन करें तो परिणाम यह होगा कि जर्मनी आदि देश अपनी व्यावसायिक उन्नति तथा स्वतन्त्र व्यापार की नीति से संसार के अन्य राष्ट्रों को चूस लेवेंगे और जिस प्रकार रोम यूरोपीय जगत का धनाढ्य स्वामी बन गया था उसी प्रकार वे भी सम्पूर्ण संसार के अधिपति बन जावेंगे। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया है कि, अभी तक सार्वभौम राष्ट्रसंगठन नहीं बन सकता है। अतः जातीय संपत्तिशास्त्र का निर्माण नितान्त आवश्यक है, जो जातियों की समृद्धि के कारणों को बतावे।

१ स्वतन्त्र व्यापार=अबद्ध व्यापार - बन्धनरहित व्यापार - मुक्तद्वार वाणिज्य (Free trade.)

प्राचीन सम्पत्तिशास्त्रज्ञ जातीय समृद्धि का कारण व्यापार को प्रगट करते हैं। परन्तु जातीय सम्पत्तिशास्त्रज्ञों का उनसे इस स्थानपर मतभेद है। वे व्यापार पर व्यवसाय को प्रधानता देते हैं और इसी प्रकार सम्पत्ति के स्थान पर उत्पादक शक्ति को जातीय समृद्धि का कारण प्रगट करते हैं।
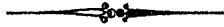
(२)

उत्पादक शक्ति तथा सम्पत्ति

संपत्तिशास्त्र के आचार्य आदम स्मिथ ने अपनी 'जातीय संपत्ति का स्वरूप तथा कारण' नामी पुस्तक में लिखा है, 'यह आवश्यक नहीं है कि सम्पत्ति तथा संपत्ति की उत्पत्ति के कारण एकही होवें, प्रायः यह दोनों परस्पर भिन्न देखे गये हैं'। दृष्टान्त के तौर पर यदि किसी व्यक्ति के पास पितृ पितामहों द्वारा संचित सम्पत्ति हो परन्तु उसके पास उस संपत्ति को उत्पन्न करने की शक्ति न हो तब एक दिन आ सकता है जब कि वह अपनी संचित संपत्ति का उपभोग कर चुके और संपत्तिविहीन हो कर दरिद्रता के भयंकर

जाल में फँस जावे। इसी प्रकार यह भी स्पष्ट है कि खर्च की अपेक्षा अधिक कमाता हुआ कोई पुरुष शीघ्र ही समृद्ध हो सकता है। सारांश यह है कि संपत्ति की अपेक्षा संपत्ति को उत्पन्न करने की शक्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है।

व्यक्तियों के सदृश ही जातियों की अवस्था है। प्रत्येक सदी में जर्मनी दुर्भिक्ष, रोग तथा युद्धों से उजड़ता रहा है। परन्तु इन विपत्तियों में उसकी उत्पादक शक्ति कभी भी नष्ट नहीं हुई। परिणाम यह हुआ कि, उसने पूर्व में खोई-हुई शक्ति को पुनः शीघ्र ही प्राप्त कर लिया। स्पेन अतिशय समृद्ध था परन्तु उसकी उत्पादक शक्ति नष्टप्राय थी। यही कारण है कि भूमि, खानें, उत्तम जलवायु आदि के होते हुए भी स्वेच्छाचारी पुरोहितों तथा राजाओं के अत्याचारों से पीड़ित हो कर स्पेन उस भयंकर दरिद्रता के पंक में फस-गया जिसमें से अब तक नहीं निकल सका है। अमेरिका ने स्वतंत्रता प्राप्त करने में करोड़ों रुपया खर्च किया। स्व-तंत्रता प्राप्त करते ही उसके व्यवसाय उन्नत दशा में हो गये और उसने शीघ्र ही इतना धन कमा लिया कि उसके युद्धों के व्यय का भार हलका हो गया। और यह होना स्वा-भाविक ही था। क्योंकि स्वराज्य तथा व्यवसाय का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। जब कोई जाति व्यवसाय में उन्नत होने लगती है तब स्वतंत्रता भी उसको शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है।

अमेरिका का इतिहास यही शिक्षा देता है। अन्य देश भी इसी सत्यता को प्रगट करते हैं, यह उनका आर्थिक इतिहास लिखते समय ही सिद्ध किया जावेगा।

परन्तु आदम स्मिथ इस सत्य को न जान सका। उसने स्वतन्त्रता को जातीय समृद्धि का मुख्य कारण न समझ कर श्रम-विभाग तथा श्रम की क्षमता को ही एक मात्र कारण प्रगट किया है। वह लिखता है कि "श्रम वह कोष है जहां से प्रत्येक जाति अपनी सम्पत्ति प्राप्त करती है।" सत्य है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि श्रमियों की कार्यक्षमता स्वतः किस पर निर्भर करती है? यदि इसका उत्तर हो कि "उनके भोजन छादन तथा रहन सहन पर", जो कि स्वयं जाति की समृद्धि पर निर्भर है, तो यह कभी भी सन्तोषप्रद नहीं हो सकता। क्योंकि जातियों की समृद्धि श्रमियों की कार्यक्षमता पर और उनकी कार्यक्षमता जातियों की समृद्धि पर निर्भर करती हुई यदि कही जावे तो यह एक ऐसा चक्र है जिसका कोई सिरा नहीं। न्याय-शास्त्र में इसीको इतरेतराश्रय दोष में गिना है। सारांश यह है कि, जातियों की सम्पूर्ण उन्नति का एक मात्र आधार उनकी स्वतन्त्रता है। यदि किसी राष्ट्र में व्यक्तियों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो, न्याय और आत्मसंरक्षण निर्विघ्न हो, व्यवसाय, कृषि, शिक्षा आदि की उन्नति में राज्य सहायता देता हो, धर्म,

सदाचार, विचार निर्बाध हो और उपनिवेशों के द्वारा शक्ति-वृद्धि का अवसर प्राप्त हो तो ऐसे राष्ट्र में सम्पत्ति की वृद्धि दिन दूनी रात चौगुनी होती है।

स्मिथ उपरिलिखित सत्य के समीप तक न पहुंच सके। वे घटना-चक्र के भीतर प्रवेश न करके ऊपर से ही उसकी गति का अनुमान करते रहे। जिस श्रम पर उनके ग्रन्थ का दारोमदार है वह जातीय सम्पत्ति के उत्पन्न करने में एक अत्यन्त तुच्छ कारण है। प्राचीन काल में दासों का श्रम सस्ता तथा बहु मात्रा में जनता को उपलब्ध था। परन्तु इस पर भी पाश्चात्यों के प्राचीन पुरुष आधुनिक पुरुषों की तुलना में बहुत ही कम समृद्ध थे। इसका कारण यह था कि, उनका उस संचालक शक्ति पर प्रभुत्व न था जो जातीय संपत्ति के चक्र को चलाती है। आजकल जातियां अपनी मानसिक पूंजी को बढ़ाने का दिनोदिन यत्न कर रही हैं। नवीन नवीन वैज्ञानिक आविष्कार तथा उनकी उन्नति करने में प्रत्येक जाति असंख्य धन खर्च कर रही है। यह सब इसी लिए कि, वे अपनी सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक अवस्था को पूर्ण तौर पर उन्नति देने में समर्थ हो सकें। शोक से कहना पड़ता है कि प्राचीन सम्पत्तिशास्त्रज्ञ जितना एक सुअर के पालने को उत्पादक समझते हैं उतना इन ऊपर लिखे कार्यों को नहीं। इतना ही होता तब भी कोई बात थी। विचित्रता

तो यह है कि, वे कृषि तथा व्यवसाय की उन्नति में भी किसी प्रकार का अन्तर नहीं समझते । परन्तु इससे कार्य कैसे चल सकता है ? एक मात्र कृषिप्रधान राष्ट्र में कौन सी ऐसी त्रुटि है जो कि विद्यमान न होवे । ऐसे राष्ट्र में लोभ, दारिद्र्य, दौर्बल्य, द्वेष, अज्ञानता अपना निवासगृह बनाते हैं और इनके प्रभाव से उस राष्ट्र की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का विकास सदा के लिए रुक जाता है और प्राकृतिक शक्तियों का प्रयोग पूर्ण तौर पर न हो सकने से पूंजी भी एकत्रित नहीं होती ।

इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार प्राचीन सम्पत्तिशास्त्रज्ञों के विचार सर्वथा अपरिपक्व होने से हेय हैं । उत्पादक शक्ति के रहस्य को न समझ कर उन्होंने जितनी भूलें की हैं उनका वर्णन करना कठिन है । उनके विचार में जातीय व्यवसायों की अपेक्षा विदेशीय व्यापार से जाति की सम्पत्ति तथा समृद्धि अधिकतर बढ़ सकती है । परन्तु भारतवर्ष के व्यावसायिक अधःपतन के इतिहास के जाननेवाले विद्वानों को यह पता हो है कि ऊपर लिखा विचार कितना असत्य तथा हानिकर है । प्रत्येक वर्ष बृटिश राज्य भारतीयों को विदेशीय व्यापार की उन्नति पर बधाई देते हुए उनकी समृद्धि को दिखाने का यत्न करता है । परन्तु हो क्या रहा है ? जितना जितना विदेशीय व्यापार

बढ़ता जाता है उतना उतना भारतवर्ष धनधान्यरहित और निःसार होकर दुर्भिक्ष का पात्र होरहा है। वास्तविक बात तो यह है कि व्यावसायिक शक्ति ही नागरिक स्वतंत्रता, बुद्धि, विज्ञान, कलाकौशल, व्यापारीय तथा राजनैतिक उन्नति का मुख्य स्रोत है। इसी के द्वारा परतन्त्रता तथा अज्ञानता के अन्धकार से संतप्त कृषकों के कष्ट कम होते हैं तथा उनको सुखमय जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त होता है। यदि विदेशी व्यापार द्वारा विदेशी पदार्थों के उपभोग से किसी राष्ट्र की संपत्ति तथा समृद्धि बढ़ सकती हो, तो उस अवस्था में उस राष्ट्र की संपत्ति तथा समृद्धि किस हद तक बढ़ सकती है जब कि वह अपने ही व्यवसायों के स्वदेशी पदार्थों का उपभोग करे, यह विचारने की बात है। सारांश यह है कि, किसी जाति को व्यावसायिक शक्ति होने से जो लाभ पहुंच सकते हैं उन लाभों का हजारवां भाग भी उसको विदेश से सस्ते पदार्थों के मोल लेने से नहीं प्राप्त हो सकता है। व्यावसायिक शक्ति बनने से जातियों को निम्नलिखित लाभ पहुंचते हैं।

(१) उनका आचार तथा स्वभाव उन्नत हो जाता है।

(२) उनकी मानसिक शक्ति उन्नत तथा उत्तम हो जाती है।

(३) उनकी स्वतंत्रता तथा जीवन स्वरक्षित होजाता है।

(४) कला कौशल के द्वारा बहुमूल्य पदार्थों के उत्पन्न होने से उनकी समृद्धि बढ़ जाती है।

ऊपर लिखे सम्पूर्ण विवरण का तात्पर्य यही है कि, जातियों को उत्पादक शक्ति प्राप्त करने का अधिक अधिक यत्न करना चाहिये। विदेशी व्यापार के द्वारा विदेशी व्यावसायिक पदार्थों को मँगाना उचित नहीं है। उत्पादक शक्ति को प्राप्त करने में जातियों को पर्य्याप्त अधिक कष्ट उठाने पड़े हैं। उनको वर्तमानकालीन सुखों का परित्याग कर भावी सुखों के लिए यत्न करना पड़ा है। यदि कोई राज्य अपनी जाति को शिक्षित करने में धन व्यय करता है तो उसको प्रत्यक्ष तौरपर कुछ भी सम्पत्ति नहीं मिलती है। होता क्या है? शिक्षा के द्वारा जाति की उत्पादक शक्ति बढ़ जाती है और विपत्काल में राज्य को इससे बहुत ही अधिक सहारा मिलता है।

इसी विचार से आजकल स्वदेशी व्यवसायोंकी उन्नति में प्रत्येक राज्यका ध्यान है। सभी विद्वान स्वदेशी व्यवसायों को जातीय सभ्यता तथा स्वतंत्रता का आधार समझते हैं और उनके समुत्थान में प्रत्येक व्यक्ति को तन मन धन समर्पित करनेके लिए उत्तेजित करते हैं। विदेशी व्यवसायों के पदार्थों का क्रय सर्वथा हानिकर है। इससे क्षणिक सुख तो प्राप्त हो सकता है परन्तु जातीय जीवन सर्वदा के लिए नष्ट

हो जाता है। इसकी शराब से उपमा दी जा सकती है, जो कुछ समय तक अत्यन्त आनन्द देती है परन्तु अन्त में भयंकर विनाश उपस्थित करती है। यह विचार चिरकाल से उठा हुआ है कि स्वदेशी व्यवसायों के समुत्थान के लिए बाधक सामुद्रिक कर[१] का प्रयोग न करना चाहिये, क्योंकि इससे व्यावसायिक पदार्थों की कीमतें चढ़ जाती हैं और जनता को विशेष कष्ट उठाना पड़ता है। परन्तु हमारे विचार में इस प्रकार का तर्क सर्वथा निरर्थक तथा हानिप्रद है। यदि इसी शैलीपर विचार करना प्रारम्भ करें तो यह कहना भी उचित ही होवेगा कि बालकों को न पढ़ाना चाहिये, क्योंकि उनके पढ़ाने के लिए धन अर्जन करने में माता पिताओं को विशेष कष्ट उठाना पड़ेगा। विचित्रता यह है कि सभी उत्तम काम ऐसे हैं जिनमें कुछ न कुछ कष्ट अवश्य है। तो क्या उत्तम काम करना ही छोड़ देना चाहिये? यदि भोजन करने में हाथ हिलाना पड़े तो क्या भोजन ही न करना चाहिये? इस दशा में यह कौन मान सकता है कि "कुछ समय तक पदार्थ महँगे मिलेंगे" इस लिए स्वतन्त्रता, समुन्नति या सभ्यता के आधार-भूत स्वदेशी व्यवसायों के समुत्थान के लिए बाधक सामुद्रिक करका प्रयोग न करना चाहिये। इसमें सन्देह भी नहीं

---

१ बाधक सामुद्रिक कर (Preventive tariff.)

है कि आरम्भ आरम्भ में बाधक सामुद्रिक करके प्रयोगसे पदार्थों के महंगे होने से हम को कुछ कष्ट पहुँचता है परन्तु थोड़े कष्ट से हमारे अनेक भयंकर कष्ट अनन्तकाल के लिए दूर हो जावेंगे जब कि स्वदेशी व्यवसाय प्रफुल्लित होकर जनता में जातीय जीवन तथा स्वतंत्रता प्रदान करेंगे। सारांश यह है कि जातीय संपत्ति की उत्पत्ति तथा वृद्धि उसकी उत्पादक शक्ति या व्यावसायिक शक्तिपर निर्भर करती है, जोकि स्वयं जातीय स्वतंत्रता से उत्पन्न होकर उसी जातीय स्वतंत्रता को चिरकाल तक स्वरक्षित रखने में एक बड़ा भारी भाग लेती है। इसी बात को समझ कर विद्वानों ने कहा है कि, स्वतंत्रता तथा व्यवसाय सदा साथ रहते हैं। व्यावसायिक शक्ति किसी जाति को तभी प्राप्त होती है जब कि वह स्वतन्त्र हो। परतंत्रता का व्यावसायिक शक्ति से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

---

(३)

कृषि तथा व्यवसाय

सार्वभौम भ्रातृभाव के विचार से देश के कृषिप्रधान या व्यवसायप्रधान होने में कोई विशेष भेद नहीं पड़ता है।

प्रकृतिवादियों[1] ने उसी में स्वाभाविक नियम[2] को लगा कर व्यवसाय की अपेक्षा कृषिको उत्तम प्रगट किया था। जातीय विचार से कृषि तथा व्यवसाय में बड़ा भेद है, जो इस प्रकार दिखाया जा सकता है। एक मात्र कृषिप्रधान देश में जनता की आत्मिक, मानसिक तथा आर्थिक उन्नति का लोप हो जाता है। भीरुता, अनुदारता, अज्ञता, अस्वतन्त्रता तथा दरिद्रता कृषिप्रधान देशमें ही अपना निवासगृह बनाती हैं। परन्तु व्यवसायप्रधान देशों की यह दुर्दशा नहीं होती। व्यावसायिक देशों में जनता की मानसिक शक्ति विकसित हो जाती है। साहस तथा निर्भयता के वे केन्द्र हो जाते हैं। स्वतंत्रता तथा समृद्धि भी उनमें दिन पर दिन बढ़ती जाती है। यह क्यों? यह इसी लिए कि कृषि तथा व्यवसाय के कार्यों में ही इस प्रकार की विशेषतायें हैं जिनका प्रभाव आचार, व्यवहार तथा स्वभावपर विचित्र विधिसे पड़ता है। कृषक अपने अपने खेतोंपर कृषि करते हैं। किसी एक ही खेत पर सम्पूर्ण कृषक मिलकर काम नहीं कर सकते। परिणाम इसका यह होता है कि मिल कर काम करने का अवसर न मिलने से उनमें सम्मिलन की शक्ति का ह्रास हो जाता है। कृषि कार्य ही विचित्र है। जो एक कृषक

१ प्रकृतिवादी=Physiocrats.

२ स्वाभाविक नियम=Natural law.

उत्पन्न करता है वही दूसरा कृषक उत्पन्न करता है। लाभ भी प्रायः सब कृषकों को एक सदृश ही होता है। जो पदार्थ वे उत्पन्न करते हैं उसका उपभोग भी वे स्वयं ही करते हैं। उनको अपने कृषिजन्य पदार्थ को बेचने की बहुत कम आवश्यकता होती है।

इसी कारण से बाजार के उतराव चढ़ाव का उनपर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। कृषक को चिरकाल के बाद अपने प्रयत्न का फल मिलता है। फल मिलना या न मिलना वृष्टि आदि प्राकृतिक घटनाओंपर निर्भर करता है। इसमें वह स्वतः निःशक्त है। वह यही कर सकता है कि, ईश्वर की प्रार्थना करे और फल-प्राप्ति की प्रतीक्षा करता रहे। इसका उसके स्वभाव पर बड़ा भयंकर प्रभाव पड़ता है। उसमें प्रमाद तथा भाग्यवादित्व आदि दोष सदा के लिए आजाते हैं, जिनका प्रभाव किसी भी समाज की उन्नति के लिए अत्यन्त हानिकर होता है। कृषि-कार्य ही ऐसा है जिसमें किसी की भी मानसिक उन्नति की कुछ भी सम्भावना नहीं है। एक कृषक का वही कार्य होता है जोकि उसके पितृ पितामह आदि चिरकाल से करते आये थे। एक ही परिवार में रहने से भिन्न भिन्न विचार तथा स्वभाववाले व्यक्तियों से उसका मेल जोल बहुत कम हो जाता है। नवीन नवीन आविष्कार तथा विचार के लिए उसमें प्रवृत्ति ही नहीं होती

है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त अच्छी या बुरी दशा या पन्द्रह मनुष्यों के बीच में ही उसको अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। मानसिक उन्नति किस प्रकार की जा सकती है, उसको यह जानने का अवसर नहीं मिलता है। सारांश यह है कि कृषि पेशा ही ऐसा है जिसमें किसी प्रकार की भी उन्नति की सम्भावना करना वृथा है। दरिद्रता, अज्ञता तथा भीरुता का यदि किसी पेशे में निवास है तो वह कृषि ही है।

बृटिश शासन भारतवर्ष को एक मात्र कृषिप्रधान देश बनाना चाहता है। इससे भारत की जो दशा हो जावेगी उसका पाठकगण स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं। किसी देश में कृषि का होना बुरा नहीं कहा जा सकता है। परन्तु यह तभी तक जब कि उसमें व्यवसाय प्रफुल्लित दशा में होवे। व्यवसाय-रहित हो कर एक मात्र कृषिप्रधान देश बनना बहुत ही हानिकर तथा घातक है। व्यवसायप्रधान होते हुए कृषि-प्रधान होना एक अत्युत्तम घटना है। इसीसे जाति स्वाव-लम्बी बनती है। जाति के व्यवसायप्रधान होते ही कृषि के सम्पूर्ण दोष गुण में बदल जाते हैं। इसका कारण व्यवसाय के अपूर्व गुण ही हैं।

कारखानों में मिल कर काम करना पड़ता है। उनमें कृषि के सदृश पृथक पृथक काम करना कठिन है। इससे शिल्पी व्यवसायियों का जीवन सामाजिक जीवन होजाता

है। स्वतंत्र आयके होने और एक मात्र प्रकृतिपर निभर न करने से उनमें निर्भयता जन्म लेती है। जो पदार्थ वे अपने कारखानों में बनाते हैं उनका वे स्वयं प्रयोग नहीं कर सकते हैं। इससे उनको उस पदार्थ के बेचने की चिन्ता करनी पड़ती है। देश विदेश में भ्रमण करना उनके लिए स्वाभाविक हो जाता है। इस अवस्था में उनके अन्दर आलस्य तथा प्रमाद का न जन्म लेना सर्वथा सम्भव है। यहीं पर बस नहीं। व्यवसायों में स्पर्धा है। प्रत्येक व्यवसायी यह समझता है कि यदि वह अपने कार्य में सफल हो गया तो वह अतिशय समृद्ध हो जावेगा और यदि वह सफल न हो सका तो उसको दारिद्र्य का जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। इस बात के कारण ही प्रत्येक व्यवसायी नये नये आविष्कार तथा बड़े बड़े साहस के काम करने पर तैयार रहता है। उसका सारा जीवन चिन्ता तथा साहस का जीवन होता है। सारांश यह है कि व्यवसाय वस्तु ही ऐसी है जिसके द्वारा जनता के प्रत्येक मनुष्य में साहस, अप्रमाद, निर्भयता, स्वतंत्रता तथा उत्साह के भाव उत्पन्न हो जाते हैं।

व्यवसाय तथा कृषि पर यादि एक दृष्टि डाली जावे तो पता लगेगा कि व्यावसायिक कार्यों में कृषि की अपेक्षा अधिक चातुर्य तथा बुद्धि की आवश्यकता होती है। स्मिथ ने यहां पर भी ग़लती की। वह कहता है कि "व्यवसायों की अपेक्षा

कृषि में अधिक चतुरता तथा बुद्धि-बल की आवश्यकता होती है"। उसके इस कथन का खण्डन करना बिलकुल सहज है। प्रत्येक जान सकता है कि, एक घड़ी के बनाने में अधिक बुद्धि तथा शिक्षा की जरूरत है या एक खेत के जोतने तथा बीज बोने में। इसमें सन्देह भी नहीं है कि व्यवसायियों की अपेक्षा कृषकों का स्वास्थ्य उत्तम रहता है, क्योंकि वे स्वच्छ वायु में निवास करते हैं। परन्तु यह भी असन्दिग्ध बात है कि व्यवसायी बुद्धि तथा विचार में कृषकों की अपेक्षा सहस्र-गुण अधिक बढ़े हुए होते हैं, क्योंकि उनकी बुद्धि तथा चतुरता ही उनकी आजीविका तथा काम का एक मात्र सहारा होती है।

व्यवसाय ही विज्ञान तथा कलाकौशल के उद्भव-स्रोत हैं। कृषिजन्य पदार्थों के उत्पन्न करने में बहुत ही कम विज्ञान तथा कलाकौशल की आवश्यकता होती है। परन्तु व्यावसायिक पदार्थों का उत्पन्न करना ही एक मात्र पदार्थविज्ञान तथा कलाकौशल पर निर्भर करता है। यही कारण है कि व्यवसायी देशों में जनसमाज की पदार्थविज्ञान तथा कला-कौशल में बहुत ही अधिक रुचि होती है। पदार्थविज्ञान तथा व्यवसायों के सम्मिलन से ही उस योरुपीय कलाशक्ति का उद्भव हुआ है जिसने सम्पूर्ण सभ्य संसार में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। अभी तक कलाशक्ति से कृषि में

बहुत काम नहीं लिया गया है। जो काम अभी तक लिया भी जा रहा है उससे भी अधिक फल की आशा नहीं है। परन्तु व्यवसायों में यह दशा नहीं है। व्यवसायों में कलाशक्ति ने जिस सफलता से काम किया है वह आशातीत कहा जा सकती है। सारांश यह है कि, व्यवसायी जाति में कलाशक्ति के प्रयोग की अधिक सम्भावना है, परन्तु कृषिप्रधान जातियों में यही सम्भव नहीं है।

इससे कृषिप्रधान तथा व्यवसायप्रधान जातियों की शक्ति में बड़ा भेद आजाता है। व्यवसायी जातियां कलाशक्ति के सहारे अति शक्तिशाली हो जाती हैं। यही नहीं, कलाशक्ति जब विनिमय के साधनों के साथ जोड़ी जाती है तब व्यवसायी देश कृषिप्रधान देशों की अपेक्षा शक्ति में सैकड़ों गुणा बढ़ जाते हैं। नहरें, रेलें तथा वाष्पीयपोतों का कलाशक्ति के साथ कैसा घनिष्ट सम्बन्ध है, यह पाठकों पर स्पष्टही है। परन्तु कृषिप्रधान देशों में जो कुछ उत्पन्न किया जाता है वह अपने ही लिए उत्पन्न किया जाता है। कृषक अनाज बोता है। उपजने पर उसको वह अपने ही खाने के काम में लाता है। उसको उसे बेचने की विशेष चिन्ता नहीं होती है। व्यापार के न्यून होने से रेलों, नहरों, तथा वाष्पीयपोतों की वृद्धि भी कृषिप्रधान देशों में सर्वथा रुक जाती है।

कृषिप्रधान देशों में यदि कोई मनुष्य अति परिश्रम करके आविष्कार करे भी तो उसको अपने परिश्रम का कुछ भी बदला नहीं मिलता है। उसका वह आविष्कार जहां का तहां रहता है। परन्तु व्यवसायप्रधान देशों में यह घटना नहीं होती। वहां आविष्कारका बड़ा मूल्य है। जो वैज्ञानिक इस प्रकार के आविष्कार निकालते हैं उनको पर्य्याप्तसे अधिक पारितोषिक मिलता है। उनको प्रशंसा तथा कीर्त्ति दूर दूर तक फैल जाती है। सारांश यह है कि व्यवसायी देशों में बुद्धि की चतुरता पर और चतुरता की शारीरिक बलपर प्रधानता होती है। उसका बदला भी भिन्न भिन्न मनुष्यों को उनकी योग्यता के अनुसार मिलता है। परन्तु कृषिप्रधान देशों में यह बात नहीं है।

आविष्कारों के मूल्य के सदृश ही व्यवसायी देशों में समय का मूल्य भी बहुत ही अधिक गिना जाता है। समय का मूल्य समझना जनसमाज की सभ्यता का एक बड़ा भारी चिह्न है। असभ्य जातियां आलस्य और प्रमाद में ही अपना सम्पूर्ण समय गँवा देती हैं। एक ग्वाले या गड़रिये को समय की क्या पर्वाह हो सकती है, जब कि वह बंशी बजाने, सोने तथा लेटने को ही सब से उत्तम काम समझता हो। इसी प्रकार एक दास या मज़दूर समय को कब उत्तम समझ सकता है, जब कि उसके लिए

समय ही भार का काम कर रहा हो, जो, उस समय की बाट जोह रहा हो जब उसको काम से छुट्टी मिलेगी। सारांश यह है कि जनसमाज समय के मूल्य को तभी समझता है जब कि वह व्यवसायप्रधान हो। व्यवसायप्रधान देशों में एक विचित्र दृश्य देखा गया है। व्यवसायियों का कृषकों पर इस सीमा तक प्रभाव पड़ा है कि, वहां के कृषक भी समय का मूल्य समझने लगे हैं। अब बहुत से व्यवसायी देशों की यह दशा आ गया है कि, वहां साधारण से साधारण मजदूर भी अच्छी तरह से जान गया है कि समय ही रुपया पैसा है[1]।

कृषिप्रधान जातियां सारे संसार का कुछ भी हित या उपकार नहीं कर सकती हैं। उनमें इतनी योग्यता नहीं होती कि, वे कोई भी नवीन बात सभ्य संसार को दे सकें। राजनैतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा आर्थिक दृष्टि से देखा जावे तो कहा जा सकता है कि, कृषक जातियों ने सभ्य जगत के लिए अभी तक कुछ भी नहीं किया है। इतना ही होता तब भी कोई बात थी। ऐसी जातियों का अपना जीवन भी सुखमय नहीं होता है। परतन्त्रता, अत्याचार, तथा स्वेच्छाचारिता का वे केन्द्र होती हैं। ताल्लुकेदार

---

[1] समय ही रुपया पैसा है = Time is money.

किसानों का गला घोटते हैं और स्वेच्छाचारी राज्य ताल्लुके-दारों का खून चूसते हैं। इसकी अनन्त हानियां हैं। इससे जनसमाज का स्वभाव दासतामय हो जाता है। सैकड़ों जूते खाते खाते उनके लिए जूते खाना भी एक स्वाभाविक बात हो जाती है। उनमें दासता के ये भाव राजनैतिक क्षेत्र के सदृश ही धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में भी काम करते हैं। ऐसे जनसमाज में ब्राह्मण तथा पुरोहित ईश्वर का रूप धारण कर लेते हैं और शूद्र दास के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। प्रत्येक कार्य में देश-प्रथा तथा रीति-रिवाज अपना रूप प्रगट करते हैं। परन्तु व्यवसायी देशों में इस प्रकार की दासता नहीं रहती है।

भिन्न भिन्न कारखानों में भिन्नभिन्न कामों के करने से प्रत्येक मनुष्य में उत्साह तथा साहस के भाव जन्म लेते हैं। स्पर्धा* से कर्मण्यता का उदय होता है और प्रत्येक मनुष्य नये नये कार्य करने लगता है। व्यवसाय का उत्तरदायी राज्य तथा स्वराज्य से घनिष्ट सम्बन्ध होने से व्यवसायी देशों के लोग राजनीति में विशेष भाग लेते हैं। बाधित तथा अबाधित व्यापार की नीति के क्या लाभ हैं? नाविकशक्ति का जातीय समृद्धि में क्या भाग है? जातीय आय-व्यय पर

---

* स्पर्धा=Competition.

जनता का प्रभुत्व क्यों होना चाहिये ? इत्यादि इत्यादि महत्त्वपूर्ण राजनैतिक बातों को व्यवसायी देशों का तुच्छ से तुच्छ मनुष्य अच्छी तरह समझता है। नगरों के अधिक होने से और नगरों का प्रबन्ध जनता के ही हाथ में होने से व्यवसायी जनता में प्रबन्ध करने की शक्ति तथा शिक्षा बहुत ही अधिक बढ़ जाती हैं। सम्पूर्ण सभ्य संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि, सभ्यता तथा स्वतंत्रता की जन्मभूमि नगर ही हैं। नगरों का समुत्थान स्वतः व्यवसायों पर निर्भर करता है। इस अवस्था में यह सत्य ही है कि, व्यवसाय, स्वतंत्रता तथा सभ्यता का सदा साथ रहता है।

नगर दो प्रकार के होते हैं। (१) उत्पादक और (२) व्ययी या व्यापारी। जो नगर समीपवर्ती ग्रामों या देशों से कच्चे माल ख़रीद कर उनके नवीन नवीन शिल्पी पदार्थ बनाते हैं उनको उत्पादक नगर कहा जाता है। उत्पादक नगर दिन पर दिन जितना समृद्ध तथा प्रफुल्लित होते हैं, आस पास के ग्रामों तथा देश की कृषि भी उतनी ही अधिक उन्नत तथा प्रफुल्लित हो जाती है। यह बात तभी होती है जब कि ग्रामों में भूमि पर स्वामित्व कृषकों का ही होवे और भारत के सदृश किसी राज्य विशेष को हर बार लगान बढ़ाने या लगान लेने की शक्ति न प्राप्त हो और भौमिक

कर लगान का रूप न धारण कर लेवे। उत्पादक नगरों की वृद्धि में जातियां अपना सौभाग्य समझती हैं। परन्तु भारतवर्ष में अब ऐसे नगर नहीं रहे हैं। मुसल्मानी काल में तथा उससे प्राचीन काल में भारत का प्रत्येक नगर उत्पादक नगर था। सैकड़ों कारीगरों का यहां निवास था। इन कारीगरों का ही प्रभाव था कि, ढाका नगर मलमल के लिए, शान्तिपुर धोतियों के लिए, लखनऊ कसीदे के काम के लिए, मुरादाबाद बर्तनों के लिए, बनारस साड़ियों के लिए, अमृतसर दुशालों के लिए प्रसिद्ध हो गये थे। परन्तु बृटिश राज्य-काल में इन नगरों का स्वरूप सर्वथा बदल गया है। मुसल्मानी काल में ये नगर जहाँ उत्पादक तथा कर्मण्यता के आगार थे वहाँ अब यही नगर बड़े बड़े ज़मींदारों तथा ताल्लुकेदारों की विलासभूमि तथा बनियों, व्यापारियों के निवास-स्थान हो गये हैं। पूर्वकाल के सदृश कारीगरों का अब इन नगरों में निवास नहीं रहा है। किसी जाति में व्ययी या व्यापारी नगरों की वृद्धि और उत्पादक नगरों का लोप अतिशय दौर्भाग्य का चिह्न है। यदि उत्पादक नगर स्वतन्त्रता के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं तो व्ययी या व्यापारी नगर परतन्त्रता के सूचक हैं।

कृषिप्रधान देशों में व्ययी या व्यापारी नगरों को ही प्रधानता होती है। भारतवर्ष में ऐसे ही नगर हैं। भारतवर्ष

पराधीन है। जर्मनी, इंग्लैएड में उत्पादक नगर हैं। जर्मनी, इंग्लैएड स्वतन्त्र हैं। परतंत्रता से जहां उत्पादक नगर व्ययी या व्यापारी नगर बन जाते हैं वहां यदि वही नगर अपने आपको ऐसा बनने से बचावें और उत्पादक नगरों के रूप में रहने का प्रबल प्रयत्न करें तो प्रायः उनके उसी प्रबल प्रयत्न से जातियां परतन्त्र से स्वतंत्र हो जाती हैं। संसार का इतिहास इसी सचाई को प्रगट कर रहा है। अमेरिका ने क्यों और कैसे स्वतंत्रता प्राप्त की ? इतिहास जाननेवालों को पता ही होगा कि, स्वतन्त्रता तथा व्यवसायका कितना घनिष्ट सम्बन्ध है। इस अपूर्व सत्यसे भारत क्या सीख सकता है ? भारत को इससे यही शिक्षा मिलती है कि, यदि वह व्यवसायी देश होना चाहे तो पहले उसको स्वतन्त्रता प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बहुत से साधनों में स्वदेशी व्यवसायों के समुत्थान के लिये प्रबल यत्न करना भी एक मुख्य साधन है। अतः इस उत्तम साधन को सदा ध्यान में रखना चाहिये बिना स्वतन्त्रता के व्यवसायों का समुत्थान असम्भव है स्वतन्त्रता प्राप्त करने के अनन्तर ही स्वदेशी व्यवसाय दृढ़ नींवपर खड़े हो सकेंगे।

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के अनन्तर भारत को इंग्लैएड के सदृश एकमात्र व्यवसायप्रधान होने का यत्न न करना

चाहिये। जातीय जीवन का आधार कृषि तथा व्यवसाय दोनों ही हैं। जहां तक हो सके व्यापार भी स्वदेशी लोगों के हाथ में ही होना चाहिये और वह कृषि तथा व्यवसाय की उन्नति का पोषक होवे न कि नाशक। सारांश यह है कि जातियों को स्वावलम्बी बनने का यत्न करना चाहिये।

(४)

कृषि, व्यवसाय तथा व्यापार।

महाशय आदम स्मिथ के विचार से उत्पादक शक्ति श्रमविभाग[१] पर निर्भर करती है। परन्तु यह विचार सर्वथा सत्य नहीं है। श्रमविभाग तभी उत्पादक होता है जब कि वह किसी एक उद्देश्य पर आश्रित होवे। एक ही पदार्थ की उत्पत्ति के लिए पुतलीघरों में परस्पर मिलना तथा कार्यको बांटना इस बात को सूचित करता है कि पदार्थों की उत्पादक शक्ति का आधार कार्यविभाग तथा श्रम-सम्मिलन पर है। इस दशा में स्मिथ का एक मात्र श्रम-विभाग पर उत्पादक शक्ति का आधार प्रगट करना कितना सत्य से दूर है, यह स्पष्ट ही है। यही नहीं, स्मिथ के विचार

श्रमविभाग=Division of labour.

में कृषि में श्रमविभाग कुछ भी सम्भव नहीं है। हम आगे चलकर दिखावेंगे कि, व्यवसायों के सदृश ही कृषि में भी श्रमविभाग सम्भव है। भिन्न भिन्न भूमियोंपर उनकी शक्तियों के अनुसार ही फसल का उत्पन्न करना कृषि में श्रमविभाग के सिद्धान्त को लगाना होवेगा।

वैयक्तिक घटनाओं के सदृश ही जातीय घटनायें हैं। यदि वैयक्तिक व्यवसायों में कार्यविभाग तथा श्रम-सम्मिलन का सिद्धान्त लगता हो तो जातीय व्यवसायों में यह सिद्धान्त क्यों नहीं लग सकता है? व्यवसाय कृषिजन्य पदार्थों के रूप को ही परिवर्तित करते हैं। रुई से कपड़ा बनाना, कोयले से चारकोल तथा रङ्ग बनाना आदि ही उनका काम है। कार्यविभाग तथा श्रम-सम्मिलन के सिद्धान्त के अनुसार यह स्पष्ट ही है कि कृषि तथा व्यवसाय किसी देश में जितना अधिक होवें उतना ही उत्तम है। ऐसा होने से विदेशी युद्धों तथा बाधक करों, यानव्ययों तथा आर्थिक दुर्घटनाओं से स्वदेशी व्यवसाय तथा कृषिकों को कुछ भी धक्का नहीं पहुंच सकता है। इससे लोग निश्चिन्त होकर अपने अपने काम को अच्छी तरह कर सकते हैं।

किसी बड़े व्यवसाय की उत्पादक शक्ति उतनी अधिक बढ़ती है जितना अधिक उसके सहायक व्यवसाय उसके समीप होते हैं। इसी लिए कृषि तथा बड़े व्यवसाय तथा

सहायक व्यवसायों का एक ही देश में होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि एक देश कृषिप्रधान हो और दूसरा देश व्यवसायप्रधान हो, तो जातीय जीवन की उन्नति स्थिर तथा दृढ़ नींव पर आश्रित नहीं कही जा सकती है। क्योंकि कृषक देश को अपने आवश्यकीय पदार्थों के लिए विदेशी व्यवसायों का मुह ताकना पड़ेगा। कृषि में भी वह स्वावलम्बी न हो सकेगा। दृष्टान्त के तौर पर इंग्लैंड यदि भारत से रुई खरीदना सर्वथा ही छोड़ दे तो भारत की बहुतसी जमीनें रुई बोना बन्द कर देवेंगी, क्योंकि स्वदेश में उस पदार्थ की व्यावसायिक मांग न होने से उसकी क़ीमत बहुत ही गिर जावेगी और बहुत सी भूमि को खेती से बाहर निकालना ही पड़ेगा। यही नहीं, भारत से इंग्लैंड में रुई जाती है और कपड़े के रूप में लौट आती है। इससे हमको जो नुकसान पहुंच रहा है वह कल्पना के बाहर है। विचार की सुगमता के लिए मानलो एक करोड़ रुपये की भारत से इंग्लैंड गयी हुई रुई कपड़ों के रूप में भारत लौट आती है और भारत को उसके बदले दस करोड़ रुपया देना पड़ता है। इस दशा में हुआ क्या? हमने एक करोड़ रुपये रुई के बदले पाये और दस करोड़ रूपये कपड़ों के बदले इंग्लैण्ड को दिये। इससे नौ करोड़ रूपयों का हमको कुल घाटा उठाना पड़ा। इसी को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि रुई के कपड़े बनाने के

बदले में हमने इंग्लैण्ड के श्रमियों, इञ्जीनियरों, व्यवसाय-पतियों तथा पूंजीपतियों को नौ करोड़ रूपया तनख़्वाह के तौर पर दे दिया। जब कि अपने ही देश में लाखों कारीगर बेकार फिरते और भूखे मरते हों उस दशामें इतना अनन्त धन विदेशियों को बाँटना कितनी वेवकूफी करना होवेगा।

एक मात्र कृषिप्रधान देशों में व्यवसायों के सर्वथा न होने से सम्पूर्ण कारीगरों तथा श्रमियों को कृषि में जाना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि भूमिपर इतने अधिक आदमी टूट पड़ते हैं कि उनको वहां समाने का स्थान नहीं मिलता है। इससे भूमि छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त हो जाती है और कृषकों तथा श्रमियों के दरिद्र होने से भूमि की उत्पादक शक्ति सर्वथा घटने लगती है। ऐसे समय में ही व्यवसायों के न होने से राज्य का सम्पूर्ण खर्चा भूमिपर आ पड़ता है। अनेक प्रकार के छल, बल, कौशल से राज्य पुरानी प्रथाओं को तोड़कर भौमिक लगान के बढ़ाने का यत्न करता है और उसको एक भयंकर करका रूप दे देता है। यदि दैवी घटना से कोई देश भारत के सदृश परतन्त्र देश हो, जहां जनता को आर्थिक स्वराज्य[१] तक उपलब्ध न हो, और एक ऐसे व्यवसायी देश के आधीन हो, जिसको धन कमाने की बहुत

१ आर्थिक स्वराज्य = Fiscal autonomy.

ही अधिक चाह हो, तो उस दशा में देशवासियों की जो स्थिति हो सकती है उसका अनुमान सहज में ही किया जा सकता है। ऐसे देशमें यदि दुर्भिक्ष, प्लेग, हैजा आदि अपना अड्डा बनालेवें तो आश्चर्य करना वृथा है।

परन्तु पूर्वोक्त घटना वहां काम नहीं करती है जहां कृषि तथा व्यवसाय दोनों ही होते हैं। दोनों पेशों के होने से आबादी की बढ़ती का दबाव एकमात्र भूमिपर ही नहीं पड़ता है। कृषि की अपेक्षा व्यवसायों में मजूरी के प्रायः अधिक होने से श्रमी लोग उधर ही जाते हैं। भूमिपर श्रमियों और जनसंख्या के बहुभाग के न टूटने से कृषकों की आर्थिक दशा सुधर जाती है। देश में व्यवसायों के होने से राज्य के आय के साधन बढ़ जाते हैं और इस प्रकार भौमिक लगान भारी करका रूप नहीं धारण करता। इससे कृषकों की आर्थिक दशा उन्नत हो जाती है और भूमिपर पूंजी के लगने से उसकी उत्पादक शक्ति घटने नहीं पाती। व्यवसायी लोग कृषिजन्य पदार्थों को खरीद कर कृषि को सहायता पहुंचाते हैं और कृषक लोग व्यावसायिक पदार्थों को खरीद कर व्यवसायों को उन्नति देते हैं। यदि यही क्रम बना रहे और कृषि तथा व्यवसाय एक दूसरे की उन्नति में सहायक रहें तो लोगों का आर्थिक जीवन[१] उन्नत हो जाता है।

१ आर्थिक जीवन - Standard of living.

सारांश यह है कि कृषि तथा व्यवसाय दोनों का ही देश में होना आवश्यक है।

अभी लिखा जा चुका है कि कृषि तथा व्यवसाय के पृथक पृथक देशों में होने से युद्धों, बाधक करों, यानव्ययों, तथा आर्थिक दुर्घटनाओं के द्वारा देश को सर्वदा ही नुक्सान पहुंच सकता है।

सभ्यता, पूंजी तथा आबादी की बढ़ती का सब से उचित उपयोग यही है कि कृषि तथा व्यवसाय में किसी की भी उपेक्षा न की जाय। जो देश दोनों में ही उन्नत होने का यत्न करते हैं उनमें श्रमियों को बेकार नहीं घूमना पड़ता है, बालक से वृद्ध तक सब को काम मिल जाता है, विनिमय के साधन उन्नत हो जाते हैं, रेलों तथा नहरों का बनाना लाभ-दायक हो जाता है और व्यवसाय चमक उठता है। सब से बड़ी बात तो यह है कि प्राकृतिक शक्तियों से काम लेने की शक्ति उनमें बढ़ जाती है।

कृषिजन्य पदार्थों का विदेश के लिये उत्पन्न करना और बात है और स्वदेश के लिये उत्पन्न करना और बात है। दृष्टान्तस्वरूप लखनऊ को ही लेलो। लखनऊ के आसपास बहुत से बाग बगीचे हैं। गोमती के किनारे मटर, गोभी, बैंगन आदि शाक-भाजी बड़ी राशि में उत्पन्न की जाती है। परन्तु लखनऊ से २५ मील दूर के स्थानों में यह बात नहीं

है। वहां केवल गेहूं, उर्द, अरहर आदि अन्न ही उत्पन्न किये जाते हैं। यह क्यों? इसी लिये कि शाक-भाजी की लखनऊ जैसे बड़े नगर में बड़ी मांग है। उनको आस पास की भूमियों में उत्पन्न करके कृषक लोग शीघ्र ही नगर में बिकने के लिये भेज सकते हैं। लखनऊ से दूर के स्थानों में ऐसा करना संभव नहीं है। क्योंकि वहां से उन पदार्थों को लखनऊ तक पहुँचाने में बहुत खर्च तथा समय लग जाता है। सारांश यह है कि व्यवसायों के समीप होने से पदार्थों की उत्पत्ति बढ़ जाती है और भूमि से भिन्न २ प्रकार के पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं। शक्कर के कारखानों के लिये गन्ने, कपड़ों के कारखानों के लिये रुई, ऊन के कारखानों के लिये ऊन आदि भिन्न २ पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं। परन्तु यह उन्नत अवस्था यदि किसी देश में न विद्यमान हो और उसको अपने कृषिजन्य पदार्थों के लिये विदेशी व्यवसायों पर निर्भर करना पड़े तो उसकी भूमि पर भिन्न २ प्रकार के पदार्थ नहीं उत्पन्न किये जाँयगे। यदि विदेशी शक्कर के कारखानों को अपने ही देश के चुकन्दर से शक्कर निकालना सस्ता पड़ा तो भारत आदि देशों में गन्ने की खेती कम हो ही जायगी। इसी प्रकार अन्य पदार्थों का उत्पन्न करना भी कम हो सकता है। यह भी बहुत संभव है कि कोई समय आ जाय जब कि एक देश कृषिप्रधान होने का यत्न करते

करते कृषि में भी सब देशों से पीछे रह जाय। भारत की यही दशा हो गयी है। भारत में प्रति एकड़ पर उतना अनाज नहीं उत्पन्न होता है जितना कि जर्मनी आदि देशों में। यह क्यों? इसी लिये कि बृटिश शासन ने भारत को व्यवसाय से रहित करके उसे एक मात्र कृषक देश में परिवर्तित करने का यत्न किया है।

एक मात्र कृषक जाति की एक हाथवाले लूले मनुष्य की सी दशा होती है। व्यापार कृषि-शक्ति तथा व्यवसाय-शक्ति के विनिमय का एक साधन है। कृषक देश का व्यापार द्वारा व्यवसाय के पदार्थों का प्राप्त करना वैसा ही है जैसा कि लूले मनुष्य का लकड़ी का एक हाथ लगा लेना है। लकड़ी के हाथ से काम चल सकता है, परन्तु उतनी अच्छी तरह नहीं जितनी अच्छी तरह वास्तविक हाथ से। इसी प्रकार कृषि तथा व्यवसायप्रधान होने के लाभ एक मात्र कृषक होने के लाभों की अपेक्षा किसी सीमा तक अधिक हैं। परन्तु इसमें संदेह भी नहीं है कि, जो पदार्थ प्रकृति की कृपणता के कारण हम सर्वथा नहीं उत्पन्न कर सकते हैं उनको विदेश से मँगाना सर्वथा लाभदायक है। यदि इंग्लैंड में चाय न उत्पन्न होती हो तो उसको विदेश से चाय मँगानी ही चाहिये। यदि भारत में प्लाटिनम की खान नहीं है तो बाधित व्यापारी होने पर भी उसे विदेश से प्लाटिनम अवश्य

ही मंगाना चाहिये। सारांश यह है कि किसी देश को अन्तर्जातीय व्यापार उन्हीं पदार्थों में करना चाहिये जो कि उसके अन्दर न उत्पन्न हो सकते हों।
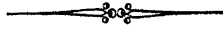
(५)

व्यावसायिक शक्ति तथा व्यापार।

कृषि तथा व्यवसाय के सदृश ही व्यापार भी उत्पादक है। परन्तु इस में सन्देह नहीं कि, दोनों की उत्पादकता सर्वथा भिन्न २ है। कृषक और व्यवसायी वास्तविक तौर पर पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। परन्तु व्यापारी पदार्थों को उत्पन्न नहीं करते, वे मध्यस्थ मात्र हो कर आवश्यकतानुसार प्रत्येक उत्पादक को पदार्थ पहुँचाते हैं। इसी से यह सिद्धान्त निकलता है कि व्यापारियों को कृषक तथा व्यवसायी के हित और स्वार्थ के अनुकूल ही व्यापार करना चाहिये। व्यापार उसी सीमा तक उत्तम है जहां तक वह स्वदेशी कृषि तथा व्यवसाय का पोषक हो। कृषि तथा व्यवसाय को व्यापार पर बलि चढ़ा देना कभी भी उत्तम नहीं कहा जा सकता है। शोक की बात है कि आदम स्मिथ के अनुयायियों ने निर्हस्ताक्षेप तथा स्वतंत्रता देवी की भक्ति में इसी सत्य

सिद्धान्त का बलिदान कर दिया। तुच्छ धन के पीछे व्यापार को उत्तम ठहराना और उत्पादक-शक्ति, कृषि तथा व्यवसाय को गौण रूप देना कभी भी किसी जाति के लिये हितकर नहीं हो सकता है। व्यापार पर व्यवसायियों को बलि चढ़ा देने से भारतीयों ने और व्यापार पर कृषि को बलि चढ़ा देने से अंग्रेजों ने पर्य्याप्त कष्ट उठाया है। युद्ध काल में व्यापार में बाधा पड़ते ही क्या २ कष्ट उठाने पड़ते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है।

व्यापार को उच्छृङ्खल तौर पर बढ़ने देना देश की कृषि, व्यवसाय, उत्पादक-शक्ति, तथा स्वतन्त्रता तक को हाथ से खो देना है। व्यापारी को रुपयों की चाह होती है। और इन रुपयों के पीछे वह अपनी जाति को अफ़ीम, गांजा, शराब तथा जहर तक दे देता है तथा विदेश से सस्ता माल लाकर स्वदेश को बियाबान और बड़े २ शहरों को ऊजड़ गांव बना देता है। व्यापारियों की न कोई अपनी मातृभूमि है और न कोई अपनी जाति है। वे संसार के सभ्य होते हैं और जहां रुपया मिलता है वहीं जा बसते हैं। जाति, धर्म तथा देश के हित और अहित से उदासीन, लक्ष्मी के उपासक व्यापारियों पर स्वदेश के उन्नतिकर्ता, मातृभूमि तथा स्वजाति के उपासक कृषकों और व्यवसायियों को कुर्बान कर देना भला कौन बुद्धिमान उचित ठहरा सकता है। इस

प्रकार स्पष्ट है कि व्यापारी के और जाति के स्वार्थों एवं हितों में कुछ भी समानता नहीं है। मान्टस्क्यूने ठीक कहा है कि, "यदि राज्य भिन्न २ व्यापारों पर बाधायें लगाता है तो उसका मुख्य उद्देश्य व्यापार का हित ही है"। यही कारण है कि स्वतंत्र प्रजातंत्र जातियों में व्यापार में जितनी बाधायें डाली जाती हैं उतनी एक परतन्त्र या स्वेच्छातन्त्र राज्य में नहीं डाली जातीं। यह क्यों? इसी लिये कि कृषि तथा व्यवसाय से ही व्यापार का जन्म है। कृषि तथा व्यवसाय की उन्नति में ही व्यापार की वास्तविक उन्नति है। एक समय था जब कि हंस नगरों ने कृषि तथा व्यवसाय को सर्वथा छोड़ कर केवल व्यापार का सहारा लिया और वे समृद्ध हो गये। परन्तु अब वह समय नहीं रहा। कृषि या व्यवसाय-प्रधान देश ही अब व्यापार भी करते हैं। यही कारण है कि व्यापार को स्वातंत्र्य देने में स्वदेशी कृषि तथा व्यवसाय के हित को सर्वथा सामने रखना चाहिये। यही नहीं, स्वयं व्यापार का हित भी देश की कृषि तथा व्यवसाय की उन्नति पर ही निर्भर करता है। महाशय मान्टस्क्यू का भी यही विचार है, जो ऊपर लिखी सम्मति से प्रगट होता है।

यह प्रायः देखा गया है कि कृषिप्रधान देशों की अपेक्षा व्यवसाय-प्रधान देश अति समृद्ध होते हैं, और उनका व्या-

पार भी बहुत ही अधिक होता है। यह इसी लिये कि व्यवसायी देश कृषिप्रधान देशों से जो कच्चा माल एक लाख रुपये में खरीदते हैं वही माल बने हुए पदार्थों के रूप में आठ या नौ लाख रुपयों में बेचते हैं। और इस प्रकार कृषिप्रधान देशों की अपेक्षा अपनी शक्ति चार या पांचगुनी अधिक बढ़ा लेते हैं। यही कारण है कि कृषिप्रधान देशों की अपेक्षा व्यवसायी देशों का व्यापार भी अधिक होता है। यदि भारतवर्ष किसी इन्द्रजाल के प्रभाव से सहसा व्यवसायी देश बन जाय तो उसका व्यापार भी इस समय की अपेक्षा कई गुना अधिक बढ़ा हुआ हमें दिखाई पड़े, और वह फिर पुराने जमाने की सोने की चिड़िया बन जाय। व्यवसायी देशों में व्यापार के बढ़ने से रेलवे आदि व्यवसाय लाभ के व्यवसाय हो जाते हैं और रेलवे निर्माण का व्यय भारत की तरह देश की जनता पर करके रूप में नहीं लदता है। कर-भार की कमी और राज्य को अन्य साधनों के द्वारा आमदनी होने से देश में लगान कम लिया जाता है। फल यह होता है कि किसान समृद्ध हो जाते हैं और अधिक पदार्थों को खरीदते हैं। सारांश यह है कि कृषि तथा व्यवसाय के पीछे व्यापार को चलाने से व्यापार स्वयं भी कृषि तथा व्यवसाय की उन्नति के साथ साथ उन्नत हो जाता है। एक मात्र कृषिप्रधान होने पर व्यापार बहुत नहीं बढ़ता है। इसके निम्नलिखित

कारण हैं। कृषि-प्रधान देश कृषिजन्य पदार्थों को भेज कर विदेश में व्यवसाय के पदार्थ प्राप्त करते हैं।

(१) कृषिजन्य पदार्थों की व्यय तथा बाजार किसी हद तक अस्थिर होता है। इस लिये इसमें लाभ का होना भाग्य पर निर्भर करता है। आज कल संसार के भिन्न भिन्न प्रधान देश कृषि-प्रधान होने का प्रयत्न कर रहे हैं। अतः कृषि-प्रधान देश के व्यापार का घट जाना स्वभाविक ही है।

(२) कृषि-प्रधान देश के पदार्थों का विदेश में जाना बाधक सामुद्रिक करों तथा युद्धों द्वारा प्रायः रुक जाता है। इस से व्यापार की अस्थिरता के कारण उन्नति नहीं होती है।

(३) कृषि-प्रधान देशों में बंबई, कलकत्ता, मद्रास सरीखे समुद्रतटवर्ती नगरों को ही व्यापार से विशेष लाभ प्राप्त होता है। देश के भीतरी नगरों को इससे बहुत लाभ नहीं होता है। आज कल विदेशी जातियां अपने उपनिवेशों तथा अधीन देशों से ही कृषिजन्य पदार्थों को प्राप्त करने का यत्न कर रही हैं। अतएव किसी स्वतंत्र देश का एक मात्र कृषि-प्रधान बनने का प्रयत्न करना भयंकर भूल होगी।

इंग्लैण्ड ने भारत को इसी लिये कृषि-प्रधान देश बनाया है। शुरू २ में यह समझा जाता था कि, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में ही यह नीति थी और अब नहीं रही। किन्तु ई०१८८२के ३$\frac{१}{२}$ प्रति सैकड़ा व्यावसायिक कर से यह भ्रम

दूर हो गया और भारतीयों को भली भांति मालूम पड़ गया है कि बिना आर्थिक स्वराज्य प्राप्त किये देश के व्यवसायों की उन्नति और भारत की समृद्धि की आशा दुराशा मात्र है। क्योंकि शक्ति रहते इंग्लैण्ड के व्यवसायी—हमारे शासन के सूत्र उन्हीं के प्रतिनिधियों के हाथों में हैं—भारत के वस्त्रादि व्यवसायों को कभी भी न उन्नति करने देंगे। यह ठीक भी है। कौन मालिक अपना सत्यानाश करके अपने सेवक या अधीन कर्मचारी की बढ़ती देख सकता है। इस दशा में भारतीयों को अपनी स्थिति तथा स्वार्थ को पूरी तरह पर समझना और आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

---

(६)

व्यावसायिक शक्ति, नौ-व्यापार, व्यवसाय, तथा उपनिवेश।

व्यवसाय-शक्ति का व्यापार-वृद्धि में जो भाग है उस को प्रगट किया जा चुका है। अब नौव्यापार, व्यवसाय तथा उपनिवेश-वृद्धि में उसका जो भाग है वह दिखाया जायगा। व्यवसायों को खड़ा करने तथा चलाने के लिये लाखों रुपयों के सामान की जरूरत होती है। वह किस तरह प्राप्त किया

जावे ? इसी प्रकार व्यवसायों को बना हुआ माल बाहर भेजना पड़ता है। उसे किस तरह बाहर भेजा जावे ? इस आवश्यकता को नावें तथा जहाज़ बड़ी उत्तमतासे पूर्ण करते हैं और किराया भी कम लेते हैं। यही कारण है कि व्यवसाय-व्यापार-प्रधान देशों में नावें तथा जहाज अधिक होते हैं और उनको नौ-व्यापारी, व्यवसायी तथा नौ-शक्ति बनने में कुछ भी कठिनता नहीं उठानी पड़ती है।

व्यवसायी-व्यापारी देश को उपनिवेशों के द्वारा भी नौ-शक्ति बनने में बड़ा भारी सहारा मिलता है। जंगल तथा बियाबान में ही उपनिवेश बसाये जाते हैं। उपनिवेशों में कच्चे माल की कुछ भी कमी नहीं होती है। उनको केवल अपने कच्चे माल के खरीदारों और बने हुए पदार्थों के बेचने वालों की जरूरत होती है। प्रायः उनकी मातृ-भूमि उन को व्यावसायिक पदार्थ देती है और उनके कच्चे माल को खरीद लेती है। इस स्वाभाविक परिस्थिति का शुभ परिणाम यह होता है कि मूल-मातृ-भूमि की शक्ति, समृद्धि तथा आबादी बढ़ जाती है। अपने ही जहाजों के द्वारा उपनिवेशों को सामान पहुंचाने से देश नौ-शक्ति बन जाता है। परन्तु कृषक देश यह कुछ भी नहीं कर सकता। यह क्यों? इसी लिये कि उपनिवेश शुरू में स्वयं कृषक देश होते हैं। अतः उन को कच्चे माल की कुछ भी जरूरत नहीं होती है। उन्हें जिन

व्यावसायिक पदार्थों की जरूरत होती है उनकी प्राप्ति किसी भी कृषक देश से नहीं हो सकती है। परिणाम यह होता है कि कृषक देशों का अपने उपनिवेशों तक पर अधिक काल तक प्रभुत्व नहीं रहता। उन दोनों में उस स्वाभाविक शृंखला का ही अभाव है जो उनको दृढ़ तौर पर जोड़ सकती है।

इंग्लैण्ड के उपनिवेशों तथा अधीन प्रदेशों के इतिहास का पठन इसी सत्य को प्रगट करता है। इंग्लैण्ड ने भारत पर प्रभुत्व स्थापित किया है। इंग्लैण्ड की देखादेखी यूरोपीय जातियां वैसा ही प्रभुत्व सम्पूर्ण एशिया पर स्थापित करना चाहती हैं। यूरोपीय जातियों का विश्वास है कि इंग्लैण्ड ने व्यावसायिक शक्ति के सहारे ही भारत तथा उपनिवेशों पर अपना प्रभुत्व जमाया है, और इसी शक्ति के सहारे वे भी एशिया पर प्रभुत्व जमा कर इंग्लैण्ड का मुकाबला कर सकती हैं। सारांश यह है कि, व्यावसायिक शक्ति, नौ-व्यापार, व्यवसाय तथा उपनिवेशों की वृद्धि और रक्षा का बहुत बड़ा कारण होती है।

(७)

व्यावसायिकशक्ति तथा प्रकृति पर प्रभुत्व।

ज्यों ज्यों जातियां सभ्यता में उन्नत होती हैं त्यों त्यों उन का प्रकृति पर प्रभुत्व बढ़ जाता है और अधिक से अधिक

लाभ अपनी परिस्थिति से उठा लेती हैं। शिकारी या पशु-पालक जातियां अपनी आर्थिक, भौगोलिक तथा प्राकृतिक परिस्थिति और संपत्ति का हज़ारवां भाग भी प्रयोग में नहीं ला सकती हैं। इसी प्रकार कृषि-प्रधान जाति भी अपनी परिस्थिति से बहुत कुछ लाभ नहीं उठाती है। ऐसी जातियों में जहां वाष्पीय तथा जलीय शक्ति का प्रयोग नहीं होता है वहां बहुत सी खानें भी निरर्थक पड़ी रहती हैं, उनसे यथोचित लाभ नहीं उठाया जा सकता है। ऐसे देशों में नदियों से नहरें काट कर उनसे व्यापार आदि का काम भी नहीं लिया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि आज कल विदेशी व्यवसायी जातियां परतंत्र कृषि-प्रधान देशों में इन कामों को किसी हद तक करती हैं। परन्तु इस से देश को उल्टा नुकसान ही पहुंचता है।

कलों के प्रयोग से यदि विदेशी लोग किसी कृषि-प्रधान देश की खानों को खोद कर लाभ उठावें तो इस से उस देश को क्या लाभ पहुंच सकता है। पूर्व प्रकरण में दिखाया जा चुका है कि कृषि॰ तथा खानों का खुदना आदि तभी समृद्धि तथा शक्ति को देता है जब कि वह स्वदेशी व्यवसायों के लिये सहायक हो।

जो देश कृषि-शक्ति के प्राप्त करने के अनन्तर व्यावसायिक शक्ति प्राप्त करने का यत्न करते हैं उनमें सड़कें, रेलें,

नहरें तथा नौकायें स्वयं ही धीरे २ बन जाती हैं। इससे कृषि में अधिक लाभ होने लगता है। देश में बेकारी कम हो जाती है। देश की खानें, पदार्थों की उत्पत्ति तथा देश की संपत्ति बढ़ाने में बड़ा भाग लेने लगती हैं। साधारण से साधारण पदार्थ सुगमता से ही दूर २ तक पहुँच जाते हैं। कृषि-प्रधान जातियों में पहाड़ों तथा पहाड़ी भूमि से पूर्ण तौर पर काम नहीं लिया जाता है। झरिया, बुखारा, रामगढ़ तथा रानीगञ्ज की पथरीली पहाड़ी भूमि पर कृषि करना निरर्थक है, जब कोयले के रूप में अरबों रूपयों की संपत्ति वहां से उत्पन्न की जा सकती है। हिमालय प्रपातों से भरा हुआ है। उनसे बिजली निकालने का काम न होने का कारण यही है कि बृटिश शासन भारत को एक मात्र कृषि-प्रधान देश बनाना चाहता है। इस प्रकार प्राकृतिक शक्तियों का उपयोग न करना और सब स्थानों में कृषि करने का यत्न करना दरिद्र बनने का एक अच्छा तरीका है।

बड़े २ विघ्नों का उन्नति तथा समृद्धि का सहायक बनना देशों की सभ्यता पर निर्भर करता है। कृषक देश में जहां बड़ी २ नदियां अपने प्रवाह के द्वारा उजाड़ती हैं वहां व्यवसायी देशों में वही नदियां व्यापार और व्यवसाय को उन्नत करने में बड़ा भारी भाग लेती हैं। यूरोपीय देशों में कई स्थानों पर बहुत ठंढ है और भोज्य पदार्थ भी उत्पन्न नहीं होते

हैं। पर इसी शीत ने उनमें मितव्ययता तथा कर्मण्यता आदि अनेक गुणों को उत्पन्न कर दिया है। आज इंग्लैण्ड वायुकी नमी को अपने वस्त्र-व्यवसाय की उन्नति का प्रधान कारण समझता है। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि वायु की तरी-रूपी प्राकृतिक विघ्न उसकी उन्नति का तभी सहायक बना जब कि उसने राजनैतिक शक्ति के बलपर भारतीय व्यवसायों का समुच्छेद किया और अपने प्रजातंत्र राज्य तथा धार्मिक सहिष्णुता से भीतरी विक्षोभों को दूर कर उन्नति करता हुआ यूरोपीय जातियों के पारस्परिक झगड़े से लाभ उठा कर महाशक्ति बन गया। जब कोई देश उन्नति करने लगता है तो "संपद् संपदमनुबध्नाति" के अनुसार बड़े से बड़े प्राकृतिक, राजनैतिक तथा आर्थिक विघ्न उसकी उन्नति के सहायक हो जाते हैं। यही नहीं, कृषक देशों में उत्तम से उत्तम बातें हानिकर हो जाती हैं। अति वृष्टि से उसमें भाग्य-वाद प्रविष्ट होता है और सुवृष्टि से आलस्य अपना अड्डा बनाता है। बृटिश काल से पूर्व राजनैतिक दृष्टि से भारतवर्ष स्वतंत्र था। भूमिपर राजा का स्वामित्व तथा लगान की विधि, जनता का राजनीति से पृथक होकर ग्रामीय राष्ट्र बनना और व्यावसायिक कार्यों में लगना देश की समृद्धि तथा संपत्ति को बढ़ाता था। परन्तु अब यही बातें हमारे दौर्भाग्य का कारण हो गयी हैं। अब हम भूमि पर

राज्य का स्वत्व नहीं चाहते हैं और संपूर्ण जनता का भारतीय राजनीति में भाग लेना आवश्यक समझते हैं। इसी पर हम आगे तक विचार कर सकते हैं। आज भारत में राज्य का रेलों, खानों तथा भूमिपर स्वत्व है; और यही हमारे दौर्भाग्य तथा दरिद्रता का कारण है। परंतु यह निर्विवाद है कि आर्थिक स्वराज्य मिलने पर यही हमारे सौभाग्य तथा समृद्धि का कारण हो जायगा।
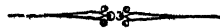
दूसरा परिच्छेद

भारत सरकार की आर्थिक नीति ।

(१)

आर्थिक स्वराज्य ।

भारत की आर्थिक अवनति के कारणों को जानने से पूर्व इस बात पर विचारना अत्यन्त आवश्यक है कि भारत की राजनैतिक स्थिति क्या है ? क्योंकि जातीय समृद्धि का मुख्य कारण आर्थिक स्वराज्य है । यदि भारत को आर्थिक स्वराज्य पूर्व से ही प्राप्त हो तो भारत की दरिद्रता के कारण सामाजिक होने चाहिये । भारतीय समाज में प्रमाद, अज्ञान, अकर्मण्यता आदि दुर्गुण होवेंगे जो कि आर्थिक स्वराज्य के प्राप्त होते हुए भी और राज्य से पूर्ण सहायता मिलते हुए भी उसको उन्नति करने से रोक रहे हैं । परन्तु आर्थिक स्वराज्य के न होते हुए भारत की आर्थिक अवनति के कारणों को सामाजिक बताना भयंकर भूल करना होगा ।

महाशय आदम का कथन है कि "रुपया तथा धन समाज का जीवन तथा प्राण है । राष्ट्रीय आय व्यय पर जिस का

स्वत्व है वही जाति की राजनीति को मनमाने ढंगपर चलाता है। प्रतिनिधि-तन्त्र शासन पद्धति का मुख्य आधार बजट के पास करने या न करने में जनता का अधिकार ही है[१]।"
संसार के सभ्य देशों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि बजट पर जातीय स्वत्व न होने पर जनसमाज भयंकर दरिद्रता में गलने लगता है और उसकी स्वतन्त्रता को स्वेच्छाचारी राज्य मनमाने तौर पर लथेड़ते हैं। जाति को अपने बजट को पास करने या न करने का अधिकार होना ही आर्थिक स्वराज्य है। आर्थिक स्वराज्य सभ्य जातियों का जीवन तथा प्राण है। इसीके सहारे वह राज्यों के स्वेच्छाचार तथा नृशंस व्यवहार को दूर करती हैं और उनको अनुत्तरदायी होने से रोकती हैं।

भारत को आर्थिक स्वराज्य नहीं मिला हुआ है। अंग्रेजों की पार्लियामेंट ही भारत के बजट को पास करती है। भारतीयों पर कितना राज्य-कर लगे और उसको कहां खर्च किया जावे, इसका निर्णय एक मात्र इंग्लैण्ड के ही हाथ में है[२]। अपने ही धन पर भारतीयों का स्वत्व नहीं है। भारतीयों का धन विदेशी युद्धों के जीतने में न खर्च किया जावेगा, यह इंग्लैण्ड

(१) H. C. Adam's Finance, pp. 115—116.
(२) The Indian Constitution by A. Rangaswami Iyengar Ch. XIV. pp. 209—211.

ने प्रण किया था। परन्तु अब वह भी एक मात्र कानून की किताब में ही रह गया है। क्योंकि इंग्लण्ड को इस बात के कहने से कौन रोक सकता है कि यूरोप का पञ्चवर्षीय महायुद्ध भी भारत की स्वतन्त्रता के लिये ही हुआ था? टर्की के साथ युद्ध तथा भारतीय धन और सेना से मेसोपोटामिया का विजय भी भारतीयों की रक्षा के लिये ही हुआ—यदि ऐसा निर्णय इंग्लैण्ड करे तो उसका क्या प्रतिकार है?

इंग्लैंड को 'आर्थिक स्वराज्य' का रहस्य नहीं मालूम है, यह नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि इंग्लैंड ही एक ऐसा देश है जिसने आधुनिक यूरोपीय राष्ट्रों में सब से पहले आर्थिक स्वराज्य प्राप्त किया। केसर के अत्याचारी तथा स्वेच्छाचारी शासन में पले जर्मनी जैसे देशों को भी आर्थिक स्वराज्य प्राप्त था। परन्तु भारत को इस जन्म-सिद्ध नैसर्गिक अधिकार से इंग्लैंड का वञ्चित रखना कुछ एक गुप्त रहस्यों से परिपूर्ण है। उसने स्वतन्त्रता के नाम पर इस पञ्चवर्षीय खूनी युद्ध में भारत के धन तथा जीवन को पानी की तरह बहाया और भारत को स्वतन्त्रता की पहली सीढ़ी से भी वञ्चित रखा, इसका मतलब क्या है? संसार के अन्य सभ्य देशों में ऐसे भयंकर दासतामय दृश्य नहीं दिखायी पड़ते। दृष्टान्त-स्वरूप ग्लैंड को ही ले लीजिये। १२१५ में इंग्लैंड की जनता ने अपने राजा से यह स्पष्ट शब्दों में कह

दिया कि वह प्रजा से मनमाने तौर पर धन नहीं ले सकता है *। मैग्नाकार्टा की बारहवीं धारा के शब्द हैं कि "जन-सभा की अनुमति के बिना किसी प्रकार का भी नया कर न लगाया जा सकेगा।" इसी विषय पर महाशय क्रैसी लिखते हैं कि "गाथ जाति के लोगों में सभा तथा समिति का प्रचार था। शासक को इनकी सम्मतियों के अनुसार ही काम करना पड़ता था। डेन्स लोगों में तथा जर्मनों में ऐसी ही सभा तथा समिति के द्वारा संपूर्ण काम होता था। इंग्लैंड की विटान राजा के कार्य्यों का निरीक्षण करती थी। नार्मन विजय से अंग्रेजों की स्वतन्त्रता को कुछ कुछ धक्का पहुंचा परन्तु उन्होंने कुछ ही सदियों के बाद बड़ी मेहनत से अपनी स्वतन्त्रता को फिर से प्राप्त कर लिया" †। १७८७ में फ्रांस ने भी यह उद्घोषणा करदी कि जातीय आय पर हमारा स्वत्व है। प्रतिनिधि सभा की बिना अनुमति के राजा जातीय धन को नहीं खर्च कर सकता है और करके द्वारा धन को ग्रहण भी नहीं कर सकता है। पेरिस में फ्रान्सीसी जनता ने पार्लियामेंट के प्रधान से स्पष्ट शब्दों में कहा था कि "फ्रांस राज्य का यह नियम है कि प्रत्येक प्रकार के राजकीय आय-

* Tout: 'History of Great Britain.'

† Creasy, The Rise and Progress of the English Constitution, p. p. 183,184.

व्यय पर जनता की सम्मति लीजावे " * । इसी प्रकार हालड के शासक को जन सभा के सम्मुख उपस्थित होना पड़ता था और बड़ी मेहनत से उसको धन मिलता था † । संसार के सभ्य देशों में बजट का पास करना या न पास करना जनता के ही हाथ में है । इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी तथा अमेरिका—सभी देशों की प्रजा को आर्थिक स्वराज्य मिला हुआ है ।

इंग्लैंड में जनता को बजट सम्बन्धी अधिकारः— इंग्लैंड में प्रतिनिधि सभा के निम्नलिखित तीन आर्थिक अधिकार हैं ।

(क) प्रतिनिधि सभा की बिना अनुमति के नये राज्य-कर न लगाये जावेंगे, पुराने राज्य-करों की मात्रा न बढ़ायी जावेगी और सामयिक राज्य-करों में अदल बदल नहीं किया जावेगा ।

(ख) प्रतिनिधि सभा की बिना अनुमति के किसी प्रकार का भी जातीय ऋण न लिया जावेगा ।

(ग) प्रतिनिधि सभा की सम्मति के बिना राज्य जातीय धन को किसी भी काम में न खर्च कर सकेगा ।

* Leroy-Beaulieu : The Science of Finance, Vol. II. P. 4.

† H. C. Adam's Finance, p. 108.

फ्रान्स में जनता को बजट सम्बन्धी अधिकार :— १७८७ की राज्यक्रांति के बाद फरांसीसी जनता ने भिन्न भिन्न १८ शासन-पद्धतियों में रहने का यत्न किया। सभी शासन-पद्धतियों में जनता को आर्थिक स्वराज्य पूरी तरह से प्राप्त था। स्वतन्त्रता की उद्घोषणा (Declaration of Rights) करनेवाले पत्र की १४वीं धारा के ६वें प्रकरण में लिखा है कि "फ्रांस की सारी की सारी जनता को धन द्वारा राज्य को सहायता पहुँचानी पड़ेगी। साथ ही जनता को यह अधिकार होगा कि वह अपनी बहुसम्मति से धन की राशि तथा उसका व्यय निश्चित करे।" १७८६ की शासन-पद्धति की निम्न तीन धारायें फरांसीसी जनता के आर्थिक स्वराज्य की नींव समझी जाती हैं।

(१) प्रकरण पांचवें में लिखा है कि प्रतिनिधि सभा की अँनुमति के बिना किसी प्रकार का भी राज्य-कर और व्यावसायिक-कर नहीं लगाया जा सकता है।

(२) प्रकरण छठे में लिखा है कि प्रतिनिधि सभा के सभ्य राष्ट्रीय धन के व्यय पर तीक्ष्ण दृष्टि रख सकते हैं।

(३) प्रकरण सातवें में लिखा है कि राज्य के सारे के सारे अधिकारियों को मन्त्रियों के प्रति उत्तरदायी होना पड़ेगा।

जर्मनी में जनता को बजट सम्बन्धी अधिकार :- जर्मनी में राज्य-नियमों के अनुसार प्रजा को ही राष्ट्रीय आय-व्यय के पास करने या न करने का अधिकार प्राप्त था। १८७१ की शासन-पद्धति की धाराओं का ६९वां प्रकरण (Article) ध्यान देने योग्य है। उसमें लिखा है कि "जर्मन साम्राज्य की सारी की सारी आमदनी तथा खर्च का प्रतिनिधि सभा से पास किया जाना आवश्यक है।"

अमेरिका में जनता को बजट सम्बन्धी अधिकार :- अमेरिका में भी जनता को आर्थिक स्वराज्य मिला हुआ है। राष्ट्रीय आय-व्यय का पास करना उसी के हाथ में है। साम्राज्य की शासन-पद्धति (Federal Constitution) की चार धारायें आर्थिक स्वराज्य के सम्बन्ध में ध्यान देने के योग्य हैं :—

(क) पहिली धारा (Article 1. sec. 8, clause 2) में लिखा है कि सेना के खर्च के लिये दो साल से अधिक सालों के लिये धन एकबारगी ही न दिया जावेगा।

(ख) पहिली धारा के ९ वें प्रकरण (Article 1. see. 9. clause 7) में लिखा है कि राज्य-नियमों के विपरीत राज्य-कोष से धन न लिया जा सकेगा।

(ग) आगे चल कर उसी धारा में लिखा है कि राष्ट्रीय

उन्नति करना बालू पर महल बनाना है। बिना आर्थिक स्वराज्य के भारत के व्यवसाय तथा व्यापार कूट उद्देश्य और स्वार्थ की भयंकर आंधियों तथा तूफानों से अपने आपको कभी नहीं बचा सकते हैं।*

---

(२)

भारत में कृषि तथा व्यवसाय।

चिरकाल से भारतवर्ष कृषि तथा व्यवसाय प्रधान देश था। आर्थिक स्वराज्य के खोने और परराज्य के ग्रहण करने के बाद भारत का भाग्य फिरा। आज कल भारतवर्ष एक मात्र कृषिप्रधान देश ही है। प्रोफेसर वीवर का कथन है कि "रुई का महीन कपड़ा बुनने में, रंग बनाने में, बहुमूल्य धातु सम्बन्धी काम में, इतर आदि के निकालने में भारतीयों की चतुरता तथा कार्य्यदक्षता चिरकाल से प्रसिद्ध थी"†। आज से ५००० वर्ष पहले बेबिलोनिया का भारत के साथ व्यापार था। वह भारत के व्यावसायिक पदार्थों

---

* इसी विषय पर यदि विस्तृत तार पर देखना हो तो देखो 'राष्ट्रीय आय-व्यय शास्त्र' पं० प्राणनाथ विद्यालंकार कृत।

† Indian Industrial Commission-1916-18-pp. 295-96.

को खरीद कर ले जाता था। मिस्रियों के ४००० वष के पुराने मुर्दे भारतीय मलमल से लिपटे हुए पाये गये हैं। रोम में भी भारतीय पदार्थों को मंगाया जाता था। यूनानी लोग भी भारतीय मलमल पर मस्त थे[१]। रुई का व्यवसाय इंग्लैण्ड में १७ वीं सदी में शुरू हुआ था[२]। महाशय लिस्ट का कथन है कि इंग्लैण्ड के कारखाने भारतीय व्यवसायों को नष्ट कर के खड़े हुए हैं।[३] भारत के माल को यदि खुले तौर पर इंग्लैण्ड में आने दिया जाता तो आज मैनचेस्टर तथा पैस्ले की मिलों का कोई नाम भी न जानता होता।

लोहे का व्यवसाय भी देखते देखते ही पानी में मिल गया। प्राचीन काल से मुसलमानी काल तक भारत का लोह-व्यवसाय प्रफुल्लित दशा में था। इंग्लैण्ड में लोहे के व्यवसाय को जमे बहुत समय नहीं हुआ। महाशय रानडेने १८९२ में भारत के लोह-व्यवसाय के विषय में लिखा था कि-

"प्राचीन काल में भारत का लोह-व्यवसाय प्रफुल्लित दशा में था। स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ साथ

---

१ Ibid.

२ Imperial Gazeteer of India, Vol III, P. 195.

३ The National System of Political Economy by List : Part 1st, 'England.'

विदेश में भी लोहे के पदार्थ भेजे जाते थे। भारत का लोहा संसार-प्रसिद्ध था। दिल्ली की प्रसिद्ध लोहे की लाट, जो १५०० वर्ष पुरानी है, भारतीयों की चतुरता को सूचित करती है। महाशय बाल का कहना है कि संसार में कोई भी देश (आज से कुछ वर्ष पहले) दिल्ली की लोहे की लाटके सदृश लाट नहीं बना सकता था। अब भी बहुत थोड़े कारखाने हैं जो कि ऐसी भारी भारी लोहे की चीज़ों को बना सकें।"[१]

सिकन्दर के जमाने से अंग्रेजी राज्य के शुरू होते तक भारत की समृद्धि संसार-प्रसिद्ध थी। महाशय एल्फिन्स्टन का कथन है कि 'यूनानियों ने भारत के प्रदेशों के विषय में जो कुछ लिखा है उससे यही मालूम पड़ता है कि भारतवर्ष बहुत अमीर देश था और भारतवर्ष की आबादी भी बहुत घनी थी। स्थान स्थान पर बड़े २ नगर बसे हुए थे। दासता का नामोनिशान न था। चोरी नहीं के बराबर थी। नहरों द्वारा खेतों को सींचा जाता था। भारतवर्ष बहुत समृद्ध था'।[२] मुसलमानों के आक्रमण शुरू होने पर भारत के व्यापार व्यव-

---

(१) Ranade's Eassys on Indian Economies, pages 159-16.

(२) History of India, p. 52.

साय को कुछ कुछ धक्का पहुंचा परन्तु शीघ्र ही भारत फिर संभल गया। अकबर आदि मुगल बादशाहों के समय में भारत का व्यापार व्यवसाय बहुत ही अधिक चमका। शाह-जहां के समय महाशय बर्नियर भारत में यात्रा करने आये थे। उन्होंने भी भारत को एक अति समृद्ध देश प्रगट किया था। हीरे जवाहरात मोती पन्ने आदि अनेक वहुमूल्य पदार्थों से भारतवर्ष भरा हुआ था[१]। भारत की कारी-गरी ने ही यूरोप को भारत से व्यापार करने के लिये उत्ते-जित किया था। प्रसिद्ध ऐतिहासिक मरे का कथन है कि यूरोपीय व्यापारी भयंकर कष्ट तथा विपत्तियों को सहन कर महीन खूबसूरत पदार्थों को खरीदने के लिये भारतवर्ष आते थे[२]। वेनिस तथा जेनोआ के अधःपतन के बाद पोर्तुगीज़ तथा डचोंने भारत के व्यापार से अपने आप को समृद्ध बनाया। धीरे धीरे करके इंग्लैण्ड के व्यापा-रियोंने भी इस लाभदायक व्यापार में हाथ डाला। महाशय लैकी ने लिखा है कि "सत्रहवीं सदी के अन्त में भारत की सस्ती खूबसूरत छींट तथा मलमल इंग्लैण्ड में पहुंची। इससे वहां के ऊन तथा रेशम के काम को बहुत धक्का लगा। १७०० से १७२१ तक अंग्रेज़ी प्रतिनिधि-सभा ने भारत के

(१) Industrial Commission—1916-1918 p. 296.
(२) Murray: History of India p. 27.

माल को इंग्लैण्ड में जाने से रोका[१] । १७५७ में मुर्शिदाबाद की समृद्धि के विषय में लार्ड क्लाइव के शब्द हैं कि "मुर्शिदाबाद लन्दन के सदृश ही समृद्ध, विस्तृत तथा आबाद है। मुर्शिदाबाद में एक एक व्यक्ति ऐसा अमीर है कि लन्दन उसका मुकाबला नहीं कर सकता है। अंग्रेजी राज्य में भारत की जो दुर्दशा हुई उसका अनुमान एक मात्र ढाका से ही किया जा सकता है। सर हेनरी काटनने १८९० में लिखा था[२] कि "आज से १०० वर्ष पहले अकेला ढाका नगर करोड़ों रुपये का व्यापार करता था। इसकी आबादी दो लाख से ऊपर थी। १७८७ में अकेले ढाका से ३० लाख रुपयों को मलमल इंग्लैण्ड गयी थी। (परन्तु इंग्लैण्ड की विपरीत नीति से) १८१७ में यह व्यापार सर्वथा ही नष्ट हो गया। लोग बुनने का काम छोड़ कर पेट के लिये खेतों में जा घुसे। सारे जिले पर विपत्ति का पहाड़ आ टूटा। आज कल ढाका की आबादी ७९००० है[३] "। यही बात रमेश चन्द्र दत्तने भी लिखी है कि "१९ वीं सदी के पहिले चार

(1) Lecky's History of England in the Eighteenth Century.

(2) H. J. S. Cotton, in New India, published before 1890

(3) Industrial Commission—1916-1918—p. 297.

वर्षों तक विघ्न बाधाओं के होते हुए भी तथा भयंकर से भयंकर राज्य-कर लगते हुए भी छै से पन्द्रह हजार तक रुई के कपड़ों के गट्ठे भारत से इंग्लैण्ड पहुंचते थे। १८१३ तक दिन पर दिन भारत का निर्यात रोका गया। १८२० के बाद रुई की कारीगरी तथा व्यापार को जो धक्का पहुंचाया गया उस से आज तक भारत अपने आप को न संभाल सका *। इस प्रकार स्पष्ट है कि अंग्रेज़ी राज्य से पूर्व तक भारतवर्ष स्वावलम्बी देश था। कृषि तथा व्यवसाय दोनों ही प्रफुल्लित दशा में थे। देश का व्यापार भी भारतीयों के ही हाथ में था। यही कारण है कि प्राचीनकाल में भारतवर्ष बहुत समृद्ध था। †

(३)

भारत का कृषि-प्रधान बनाया जाना।

भारत में अंग्रेजों का राज्य आते ही बहुत सी नयी नयी घटनाओं का सूत्रपात हुआ। भारत से रेशमी माल इंग्लैण्ड

* Ecommic History of British India, p. 295.

† 'भारत में कृषि तथा व्यवसाय' यह प्रकरण सारा का सारा श्रीमान् पंडित मदनमोहन मालवीय जी के उस नोट के सहारे लिखा गया है जो कि उन्होंने इन्डस्ट्रियल कमीशन को दिया था।

में गया। अंग्रेजी जुलाहों ने शोर मचाना शुरू किया। इस पर ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने बंगाल के रेशम के व्यवसाय को दबाना शुरू किया। १७६९ के १७ मार्च के पत्र में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने खुले तौर पर यह लिख दिया कि "भारत में कच्चा रेशम ही उत्पन्न होना चाहिये। रेशम के कपड़े बुनने वाले जुलाहों को कम्पनी की कोठियों के लिये काम करने पर बाधित करो और अन्यों के लिये काम करने से रोक दो।" इससे भारत के रेशम के व्यवसाय को भयंकर धक्का पहुंचा।

रुई के कपड़ों के साथ भी अंग्रेजों ने ऐसा ही व्यवहार किया। १८१३ में भारत के बने कपड़ों पर इंग्लैण्ड में जो राज्य-कर लगाया गया था उसका ब्योरा इस प्रकार है*।

सूती कपड़े	नाशक राज्य-कर—सैकड़ा पीछे		
	पाउन्ड	शिलिङ्ग	पेंस
कैलिको	८१	२	११
रुई	०	१६	११
रुई के कपड़े	८१	२	११
ऊनी कपड़े	८४	६	३
मलमल	३२	९	२

इन नाशक राज्य-करों की चोट से भारत के व्यवसाय

* Prosperous British Iudia by Digby, Page. 90.

को भयंकर आघात पहुंचा। भारत को अंग्रेजी माल पर राज्य-कर लगाने का मौका न दिया गया। १८२३ से ही अंग्रेजी माल का भारत में आना बढ़ा। भारतवर्ष व्यवसाय-प्रधान देश से एक मात्र कृषिप्रधान ही देश होगया। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विल्सन की सम्मति है कि "१८१३ तक भारत का माल अंग्रेज़ी माल से ५० से ६० फी सैकड़े तक सस्ता था। यही कारण है कि ७० से ८० फी सैकड़े तक नाशक या बाधक कर का प्रयोग किया गया। यदि ऐसा न किया जाता तो पैस्ले तथा मैनचेस्टर की मिलें खड़ी न हो सकतीं। यदि भारत स्वतन्त्र होता तो वह इंग्लैण्ड को कभी भी ऐसा न करने देता। भारत को अपने आत्मरक्षण का मौका भी न मिला। राजनैतिक शक्ति के सहारे विदेशी माल को भारत पर लादा गया* *।"

रेशम तथा रुई के व्यवसाय के सदृश ही नौ-व्यवसाय (Ship building) को भी धक्का पहुचा। राधाकुमुद मुकुर्जी ने नौव्यवसाय का इतिहास (History of Indian shipping) नामक अपूर्व ग्रन्थ में यह अच्छी तरह से दिखाया है कि किस प्रकार भारत इस व्यवसाय में सारे संसार से बढ़ा हुआ था। महाशय डिगबी ने लिखा है कि आज से सौ वर्ष पहले भारत

. Indian Industrial Commission - 1916 - 18 - PP. 297-298.

में नौ-व्यवसाय बहुत उन्नत दशामें था। टेम्स नदी तक भारत के जहाज़ बड़ी अच्छी तरह से जाते थे। यही बात लार्ड वेलेसली ने १८०० में कही थी †? भारत के नौव्यवसाय के नाश का श्रीगणेश कैसे हुआ, इसका महाशय टेलर ने बहुत अच्छी तरह से वर्णन किया है। उनके शब्द हैं कि "भारतीय जहाजों के द्वारा भारतीय पदार्थों के लन्दन में पहुंचते ही अंगरेज एकाधिकारियों (monopolists) में ऐसा ही शोर मच गया जैसे कि किसी दुश्मन का जहाज पहुंच गया हो। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया कि उनका व्यवसाय नष्ट होने वाला है और सारे के सारे मल्लाहों तथा माल बनानेवालों के परिवार अब भूखे मरने लगेंगे" (१)। इस शोर का काफी असर हुआ। कम्पनी के डाइरेक्टरोंने भारतीय जहाजों का प्रयोग सर्वथा ही छोड़ दिया।

धीरे धीरे सारे के सारे भारतीय व्यवसायों पर वज्र-पात हुआ। अंगरेजी कारीगरों पर भारतीय कारीगर नर-बलि हुए। भारत व्यावसायी देश से कृषिप्रधान देश बनाया गया। आर्नोल्ड टिन्बी ने भी यही लिखा है कि 'संरक्षण बिना अंगरेजी कारखाने अपने पैरों न खड़े हो सकते। भारत

---

† Prosperous British India by Digby. page 86.

(१) Taylor : 'History of India,' page 216.

तथा उपनिवेश अंगरेजी कारखानों के पीछे स्वाहा किये गये, (१) । कनिंघम ग्रीन आदि निष्पक्ष लेखक इस बात पर पूरी तरह से सहमत हैं कि भारत की कारीगरी को नष्ट करने से पूर्व इंग्लैंड की व्यावसायिक दशा बहुत उन्नत न थी (२) ।

भारत के व्यवसाय व्यापार को नष्ट करने के बाद भारत को कृषिप्रधान देश बनाया गया । रेलों तथा भाफ के जहाजों ने इस बात में बड़ी सहायता की । शुरू शुरू में इंग्लैंड ने उपनिवेशों को ही अपने स्वार्थ का साधन बनाया परन्तु अमेरिका के स्वतन्त्रता-युद्ध के बाद उसने अपनी नीति को बदल दिया। भारत को उपनिवेशों का भाग्य मिला। महाशय रानडे का कथन है कि "उपनिवेशों के स्थान पर भारत से ही इंग्लैंड ने कच्चा माल प्राप्त करने का यत्न किया । यह कच्चा माल अंग्रेज़ी जहाजों के द्वारा इग्लैंड में पहुंच कर बने माल के रूप में फिर से भारत में लौट आने लगा (३) ।"

---

(१) The Industrial Revolution of Eighteeth Century in England by Arnold Toynbee, Page 58.

(२) Green's 'Short History of the English people' Page 791—92.

Cunningham, Growth of English Industry and Commerce part II, page 610.

(३) Ranade (Essays, page 99).

इस से भारत में कारीगर बेकार हो गये। पेट के खातिर उनको खेती के कामों की ओर झुकना पड़ा।

व्यापार व्यवसाय के नष्ट होने पर राज्य के खर्चों का भार भी भूमि पर आ पड़ा। मालगुजारी दिन पर दिन बढ़ायी गयी। इससे दुर्भिक्ष तथा महँगी का कोप शुरू हुआ। सरकारी मालगुजारी से त्रस्त, दरिद्र, ऋणग्रस्त किसान एक बार भी वृष्टि के असफल होते ही मृत्यु के ग्रास होने लगे। ऐन ऐसे ही कष्टमय समय में यूरोपीय लोगों ने भारत के धन से समृद्ध हो कर कृषि की अवहेलना की और भारत के अन्न पर पलना शुरू किया। भयंकर महँगी पड़ी। बेचारे भारतीय अन्न आदि उत्पन्न करते हुए भी अपने ही अन्न से वञ्चित किये गये।

---

(४)

भारतवर्ष का आर्थिक भविष्य।

ई० १९१९ के सुधारों से भारत की आर्थिक दशा सुधर जावेगी इसमें कुछ कुछ सन्देह है। स्वतन्त्र व्यापार की नीति ने भारत की व्यावसायिक उन्नति को बहुत कुछ रोक दिया। इससे एक मात्र इंग्लैंड को ही लाभ था। आजकल इंग्लैंड ने पैंतरा बदला है। उसने सापेक्षिक कर (Imperial preference)

की नीति का अवलम्बन किया है। भारत की आर्थिक उन्नति को सामने रखते हुए किसी भी नीति को काम में लाया जावे हित के सिवाय अहित नहीं हो सकता है। परन्तु इसी बात की कमी है। भारत के स्वार्थों को इंगलैंड के खातिर बलि चढ़ाया जाता है। जर्मनी से भारत का व्यापार रोका गया है। परन्तु इससे भारत को कुछ भी लाभ नहीं है। औषधियां, रासायनिक द्रव्य तथा रंग जर्मनी सस्ता तथा उत्तम देता था। अन्य बहुत से जर्मन पदार्थ हैं जो कि भारत में आते थे। भारत में यदि इनके कारखाने होते तो भी कोई बात थी। बिना कारखानों के इन द्रव्यों को जर्मनी से न मंगाने में हमको नुकसान है। यदि हम इंगलैंड से इन्हीं पदार्थों को महँगे दामों में खरीदें तो इससे भारत को क्या लाभ मिला। यदि भारत को जर्मनी से सस्ता व्यावसायिक पदार्थ मिल सकता हो तो भारत को कौन सी गर्ज पड़ी है कि वह इंगलैंड से महँगा खरीदे। परन्तु सापेक्षिक कर की नीति का भक्त बन कर इंगलैंड भारत को जबरन अपने महँगे, भद्दे तथा रद्दी पदार्थ खरीदने पर बाधित करेगा। इसीको दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि भारतवर्ष अप्रत्यक्ष राज्य-कर देवेगा ताकि इंगलैंड के बालक व्यवसाय फलें फूलें। यह प्रत्यक्ष अन्याय है। भारत के शोषण का एक नया तरीका है। मेसर्स वाचा, काले तथा अन्य योग्य योग्य भारतीय

अर्थ-तत्वज्ञाता सापेक्षिक कर की नीति को इसी लिए भयंकर हानिकर समझते हैं।

स्वतंत्र व्यापार तथा ईस्ट इन्डिया कम्पनी के अत्याचार से पीड़ित हो कर भारत के कारीगर कृषि में घुसे। मालगुजारी को बहुत ही अधिक बढ़ा कर सरकार ने भारत की जड़ों को खोखला कर दिया। दुर्भिक्ष रोग आदिकों का मुख्य कारण मालगुजारी का बहुत ज्यादा बढ़ना है। महंगी का एक कारण यह भी है। इन सब कष्टों तथा विघ्नों के होते हुए भी भारतीयों ने नये ढंग पर कुछ एक चीज़ों के व्यवसायों को खड़ा किया। रुई, बरफ, छापेखानों के कामों में कुछ कुछ सफलता भी मिली। मैनचैस्टर-वालों ने इनको तबाह करने का यत्न किया। सरकार ने भी उनके कहने में आ कर १८८२ में भारतीय व्यवसायों पर ३$\frac{१}{२}$ प्रति शतक का व्यावसायिक कर (Excise duty) का प्रयोग किया। रेलों का किराया भी ऐसा पेचीदा रखा कि कच्चा माल विदेशों में बहुत अधिक जावे और भारतीय व्यवसायों की उन्नति में वह सहायता न दे सके। शक्कर के कारखानों की असफलता का मुख्य कारण रमया स्पिरिट पर भारी ड्यूटी है। राब से शक्कर बनाते समय सीरा बचता है। शुद्ध स्पिरिट पर राज्य-कर होने से सीरे द्वारा भारत में शुद्ध स्पिरिट नहीं बनायी जा सकती है। स्पिरिट के न बनने से रासायनिक द्रव्य

भारत में नहीं बन सकते हैं। रासायनिक द्रव्यों के न बन सकने से कागज, दियासलाई आदि के कारखाने लाभपूर्वक नहीं चल सकते हैं। स्पिरिट को अनेकों व्यवसायों की कुञ्जी समझा जाता है। यदि कोई देश स्पिरिट न बना सके तो वह बहुत सी चीजों के कारखानों को कभी भी नहीं चला सकता है। शक्कर के कारखानों की असफलता का भी एक मुख्य कारण यही है। भारत सरकार ने बड़ी बुद्धिमता से शुद्ध स्पिरिट का बनना भारत में रोक दिया है। जब तक स्पिरिट पर से ड्यूटी नहीं हटती तब तक बहुत से भारतीय व्यवसाय सफलता नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

(क)

रेलवे का किराया।

अभी लिखा जा चुका है कि रेलों का किराया ऐसा पेचीदा है कि उससे भारत को व्यावसायिक उन्नति में किसी प्रकार की भी सहायता नहीं पहुंच सकती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि १८८० से १८८७ तक गेहूं बाहर भेजने का किराया आगरा तथा दिल्ली से बाम्बे तक ०—१०—६ पाई प्रति मन था। १९०७ में यही किराया ०—६—०

और १९०८ में ०—७—१ पाई कर दिया गया। इस प्रकार गेहूं भेजने के किराये को घटा कर सरकार ने हिन्दुस्तान से गेहूं बाहर भेजने में सहायता पहुंचायी। यहीं पर बस न कर, बाम्बे, किराची तथा कलकत्ते के लिए सभी स्टेशनों से किराया कम किया गया। १८९० से १९१२ तक हाथरस से बाम्बे भेजने के लिये गेहूं का किराया ०—१०—० से ०—७—० आना प्रति मन रह गया। इसीके साथ साथ सरकार ने गेहूं को एक नगर से दूसरे नगर में जाने से रोका। हाथरस से कानपुर की आटे की मिल के लिये गेहूं जाता था। १८९० से १९०५ तक इसका किराया ० – १ – ११ पाई प्रति मन से ०—१—८ पाई प्रति मन तक था,। १९०६ में यही किराया ०—३—० प्रति मन कर दिया गया और १९१२ तक इसमें किसी प्रकार का भी परिवर्तन न किया गया। इसीको यदि दूसरे शब्दों में कहना हो तो यों कहा जा सकता है कि सरकार की नीति से भारतीयों को अपने ही गेहूं को खाने से रुकना पड़ा और विदेशियों को गेहूं दिन पर दिन सस्ता दिया गया।

१८९० से १८९६ तक जब्बलपुर से बाम्बे तक गेहूं का किराया ०—९–६ पाई प्रति मन था। १८९७ से १९११ तक इस किराये को दिन पर दिन घटाते हुए ० – ६ – ० प्रति मन कर दिया गया। जब्बलपुर से बाम्बे ६१६ मील दूर है और

कानपुर ३४७ मील दूर है। आश्चर्य की बात है कि जब्बलपुर से कानपुर तक गेहूं भेजने का किराया ०-६-३ पाई है। एक ओर तो सरकार ६१६ मील दूरी के लिए ०-६-० प्रति मन किराया लेती है और दूसरी ओर ३४७ मील के लिये ०-६-३ प्रतिमन किराया लेती है। इससे बढ़ कर अन्याय और अत्याचार क्या हो सकता है? इसका तो स्पष्ट मतलब यही है कि किसी न किसी तरीके से भारत का गेहूं यूरोप चला जाय और भारतवासी उसको न खा सकें।

गेहूं के सदृश ही अन्य कच्चे माल के बाहर भेजने की रेटें भी अन्याय तथा अत्याचार से परिपूर्ण हैं। दृष्टान्त स्वरूप चमड़े को ही लीजिये। १८९५ में सूखे कच्चे चमड़े पर आगरा से बाम्बे तक १-२-२ पाई प्रति मन रेलवे का किराया था। १९१२ में यह किराया घटा कर ०-८-९ पाई कर दिया गया। इसी प्रकार आगरा से किराची तक रेलवे का किराया ०-१५-६ पाई १८९५ में था। परन्तु इसको १९१२ में ०-८-४ पाई तक घटा दिया गया। इसी प्रकार अम्बाले से किराची तक चमड़ा भेजने का किराया १८९१ में १-५-३ पाई प्रति मन था। यही किराया घटाकर १९१२ में ०-९-११ पाई कर दिया गया। परन्तु अम्बाला से कानपुर तक १८९४ में चमड़े का किराया ०-७-७ पाई था। १९१२ में यही किराया घटकर ०-६-९ पाई तक

बड़ी मुश्किल से पहुंचा। इससे स्पष्ट है कि भारत सरकार ने चमड़े को बाहर भेजने के लिये किराया ५० प्रति शतक और स्वदेशी कारखानों के लिये १८ बर्षों के लम्बे समय में किराया केवल १० प्रति शतक ही घटाया है [१]। भारत के व्यापार व्यवसाय की उन्नति के विषय में भारत सरकार की कैसी विपरीति नीति है उसका इससे बढ़कर और क्या प्रत्यक्ष प्रमाण हो सकता है? सब से बड़ी बात तो यह है कि कानपुर के कारखानेवालों को लाचार होकर सरकार से यह कहना पड़ा कि "कानपुर के चमड़े के कारखाने की वृद्धि की सब से बड़ी रुकावट यह है कि सरकार चमड़े को बाहर भेजने के लिये उत्साहित करती है और कानपुर तक चमड़े को पहुंचने से रोकना चाहती है। इससे भारत के स्थानीय व्यवसायों का नष्ट होना स्वाभाविक ही है"।

आजकल भारतीय पूंजीपति शक्कर के कारखानों को खोलने के लिये बड़ी तेजी के साथ अपना रुपया लगा रहे हैं। परन्तु उनको इस बात का सदा ही ध्यान रखना चाहिये कि रेलवे का किराया उनके विरुद्ध और विदेशियों के अनुकूल न पड़े। क्योंकि अभी तक ऐसा ही होता आया है।

---

१. Amrit Bazar Patrika Bi-Weekly, December 14, 1919. Article " Indian Railway Management."

दृष्टान्त-स्वरूप १८९५ में कराची से अम्बाला तक आयी हुई शक्कर पर रेलवे का किराया १-२-६ पाई प्रति मन था और १९१२ में यह किराया घटा कर ०-१४-४ पाई प्रति मन कर दिया गया। परन्तु कानपुर के कारखानों के लिये १९१२ तक रेलवे का किराया बिल्कुल भी न घटाया गया। १८९५ से १९१२ तक आगरा से कानपुर तक शक्कर के विषय में रेल का किराया ०-६-७ पाई प्रति मन बराबर बना रहा। इंडस्ट्रियल कमीशन की रिपोर्ट में लिखा है कि जब से विदेश से आनेवाली शक्कर पर रेलवे का किराया घटाया गया है तब से वह भारत में अधिक अधिक रुपयों की आयी है। कलकत्ता से जब्बलपुर तक १८९५ में शक्कर का किराया १-०-६ पाई प्रति मन था। यह घटा कर १९१२ में ०-८-११ पाई कर दिया गया। इसी प्रकार बाम्बे से जब्बलपुर तक १९०८ से १९१२ तक शक्कर का किराया घटा कर ०-६-१० पाई प्रति मन कर दिया गया। सारांश यह है कि विदेशी शक्कर के लिये रेल का किराया ५० प्रति शतक घटाया गया और स्वदेशी शक्कर के लिये किराया न घटाया गया।

स्वदेशी कारखानों के सफलतापूर्वक चल सकने के लिये आवश्यक है कि सरकार अनुकूल हो। बिना आर्थिक स्वराज्य के दूसरों की दया तथा कृपा की भीख मांग कर कब तक काम किया जा सकता है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के जमाने

में अंग्रेज शासकों को सफा सफा अत्याचार तथा अन्यायपूर्ण काम करने पड़े। परन्तु अब उनको सफा सफा ऐसे काम करने की कुछ भी जरूरत नहीं रही। उनके पास ऐसे बहुत पेचीले साधन हैं जिनके द्वारा वे अपनी मनोकामना को सुगमता से ही पूरा कर सकते हैं। वे जब चाहें बिना किसी प्रकार की रुकावट के ही हमारे व्यापार व्यवसाय को रसा-तल में पहुंचा सकते हैं।

सरकार जब कभी व्यावसायिक कमीशन बैठाती है तो लोग समझते हैं कि अब कदाचित् भारत के व्यवसाय प्रफुल्लित हो जांय। परन्तु व्यावसायिक कमीशन तो धोखे की टट्टियां हैं। इनका बैठना देश को हानि के सिवाय लाभ कभी भी नहीं पहुंचा सकता है। जब कभी अंग्रेजों को भारत के किसी पुराने पेशे को हथियाना होता है तो उस पर कमीशन इसी लिये बैठा दी जाती है कि उस पेशे के संपूर्ण गुप्त रहस्य उनको मालूम पड़ जांय। व्यावसायिक कमीशन पक्षपात तथा अन्याय से परिपूर्ण होते हैं। भारत की समृद्धि तथा व्यावसायिक शक्ति को चकनाचूर करने के लिये ही इनकी सृष्टि होती है। सापेक्षिक कर, स्पिरिट की ड्यूटी, रेलवे रेटके सदृश ही विनिमय की रेट का नियत करना भी भारतसचिव तथा भारत सरकार के हाथ में होने से भारत का अन्तरीय व्यापार व्यवसाय चुटकी ही में उलटाया पुलटाया जा सकता है। विनिमय

की रेट को व्यापारीय-संतुलन (Balance of trade) की कुंजी समझा जाता है। संसार के अन्य सभ्य देशों में राज्यों ने इस कुंजी को अपने हाथों में नहीं रखा है। परन्तु भारत सरकार भला ऐसा कब कर सकती थी ? कब भारत से माल विदेश में जावे और कब विदेश से माल भारत में आवे और किन दामों पर अदला-बदल हो—यह सब भारत सरकार विनिमय की रेट की कुंजी को उमेठ कर घुमाया करती है। इससे भारत की समृद्धि तथा भारत की व्यावसायिक उन्नति को किस प्रकार पानी में मिलाया जा सकता है, इसका ज्वलन्त उदाहरण रिवर्स काउन्सिल्स का बेचना ही है।

(ख)

रिवर्स काउन्सिल्स की बिक्री।

भारत में आजकल सत्तर फ़ी सैकड़ा लोग कृषि सम्बन्धी कार्यों से ही जीवन निर्वाह करते हैं। व्यापार व्यवसाय के न होने से राज्य के सम्पूर्ण खर्चों का अन्तिम भार भूमि पर ही जाकर पड़ता है। भूमि इस भार को कहां तक सम्हाल सकती है ? परिणाम यह होता है कि मालगुजारी अधिक होने से प्रायः कृषकों को कर्ज लेकर अपना गुजारा करना पड़ता है और आए दिन की महँगी तथा दुर्भिक्ष में एक समय खाना खाकर निर्वाह करना पड़ता है।

एक मात्र कृषि करने से समृद्धि और शक्ति दोनों में ही भारतवर्ष यूरोपीय देशों से पिछड़ गया है। व्यावसायिक यानी बने हुए माल के लिये दूसरे देशों पर निर्भर करने से युद्ध आदि का कष्ट तथा महँगी का कष्ट भी भयंकर रूप धारण कर लेता है। इस से बचने के लिये भारतवासी चिरकाल से अपने देश को व्यापार-व्यवसाय-प्रधान बनाने का यत्न कर रहे हैं। व्यापार-व्यवसाय-प्रधान होने से भारत-वासियों को बहुत से लाभ पहुंच सकते हैं। सब से पहली बात तो यह है कि भूमि पर से राज्यकर कम हो जावेगा और कृषक सुखी हो सकेंगे। दुर्भिक्ष और महँगी का कष्ट बहुत कुछ कम हो जावेगा। यदि कम न भी हुआ तो भी उसका प्रभाव आजकल का सा भयंकर न रहेगा। दूसरी बात यह है कि व्यापार-व्यवसाय-प्रधान होने से भारत समृद्ध हो जायगा और बढ़े हुए राज्य के खर्चों को आसानी से ही सम्हाल लेगा। उत्पादकशक्ति, कला-कौशल और आविष्कारों की दिन पर दिन वृद्धि होगी। इससे भारतीयों की स्थिति भी संसार के अन्य देशों के सदृश ही हो जावेगी।

सारांश यह कि भारत कृषि-प्रधान देश के स्थान पर व्यापार-व्यवसाय-प्रधान देश होना चाहता है। वह भी यूरो-पीय देशों के सदृश ही समृद्ध होने का इच्छुक है। व्यापार-व्यवसाय-प्रधान होने के लिये पूंजी की जरुरत है। बेपूंजी

के कोई भी देश व्यापार-व्यवसाय-प्रधान नहीं हो सकता। सौभाग्य से इस पांच वर्ष के युद्ध में भारत ने काफी अधिक पूंजी प्राप्त की। इस पूंजी बढ़ने का ही यह परिणाम है कि कुछ ही समय में बहुत से नये कारखाने तथा नये बैंक खुले और उनके हिस्सों के दाम भी बाजार में बहुत अधिक चढ़ गये।

व्यवसाय की ओर भारत की प्रवृत्ति का एक कारण यह भी कहा जा सकता है कि विदेशी माल युद्ध के समय भारत में काफी राशि में न आसका। भारत सरकार भारतीय व्यापार-व्यसाय की उन्नति में उदासीन है। इस लियेउचित संरक्षण न मिलने से भारतीयों को व्यावसायिक उन्नति का मौका न मिला। पांच वर्ष के युद्ध से सपूर्ण विदेशी चीजें भारत में महँगी हो गईं। युद्ध में लगे हुए देशों को कच्चा माल और कुछ राशि में व्यवसायिक माल देकर भारत ने काफी अधिक पूंजी बटोर ली।

इस अधिक पूंजी को व्यावसायिक कामों में लगाने और विदेश से कल तथा यन्त्र मंगाने के लिये भारतीय व्यापारी और व्यवसायी इन्तजार कर रहे थे। पांच वर्ष तक लोगों ने महंगी से तकलीफ उठाई ही थी। स्वदेश की समृद्धि तथा शक्ति बढ़ाने के लिये भारतीय इस तकलीफ को कुछ समय तक और सहते तो विदेश से कलों तथा यन्त्रों के पहुंचने पर और भारतीय पूंजी के व्यावसायिक कामों में पूरी तरह लगने

से भारत का बहुत कल्याण होता। कुछ ही वर्षों में स्वदेशी कारखाने आवश्यक राशि में कपड़ा आदि का बनाना शुरू कर देते और इस प्रकार महँगी का प्रश्न अपने आप ही हल हो जाता। इस तपस्या का फल कुछ कम न होता। सरकार के खर्चों का भार देश सम्हालने के योग्य हो जाता। माल॰ गुजारी के कम हो जाने से कृषकों की दशा सुधर जाती, दुर्भिक्ष तथा दारिद्र्य का भय सदा के लिये काफूर हो जाता। नये व्यवसायों के खुलने से बेकारी का प्रश्न भी किसी हद तक हल हो जाता और भूमि पर से करों का भार भी बहुत कुछ कम हो जाता।

पांच साल के युद्ध से भारत को व्यापार और व्यवसाय में उन्नति करने का जो सुअवसर मिला उसका यह दिग्दर्शन मात्र है। अब उन परिवर्तनों को दिखाने का यत्न किया जावेगा जो इस युद्ध के दिनों में भारत तथा यूरोप के तिजारती लेनदेन में पैदा हुए।

जो माल भारत से विदेश जाता है और जो विदेश से भारत आता है उन दोनों की कीमत का भुगतान सरकार की मध्यस्थता में ही होता है। यदि इन दोनों प्रकार के मालों की कीमत बराबर हो तो भारत से किसी धन के जाने वा आने की जरूरत नहीं रहती। लन्दन तथा भारत के बाजार में हुंडियों द्वारा ही दोनों ओर के व्यापारियों का भुगतान हो

जाता है। यदि किसी वर्ष भारत में माल आया कम मूल्य का हो और यहां से गया अधिक का हो तो अधिक कीमत के बराबर धन या सोना भारत को उस वर्ष बाहर से मिलना चाहिये। ऐसी स्थिति को भारत के लिये 'सपक्षीय व्यापारीय संतुलन' कहा जाता है। इसकी विपरीत स्थिति को 'विपक्षीय व्यापारीय संतुलन' कहते हैं।

जो रुपया विदेशी व्यापारियों को भारत में भेजना होता है उसे भारत-मन्त्री लंदन में उनसे लेते हैं और उसके बदले उन्हें हुंडियां बेच देते हैं जिन्हें 'विनिमय बिल' कहते हैं। यह हुंडियां वहां खरीद कर व्यापारी भारत के व्यापारियों के पास भेज देते हैं और इन हुंडियों पर भारत सरकार यहां के व्यापारियों को नोटों वा सोने चांदी के रूप में धन दे देती है। इसी तरह भारत से जो रुपया विदेश जाना होता है उसके लिये भारत सरकार भारत में हुंडिया बेचती है जो भारत-मंत्री के यहां जाकर भुनती हैं।

इन दोनों ओर की हुंडियों के बिकने में रुपए और शिलिङ्ग के दाम भी घटते बढ़ते रहते हैं। इसे ही 'विनिमय की रेट' कहते हैं।

आम तौर पर सपक्षीय व्यापारीय संतुलन में रुपए के लिए अधिक शिलिङ्ग पेन्स और विपक्षीय व्यापारीय संतुलन में कम शिलिङ्ग पेन्स मिलते हैं। विनिमय की रेट

भारत में सोने चांदी के भाव और भारत मंत्री की मरजी पर निर्भर है।

पांच वर्ष तक भारत का लगाबार सपक्षीय व्यापारीय संतुलन रहा। इस लिये शिलिङ्ग तथा रुपयों के परिवर्तन की रेट बहुत पेचीदा नहीं हुई। दृष्टान्त के तौर पर १९०६ से १९१६ तक विनिमय की रेट इस प्रकार रहीः—

विनिमय बिल की रेट।

१

भारत सचिव का विक्रय।

सन्		पाउन्ड्स	शिलिङ्ग					रुपया
१९०६-७	...	३३४१८७१६	१	,,	४·०८४	पेन्स	=	१
१९०७-१९०८	...	१५३०७०६२	१	,,	४·०२९	,,	=	१
१९०८-१९०९	...	१४१४४५४५	१	,,	३·९३५	,,	=	१
१९०९-१९१०	...	२७४४४६०९	१	,,	४·०४१	,,	=	१
१९१०-१९११	...	२६२१२८६६	१	,,	४·०६१	,,	=	१
१९११-१९१२	...	२७०५८५५०	१	,,	४·८८३	,,	=	१
१९१२-१९१३	...	२५७४३७१०	१	,,	४·०५८	,,	=	१
१९१३-१९१४	...	३१२००८२७	१	,,	४·०७०	,,	=	१
१९१४-१९१५	...	७७९४००२	१	,,	४·००४	,,	=	१
१९१५-१९१६	...	२०३७१४६०	१	,,	४·०८८	,,	=	१

२

भारत सरकार का विक्रय।

१९०८-०९	...	८०५८०० पा०	१ शि. ३ $\frac{२९}{३२}$ पेन्स	=	१

रिवर्स काउन्सिल की बिक्री

१९०९-१०	...	१५६००० पा०	१ शि. ३ २९/३२ पेन्स = १
			हुन्डियां १ शि. ३ २९/३२ = १
१९१४-१५	...	८७०७००० पा०	प्रेषित १ शि. ३ १३/१६ = १
			तथा १ शि. ३ २७/३२ = १
१९१५-१६	...	४८९३००० पा०	मुद्दती हुण्डी २ शि. ८ २९/३२ = १
			१ शि ३ ३१/३२ = १

१९१६-१७ में भारत का व्यापारीय संतुलन बहुत ही अधिक अनुकूल था। इसमें विनिमय की रेट बहुत ही अधिक चढ़ गयी। भारत-सचिव ने इस रेट को १ शि० ४ ७/१२ पेन्स पर थामना चाहा परन्तु यह रेट १ शि० ६ पेन्स तक आ ही पहुंची। यह सब होते हुए भी भारत-सचिव ने भारत में सोना बहुत राशि में न आने दिया।

इन्हीं दिनों में एक और गड़बड़ उपस्थित हुई जो कि ध्यान देने योग्य है। लड़ाई में पड़ कर संसार की सभी जातियों ने अधिकाधिक नोट निकाले। इन्हीं चार वर्षों में अकेली भारत सरकार ने ही ३५ करोड़ तक के नोट बाहर निकाले। जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, इङ्गलैण्ड आदि ने नोटों का बाजार ही गरम कर दिया। इन नोटों के बदले धरोहर

में चांदी रखनी पड़ी और इस प्रकार माँग अधिक होने से चांदी का दाम बहुत ही अधिक चढ़ गया। चांदी की उपलब्धि के मुख्य स्थान लड़ाई में फँस गये और मैक्सिको के राज्य-विप्लव ने भी इस पर बहुत प्रभाव डाला। चांदी की बहुत सी राशि लुट जाने से चांदी की उपलब्धि बहुत कम हो गयी और चांदी फिर पुराने दामों पर जा पहुंची।

विनिमय की रेट का प्रश्न पेचीदा हो गया। पुराने अनुपात पर सोने चांदी का अदल बदल असम्भव हो गया। १९१७ में संसार की जो स्थिति थी उसको इस प्रकार दिखाया जा सकता है।

लन्दन में भिन्न भिन्न देशों के सिक्कों के विनिमय की रेट।

नगर	अनुपात	१९१७की दि०	हुन्डी का स्वरूप	राज्य द्वारा नियत की हुई पुरानी रेट
पेरिस	फ्रैंक्स का १ पाउन्ड	२७ २३·२४	हुण्डी	२५·२२ $\frac{१}{२}$
पेट्रोग्रैड	कवल्स का १ पाउन्ड	३५७-३६२	दर्शनीहुण्डी	९४-५७
इटली	लीरे का १ पाउन्ड	३९-४५-७५	,,	२५·३२ $\frac{१}{२}$
न्यूयार्क	डालर का १ पाउन्ड	४.७६ $\frac{५}{१६}$	,,	४·८६ $\frac{२}{३}$
बम्बई	रुपये का शि.	१ शि·५·५ $\frac{१}{१६}$	तारप्रेषित	१·४ पेन्स

रिवर्स काउन्सिल की बिक्री

भारत सरकार ने भारतीयों को सस्ता सोना खुले तौर पर न दिया। १६१६ तक सोने का दाम संसार में गिरता ही रहा और चांदी का दाम दिन पर दिन चढ़ता ही गया। इससे विनिमय का प्रश्न दिन पर दिन पेचीदा होता ही चला गया। करेन्सी कमेटी बैठी और अन्त में उसने भी यह फैसला दे दिया कि आगे को दो शिलिङ्ग बराबर एक रुपये के समझे जावें।

१६१६ के दिसम्बर तक भारत का सपक्षीय व्यापारिक संतुलन था। चौसठ करोड़ तथा बीस लाख रुपयों का माल भारत से विदेश में अधिक गया था। इससे भारत में विनिमय की रेट का गिरना कुछ कुछ कठिन था। विदेशों को माल भेजनेवाले भारतीय व्यापारी निश्चिन्त थे। इंगलैण्ड से भारत के अन्दर माल बहुत तेजी से नहीं आ रहा था। अतः विदेशी माल पूर्ववत् महंगा था। कच्चा माल भारत से विदेश जाने से सस्ता न हो सका। भारतीय पूंजीपति अपनी अधिक पूंजी को व्यवसायों में लगाने के लिये तैयार थे, इससे इंगलैण्ड के व्यवसायों को काफी धक्का पहुंच सकता था।

आय-व्यय-सचिव महाशय हेली ने रिवर्स काउन्सिलस को बेचकर एक ही निशाने में संपूर्ण काम सिद्ध करने का यत्न किया।

रिवर्स काउन्सिल्स के बेचने का सब से बड़ा प्रभाव तो यह था कि भारत की सारी की सारी पूंजी एक मात्र विनिमय की रेट के कारण ही इङ्गलैण्ड के बैंकों में जा सकती थी। क्योंकि व्यापारियों को यह तो मालूम ही है कि कुछ ही महीनों के बाद एक रुपये के बदले केवल दो ही शिलिङ्ग मिलेंगे। यदि आज उनको एक रुपये के बदले दो शिलिङ्ग ग्यारह पेन्स मिलते हों तो कदाचित् ही कोई मूर्ख या देश-भक्त व्यापारी होगा जो अपने रुपयों को विदेश में न भेजदे। तीन ही मास में यदि स्थिर तौर पर ग्यारह पेन्स का लाभ होता हो तो उसको हाथ से क्यों निकलने दिया जावे। क्योंकि यह उसको एक प्रकार से लगभग सैकड़ा से अधिक ही लाभ है।

भारत की अधिकतर पूंजी यदि विदेश में चली जाती तो भारत कभी भी व्यावसायिक देश न बन सकता। पाँच वर्षीय युद्ध में भारतीयों ने जो धन कमाया उससे कल-यन्त्र आदि खरीदे जाते तो भारत की उत्पादक-शक्ति को बहुत अधिक लाभ पहुंचता। ऐसे बुरे अवसर पर महाशय हेलो का रिवर्स काउन्सिल का बेचना भारत की उत्पादक शक्ति को बहुत बुरी चोट पहुंचा सकता था। सरकार का प्रजा के सारे के सारे धन को सट्टों तथा साहसिक लाभों में लगवा देना कहां तक उचित कहा जा सकता है? रिवर्स काउन्सिल बेचने का

भारत की व्यावसायिक उन्नति पर बुरा असर पड़ेगा इसमें किसी को भी कुछ भी सन्देह नहीं है।

भारत की उत्पादक-शक्ति के सदृश ही भारत के वाह्य व्यापार को भी इससे चोट पहुंचने की संभावना है। जिन जिन व्यापारियों ने विदेश को माल रवाना किया है उनको भयंकर घाटा उठाना पड़ेगा। पत्रों के देखने से मालूम पड़ा है कि इन दिनों कराची तथा अन्य बन्दरगाहों में सैकड़ों मन कच्चा माल पड़ा है। रिवर्स-काउन्सिल के विक्रय से वह विदेश नहीं जा सका।

वाह्य-व्यापार भारत का जीवन है। बिना अन्न बेंचे भारत को एक तुच्छ से भी तुच्छ विदेशा पदार्थ नहीं प्राप्त हो सकता। कच्चे माल का यदि बाहर जाना रुक जाता तो व्यापारीय सन्तुलन भारत के विरुद्ध हो जाता। वह दूसरे देशों का कर्जदार हो जाता। भारत जितना पदार्थ बाहर से मँगाता उतना पदार्थ न भेज सकता और इस प्रकार भारत को अपने देश का सोना चांदी विदेश में रवाना करना पड़ता।

महाशय हेली का रिवर्स काउन्सिल बेचना और बाजारी भाव से तीन पेन्स अधिक देना भारतीयों को पर्याप्त हानि पहुंचावेगा। इस समय जो रुपया कल यंत्र के मंगाने में वह खर्च करते और देश की उत्पादक-शक्ति को बढ़ाते, वह सब का सब रुपया करेंसी कमेटी तथा महाशय हेली के रहस्यपूर्ण

चक्रमें पड़ कर वे लन्दन भेज देंगे। इसका परिणाम यह होगा कि भारतवर्ष बुरी तरह से लुटेगा। इसी विचार से बम्बई के प्रसिद्ध अर्थ-तत्त्व-ज्ञाता महाशय वामनजी ने यहां तक कह दिया कि भारत के धन-धान्य तथा संपत्ति को लूटने के लिये सब लोग आपस मे मिल गये हैं। महाशय चिन्तामणि भी बहुत सोचने के बाद इसी विचार पर पहुंचे हैं कि "भारत की पूंजीका अर्वाचीन प्रयोग बहुत ही अन्यायपूर्ण है। सरकार का रिवर्स काउन्सिल्स का बेचना कभी भी न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता है"[१]। महाशय शर्मा ने व्यवस्थापक सभा में यह स्पष्ट तौर पर कह दिया है कि "भारतीयों को अपने व्यापार व्यवसाय की उन्नति के लिये इस समय एक एक पाई की जरूरत है। नकली तरीकों से भारत की पूंजी ऐसे समय विदेश में लेजाना पूर्ण तौर पर अन्याययुक्त है[२]"। पंडित मदनमोहन मालवीय जी को भी

---

(१) We are lead to support the conclusion of a critic that the sale of Reverse Councils at present is a most unjustifiable dissipation of India's resources. The Leader March 11, 1920.

(२) To allow the export of money in that artificial way from India when they wanted every pie they could to increase industry was absolutely unjustifiable. The Statesman March 11, 1920.

रिवर्स काउन्सिल की बिक्री

महाशय हेली की युक्तियां पसन्द न आयीं और उन्होंने भी व्यवस्थापक सभा के भारतीय सभ्यों का ही साथ दिया। सर फजलभाई करीमभाई तो इस परिणाम पर पहुंचे कि करेन्सी कमेटी की रिपोर्ट ही न्याययुक्त नहीं है। क्योंकि सोने का दाम पुनः कुछ हो समय के बाद अपने स्थान पर आ पहुंचेगा। अतः सरकार को विनिमय की रेट पूर्ववत ही रखनी चाहिये[१]।

महाशय बामनजी ने कहा है कि "भारत सरकार की नीति भारत के व्यवसाय व्यापार की उन्नति तथा हित-साधन के अनुकूल नहीं है। हमारे देश के हित पर तनिक सा भी ध्यान नहीं दिया जाता"[२]।

फजलभाई करीमभाई के विचार में एक सत्यता है जिसको कभी न भुलाना चाहिये। करेन्सी कमेटी के अनुसार यदि विनिमय की रेट को न बदला जाता तो हमारा व्यापारीय-संतुलन सपक्षीय से बिपक्षीय न होने पाता। जिस

(१) The Statesman, March 1920.

(२) No language is strong enough to show the utter disregard paid to our interests by each and every act of Government who pose as the guardians of the interest of Indian trade and industry. The Leader, March 11, 1920.

प्रकार रिवर्स काउन्सिल की रेट हमारे बाह्य व्यापार की घातक है और भारत की संपूर्ण पूंजी को विदेश में भेज रही है उसी प्रकार विनिमय की पूर्ववर्ती रेट हमारे बाह्य व्यापार की सहायक थी और विदेशीय राष्ट्र अपनी पूंजी को भारत में भेजने पर बाध्य थे। यदि यही स्थिति बनी रहती तो भारतवर्ष कुछ ही वर्षों में व्यावसायिक देश हो जाता। विनिमयकी रेट से इंगलैंड का बना माल भारत में न पहुंचने से भारत उत्तमर्ण स्थिर तौर पर बना रहता और भारत की पूंजी की कमी का प्रश्न बड़ी सुगमता से हल हो जाता।

सरकार की आर्थिक नीति तथा करेन्सी कमेटी के विचारों को देख कर बहुत से भारतीय विद्वान् करेन्सी कमेटी के उद्देशों पर भी सन्देह करने लगे हैं। महाशय बोमनजी ने तो स्पष्ट शब्दों में सम्पूर्ण घटना को 'भारतीय संपत्ति तथा पूंजी की लूट' का नाम देते हुए करेन्सी कमेटी को भी इंगलैंड के पूंजीपतियों के उद्देशों का पूरक प्रगट किया है। जो कुछ भी हो। करेन्सी कमेटी की सलाहों से भारत की उत्पादक-शक्ति तथा भारत के बाह्य व्यापार को कुछ भी लाभ नहीं पहुंचा।

भारत का धन गोल्ड रिजर्व फंड के नाम से लन्दन में रहता है। उसमें करोड़ों रुपयों का सोना है। भारत सरकार का "इन्डिया आफिस" ही उस खजाने का प्रबन्ध

करता है। युद्ध-काल में यदि उस खजाने की पूरे तौर पर रक्षा की जाती तो सोने के दाम के आधे रह जाने से उस खजाने की आधी संपत्ति पड़े पड़े ही नष्ट न हो जाती। यदि उस संपत्ति को इंगलैंड के व्यापार की उन्नति में न लगा कर भारत के व्यापार की उन्नति में लगाया जाता तो भारतीयों की दरिद्रता तथा दुर्भिक्ष कभी के दूर हो जाते। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जो संपत्ति भारतीयों ने १५ रुपये के बदले एक पाउन्ड प्राप्त करके बड़ी मेहनत से एकत्रित की थी अब उसी को भारत-सचिव ७ रुपये पाउन्ड के भाव बेच रहे हैं। किसी भी माल को आधे दाम पर बेचना कभी भी न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता है। "रिवर्स काउन्सिल" की विक्री का भारत के व्यापार तथा समृद्धि पर क्या असर पड़ेगा यह, स्पष्ट किया जा चुका है।

भारत-सचिव तथा भारत सरकार के हाथ विनिमय का भाव नियत करने का काम होने से भारत के व्यापार व्यवसाय में सट्टा अनुचित सीमा तक बढ़ता जाता है। जिस प्रकार स्वेच्छाचारी राज्य में जान माल की रक्षा का कुछ भी विश्वास नहीं किया जा सकता उसी प्रकार आर्थिक नीति सम्हालनेवाले अनुत्तरदायी विदेशी राज्य में व्यापार व्यवसाय की रक्षा का कुछ भी भरोसा नहीं हो सकता है। सरकार किस मौके पर क्या करेगी और किस नीति का

अवलम्बन करेगी, इसको कौन जान सकता है। अचेतन जड़ जगत के नियम किसी हद्द तक अनुमान किये जा सकते हैं परन्तु राज्यों की चालों का कौन अनुमान कर सकता है। जब देश का व्यापार राज्य की इच्छाओं तथा नीतियों का ही प्रतिबिम्ब हो तो व्यापारियों का विवेक कम हो जाता है। स्थिर आधार न पाकर वह जुए की ओर झुकता है। सट्टा तथा जुए की आदतों का व्यापारियों में बढ़ना बहुत भयंकर है। क्योंकि इससे देश की समृद्धि की आशा कोसों दूर चली जाती है। रिवर्स काउन्सिल्स की बिक्री का यह प्रभाव अति स्पष्ट है। देश में सट्टा तथा जुआ बढ़ेगा, इसपर सन्देह करना वृथा हैं। इस सदाचारहीनता का बदला करोड़ों रुपयों से भी नहीं चुकाया जा सकता।

रिवर्स काउन्सिल का देश के कृषि-व्यापार, व्यवसाय तथा सदाचार पर जो भयंकर प्रभाव पड़ेगा वह स्पष्ट किया जा चुका है। इससे देश की उत्पादक-शक्ति और समृद्धि पानी में मिल सकती है, यह निस्सन्दिग्ध बात है। इन्हीं बातों पर विचार करके भारतीय व्यापारियों की समिति (The Committee of Indian Merchants Chamber and Bureau) ने १६ मार्च को भारत सरकार के आय-व्यय विभाग को तार दिया था कि "भारतीय व्यापारियों की समिति भारत सरकार से प्रार्थना करती है कि रिवर्स काउन्सिल का विक्रय

शीघ्र ही बन्द कर दिया जावे क्योंकि इससे देश की आय तथा समृद्धि को बड़ा भयंकर धक्का पहुंच रहा है। १६१६ के इन्डियन पेपर करेन्सी ऐक्ट के संशोधन का प्रस्ताव भ्रमपूर्ण नीति का फल है। यह इसी लिये किया जा रहा है कि भारतीयों को यह पता न लगने पावे कि रिवर्स काउन्सिल की बिक्री से भारत के खजाने को कितना घाटा उठाना पड़ा है"।

जिन दिनों में भारत का वाह्य व्यापार उन्नति पर था और भारतवर्ष दूसरे यूरोपीय देशों का उत्तमर्ण था, इंगलैन्ड की दशा बड़ी भयंकर थी। महाशय वैब्ब अपने 'विजयी ब्रिटेन' (Britain Victorious) नामी ग्रन्थ में लिखते हैं कि "युद्ध की समाप्ति के बाद इंगलैंड का बाह्य व्यापार उन्नत न हुआ। व्यापारीय संतुलन (Balance of trade) के

Increasing adverse foreign exchanges—still higher prices—a growing shortage of necessaries, more unemployment and misery—a still severe struggle for exis- tence. Social disorders of a desperate character, followed eventually by a forced exodus of our surplus population to other lands—inability to produce sufficient to meet our country's obligations, national bankruptcy and the fall of Britain to te position of a third rate power in the world.

विपक्षीय (unfavourabl) होने से विदेशीय विनिमय की रेट चढ़ी रही, मंहगी दिन पर दिन भयंकर होती गयी, जीवनोपयोगी पदार्थ बहुत ही कम हो गये, बेकारी ने उग्ररूप धारण किया, आधे पेट खाकर विपत्ति में लोगों ने जीवन निभाया। इससे जीवन संघर्ष का इंगलैण्ड में भयंकर तौर पर बढ़ जाना स्वाभाविक था। इतना ही नहीं सामाजिक विक्षोभ ने भी प्रचण्ड रूप धारण किया। मेहनती मजदूर लोगों को दूसरे देशों को भागना पड़ा। अपने ऋणों को चुकता करने के योग्य पदार्थों की राशिके उत्पन्न करने में इंगलैंड असमर्थ हो गया। यह सब इंगलैंड के दिवालिये हो जाने के चिह्न हैं। इनसे इंगलैंड ने अपने आपको यदि न बचाया तो इंगलैंड संसार में तीसरे दर्जे का राष्ट्र रह जावेगा।

महाशय वेब्ब के शब्द ध्यान देने के योग्य हैं। भारतवर्ष में महाशय हेली ने रिवर्स काउन्सिल्स को क्यों बेचा? और भारत के व्यापार-व्यवसाय, समृद्धि-संपति तथा स्वर्णकोश के सत्यानाश का मार्ग क्यों खोला, इसका गुप्त रहस्य महाशय वेब्ब के शब्दों में छिपा है।

महाशय हेली अपने कार्य्यों की चाहे कुछ ही व्याख्या क्यों न करे, परन्तु अब इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि इंगलैंड जब अपने व्यापारीय संतुलन (balance trade) को सपक्षीय (Favourable) करने के लिये छटपटा रहा था और

लिये हो गये। रिवर्स काउन्सिल की बिक्री में ४० करोड़ से ऊपर देश का धन अलग नष्ट हुआ यह सारा का सारा धन इंग्लैड के पूंजीपतियों तथा व्यवसायपतियों की जेबों में जा पहुंचा। लोगों को सस्ता माल मिलना तो दूर रहा अभी मंहगी और न प्रबल हो जाय यही डर लगा हुआ है। मुद्रासमिति की दश रुपये को गिन्नी तथा २ शिलिङ्ग की विनिमय की दर तो शेखचिल्ली की बातें मालूम पड़ती है। लड़ाई में इंग्लेड को सहायता देने का भारत को जो फल मिलना था वह मिला है। मंहगी भारत ने सही और उसकी आमदनी मय स्वर्ण कोष के इंग्लैड के पूंजोपतियों के जेबों में चली गयी, इसी का नाम सरकार की नीति है। देखें अभी भारतवर्ष और क्या क्या भुगतता है।

सारांश यह है कि अंग्रेजों की पुरानी नीति अभी तक ज्यों की त्यों बनी है। शोषण के नये से नये तरीकों का आविष्कार दिन पर दिन किया जा रहा है। भारतवासी दुर्भिक्ष तथा दासता में मर रहे हैं, इससे अंग्रेज पूंजीपतियों का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। उनको धन चाहिये। धन देनेवाला प्रत्येक प्रकार का तरीका काम में लाने के लिये वह तैयार हैं।

(ग)

धन शोषण का नया तरीका

व्यापार व्यवसाय के नाश के बाद भारतीय व्यापारियों तथा कारीगरों का सहारा एक मात्र भारत भूमि है। चाय, काफी तथा नील के उत्पन्न कराने तथा बेचने का एकाधिकार प्रायः अंग्रेजों के ही हाथ में हैं। इन पदार्थों की उत्पत्ति में कुलीविधि से ही काम लिया जाता है। ये उत्पादक भारतीय कुलियों पर भयंकर अत्याचार तथा क्रूर व्यवहार करते हैं।

इस भयंकर युद्ध के खतम होते ही साम्राज्य-संगठन की ओर अंग्रेजों का ध्यान गया। जर्मनी के सदृश ही वह भी अपने आर्थिक संगठन को पूर्ण करना चाहते हैं। इस उद्देश्य से सारे साम्राज्य में रुई उत्पन्न करवाने का अंग्रेज लोग इरादा कर रहे हैं। जिस प्रकार अभी तक चाय, काफी, नील अंग्रेजी कंपनियां उत्पन्न कराती थीं उसी प्रकार रुई, शक्कर तथा तेलहन पदार्थों को वह उत्पन्न कराना चाहती हैं। रुई की ओर उनका विशेष ध्यान है। यहीं पर बस न करके भारत सरकार ने भी अपनी आर्थिक नीति को चक्कर देना शुरू किया है। अभी तक सारा मामला खुले रूप में नहीं आया। अनुमान से यही मालूम पड़ता है कि भारत सरकार गेहूं, चावल तैल आदि भोज्य पदार्थों का क्रय-विक्रय अपने हाथ में

रखना चाहती है। यह वह बड़ी आसानी से कर सकती है। अब व्यापारियों को उन २ पदार्थों के भेजने के लिये वह मालगाड़ी के डब्बे न देगी और अपने आप ही रवाना करेगी। अथवा वह उसी तरीके से इस काम को करेगी जिस प्रकार कि युद्ध के समय में सरकार ने चावल के मामले में किया था। रंगूनी चावल के बेचने का सरकार ने जो प्रबन्ध किया था और उससे जो रुपया कमाया था वह किसी से भी छिपा नहीं है।

१६२० के ५ मार्च का एक तार है (जो "इंगलिशमैन" पत्र को विशेष तौर पर प्राप्त हुआ था) कि:—

"लार्ड मिलनर ने साम्राज्य को विस्तृत या पूर्ण तौर पर उन्नत करने का इरादा किया है। साम्राज्य के व्यय तथा नीति के निर्देश के लिए उन्होंने एक समिति नियुक्त की है। समिति साम्राज्य के कच्चे माल को राज्य द्वारा अधिक अधिक हथियाने के उपायों पर विचार कर रही है"।

तार के शब्द बहुत साधारण हैं। परन्तु उनके अन्दर बहुत सी महात्वपूर्ण बातें छिपी हुई हैं। १६१६ की जुलाई तथा अगस्त की बात है कि "टाइम्स" पत्र में बहुत से लेख प्रकाशित हुए थे। इन लेखों पर लार्ड मिलनर बहुत मुग्ध हो गये। उन्होंने इनको पुस्तक रूप में अपने उपक्रम के साथ प्रकाशित किया। इन लेखों का मुख्य विषय राष्ट्रीय

साम्यवाद (State Socialism) कहा जा सकता है। बड़े बड़े कारखानों, खानों, तथा लाभदायक कृषिजन्य पदार्थों पर सरकार का स्वत्व होवे और वही उनसे लाभ कमावे, इस पुस्तक का मुख्य विषय है।

भारत में भूमि, जंगल, खान आदि पर सरकार ने अपना स्वत्व स्थापित कर रखा है। यह स्वत्व कभी भी अनुचित न होता यदि भारतीयों को आर्थिक स्वराज्य प्राप्त होता। प्राचीन काल में भारत का यह राज्य-नियम था कि कोई भी विदेशी न तो भारत की भूमि को खरीद सकता है और न खान आदि के खोदने का ठेका ले सकता है। यही कारण है कि भारतीयों ने आज तक सरकार के इस स्वत्व को उचित तथा न्याययुक्त नहीं समझा।

भारत की उत्तम उत्तम खानें आजकल प्रायः यूरोपीय लोगों के पास ही हैं। सरकार अपने आप को चाहे कितना ही निष्पक्ष रखने का प्रयत्न क्यों न करे परन्तु व्यवहार में फरक पड़ता ही है। इंगलैण्ड की खानों तथा कारखानों के मालिक क्यों विदेशी नहीं हैं? यदि वहां ऐसा नहीं है तो भारत में क्यों ऐसा है? एक ही रंग के मनुष्यों का दो स्थानों पर राज्य हो तो दोनों स्थानों में इतना भेद क्यों हो जावे? वास्तविक बात तो यह है कि भारत के उत्पादक स्थान, लाभदायक पदार्थ तथा खानों का ज्ञान अंग्रेजों को भारतीयों से बहुत पहले ही

प्राप्त हो जाता है और उनको ठेका भी बहुत सुगमता से अच्छी शर्तों पर मिल जाता है। परन्तु भारतीयों की इन मामलों में वही स्थिति है जो किसी एक दुश्मन राष्ट्र के निवासियों की होती है। यह भी प्रायः देखा गया है कि अच्छी आमदनी के स्थानों का ठेका जब किसी भारतीय कम्पनी ने सरकार से लिया तो कुछ ही समय के बाद अंगरेज सरकारी इंनजीनियर ने उसको अयोग्य साबित कर दिया। यह हमको अच्छी तरह से मालूम है कि लड़ाई के दिनों में कोल कम्पट्रोलर के नियत होने पर भारतीय कोयले की कम्पनियों को काम बन्द करना पड़ा। उनकी कोयला-उत्पत्ति को परिमित किया गया। परन्तु अगरेज कम्पनियों के साथ वैसा व्यवहार नहीं किया गया।

सारांश यह कि अपनी किसी भी जातीय संपत्ति पर हम भारत सरकार का स्वत्व नहीं चाहते। भारत सरकार का स्वरूप ही ऐसा विचित्र है कि स्वभावतः भारत का जातीय संपत्ति से लाभ इङ्गलैन्ड के पूंजीपति लोग उठाते हैं। भारत इतना दरिद्र कैसे हो गया? इसमें दोष किस का है? क्यों भारत में रोगों का भयंकर कोप है? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर ही यह बताता है कि भारत की एक भी वस्तु पर राज्य का एकाधिकार कभी भी भारत के लिए नहीं फल सकता।

लार्ड मिलनर राष्ट्रीयवाद के पक्ष में हैं। उन्होंने एक समिति नियत की है जो भारत तथा अन्य ऐसे ही दुर्भागे दरिद्र देशों

की प्राकृतिक संपत्ति से लाभ उठाने का यत्न करेगी। भारतीय व्यापारियों और व्यवसायियों के हाथ से काम छीना जावेगा और उससे लाभ इङ्गलैंड के पूंजीपति लोग उठावेंगे। रेलवे कम्पनियों ने गारैन्टी विधि की ओट में किस प्रकार किसानों के खून का कमाया रुपया लिया और मालगुजारी को हजम किया, इन बातों को पाठक बहुत देर से जानते हैं। मादक द्रव्यों से लाभ उठाने के पीछे भारत सरकार ने जो व्यवहार किया और परिणाम यह हुआ कि भारतीयों में शराब पीनेकी आदत बहुत अधिक बढ़ गयी। ऐसा मालूम होता है कि भारत सरकार अंगरेज पूंजीपतियों के लिए और अधिक उग्र रूप धारण करेगी। छोटे से छोटे काम का एकाधिकार इङ्गलैंड के पूंजीपतियों के हाथ में दिया जावेगा और उसमें इंगलैण्ड के राज्य का भी साझा रहेगा।

अमेरिका में भिन्न भिन्न व्यवसायों ने आपस में मिलकर एक बृहत्‌व्यवसाय का रूप धारण किया है। आफिस के खर्चों के कम हो जाने से, कच्चे माल के खरीदने में किफायत होने से तथा आपस की चढ़ा-उतरी और प्रतियोगिता के नष्ट हो जाने से ऐसे ही सम्मिलित या मिश्रित व्यवसाय संसार का बाजार अपने हाथों में कर लेते हैं। क्योंकि वह बहुत सस्ता पदार्थ बनाने लगते हैं। अमरीका की देखादेखी इंगलैण्ड के व्यवसाय भी आपस में मिल गये हैं। प्रान्तीय बैंकों का सम्मिलन तथा

शिमला एलायन्स बंक का संमिश्रण भी इसी प्रकार की घटनाओं के उदाहरण हैं। बहुत से व्यवसायों में राज्य भी साझेदार है। वह भी बृहद् व्यवसायों को महारूप देने में साथ देता है और उनके लाभों में उसका भी साझा रहता है।

महायुद्ध के कारण इंग्लैण्ड का सालाना खर्च बहुत बढ़ गया है। परंतु खर्च के मुताबिक उसकी आमदनी नहीं है। १९१३-१४ में इंग्लैण्ड की आमदनी बीस करोड़ पाउन्ड थी और खर्च भी इतनाही था। अब आमदनी तो पूर्ववत् ही है परन्तु इस वर्ष खर्चा बयासी करोड़ पचास लाख पाउन्ड होगा। इतना रुपया कहाँ से मिले, यह इंगलैण्ड को चिन्ता है। आमदनी से चारगुना खर्चा सम्हालना सुगम काम नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ है कि इंगलैण्ड के राज्य ने इंगलैण्ड के अन्दर बड़ी बड़ी कम्पनियों को खड़ी करने का इरादा किया है जिनके लाभ में राज्य स्वयं भी साझेदार होगा।

यह अंग्रेजी कम्पनियां भारतवर्ष के साधारण से साधारण आमदनी के स्थानों पर एकाधिकार स्थापित करेंगी। जिस प्रकार आजकल राज्य का तमाखू, अफीम तथा नमक पर एकाधिकार है और जिस प्रकार राज्यका चावल तथा कोयले पर लड़ाई के दिनों में एकाधिकार स्थापित हो गया था उसी प्रकार अब गेहूं, रुई, चावल, चमड़ों आदि पदार्थों पर तथा शक्कर, जूती, तेल, घी आदि के व्यवसायों पर सरकार

अपना क़ब्जा करे, यह लार्ड मिलनर की समिति इंगलैण्ड में बैठी हुई सोच रही है। वह निम्नलिखित निर्णय पर पहुंची है जो ध्यान देने योग्य है।

(१) भारतवर्ष तथा अंग्रेजी देशों की कुदरती पैदावार (प्राकृतिक सम्पत्ति) पर राज्य अपना कब्जा करै।

(२) खास खास भोज्य चीजों को राज्य ही उत्पन्न करावे और बेचे।

(३) ये प्रस्ताव इंग्लैण्ड के भारी खर्चों को पूरा करने के लिये किये गये हैं। इसमें इंग्लैण्ड का हित ही सोचा गया है।

यह निर्णय भारत के भाग्य का निर्णय है। इस नीति के प्रचलित होते ही भारत का बचा बचाया जीवन तथा धन भी नष्ट होवेगा।

प्रत्येक भारतवासी अच्छी तरह से जानता है कि जिन जिन पदार्थों पर आंग्ल पूंजीपतियों का एकाधिकार है उनके उत्पन्न करनेवालों की कितनी भयंकर दुर्दशा है। ईस्ट इंडिया कम्पनी का जुलाहों के द्वारा जबरन कपड़ा बुनवाना और कम वेतन पर अधिक काम लेना और जुलाहों के अंगूठों को काट डालना पुरानी बातें हो चुकी हैं। इसी प्रकार के भयंकर अत्याचार १८१० में नील की खेती करनेवाले लोगों के साथ आँग्ल पूंजीपतियोंने किये। परिणाम इसका

यह हुआ कि १८५६ में बंगाल के अन्दर नील के खेतिहरों ने भयंकर विद्रोह कर दिया। बंगाल के प्रसिद्ध नाटक-लेखक दीनबन्धु मित्र ने नीलदर्पण नामक नाटक में जो भयंकर दृश्य नील के खेतिहरों का दिखाया है उसको पढ़ कर दिल कांप उठता है। इस पुस्तक को सरकार ने ऐसा भयंकर समझा कि इस का अँग्रेजी भाषा में भाषान्तर करनेवाले एक पादरी को क़ैद कर दिया। आज भी आसाम में चाय के खेतिहरों के साथ आंग्ल पूंजीपतियों का क्रूर व्यवहार विद्यमान है। गरीब अनजान लोगों से फारम पर हस्ताक्षर करवा लिया जाता है और कई वर्षों के लिये आसाम के चाय के बागों में काम करने के लिये रवाना कर दिया जाता है। १९०१ में चीफ कमिश्नर ने अंग्रेज पूंजीपतियों के अत्याचारों से इन बिचारे अभागे भारतीय कुलियों को बचाने का यत्न किया परन्तु यत्न पूर्ण तौर पर निष्फल हुआ। इसी महायुद्ध के बीच की बात है कि महाराज गान्धी को बिहार के खेतिहरों को अंग्रेज पूंजीपतियों के अमानुषी व्यवहार से बचाने के लिये अपना सारा आत्मिक बल खर्च करना पड़ा।

हम अच्छी तरह से जानते हैं कि अंगरेज़ों में अनन्त गुण हैं। संसार में कोई जाति दूरदर्शिता में उनका मुकाबला नहीं कर सकती। शोक तो यही है कि अब धर्म का युग नहीं रहा

है। अब संपत्ति का युग है। स्वार्थ तथा प्रतियोगिता को ही आज कल ईश्वरीय नियम समझा जाता है। संपत्ति के पीछे बुरे से बुरे काम करने में भी लोग नहीं झिझकते। ऐसी हालत में आर्थिक स्वराज्य (Fiscal autonomy) के सिवाय दूसरा उपाय ही क्या है? लार्ड मिलनर तथा भारत सरकार हम पर खुशी से राज्य करें। ईश्वर करे कि हमारा इङ्गलैंड के साथ सम्बन्ध सदा बना रहे। परन्तु यह सम्बन्ध शासक शासित या स्वामी आसामी का सम्बन्ध न होने के स्थान पर भाई भाई का सम्बन्ध हो। हमारी वही स्थिति हो जो कि आज कनाडा, आष्ट्रेलिया तथा आफ्रिकन उपनिवेशों की है। हम को पूर्ण तौर पर आर्थिक स्वराज्य हो और अपनी आर्थिक उन्नति अपने ही हाथ से करने का हम को अवसर हो।

(घ)

सालाना बजट का भयंकर दोष

भारत का सालाना बजट भी भारत की दशा बिगाड़ने में दोषी है। राष्ट्रीय आय का कुछ भी धन भारतीय कारखानों को सहायता के तौर पर नहीं दिया जाता है। शिक्षा आदि पर भी खर्च सन्तोषप्रद नहीं है। रेलों के बनवाने में भारत का अरबों रुपया पानी की तरह यूरोपीय लोगों को दिया गया। सेना पर जो धन खर्च किया जा रहा है वह अकेला

ही भारत को सुखा देने में काफी है। यूरोपीय लोगों की तनखाहों तथा पेन्शनों में भी भारत का धन बुरी तरह से नष्ट किया जा रहा है। राष्ट्रीय आय-व्यय-लेखक 'व्यय' से अधिक धन लेने को लूट मार तथा डाका मारना समझते हैं परन्तु भारत के अंग्रेज-शासक इस काम को करने में भी कभी भी नहीं हिचकते हैं† ।

व्यवस्थापक सभा के भारतीय सभ्य कई वर्षों से लगातार शोर मचा रहे हैं परन्तु सरकार ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया है। नये से नये ढंग के तर्कों का प्रयोग करके सरकार स्वेच्छा-पूर्वक बजट बनाती है। जनता की इच्छाओं को हर साल लथेड़ा जाता है। रेलें तथा सेनायें सारी की सारी आमदनी खाती जाती हैं। परन्तु इनसे भारत की उत्पादक-शक्ति तिल मात्र भी नहीं बढ़ रही है।

इसी १९१९–२० सन की बात है कि महाशय हेली ने भारत की सालाना आमदनी १३५½ करोड़ रुपया कूती है। इसमें से ८५⅓ करोड़ रुपया सैनिक खर्चों के लिये अलग रख लिया गया है। इसका मतलब यह है कि शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग-धन्धों को किसी प्रकार की भी विशेष सहायता न मिलेगी * ।

† Adams' Finance. या राष्ट्रीय आय व्यय शास्त्र (The Science of finance.) पं० प्राणनाथ विद्यालंकार लिखित ।

* The Modern Review for April 1920 P. 480

सालाना बजट का भयंकर दोष

भारत की दशा बहुत ही शोकजनक है। संसार के सभी सभ्य देशों के लोग भारत से अधिक शिक्षित हैं। प्रत्येक सभ्य देश में प्रति मनुष्य कि शिक्षा पर व्यय इस प्रकार है।*

देश		प्रति मनुष्य पर शिक्षा का खर्च	
		शिलिङ्ग	पेन्स
संयुक्त अमेरिका	...	१६	०
स्विटजरलैंड	...	१३	८
आस्ट्रिया	...	११	२
इंगलैंड तथा वेल्स	...	१०	०
कनाडा	...	९	९
स्काटलैण्ड	...	९	७½
जर्मनी	...	६	१०
नीदर्लैण्ड	...	६	४½
स्वीडन	...	५	७
बेल्जियम	...	५	४
नार्वे	...	५	१
फ्रान्स	...	४	१०
स्पेन	...	१	१०
इटली	...	१	७½
जापान	...	१	२
रूस	...	०	७½
भारतवर्ष	...	०	१

* The Modern Review for April 1920 P. 480.

इंग्लैंड का ही भारतवर्ष पर राज्य है। परन्तु शिक्षा के प्रचार में दोनों देशों में बड़ा भेद है। इंग्लैंड में प्रत्येक बालक पर शिक्षा का व्यय १० शिलिङ्ग (आजकल के विनिमय के रेट से ५ रुपया) और भारत में एक पेन्स (३ पैसा) है। अर्थात् भारत की अपेक्षा इंग्लैंड अपने देश के बच्चों की शिक्षा पर सौगुना धन ज़्यादा खर्च करता है। इसका रहस्य क्या है ? एक ही देश का भिन्न २ मनुष्यों पर राज्य और शिक्षा के लिये धन की सहायता देने में यह भेद ? सब से बड़ी बात तो यह है कि इंग्लैंड ने १८७० से ही अपने बच्चों के लिये शिक्षा आवश्यक तथा बाधित करदी थी। दश वर्ष के गुज़रने पर शिक्षित लोगों की संख्या बहुत बढ़ गयी और ४३·२ फी सैकड़ा बालक शिक्षा पाने लगे। १८८६ में यही संख्या ६६ फी सैकड़े तक जा पहुंची। १८६२ में जनशिक्षा की समस्या सर्वथा हल हो गयी। परन्तु डेढ़सौ वर्ष के स्वेच्छाचारी राज्य में भी इंग्लैंड ने भारत की जनता को शिक्षित करने का कुछ भी यत्न नहीं किया।

१८७२ में जापान में २८ फी सैकड़े बालक स्कूल में पढ़ने जाते थे। १६०० में यही संख्या ६० फी सैकड़े तक जा पहुंची। रूस में १८८० तक केवल १·२ फी सैकड़े बालक शिक्षा पाते थे परन्तु १६०६-७ में यही संख्या ४·५ तक पहुंच

गयी। १९१० में भिन्न २ देशों में बालकों की शिक्षा इस प्रकार थी। *

देश	कुल जनसंख्या के फी सैकड़ा शिक्षा पाते बालक
अमेरिका	२१ फी सैकड़ा
कनाडा, आस्ट्रिया, स्विटज़र्लैंड, ग्रेट ब्रिटेन, आयर्लैंड	२० से १७ फी सैकड़े तक
जर्मनी, आस्ट्रिया-हंग्री, नार्वे, नीदर्लैंड	१७ से १५ फी सैकड़े तक
फ्रान्स	१४ फी सैकड़ा
स्वीडन	,, ,,
डेन्मार्क	१३ ,,
बेल्जियम	१२ ,,
जापान	११ ,,
इटली, ग्रीस, स्पेन	८ से ९ ,,
पुर्तगाल, रूस	५ ,,
भारतवर्ष	१.९ ,,

* The Modern Review for April 1920, P. 480.

ऊपर लिखित देशों के सदृश ही फिलीपाईन द्वीप के असभ्य लोगों की शिक्षा भी अमेरिकन राज्य में बढ़ी। परन्तु भारतवर्ष ने कोई विशेष उन्नति न की। सरकार से शिक्षा के लिये जब धन मांगा जाता है तो कोरा उत्तर मिलता है कि धन खजाने में है ही नहीं। १६१६-२० के सालाना बजट में सेना पर ६४ करोड़ रुपया खर्च रखा गया था। परन्तु ८५$\frac{१}{३}$ करोड़ रुपया खर्च किया गया। इस प्रकार २१ करोड़ रुपये सेना के लिये कहीं न कहीं से सरकार ने और अधिक बचा लिये। परन्तु शिक्षा के लिये सरकार के खजाने में धन ही नहीं रहता है।

महाशय रैम्जे मैक्डानल ने अपनी भारत सम्बन्धी नवीन पुस्तक में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि भारत के धन का अनुचित उपयोग पूर्ववत् जारी है। बहुत से ऐसे सैनिक खर्चों को भी भारत अपने धन से ही पूरा करता है जिनको इंग्लैंड को अपने धन से पूरा करना चाहिये था। उनका कथन है कि "भारतवर्ष की आधी सेना साम्राज्य-वृद्धि या साम्राज्य--संरक्षण के उद्देश्य से है। इसका खर्च इंग्लैंड को अपने ऊपर लेना चाहिये। उपनिवेशों में जो भारतीय सेना है उसका खर्च उपनिवेशों को देना चाहिये। परन्तु यह खर्च भी दरिद्र भारतीयों पर ही पड़ता है। अभी तक कम्पनी के समय की अन्धाधुन्ध मौजूद है। यदि यही बात उचित हो

तो भारतस्थ इंग्लैंड के गोरे लोगों का खर्चा इंग्लैंड अपने सिर पर क्यों न ले लेवे ? भारत उनका भार क्यों संभाले ? दौर्भाग्य से सीमा सम्बन्धी तथा साम्राज्य-वृद्धि सम्बन्धी युद्धों का खर्चा भी भारत के धन से ही पूरा किया जाता है।"*

ऐसी हालत में भारत के दरिद्र बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध हो ही कैसे सकता है। "माडर्न रिव्यू" के संपादक महोदय ने हिसाब लगाया है कि १८$\frac{१}{४}$ करोड रुपये भारतीय बालकों की शिक्षा में खर्च होंगे यदि शिक्षा बाधित करदी

---

*महाशय रैम्जे मैकडानल के शब्द है।—

"One half of the army in India is an Imperial army which we require for other than purely Indian purposes and its cost, therefore, should be met from Imperial and not Indian funds."

"When we stationed troops in other parts of the Empire, we did uot charge them upon the colonies, but in India we have the influence of the dead hand" (by dead hand he means the old Company Rule.)

"If the exiting system of unitary defence is to last the whole cost of the British army stationed in India should be borne by the Imperial Exheqer" .... "Frontier wars, aud wars of annexation, like the Burman wars, as well as the Abyssinion expedition, were all paid for by the Indian tax-payer."

("The Independent" Sunday, April 11, 1920)

जावे। जब सरकार पिछले साल २१ करोड़ रुपये सैनिक कार्य्यों के लिये अधिक निकाल सकती थी तो शिक्षा के लिये उसको कौनसी रुकावट है जो ऐसा न करने दे ?

१८८४-८५ सन में सैनिक खर्च १६·९६ करोड़ रुपया था। परन्तु।१९१९-२० में यही खर्च ८५·३३ करोड़ रुपया जा पहुंचा। इन थोड़े से ही वर्षों में यदि सेना के लिये इतना अधिक धन कहीं से आसकता है तो अकेली शिक्षा विचारी ने ही क्या कसूर किया है ? सब से बड़ी बात तो यह है कि इच्छा होते ही सरकार के पास सेना के लिये धन निकल आता है। दृष्टान्त स्वरूप

सन	सैनिक व्यय रुपयों में	
१८८४–८५	१६·९६	करोड़
१९१५–१६	३३	करोड़
१९१६–१७	३७	,,
१९१७–१८	४५	,,
१९१८–१९	६०	,,

सरकार ने हर साल करोड़ों रुपया सेना के लिये अधिक अधिक प्राप्त किया **। क्या भारत के अभागे बच्चे ही ऐसे

** The Modern Review for April 1920-PP. 481-482.

हैं कि उनके पढ़ाने लिखाने के लिये सरकार के पास धन नहीं रहता है? सरकार चाहे तो सब कुछ कर सकती है। प्रश्न केवल चाहने ही का है।

(ङ)

बजट में संशोधन

भारत के लिये हानिकर बजट	भारत के लिये हितकर बजट
(१)	
भारत सरकार भारत की भौमिक संपत्ति पर अपना स्वत्व प्रगट करती है। यह ठीक नहीं है।	भारत की भूमि, खानें आदि भारतीयों की है। भारत सरकार का इस पर स्वत्व प्रगट करना न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता है।
(२)	
भारत की खानों, जंगलों तथा कृषिजन्य पदार्थों का ठेका यूरोपियों को प्रायः दे दिया जाता है। यह ठीक नहीं है।	भारत सरकार भारत की खानों, जंगलों तथा कृषिजन्य पदार्थों का ठेका यूरोपियों को देती है यह बहुत बुरा है। एक मात्र भारतीयों को ही इनका ठेका मिलना चाहिये।

(३)

मालगुजारी प्रत्येक बंदोबस्त के समय में बढ़ायी जाती है। यह ठीक नहीं है।

मालगुजारी बढ़ाने का सरकार को हक ही नहीं है। क्यों कि भौमिक संपत्ति पर वास्तविक अधिकार भारतीयों का है।

(४)

भारतीय व्यवसायों के हित में व्यावसायिक करका प्रयोग नहीं है। १८८२ में जो $3\frac{1}{2}$ फी सैकड़े का राज्य-कर लगाया गया उसको शीघ्र ही हटा देना चाहिये। क्यों कि इससे स्वदेशी कारखानों को धक्का पहुंच रहा है।

भारतीय व्यवसायों के हित में सामुद्रिक करका प्रयोग होना चाहिये। सामुद्रिक कर इतना अधिक होना चाहिये कि विदेशीय माल भारत में न बिक सके। भारतीय कारखानों को राज्य की ओर से धन की सहायता मिलनी चाहिये।

(५)

भारत में सापेक्षिक कर की नीति (Imperial preference) को लगाया जावेगा। क्योंकि इससे इंगलैंड को

भारत में सापेक्षिक कर का प्रयोग न होना चाहिये। क्योंकि इससे भारत को भयंकर नुकसान है। भारतीयों

लाभ है।	पर अप्रत्यक्ष कर लगेगा। वह भी इसीलिये कि इंग्लैण्ड के कारखाने चलें।

(६)

आजकल राज्य का सेना पर बहुत ही अधिक खर्चा है। प्रजा को हथियार नहीं दिये गये हैं। स्थिर सेना रखने की नीति को काम में लाया जा रहा है।	स्थिर सेना रखना बहुत बुरा है। भारतीय स्वयं-सेवकों की सेना से काम लेना चाहिये। प्रजा को अच्छे से अच्छे हथियार रखने के लिये उत्तेजित करना चाहिये। जहां तक हो सके सैनिक खर्चों को घटाने का यत्न करना चाहिये।

(७)

अंग्रेज राज्याधिकारियों की तनखाहें बहुत ज़्यादा हैं। जिम्मेवारी तथा ऊंची तन-खाहों के स्थानों पर भार-तीयों को बहुत कम नियुक्त किया जाता है।	यूरोपियों को जहां तक हो सके भारत में नौकरियां मिलनी ही न चाहिये। यदि उनको राज्यपदों पर रखा भी जावे तो बहुत तनखाह न देनी चाहिये। जिम्मे-वारी के पदों पर भारतीयों को ही रखना चाहिये।

(८)

मादक द्रव्यों का एकाधिकार राज्य-आय के लिये है। इस एकाधिकार में प्रजा के हित का खयाल नहीं है।	मादक द्रव्यों के एकाधिकार से आय प्राप्त करने का यत्न न करना चाहिये। इस एकाधिकार में प्रजा के हित को ही सामने रखना चाहिये।

(९)

नहरों की अपेक्षा रेलों पर अधिक अधिक खर्चा किया जा रहा है। नहरें ऐसी बनायी गयी हैं कि उनसे व्यापार व्यवसाय को कुछ भी सहायता नहीं पहुंच सकती है। रेलों को गारैन्टी विधि पर बनाया गया है। अभी तक सरकार की यही नीति है।	रेलों की अपेक्षा नहरों पर अधिक धन व्यय करना चाहिये। नहरें ऐसी बनायी जावें कि उनसे व्यापार-व्यवसाय को सहायता पहुंचे। रेलों के बनाने में गारैन्टी विधि को काम में लाना ठीक नहीं है। क्योंकि इससे फजूलखर्ची बढ़ती है और भारत का धन विदेश में पहुंचता है।

(१०)

भारत सरकार जनता के प्रति जिम्मेवार नहीं है। आय-व्यय के पास करने या न पास	भारत को अन्य सभ्य देशों के सदृश ही आर्थिक स्वराज्य मिलना चाहिये। भारत-सर-

करने में भारतीयों को कुछ भी अधिकार नहीं है।

कार को भारतीय जनता के प्रति प्रत्येक कार्य के लिये जिम्मेवार होना चाहिये। आय-व्यय का पास करना या न पास करना एक मात्र जनता के ही हाथ में होना चाहिये।

(११)

जातीय ऋण दिन पर दिन बढ़ाया जा रहा है।

जातीय ऋण दिन पर दिन घटाना चाहिये।

(१२)

भारतवर्ष जहाजी शक्ति नहीं है।

भारत में आर्थिक स्वराज्य का अभाव है। आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करते ही भारत को जहाजी शक्ति बनने का यत्न करना चाहिये। बिना आर्थिक स्वराज्य के भारत का अपने रुपयों से जहाज बनाना खून तथा पसीने से कमाये धन को मुफ़्त में ही लुटाना है और अपने सिर कर्ज बढ़ाना है।

(१३)

भारत में जनता को सिक्कों के बनाने में स्वतन्त्रता नहीं है। टकसालें लोगों के लिये खुली नहीं है। रुपये में युद्ध से पूर्व चांदी कम थी। इसकी आमदनी स्वर्ण-कोष-निधि में रखी गयी और उसको इंग्लैण्ड में रखागया।

भारत में जनता को सिक्कों के बनाने में स्वतन्त्रता होनी चाहिये। लोगों के लिये टकसालें खुल जानी चाहिये। सोने का ही वास्तविक सिक्का होना चाहिये। स्वर्ण-कोष-निधि को इंग्लैंड में न रखना चाहिये।

(१४)

भारत सरकार राज्य-कोष-विधि की ओर दिन पर दिन पग धर रही है।

भारत सरकार के राष्ट्रीय बैंक खोलना चाहिये और उसी के द्वारा नोट निकालना चाहिये। राष्ट्रीय बैंक में ही स्वर्णकोष को रखना चाहिये।

द्वितीय खण्ड

कृषि तथा व्यवसाय

पहिला परिच्छेद

जातीय संपत्ति ।

(१)

भारत की आर्थिक समस्या ।

मनुष्यों का जीवन पदार्थों की उत्पत्ति के साथ घनिष्ट तौर पर जुड़ा हुआ है । विद्या, विवेक, सभ्यता तथा स्वास्थ्य अधिक उत्पत्तिवाले प्रदेशों में अपना निवास-स्थान बनाते हैं । आर्थिक शक्तियों के रहस्य को पता लगा कर आजकल बहुत सी जातियों ने दूसरों के अन्नपर जीवन निर्वाह करने का ढंग निकाल लिया है । प्रत्येक कार्य में आय के विचार से दर्जे हैं । दृष्टान्तस्वरूप बुनने का काम ही लीजिये । गाढ़ा, मलमल तथा बनारसी कपड़े—तीनों ही यद्यपि बुने जाते हैं तो भी तीनों की बुनवाई का मेहनताना एक नहीं है । मलमल तथा बनारसी कपड़े के बुनने में जो आमदनी है वह गाढ़े के बुनने में नहीं है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक कार्य आय के विचार से ऊंचे से नीचे तक के दर्जों में विभक्त किया जा सकता है । दुःख का

विषय है कि अंग्रेज़ों ने भारत के संपूर्ण आमदनी के स्थानों को अपने हाथों में कर लिया है। राज्य के प्रबन्ध से व्यवसाय व्यापार पर्यन्त सारे के सारे स्थानों पर गोरे लोगों का ही एकाधिकार है। भंगी, चमार, मेहतर, जल्लाद, सिपाही, खुफिया पुलिस, जुलाहा, लोहार, जूते गांठनेवाला मोची, तेली, कुली, किसान, आदि के कम आमदनी के पेशों में ही भारतीयों को अंग्रेज़ों ने ढकेल दिया है। समाज में रहनेवाला प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ काम काम करता है। प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि वह काम किस प्रकार का है? वायसराय भी एक काम करता है और भंगी, चमार, जल्लाद भी एक प्रकार का काम करता है। इससे दोनों की हैसियत एक नहीं हो सकती है। वायसराय का पद मनुष्य के जीवन को उन्नत करता है, बुद्धि तथा विवेक को बढ़ाता है और अन्तरीय शक्तियों को पूरे तौर पर विकसित होने का अवसर देता है। भंगी, चमार, जल्लाद के कामों में यही बात नहीं है। कम आमदनी के पेशों में लगे लोगों का जीवन नष्ट हो जाता है।

इंग्लैंड ने भारत को दिन पर दिन कम आमदनीवाले घटिया दर्जों के पेशों में ढकेला है। इम्पीरियल गजैटियर में लिखा है[१] कि १८९१ से १९०१ तक दश ही सालों में

१ Imperial Gazetteer of India, Vol. III, p. 2.

आधे भारतीयों को अपने अपने पेशों को छोड़ कर खेती में घुसना पड़ा। दश ही वर्षों में खेती में दुगने आदमी हो गये। यही घटना आज १५० वर्षों से बराबर हो रही है। भारतीयों का जीवन तथा सदाचार पानी में मिलता जाता है। परन्तु भारत सरकार को तनिक सी भी इसकी चिन्ता नहीं है। महायुद्ध में सहायता देने के बदले में इंग्लैंड ने जो कुछ भारत को पुरस्कार देना सोचा है वह यह है कि बचे बचाये कम आमदनी के पेशों में से भी भारतीयों को निकाल बाहर कर दिया जावे। लार्ड मिलनर ने अंग्रेज़ अमीरों को नयी नयी कंपनियों के बनाने के लिये उत्तेजित किया है और सलाह दी है कि भारत के सारे के सारे कच्चे माल को अपने कब्जे में कर लो[२]। इसमें इंग्लैंड का राज्य भी सम्मिलित होगा। क्योंकि महायुद्ध के कारण उसके खर्चे बहुत ज़्यादा बढ़ गये हैं और उस पर भयंकर कर्जा हो गया है। जो कुछ भी हो। इसमें सन्देह नहीं है कि इससे भारतीयों का जातीय जीवन नष्ट हो जावेगा। भारतवर्ष कुलियों तथा अर्धदासों का देश बन जावेगा। यह भी बहुत संभव है कि किसी समय भारत के भिन्न भिन्न प्रदेश अंग्रेज़ों के उपनिवेश बन जावें।

---

२ The Independent.

अंग्रेज़ लोग अपने आपको नैसर्गिक शासक तथा उच्च समझते हैं। उनका स्वभाव तथा व्यवहार भारतीयों के अनुकूल नहीं है। क्रूरता तथा निर्दयता का दर्जा उनमें ऊंचा है। हम लोग जिस व्यवहार को घृणित, क्रूर तथा निर्दयता-पूर्ण समझते हैं अंग्रेज़ लोग प्रायः उसको कुछ भी बुरा नहीं समझते हैं। नील, चाय आदि के कामों में लगे भारतीयों के साथ अंग्रेज़ों का जो व्यवहार था उसको भारतीयों ने पसन्द न किया और महात्मा गांधी को चंपारन के मामले में सत्याग्रह का अवलम्बन करना पड़ा[१]। परन्तु अंग्रेज़ी अख़बारों तथा अंग्रेज़ी अधिकारियों को उन घृणित, क्रूर व्यवहारों में कुछ भी बुराई न झलकी। लार्ड मिलनर ने यदि सफलता प्राप्त की और अंग्रेज़ पूंजीपतियों ने भारत के कच्चे माल को यदि हथिया लिया तो भारत के किसानों की दुरवस्था का ठिकाना न रहेगा। उनका जीवन पशुओं से भी अधिक बुरा हो जावेगा। भारत सरकार इस ओर अवश्य ध्यान देवै यदि वह समझे कि सचमुच अत्याचार तथा क्रूर व्यवहार हो रहा है। प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि वह ऐसा समझ ही कैसे सकती है? भारत सरकार अंग्रेज़ों के संघ से बनी

---

१ India in the years 1917-1918, by L. F. Rushbrook Williams, pp. 87-88.

है। अंग्रेज लोग उस काम को क्रूर तथा घृणित समझते ही नहीं है जिस को कि हम लोग देखने से भी घबड़ाते हैं।

सारे के सारे आमदनी के स्थानों पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा होने से भारत बहुत ही अधिक दरिद्र हो गया है। 'दरिद्रता' ही भारत की आर्थिक समस्या है। माना कि यूरोपीय मेहनती मजदूर भी इसी दरिद्रता राक्षसी के शिकार हैं। परन्तु उनकी दरिद्रता तथा हमारी दरिद्रता में बड़ा भेद है। महाशय लवडे (loveday) का कथन है[१] कि "जर्मनी, अमेरिका तथा इंग्लैंड की दरिद्रता धन-विभाग की समस्या है। परन्तु भारत में यही उत्पत्ति की समस्या है"। किसी हद तक यह विचार सत्य है। प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि क्या भारत की दरिद्रता की समस्या उत्पत्ति की समस्या है? क्या भारत में अन्न कम उत्पन्न होता है, इसलिये भारत दरिद्र है? मान्य मित्र वी. जी. काले भी इसी विचार से सहमत हैं[२]। अपने विचार की सत्यता में उन्होंने मोर्लैण्ड का निम्नलिखित उद्धरण पेश किया है। मोर्लैण्ड लिखते हैं कि[३] "सब से

---

१ Loveday : "the History and Economics of Indian famines".

Indian Economics by V. G. Kale, p. 43 (Third edition).

W. F. Moreland : An Introduction to Economics.

पहिले विचारणीय बात यह है कि भारतवर्ष बहुत ही दरिद्र देश है। ज़रूरी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये लोगों को धन की ज़रूरत है। लोग अच्छा कपड़ा, अच्छा खाना और अच्छी शिक्षा आदि चाहते हैं। पदार्थ की उत्पत्ति को बढ़ानेवाले संपूर्ण तरीके प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय हैं। क्योंकि इससे कुछ आवश्यकतायें तो पूर्ण हो सकती हैं"। यूरोपीय मेहनतियों तथा मज़दूरों की दरिद्रता तथा भारत की दरिद्रता में बहुत बड़ा भेद होने पर भी वह भेद नहीं है जो कि काले तथा मोलैंएड ने प्रगट किया है। भारत की दरिद्रता की समस्या भी एक प्रकार से विभाग की समस्या हो सकती है। धन की असमानता दो प्रकार की होती है। एक तो अन्तर्जातीय और दूसरी जातीय। इंग्लैएड में धन की असमानता जातीय है और भारत में अन्तर्जातीय है। जिस प्रकार इंग्लैंड में अपने ही देश के पूंजीपति तथा व्यवसायपति मेहनती मज़दूरों का शोषण करते हैं, उसी प्रकार इंग्लैंड तथा यूरोपीय राष्ट्र भारत का शोषण करते हैं। इसी को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि यूरोपीय दरिद्रता धन-विभाग की समस्या है और भारतीय दरिद्रता कार्य्य-विभाग की समस्या है। इंग्लैंड ने सारे के सारे आमदनी के कामों को अपने हाथ में कर लिया है। इससे भारत के लोगों को कम आमदनी के कामों में

झुकना पड़ा है। मंहगी दिन पर दिन बढ़ी है। इससे भारत भूख से न मरे तो क्या करे? परन्तु एक प्रकार से भारत की समस्या उत्पत्ति की समस्या भी कही जा सकती है।

भारत में कच्चे माल की उत्पत्ति कम नहीं है। खाद्य पदार्थ इतने अधिक उत्पन्न होते हैं कि कल उनपर यूरोपियों का पलना बन्द कर दिया जावे तो सस्ती का ठिकाना न रहे। यदि उत्पत्ति की कमी है तो वह व्यावसायिक क्षेत्र में ही है। कपड़ा, लोहा, दवा-दारु से लेकर के छोटे से छोटा व्यावसायिक पदार्थ तक विदेश से बन करके आता है। गरीब मेहनती मजदूर तथा कारीगर विदेशी सस्ते पदार्थ की चोट से अधमरे हो गये हैं। उनको अपना अपना काम छोड़ कर खेती में कूदना पड़ा है। यूरोपीय लोगों ने भी खेती के साथ साथ संपूर्ण व्यावसायिक कामों को अपने हाथ में करके भारत को बुरी तरह से निचोड़ा है। भारत के धन पर समृद्ध हो कर वह खूब फले-फूले। उनकी आबादी इतनी अधिक बढ़ गयी कि उनको अन्न देने में उनकी अपनी जमीनें असमर्थ हो गयीं। लाचार होकर उन्होंने भारत के अन्न पर पलना शुरू किया। भारत में अन्न की विदेशी मांग बढ़ गयी। कीमतें बेतहाशा चढ़ीं। यूरोपीय लोग भारत के धन से समृद्ध थे। अतः उनके लिये अन्न की कीमतों का चढ़ना कुछ भी दुःख की बात न हुई। परन्तु भारत निर्धन तथा दरिद्र बना दिया गया

है। अपने ही अन्न को ख़रीदने में वह असमर्थ है। मालदार यूरोपियों के सामने सबसे पहिले वह माल खरीद ही कैसे सकता है? परिणाम इसका यह है कि भारतवर्षी भूखे मरते हैं और भारत के अन्न पर ही यूरोपीय लोग पलते हैं। इसीको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि सारा का सारा भारत आसामी तथा अर्धदास है और यूरोपीय लोग भारत के समृद्ध जिमींदार हैं। भारतवर्षी अपने लिये अन्न न उत्पन्न करके समृद्ध यूरोपियों के लिये अन्न उत्पन्न कर रहे हैं। ऐसी हालत में भारत की दरिद्रता को एक मात्र उत्पत्ति की समस्या प्रगट करना ठीक नहीं है। यह उत्पत्ति की समस्या वहां तक ही है जहां तक कि व्यावसायिक कार्य्यों का सम्बन्ध है। अन्न तथा खाद्य पदार्थों को सामने रखते हुए भारत की दरिद्रता की समस्या उत्पत्ति की समस्या न हो करके स्वतन्त्र वयापार, विदेशी राज्य या विदेशी पूंजीपतियों की समस्या कही जा सकती है। पूर्व में लिखा जा चुका है कि यूरोप तथा भारत की दरिद्रता की समस्यामें बड़ा भेद है। हमारे विचार में यूरोप की दरिद्रता की समस्या सामाजिक या जातीय है और भारत की दरिद्रता की समस्या बहुत कुछ राजनैतिक है। भारत की दरिद्रता का मुख्य कारण विदेशी राज्य है। परन्तु यूरोपीय दरिद्रता का मुख्य कारण विदेशी राज्य नहीं है। उनके सामाजिक तथा जातीय नियम ही इस मामले में दोषी हैं।

(२)

जनसंख्या की वृद्धि

जनसंख्या राष्ट्रीय उन्नति तथा जातीय समृद्धि का आधार है। जहाजी शक्ति, हवाई शक्ति के सदृश ही मनुष्यशक्ति भी एक महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति है। इंग्लैंड ने रुपयों पर भारत की मनुष्य शक्ति को मोल लेकर एशिया में अपना साम्राज्य बढ़ाया। यह रुपये भारत के ही थे। यद्यपि साम्राज्य-वृद्धि से इंग्लैंड ने ही लाभ उठाया। इसी पंचवर्षीय महायुद्ध में इंग्लैंड ने भारत के ही धन से भारत की मनुष्य शक्ति को खरीद कर टर्की के साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया। इस विजय में इंग्लैंड को मेसोपोटामिया से कुस्तुन्तु-निया तक का प्रदेश हाथ लगा और ईरान को भी उसने बात ही बात में अधीन कर लिया। भारत की मनुष्य-शक्ति से टर्की का साम्राज्य प्राप्त कर इंग्लैंड वहां के सारे के सारे लाभदायक आमदनीवाले पेशे अपने हाथ में करने की फिक्र में है। ईरान के मट्टी के तेल के चश्मों, लघु एशिया के खनिज पदार्थों और काले सागर के आसपास के स्थानों के धान्य तथा खाद्य द्रव्यों को हथियाने के लिये इंग्लैंड में नयी नयी कम्पनियां बन रही हैं। परन्तु भारत को इन विजयों से क्या मिला? जातीय ऋण तथा राज्य-कर के बढ़ने से भारत की दरिद्रता और भी अधिक बढ़ गयी।

जनसंख्या की वृद्धि

भारतवर्ष यदि स्वाधीन देश होता तो आज भारत की जनसंख्या एक सौभाग्य का चिन्ह होती। संसार के शक्तिशाली समृद्ध देशों में भारत की भी गिनती होती। नैटाल, ट्रान्सवाल, फिजी आदि अंग्रेजी उपनिवेशों को अपनी करनी का फल मिलता और भारत का माथा नीचा करने के लिये फिर वह साहस न करते।

परन्तु दशा बड़ी विचित्र है। सारे के सारे कारोबार तथा व्यवसायों के नष्ट होने से और व्यापार के विदेशियों के हाथ में चले जानेसे भारतवर्ष अपनी समृद्धि के जमाने की बढ़ी आबादी को सम्हालने में अब असमर्थ हो गया है। भारत का कुल क्षेत्रफल १८३३००० वर्गमील है। इसपर १९११ में ३१ करोड़ ५० लाख मनुष्यों का निवास था। जिनमें से देशी रियासतों तथा आंग्लराज्य में मनुष्यों का विभाग निम्न प्रकार था :—

प्रदेश	वर्गमील	जनसंख्या
अंग्रेजी राज्य	११२४०००	२४४२६७५४२
देशी रियासतें	७०६०००	७०८८८८५४

भिन्न २ प्रान्तों में उपर्युक्त जनसंख्या का विभाग इस प्रकार था[१]।

१ Moral and Material Progress and Condition of India-1911—12,

सैकड़ा पीछे जनसंख्या	प्रान्त
१८·६ फी सैकड़ा	बंगाल
१४·१ ,,	बिहार उड़ीसा
१९·५ ,,	संयुक्तप्रदेश
१६·५ ,,	मद्रास
९· ,,	पंजाब व तथा सीमाप्रदेश
८ ,,	बाम्बे

उपर्युक्त सूची से स्पष्ट है कि भारतवर्ष की आबादी उतनी अधिक नहीं है जितनी अधिक कि समझी जाती है। प्रति वर्ग-मील के हिसाब से इंग्लैण्ड की आबादी भारतवर्ष से दुगनी है। सूची च तथा छ के देखने से स्पष्ट हो सकता है कि इंग्लैण्ड में प्रति मनुष्य के पास ०·९१ एकड़ जमीन और भारत तथा आयर्लैंण्ड में एक एकड़ से अधिक ज़मीन है। यह होते हुए भी भारत में दरिद्रता तथा दुर्भिक्ष है और इंग्लैण्ड में समृद्धि तथा सुभिक्ष है। यह क्यों?। इसका उत्तर बहुत बार पिछले प्रकरणों में दिया जा चुका है। इंग्लैण्ड व्यावसायिक देश है और भारतवर्ष एक मात्र कृषिप्रधान देश है। सारी की सारी जनता का कृषि पर निर्भर करना और दिन पर दिन व्यावसायिक कामों को छोड़ते जाना बहुत ही भयंकर घटना है। इससे शक्ति तथा समृद्धि दोनों काही नाश होता है।

जनसंख्या की वृद्धि

भारतवर्ष आबादी की दृष्टि से इंग्लैण्ड से सातगुना और भूमि के क्षेत्रफल की दृष्टि से १५ गुना बड़ा है। दृष्टान्तस्वरूप-†

देश	वर्गमील में क्षेत्रफल	आबादी १९११ में	प्रति वर्गमील आबादी
संयुक्तइंग्लैंड	१२१०००	४५२१७०००	३७३
भारतवर्ष	१८०२०००	३१५१५६०००	१७७

परन्तु भारत में नगरों तथा नागरिकों की संख्या इंग्लैण्ड से कम है। सूची घ से स्पष्ट है कि इंग्लैण्ड में ५० हजार आबादीवाले ९८ नगर और भारतवर्ष में केवल ७५ हैं। परन्तु उचित तो यह था कि भारत में आबादी की दृष्टि से (९८ × ७=) ६८६ नगर और भूमि-क्षेत्र की दृष्टि से (९८ × १५=) १५५० नगर होने चाहिये थे। एक लाख तथा दो लाख आबादीवाले नगर तो भारत में इंग्लैण्ड से बहुत ही कम हैं। इसी प्रकार नागरिकों की संख्या भी भारत में यूरोपीय राष्ट्रों से कम है। सूची ख, ग तथा घ इस बात की सूचक हैं कि अमरीका, जर्मनी तथा फ्रांस में समय के गुजरने के साथ साथ नागरिकों की संख्या बढ़ी है। परन्तु भारतवर्ष में इससे विपरीत हुआ है। सूची क से स्पष्ट है कि १८५१ में भारत के

† The New Hazell Annual and Almanack 1919. p. 487.

अन्दर ५० प्र. श. ग्रामीण तथा ४६·६२ नागरिक विद्यमान थे और १९११ में ७८·१ प्र. श. ग्रामीण तथा १६·६ प्र. श. नागरिक रह गये। †

सारांश यह है कि यूरोपीय राष्ट्र दिन पर दिन व्यावसायिक कामों की ओर झुके हैं और भारतवर्ष ग्राम्य कामों की ओर। इसी लिये यूरोप में नगरों की और भारत में ग्रामों की वृद्धि हुई है। भूमिक्षेत्र तथा आबादी को सामने रखते हुए भारत की आबादी यूरोपीय राष्ट्रों की तुलना में बहुत ही कम है। दुर्भिक्ष, रोग तथा दरिद्रता में भारतवर्ष संपूर्ण सभ्य राष्ट्रों से आगे बढ़ता जाता है। इसका रहस्य क्या है? कृषि तथा व्यवसाय के प्रकरण में ही यह दिखाया जा चुका है कि कृषि की ओर जनता का दिन पर दिन झुकना कभी भी अच्छा नहीं कहा जा सकता। इससे देश में असभ्यता, दरिद्रता तथा अज्ञानता बढ़ती है।

सारांश यह है कि भारत में जनसंख्या का बढ़ना भारत की दरिद्रता या दुर्भिक्ष का कारण नहीं है। व्यवसायों के नष्ट होने से, कृषिजन्य पदार्थों के विदेशों में जाने से और लगान के बहुत ही अधिक बढ़ने से भारत की आर्थिक दशा बिगड़ी है और लोगों को दुर्भिक्षों के कारण तकलीफें उठानी पड़ी हैं।

---

† Balkrishna, Industrial decline in India.

विदेशों में अन्न का प्रतिवर्ष जाना इस बात का सूचक है कि भारतीय इतने दरिद्र हैं कि दुर्भिक्ष से मरते हैं परन्तु अपने ही अन्न को नहीं खा सकते हैं। और खायँ भी कैसे। बिना रुपये के कौन किसी को अन्न देने लगा? 'भारत की आर्थिक समस्या' नामी प्रकरण में यह अच्छी तरह से दिखाया जा चुका है कि भारत की दरिद्रता की समस्या व्यावसायिक तथा राजनैतिक समस्या है। भारत के पराधीन होने से और पराधीनता के कारण कारोबार के नष्ट हो जाने से भारत अपने ही देश के पदार्थों का उपभोग करने में असमर्थ हो गया है। यदि किसी को यह सन्देह हो कि भारत में प्राकृतिक पदार्थ उचित राशि में नहीं उत्पन्न होते हैं तो यह ठीक नहीं है। क्योंकि भारत प्राकृतिक संपत्ति की खान है।*

(३)

खनिज पदार्थ तथा उनका विदेश में जाना

खनिज पदार्थों की दृष्टि से भारतवर्ष संसार के देशों में एक ही है। जितनी बहुमूल्य धातुयें भारत की भूमि में

* Digby. 'Prosperous' British India.
Balkrishna: Industrial Decline in India.
Imperial Gazetteer of India, Vol. III
V. G. Kale: Indian Economics.

हैं उतनी कदाचित ही किसी एक सभ्य राष्ट्र में हों। यह सब होते हुए भी भारत की दशा भयंकर है। ताता आयरन ऐण्ड स्टील वर्क्स को छोड़कर भारतीयों का अपना एक भी लोहे का कारखाना नहीं है। अन्य धातुओं के कारखानों का तो भारत में सर्वथा ही अभाव है। सम्पूर्ण कच्ची धातें हम विदेशों में भेजते हैं। वहां से उनके पदार्थ बनकर भारत में आते हैं। १६११ में १$\frac{१}{२}$ करोड़ रुपयों की धातुएं विदेश में गयीं थीं और बने हुए धातविक पदार्थ २६$\frac{१}{२}$ करोड रुपयों के भारत में आये थे। कितना अधिक धन हमको मुफ़् में ही विदेशी राष्ट्रों को देना पड़ा, यह उपर्युक्त संख्या से स्पष्ट ही है। विषय को स्पष्ट करने के लिये विशेष विशेष खनिज पदार्थों का वर्णन विस्तृत तौर पर करने का यत्न किया जायगा।
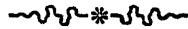
(क)

सोना तथा चांदी

अति प्राचीन काल से भारत में सोने की खुदाई का काम होता था। चन्द्रगुप्त के जमाने में तो राज्य का एक विभाग खनिज पदार्थों के लिये नियत था जो कि उनकी खुदाई का प्रबन्ध करता था। नये ढंग की मैशीनों का ज्ञान न होने से उस जमाने के लोग खानों को बहुत गहराई तक न खोद सके। यही कारण है कि माइसोर की खानों से आजकल बहुत राशि में सोना प्राप्त किया जा सका।

सोना तथा चांदी

भारत में सोने की खानें बहुत से स्थानों में है। बर्मा में ईरावदी की घाटियों में सोने तथा प्लाटिनम की खाने हैं। बर्मा गोल्ड ड्रेजिङ्ग नामक एक अंग्रेज़ी कम्पनी ने वहां से सोना तथा प्लाटिनम आदि निकालने का ठेका लिया था। १९१७ तक खुदाई होती रही। परन्तु सोना तथा प्लाटिनम के बहु राशि में न निकलने से काम बन्दकर दिया गया।

आजकल हैदराबाद तथा माइसोर ही सोने की खानों के लिये प्रसिद्ध हैं। दोनों ही रियासतों की सोने की खानों का ज्ञान प्राचीन काल की खुदाई के निशानों से हो प्राप्त किया गया है। हैदराबाद में अनन्तपुर तथा धवलभूम नामक स्थानों से अंग्रेज़ी कम्पनियां सोना खोदती हैं।

माइसोर में कोलार सुवर्णक्षेत्र से बहुत राशि में सोना निकाला जा रहा है। १८८१-८२ में एक अंग्रेज़ी कम्पनी ने इस काम को शुरू किया। पुराने खुदे हुए स्थानों को उसने ३०० फीट की गहराई तक खोदा परन्तु पर्याप्त राशि में सोना न निकला। बहुत सा रुपया फजूल खर्च हुआ और कुछ भी फल न निकला। १८८५ में सारी की सारी अंग्रेज़ी कम्पनियों नें हाथ पैर छोड़ दिये। दैवी घटना से उन्हीं दिनों में एक माइसोर कम्पनी ने एक ऐसे स्थान का ज्ञान प्राप्त किया जहां सोना बहुतायत से विद्यमान था। धीरे धीरे पुरानी अंग्रेज़ी कम्पनियों ने भी सोने की खुदाई का काम

शुरू किया। ५००० फीट की गहराई तक जमीनों को खोदा गया है और सोना निकाला गया है। खुदाई के कामों में विशेष उन्नति की गयी है। इस समय ५ स्थान हैं जहां खुदाई का काम हो रहा है। उनके नाम निम्नलिखित हैं।

(१) माइसोर (४) नन्दीड्रूग
(२) चैम्पियनरीफ (५) बालाघाट
(३) और गम्

आजकल इन खानों में से प्रतिवर्ष ६००००० आउन्स सोना निकलता है जिसका दाम २३००००० पाउन्ड के लगभग है। १९१७ तक ३६ साल गुजरते हैं जब से यूरोपीय लोग माइसोर से सोना खोद रहे हैं। इस ३६ साल के बीच में कुल मिलाकर ४९०००००० पाउन्ड का सोना खोदा जा चुका है। कष्ट जो कुछ है वह यही है कि यह अनन्त धन भारत की समृद्धि में न लगकर विदेशी राष्ट्रों को फलता फुलाता है। विदेशी कम्पनियों के द्वारा सोने का खोदा जाना और सारी की सारी आमदनी का विदेश में पहुंचना भारत के लिये हानिकर सिद्ध हुआ है*। १९१३ के बाद से आजतक भारत में जो सोने की उत्पत्ति हुई है उसका व्योरा इस प्रकार है।

*Indian Munitions Board Handbook, 1919, pp. 137-138.

भारत में सोने की उत्पत्ति

प्रान्त	१९१३	१९१४	१९१५	१९१६	१९१७	१९१८
	पाउन्डों में	पाउन्डों में	पाउन्डो मे	पाउन्डों में	पाउन्डों में	पाउन्डों में
मैसूर	२१५०१९४	२१५९६०४	२१८५४०९	२१२४१२९	२०६७५४१	१९३६७८५
हैदराबाद	७७२२८	८०४७९	६८३३८	७१५७७	५२०१३	४४९३६
मद्रास	४३१९४	८२९५९	१०१३२४	९४७८९	८७०६६	६७२१९
वर्मा	२०७६७	१४२९५	१२३४०	७७१०	४२४८	७३९
पंजाब	५१७	९९४	६०४	८१०	८५७	५४१
संयुक्तप्रान्त	१७	२४	३१	३१	३१	२७
विहार तथा उड़ीसा	......	......	१८००	३९७७	१०१३३	९९०५
कुल योग	२२९१९१७	२३३८३५५	२३६९८४६	२३०३०२३	२२२१८८९	२०६०१५२

सोने का खुदाई में सम्पूर्ण वैज्ञानिक आविष्कारों से सहारा लिया गया है। सेवासमुद्रम् पर कावेरी नदी से नहर काटकर उसके प्रपात के द्वारा विजली निकाली गई है और ६२ मील की दूरी पर स्थित सोने की कानों की खुदाई में उससे सहारा लिया गया है। कोलार सुवर्णक्षेत्र में भी विद्युत्-गृह (Power station) मौजूद है जो कि समय समय पर अच्छा सहारा देता है। औरगम् में ५००० फीट की गहराई तक खुदाई पहुंच गई है।

मैसूर राज्य को सुवर्णक्षेत्र का राजस्व (Royalty) प्रति वर्ष ७०००० पाउन्ड मिलता है। २५५०० मनुष्य सुवर्णक्षेत्र की खुदाई का काम करते हैं। १६१४-१५ में सारा का सारा सोना सफ़ा होने के लिये विदेश में भेज दिया गया था। परन्तु अब यह बात नहीं रही है। १६१८ में इसी सोने की २१०६६६० मोहरें और १६१६ की अप्रिल में १२६५६४४ मोहरें बम्बई की टकसाल से निकाली गयी थी।

सोने के सदृश ही चांदी को कानें भी भारत में विद्यमान हैं। अप्परवर्मा में उत्तरी शान रियासतों की वाडविन खानों से ही चांदी निकालना शुरू किया गया है। १६१३ के बाद से आजतक चांदी की उत्पत्ति इस प्रकार बढ़ी है।

१९१३ से १९१७ तक चांदी की उत्पत्ति

प्रान्त	१९१३		१९१४		१९१५		१९१६		१९१७	
	राशि	मूल्य	राशि	मूल्य	राशि	मूल्य	राशि	मूल्य	राशि	मूल्य
	आउन्स	पाउन्ड	आउन्स	पाउन्ड	आउन्स	पाउन्ड	आउन्स	पाउन्ड	आउन्स	पाउन्ड
वर्मा में-										
वाडविन	१२५२०३	१५३३८	२३६४४६	१६८६६	२८४८७५	३१०९९	७५६०१२	८८५५२	१५८०५५७	२३७०८३
मद्रासमें										
अनंतपुर	—	—	—	—	५१२	५१	१३६२	१३६	१२८१	१३३

१९१८ में वाडविन खानों से १९७०६१४ आउन्स चांदी खोदी गयी और २९५५९२ पाउन्ड में बेची गयी। नम्दु में

चांदी पिघलाने का यन्त्र जब पूरी तौर पर बन जायेगा तब यही उत्पत्ति पचीस लाख आउन्स तक जा पहुंचेगी। चांदी के मंहगे होने के कारण कदाचित् उत्पत्ति और भी अधिक बढ़ जावे*।
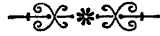
(ख)

लोहा तथा फौलाद

लोहे तथा फौलाद का काम भारत में चिरकाल से होता था। दिल्ली की लोहे की लाट इसी बात की साक्षी है। विदेशी लोहे के सामान के भारत में आने से इस काम को भी भयंकर धक्का पहुंचा है। उड़ीसा, मध्यप्रान्त तथा छोटे नागपुर में ही लोहे की खानें विशेष तौर पर हैं।

१८७५ में 'बार्कर आयरन वर्क्स' नामका कारखाना भारत में खुला। परन्तु कई सालों तक सफलता न प्राप्त कर सका। १८८९ में बंगाल आयरन ऐण्ड स्टील कम्पनी ने इसको खरीद लिया। इस सदी के शुरू में यह ३५००० टन लोहे का सामान प्रति वर्ष बनाने लगा। १९०५ में इसने पक्का लोहा बनाने का यत्न किया-परन्तु इसको सफलता न हुई। क्योंकि

(१) विदेश से आया हुआ लोहा सस्ता था।

(२) छोटी छोटी मांगों के आधार पर इसने पक्का लोहा बनाने का यत्न किया। कोई भी बड़ी मांग इसके पास न थी।

* Handbook of Commercial Information For India by C. W. E. Cotton, I. C. S. pp. 227-229.

(३) यह पक्का लोहा अच्छा न बना सकी।

१६१० में इस कम्पनी ने (सिंहभूम जिला) मनहरपुर से १२ मील दूरी की वूहाबुरू तथा पन्सीरा कुरव नामक खानों से लोहा निकालना शुरू किया। इससे कम्पनी को बहुत ही अधिक लाभ पहुँचा। १६१७ में इसने ६०००० टन लोहे का सामान बनाया। जापान, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका में इसने अपना बहुत सा लोहे का माल भेजा।

१६०७ में ताता आयरन ऐण्ड स्टील कम्पनी की स्थापना हुई। इसने १६११ में फौलाद लोहा तथा पक्का लोहा बनाया। आज कल यह प्रतिमास १७००० टन पक्का लोहा उत्पन्न करती है। शुरू शुरू में भारत सरकार ने इससे २०००० टन पक्के लोहे की रेले प्रतिवर्ष दश साल तक लगातार खरीदने का ठेका लिया था। लड़ाई के शुरू होने पर सरकार को लोहे के सामान की बहुत ही अधिक आवश्यकता थी। कम्पनी ने यथा शक्ति सरकार की जरूरतों को पूरा किया। १६१७ में कम्पनी ने १६७८६८ टन पिग लोहा और ७२६७० टन रेलें तैयार कीं। १६१८ में यही संख्या क्रमश १६८०६४ टन पिगलोहा तथा ६१०६६ रन्ज रेलों तक जा पहुँची। इस कम्पनी ने जिस सफलता से काम किया उसका आगे चल कर विस्तृत तौर पर वर्णन किया जायगा।

सिंहभूम जिला बहुत ही महत्वपूर्ण है। अर्थशास्त्रज्ञों का विचार है कि सारी की सारी एशिया को लोहे का माल देने में यह अकेला जिला ही समर्थ है। ४० मील तक लगातार ४०० फीट मोटी और १३०० फीट लम्बी कच्चे लोहे की पट्टी इस जिले में मौजूद है। उसकी गहराई का अभी तक पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। सौभाग्य की बात तो यह है कि इसी के पच्छिम में गङ्गापुर रियासत के अन्दर चूने का पत्थर मौजूद है। भारत की बड़ी बड़ी कोयले की खानें भी इससे बहुत दूर नहीं हैं। चूने तथा कोयले के पास होने से लोहे का व्यवसाय सिंहभूम जिले में चमक उठेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

भारतीय पूंजीपतियों को महाशय ताता का अनुकरण करना चाहिये और जहां तक हो सके शीघ्र ही अपनी पूंजी सिंहभूम जिले में लगाना चाहिये। सब से बड़ी बात तो यह है कि ताँबा तथा जस्ता भी इस जिले में काफी राशि में मौजूद है।

बिजली के द्वारा पक्के लोहे का बनाना माइसोर में शुरू हो सकता है। पच्छिमी घाट में यदि पानी के द्वारा बिजली निकालने का काम सफल हो गया तो गोआ प्रान्त का लोहा पक्के लोहे में परिवर्तित किया जा सकेगा। इस प्रकार भारत के अन्दर दो स्थानों में लोहे का व्यवसाय प्रफुल्लित

हो सकता है। मानभूम में कोक के सहारे और गोआ में बिजली के सहारे पक्का लोहा बनाया जाने लगेगा और भारत-वर्ष लोहे में स्वावलम्बो हो जायगा।

प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि क्या यह व्यवसाय भी एक मात्र यूरोपियों के हाथ में ही चला जायगा या भारतीय पूंजीपति ताता के सदृश विपत्तियों तथा बाधाओं को कुच-लते हुए और राज्य से किसी प्रकार की भी सहायता को आशा न रखते हुए अपने साहस तथा बुद्धिवल का परिचय देकर भारत भूमि के बचाने का काम करेंगे? देखें क्या भारत के भाग्य में बदा है? जो कुछ दुःख की बात है वह यही है कि अभी तक कच्चा लोहा तथा फैरोमंगनीज़ पर्य्याप्त अधिक राशि में विदेश के अन्दर जाता है। फैरोमंगनीज़ का महत्व इसी से जाना जा सकता है कि कच्चा लोहा इसी के सहारे इस्पात बनाया जाता है। इस्पात कितनी महत्व की चीज़ है इस पर कुछ भी लिखना सूरज को दीया दिखाना है। निम्नलिखित व्यौरा इस बात को दिखाता है कि कच्चा लोहा तथा फैरोमंगनीज़ कितनी राशि में विदेश के अन्दर जाता है।

कच्चा लोहा, स्टील तथा फैरोमंगनीज का विदेश में जाना

पदार्थ	१९१३—१४		१९१४—१५		१९१५—१६		१९१६ - १७		१९१७—१८		१९१८—१९	
	राशि टनों में	मूल्य पाउन्डोंमे	राशि टनों में	मूल्य पा उन्डोंमें	राशि टनों में	मूल्य पाउन्डोंमें	रशि टनों में	मूल्य पाउन्डोंमें	राशि टनों में	मूल्य पाउन्डोंमें	राशि टनों में	मूल्य पाउन्डोंमें
पिगलोहा	८२५९२	२८२४१८	५२०५५	१८२६१३	७१३७८	२४९६१९	१०२३२९	३५७२९०	४९७८२	२०९०८	९५९६	७०४९७
फरो-मंगनीज़	...	...	..	...	...	...	२६०८	६०४२४	२१०१	३८३४६	१०८७८	२७२०४५
लोहे तथा स्टील के पदार्थ	८२८	१२७२५	४४७	६९१२	१,२०८	१५०३२	७४९	१५६६७	२८५९	१६०४०	८१३	१७२६८

फ्रान्स तथा अमरीका में ही फैरोमंगनीज़ जाता है। पिग लोहा जापान तथा आस्ट्रेलिया में पहुंचता है। लोहे तथा स्टील के पदार्थ अदन, मालदीवेश, वेहरीन द्वीप तथा पूर्वीय अफरीका में मंगाये जाते हैं। कलकत्ता से ही संपूर्ण लोहे के पदार्थों को बाहर भेजा जाता है। विदेश में जितना भी कच्चा लोहा कम जाय उतना ही उत्तम है। भारत का वास्तविक हित इसी में है कि भारत लोहे के बने हुए सामान को विदेश में भेजे। व्यावसायिक शक्ति बनना ही भारत का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। परन्तु हालत सर्वथा उलटो है। १६१३-१४ में भारतवर्ष ने बाहर से लोहे का सामान एक करोड़ १७ लाख पाउन्ड का मंगाया था। वह सामान १२५०००० टन्ज तोल में था। अभी तक बंगाल आयर्न एंड स्टील कम्पनी तथा ताता अयर्न एंड स्टील कम्पनी नामक दोही कम्पनी हैं। इस ओर भारतीय यदि पूंजी लगावें तो उनको बहुत लाभ हो सकता है और देश का हित भी इसी में है। १६२० की सैप-टैम्बर को "दि एग्री कल्च्यरल इंसोमैन्टस कम्पनी लिमिटेड्" नामक एक और कम्पई बम्बई में स्थापित की गई है। जिसका मुख्य उद्देश्य कृषि सम्बन्धी लोहे के औजारों को तैय्यार करना है। इसमें ताता का बड़ा भारी हाथ है। आशा है कि यह कम्पनी सफलता पूर्वक अपना काम करेगी।

(ग)

सीसा

उत्तरी शान रियासतों की वाड्विन खानों से ही सीसा, चांदी आदि आजकल निकाले जाते हैं। शुरू शुरू में इन खानों को चीनी लोगों ने ही खोदा था। परन्तु ५० साल से कुछ समय अधिक ही गुज़रा होगा कि उन्होंने इनका खोदना बंद कर दिया। १६०२ में यूरोपीय लोगों ने ग्रेट ईस्टर्न माइनिङ् कम्पनी नामक एक कम्पनी खोली। बर्मा रेल्वे के मनव्वी नामक स्टेशन तक एक छोटी सी रेल बनायी गयी और इस प्रकार चाँदी की खानों तक सामान का लाना और लेजाना सुगम किया गया। क्रमशः सारी की सारी सम्पत्ति को इस कम्पनी ने बर्मा माइन्ज़ रेल्वे ऐण्ड स्मैल्टिङ् कम्पनी के हाथ बेच दिया। १६०६ में इस खान की खुदाई शुरू हुई। १६१४ में यह खानें बर्मा माइन्ज़ लिमिटेड नामक कम्पनी के हाथ में बेच दी गयीं। १६१८ की ३० जून को ४२७६८८८ टन खनिज पदार्थ खोदा गया। इसमें २६·८ प्रति शतक सीसा, १८·७ प्र. श. जस्ता, ७·७ प्र. श. ताम्बा और २४·२ आउन्स प्रति टन चाँदी सम्मिलित थी। १६१७ में उत्पत्ति और भी अधिक बढ़ गयी। १६६६३ टन सीसा और १५८०५५७ आउन्स चांदी १६१७ में निकली। आशा है कि आगे चलकर ३१५०० टन सीसा, २४७५००० आउन्स चांदी प्रति वर्ष इन्हा खानों से

निकाली जा सकेगी। यह खानें भी विदेशियों के ही हाथों में हैं और इनकी आमदनी भी विदेश में ही जाती है। भारत से सीसा विदेश में भी जाता है इसका व्यौरा इस प्रकार है:-

१९१३ से १९१९ तक सीसे का विदेश में जाना

वर्ष	राशि-हन्ड्रड्वेट्स ५६ सेरों में	मूल्य-पाउन्डों में
१९१३-१४	६९८६२	५९३०९
१९१४-१५	१३०३६५	११५२१०
१९१५-१६	२१६९५५	२३९०२८
१९१६-१७	२०८४३१	३६४८९५
१९१७-१८	२११३९७	३३९५१०
१९१८-१९	१८५९५१	२८७१२१

१९१४-१५ में चाय के डब्बों के खातिर २००० टन्ज तथा १९१६-१७ में ४५०० टन्ज सीसा भारत से लंका में गया। जापान तथा चीन भी इस धातु के खरीदार हैं। भारत की खानों में यह धातु इस कदर तक अधिक राशि में है कि देश की सारी की सारी जरूरतों को पूरा करने के बाद बड़ी आसानी से विदेश में भेजी जा सकती है। प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि इसके व्यापार, तथा व्यवसाय से आमदनी कौन उठाता है? यदि विदेशीय राष्ट्रों की समृद्धि ही इससे

होती हो तो इससे बढ़कर दुःख का विषय और क्या हो सकता है ?*

(घ)

तांबा तथा पीतल

भारत में तांबे तथा पीतल की बहुत ही ज़्यादा खपत है। गणनाशास्त्रज्ञों का ख्याल है कि यह २५००० टनसे ३५००० टन तक कही जा सकती है। सिंहभूम जिले में ही उसकी खानें मौजूद हैं। केप कापर कम्पनी लिमिटेड ने मतिगरा नामक खानों को १६१७ में खोदना शुरू किया। आजकल यह १००० टन तांबा सालाना तैय्यार करती है। आशा की जाती है कि कुछ ही समय के बाद यह १८०० टन तक तांबा तैय्यार कर सकेगी। इसकी आमदनी भी विदेशियों के ही हाथों में हैं।

(ङ)

ऐलूमोनियम्

भारतवर्ष में ऐलूमीनियम का प्रयोग दिन पर दिन बढ़ता जाता है। जब्बलपुर, बालाघाट तथा छोटा नागपुर के जिलों में ऐलूमोनियम् की खानें मौजूद हैं। बहुतों का ख्याल है कि पच्छिमी घाट के पहाड़ों में भी यह धातु है। बिजली की शक्ति से ऐलूमीनियम का काम सुगमता से ही शुरू किया जा सकता है। अभी तक यूरोपीय पूंजीपतियों ने इधर हाथ नहीं डाला है। भारतीय पूंजीपति इस ओर बहुत कुछ कर सकते हैं।

* Hand book of Commercial Infoımation for India by C. W. E. Cotton, pp. 232-233.

इन उपरिलिखित धातुओं की उत्पत्ति प्रति वर्ष इस प्रकार बढ़ी है—

१६०१ से १६१८ तक भारत में खनिज पदार्थों की उत्पत्ति का ब्योरा। *

वर्ष	सोना	प्लाटिनम	चांदी	तांबा	सीसा	टिन धातु	कच्ची धातु	फौलाद लोहा	पक्कालोहा	मैगनीज़
	आउन्स	आउन्स	आउन्स	टन	टन	टन	टन	टन	टन	टन
१६०१	५३२११२६	...	...	...	...	...	८२	३५००० लगभग	...	...
१६०५	६३११११६	...	४७१६	...	६१	...	७६	४४७६४	...	...
१६०८	५६७७८०	...	...	...	...	...	६५	३७६६२	...	...
१६०६	५७४८१६	...	२७५००	...	५०३०	...	८४	३८६३४	...	...
१६१०	५७२६२०	...	४६६८०	...	१२८६६	७५	८६	३५६३३	...	...
१६११	५८३५६७	३७·७	१०३८५०	...	१३१८५	८८	६७	४६१८३	...	...
१६१२	५६०५५४	५६·६	६३४७६	...	८५३१	२०१	१२५	१०५८८३	...	...
१६१३	५६५७६१	५७·७	१२५२०६	...	५८५८	१८२	१७१	२०४११२	६३१७५	...
१६१४	६०७३८८	३६·७	२३६४४६	...	१०५४८	६८	२७०	२३४७२६	६६६०३	...
१६१५	६१६७२८	१७·७	२८५३८७	...	१३२३५	१२८	४३१	२४१७६४	७६३५५	२६५८
१६१६	५६८३६६	६·२	७६०३७४	...	१३७६०	११३	६५०	२४४७१०	६३६०२	१८४३
१६१७	५७४२६३	३८	१५८१८३१	...	१६६६२	१४१	६६६	२४८१३२	११४०२७	१४७५
१६१८	...	...	१३६६२१२	...	१३१८२	...	...	...	...	११५०

* Indian Munitions Board Handbook, 1919, P. 126.

दुख की बात तो यह है कि इनमें से बहुत सी धातुएँ शुद्ध होने के लिये विदेश भेजी जाती हैं और वहां से शुद्ध होकर भारत में पुनः लौट आती हैं। १६१७-१८ में जो जो धातुएँ जिस रीशि में विदेश भेजी गयी थीं उसका ब्योरा इस प्रकार है:—

१६१२-१३ से १६१७-१८ तक भारतीय खनिज पदार्थों का विदेश – गमन (टनों में)*

वर्ष	पीतल	तांबा	लोहा तथा पक्का लोहा	सीसा	टीन	टीन की कच्ची धातु	जस्ता
१६१२-१३	१५४	२०६	१०४२१०	७५२०	१३	२१४	१२०
१६१३-१४	१२७	२४१	८४८५५	३४६३	४७	२१०	७६६०
१६१४-१५	६४	१६०	५२८००	६५१८	२१	११५	४६०६
१६१५-१६	६१	५१	७२६८२	१०८४८	५	८७	१८७
१६१६-१७	२२८	७६१	११५४४४	१०४२२	१	२१४	३२१४
१६१७-१८	१७	१२२	५२६२३	१०५७०	...	३००	२

विदेश से जो जो धातुएँ जिस राशि में भारत के अन्दर आयीं उसका ब्योरा इस प्रकार है।

* Indian Munitions Handbook, 1919, P. 127.

१६१२–१३ से १६१७–१८ तक विदेश से भिन्न २ धातुओं का भारत में आना (टनों में)

वर्ष	पीतल	एलूमी-नियम	तांबा	जर्मन-सिलवर	लोहा तथा स्टील	सीसा	टीन	जस्ता
१६१२–१३	१७१५०	१७६०	६०५६	८२०	७२६३११	५७१७	१७७६	५५६८
१६१३–१४	२१७६६	१३१७	१६६७३	१२६१	१०१८२४८	६२२०	२१३५	६७४०
१६१४–१५	१४२८३	७७७	१२१६२	७६५	६०८६३५	४६४६	१६२५	२२२०
१६१५–१६	३२५१	७७२	३६७७	१२०	४२४५६७	५७६२	१४३६	७६१
१६१६–१७	३३५४	४१	११२५	३३	२५७००७६	४६६६	१४३०	१४१६
१६१७–१८	२६५४	३७	२४०६	१६	१५२०४६	४३८५	१२७३	३५३२

उपर्युक्त खनिज द्रव्यों के सदृश ही कुछ और भी पदार्थ भारत में विद्यमान हैं जिनको कि भुलाना न चाहिये।

(च)

मिट्टी का तेल

कुछ ही वर्षों से भारत में मिट्टी का तेल निकाला जाना शुरू हुआ है। १९०५-०७ तक भारत में मिट्टी का तेल संसार की कुल उपलब्धि का १$\frac{1}{4}$ प्र. श. निकला था और १९११ में यही १ ८७ प्र. श. तक जा पहुंचा। १८९० से १९१७ तक मिट्टी के तेल की वृद्धि निम्नलिखित ब्योरे से दिखायी जा सकती है।

वर्ष	गैलन
१८९०	४१३२०००
१८९५	१३००५०००
१९००	३७५२९०००
१९०४	११८४९१०००
१९०६	१४०५५३०००
१९११	२२५८९२०००
१९१७	२८२७६००००

भारतवर्ष में मिट्टी के तेल के चश्मे दो स्थानों पर हैं:—

(१) पंजाब तथा बलोचिस्तान के चश्मे, जो कि ईरान तक चले गये हैं।

(२) असाम तथा बर्मा के चश्मे, जो कि सुमात्रा, जावा तथा बोर्नियो तक चले गये हैं।

मिट्टी का तेल

१८८४-८५ में विदेशियों ने बलोचिस्तान के मट्टी के तेल के चश्मों से तेल निकालने का यत्न किया। खोतान के समीप मरी पहाड़ में और सीरानी देश के मोगलकोट नामक स्थान में कुऐं खोदे गये और तेल निकाला गया। १८८६ तथा १८६० में पानी बहुत बरसा और मट्टी के तेल के कुऐं पानी से भर गये। लाचार होकर तेल का निकालना कुछ समय तक बन्द करना पड़ा। आजकल बहुत ही थोड़ा तेल इन कुओं से निकाला जाता है।

अन्वेषण द्वारा पता लगा है कि शाहपुर, झेलम, बन्नू, कोहाट, रावलपिंडी, हजारा तथा कुमायूँ में भी स्थान स्थान पर मट्टी के तेल के चश्मे हैं। परन्तु अभी तक इन स्थानों से तेल निकालने का काम शुरू नहीं हुआ। यदि कहीं से निकाला भी गया है तो यह १००० गैलन वार्षिक से अधिक नहीं बढ़ा है।

मेसर्स स्टील ब्रादर्स नामक एक विदेशी कम्पनी ने रावलपिंडी जिले के खैार नामक स्थान के मिट्टी के तेल के चश्मे का ज्ञान प्राप्त किया है। अभीतक इनमें से तेल निकालने का काम शुरू नहीं किया गया है।

१८६६ में आसाम आयल कम्पनी ने ३१०००० पाउन्ड की पूंजी से आसाम में मिट्टी का तेल निकालना शुरू किया। १८६६ में ६२३००० गैलन अशुद्ध तेल निकाला गया। यही

राशि १६०५ में २६३३००० गैलनों तक जा पहुंची। महायुद्ध के शुरू होने के बाद इसकी उत्पत्ति इस प्रकार बढ़ी है:—

वर्ष	गैलन
१६१४-१५	४७०००००
१८१५-१६	४५६४०००
१६१६-१७	५६०६०००
१६१७-१८	६०६४०००

१६१६ में बर्मा आयल कम्पनी को (चिटगांव जिले के) बदरपुर शहर के तेल के चश्मों का ज्ञान प्राप्त हुआ है। इस का तेल बहुत अच्छा नहीं है। भारतवर्ष में बर्मा के अन्दर ही मिट्टी का तेल बहुत अधिक राशि में विद्यमान है। ईरावदी की घाटी के मग्वी जिले में पीनंगपरा क्षेत्र, मिंग्यान जिले में सिंगू क्षेत्र, पकाकू जिले में पीनंगमत क्षेत्र मट्टी के तेल से परिपूर्ण हैं। यहीं पर बसनकर, मिन्बू, थापत्म्पो, प्रोम तथा चिन्द्विन घाटी के उत्तर में भी मट्टी के तेल के चश्मे हैं। अभीतक पीनंगमग, पीनंगमत तथा सिंगू से ही मट्टी का तेल निकाला गया है। भारतीय पूंजीपतियों का कर्तव्य है कि वह बड़ी बड़ी कम्पनियाँ बनाकर अन्य स्थानों से मिट्टी का तेल स्वयं निकालना शुरू करें। उपर्युक्त तीनों क्षेत्रों का एकाधिकार लगभग विदेशियों के पास ही है। सारा का सारा लाभ विदेश में जाय और भारत की समृद्धि

को नुकसान पहुंचे यह कौन पसन्द कर सकता है? इस हालत में अच्छा यही है कि भारतीय पूंजीपति इस ओर अग्रसर हों और अपना रुपया मट्टी का तेल निकालने में लगावें। विदेशी लोगों ने मट्टी की तेल निकालने में किस प्रकार सफलता प्राप्त की है, इस का ज्ञान पीनंगयंग क्षेत्र की उत्पत्ति से जाना जा सकता है। १८८७ में नये ढंग से तेल निकालना शुरू किया गया था और १६०५ में तेल की उत्पत्ति ८५-६४६००० गैलन तक जा पहुंची। उसके बाद तेल की उत्पत्ति इस प्रकार हुई हैं:—

वर्ष	गैलन
१६१३	२०२५५६०००
१६१४	१७४६८२०००
१६१५	१६८८०६०००
१६१६	१६६१५३०००
१६१७	१७६६७६०००

पीनंगयंग के सदृश ही थीनंगपत क्षेत्र है। बर्मा आयल कम्पनी ही इस क्षेत्र से तेल निकालती है। १६०३ में मट्टी का तेल २२६६६००० गैलन निकला था। उसके बाद क्रमशः तेल की उत्पत्ति घटती ही चली गयी। १६१७ में कुल उत्पत्ति ५६६८००० गैलन रह गयी। सिंगू क्षेत्र भी बर्मा आयल कम्पनी के ही पास है। १६०१ में १४५५ फीट गहरा कुआं खोदा गया और उस कूप से प्रतिदिन ६६०० गैलन तेल निकलना

शुरू हुआ। १६०२ में १७५००० गैलन मट्टी का तेल सिंगू क्षेत्र से निकाला गया। धीरे धीरे अन्य बहुत से नये कुंए खोदे गये और १६१७ में कुल उत्पत्ति ७६०२६००० गैलन तक जा पहुंची। भिन्न २ देशों में वर्मा का मट्टी का तेल भिन्न-लिखित राशि में गया।

वर्मा के तेल का विदेशीय राष्ट्रों में जाना

वह देश जिनमें कि वर्मा का तेल जाता है	१६१३–१४		१६१८–१६	
	राशि-गैलंज में	मूल्यपाउन्डोंमे	राशि-गैलंज में	मूल्य पाउन्डोंमें
इंग्लैण्ड	१५२६८६४०	६३०१४	६३४८५४४	४२८२३
हालैण्ड	३०६६६६३	१६१६७	४४५१७११	२७८२३
अमरीका	२३०८७००	१८२५४	...	...
जर्मनी	६२२५८६	५७७२	...	...
आस्ट्रेलिया	४००८४	२५०७	...	...
सीलोन	३६६४४	१६००	६६५७३	६६६८
स्टेट सैटल मेन्टस	३२४०६	११४३	४६५६०	३००७
कुलयोग	२२३०८७००	१४२७३२	२४८४४७७६	२३०६६२

Hand book of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton p. 266.

संसार में मिट्टी के तेल की आवश्यकता दिन पर दिन बढ़ती जाती है। विमानों के निकलने से, मट्टी के तेल के द्वारा इंजनों तथा मोटरकारों के चलनेसे, और वाष्पीय जहाज़ों में भी इसकी विशेष तौर पर आवश्यकता होने से मिट्टी के तेल को निकालनेवालों का भाग्य दिन पर दिन चमकेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। अच्छा होता कि भारतीय पूंजीपति गहनों के गढ़वाने में तथा विवाह आदि में फजूलखर्ची करने के स्थान में इस ओर अपना रुपया लगाते। देशपर इस समय विपत्ति है। विपत्ति बिना स्वार्थत्याग के दूर नहीं हो सकती है। इस हालत में प्रत्येक व्यक्ति को देशका हित सामने रखते हुए अपने रुपये को अच्छे अच्छे व्यावसायिक कामों में लगाना चाहिये।

(छ)
शोरा

मद्रास तथा कुछ एक देशी रियासतों को छोड़ कर शोरे की उत्पति का स्थान बिहार, संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब ही है। संयुक्त प्रान्त में फर्रुखाबाद ही इस व्यवसाय का केन्द्र है। १८६० के लगभग संसार में भारतवर्ष की स्थिति बहुत ऊंची थी। शोरा एकमात्र यहां ही उत्पन्न होता था। १८५८-५९ में ३५००० टन शोरा भारत से विदेश में गया था। इसके बाद कृत्रिम तौरपर यूरोपीय लोगों ने शोरा

बनाना शुरू किया। यही कारण था कि १९१३-१४ में केवल १३४०० टन ही शोरा विदेश गया। युद्ध शुरू होनेपर भारतका शोरा इंग्लैण्ड, अमरीका, चोन तथा मारीशस में ही खपा। इसमें संदेह नहीं है कि शोरे की मांग दिन पर दिन बढ़ती ही जावेगी। शोरे के नकली तौर पर बनाये जाने के कारण भारत का भूमिजन्य शोरा बाजार में प्रभुत्व प्राप्त कर सकेगा, इसमें सन्देह है। यही कारण है कि इस ओर भारतीयों की पूंजी का लगना खतरे के बिना नहीं हो सकता है। १८०९-१० से १९१३-१४ तक भारतका शोरा जिन २ विदेशीय राष्ट्रों में गया उसका ब्योरा इस प्रकार है।

शोरे का विदेशीय व्यापार

विदेशीय राष्ट्र	१९०९-११	१९१०-११	१९११-१२	१९१२-१३	१९१३-१४
	टनों में	टनों मे	टनों मे	टनों मे	टनों में
अमरीका	५४२१	४४४९	२९२७	२८२७	१३९०
चीन	४११४	४२७५	४३२९	४३१२	४०३४
इंग्लैण्ड	३८०७	३०५०	२३२९	२३६१	२४६४
मारीशस	२०३१	२५३०	१८७४	२२६१	१४३७
सीलोन	९८०	११४२	१४६३	२२२३	२२२४
अन्यविदेशीय राष्ट्र	१५५८	९६९	८०६	८५४	१८५४
कुलयोग	१७९११	१६३८२	१३७२८	१४८३८	१३४०३

शोरा

युद्ध के शुरू हो जाने पर जर्मनी तथा बेल्जियम में शोरा न गया। सारे के सारे शोरे को मित्र राष्ट्रों ने इंग्लैण्ड के द्वारा खरीद लिया। साधारण तौर पर शोरे के विदेशीय व्यापार में इंग्लैण्ड का ५५ प्र० श० भाग था। परन्तु युद्ध के शुरू होने पर १९१४–१५ में यही ८० प्र० श० और १९१५–१६ से १९१६–१७ तक यही ८७ प्र० श० तक जा पहुंचा। महायुद्ध के कारण शोरे की उत्पति दिन पर दिन बढ़ती ही गयी जिसका ब्यौरा इस प्रकार है।

१९१३–१४ से १९१७–१८ तक शोरे की उत्पत्ति
(इसमें १ मन २ ७४'६७ पाउन्ड का माना गया है।)

वर्ष	बिहार	संयुक्त प्रान्त	पन्जाब
	मनों मे	मनों मे	मनो मे
१९१३–१४	१८५३७३	१६९७५६	३७०१०
१९१४–१५	२२२१६३	१८८३९६	१०६१७६
१९१५–१६	२१९५९५	२३६६५८	१५२३०८
१८१६–१७	२४१०३८	३००५६९	२४५९७६
१९१७–१८	२३०४३१	२५८८३८	१५६०५८

महायुद्ध के दिनों में भारत का शोरा विदेश में कितनी राशि में गया इसका ब्यौरा इस प्रकार है।

शोरे का विदेश में जाना

वर्ष	राशि—टनों में	मूल्य—पाउन्डों में
१९१३–१४	१३४००	२०५६००
१९१४–१५	१६४००	२८५६००
१९१५–१६	२०७००	४५९१२०
१९१६–१७	२६४००	७०३६९०
१९१७–१८	२२६८०	५९१५७०
१९१८–१९	२३९००	६२१६६०

सारा का सारा शोरा कलकत्ते से ही विदेशीय राष्ट्रों में भेजा जाता है।

—※—
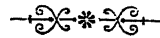
(ज)

नमक

१९१० में भारत में ४५ लाख मन नमक प्राप्त किया गया था। इसमें से ९१प्र.श. समुद्र-जल से और ९ प्र.श. खानों से निकला था। मुसल्मानी काल से भारत में नमक

† Handbook of Commercial Information for India C. W. E. Cotten PP. 303-306.

Indian Munitions Board . Industrial Handbook 1919. PP. 361-375.

राज्य की आमदनी का एक साधन समझा जा रहा है। मुगल लोगों ने सब से पहिले पहिल इस पर राज्य कर लगाया था। अंग्रेज़ों ने इस कर को प्रचलित करने का यही एक बहाना ढूंढ निकाला है। आधे के लगभग नमक सरकार तैय्यार करती है और शेष आधा ठेकेदार लोग बनाते हैं। १८८८ से १६०३ तक नमक के प्रति मन पर २६.८ आना राज्य कर था। १६०७ में महाशय गोखले के कहने पर यही राज्य कर घटाकर १ शि ४ पैन्स कर दिया गया। १६१६ में राज्य कर इस पर बढ़ाया गया और १ शि ४ पैन्स से १ शि ८ पैन्स कर दिया गया। १६१३-१४ में सरकार को नमक के निर्यात तथा आयात से क्रमशः ८५८४३२ पाउन्ड तथा ६२४५३४६ पाउन्ड आमदनी हुई थी।

(झ)
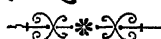
मैंगनीज़

मैंगनीज़ की खानें निम्नलिखित स्थानों में हैं और भिन्न २ प्रदेशों का इसकी उत्पत्ति में निम्नलिखित भाग है।

प्रदेश-	प्रति शतक प्राप्ति	प्रदेश-	प्रति शतक प्राप्ति
मध्य प्रांत	६६	बंगाल	५·२
मद्रास	१५	बाम्बे	३·७५
माइसोर	५·३	मध्य भारत	१·५

मैंगनीज़

१८९२ में मैंगनीज विजगापत्तम में निकाला जाना शुरू हुआ और उसी वर्ष उसके ३००० टन विदेश में भेज दिये गये। १९०१ में ९०००० टन मैंगनीज खोदा गया। इसके बाद मैंगनीज की कीमतें गिर गयीं और खान के नीचे पानी बहुत राशि में था, अतः खुदाई का काम पूर्ववत् जारी न किया जा सका। १९०७ में इसका व्यवसाय पुनः चमका और उपज ९०२२९१ टन तक जा पहुंची। १९०८ में पुनः बाजार मन्दा पड़ गया और खुदाई का काम ढ़ीला पड़ गया। लड़ाई के शुरू होने से पहिले ही फैरो मंगनीज़ की मांग के बढ़ने से इसका कारोबार फिर से नये रूप में प्रगट हुआ। १९१८ में खानों से मैंगनीज़ जिस राशि में निकाला गया उसका ब्योरा इस प्रकार है:—

१९१८ में मैंगनीज़ की उत्पत्ति

प्रान्त	राशि-टनो मे	मूल्य-पाउन्डो में	प्रतिटन का मूल्य पाउन्डो में
मध्य प्रान्त	४३८६२८	१२९३९५३	२.९
बंबई प्रान्त	३८०९६	९९०४७	२.६
मैसूर	२२६५५	४२८५६	१.९
विहार तथा उड़ीसा	१६३४५	४२४९७	२.६
मद्रास प्रान्त	२२३०	३३८२	१.५
कुलयोग	५१७९५३	१४८१७३५	२.८

मैंगनीज़

प्रति वर्ष २००० के लगभग मनुष्य मैंगनीज़ की खुदाई का काम कर रहे हैं। सरकार मैंगनीज़ के मूल्य पर सैकड़ा पीछे २½ राज्यस्व खान के मुंह पर हीले लेती थी इसमें कुछ कुछ असुविधा भी थी। अतः सरकार ने मद्रास प्रान्त को छोड़कर अन्य स्थानों में इसकी रेट् को बदल दिया है। मैंगनीज़ की कच्ची धातु के प्रतिटन पर दो पैसा तब तक सरकार लेती है जब तक कि उसकी कीमत ८ पैन्स प्रथम श्रेणी का प्रति यूनिट् हो (कच्ची तथा अशुद्ध मैंग-नीज़ के टन में यदि ५० प्र० श० मैंगनीज़ हो तो वह प्रथम श्रेणी की और ४८ से ५० प्र० श० हो तो वह द्वितीय श्रेणी की और ४५ से ४८ प्र० श० हो तो तृतीय श्रेणी की समझी जाती है। राज्यकर का यही एक यूनिट् है) ११ पैन्स तक कीमत चढ़ने पर प्रति पैन्स दो, पैसा १२ पैन्स तक कीमत पर तीन आना और १८ से १४ पैन्स तक भिन्न भिन्न धन राज्यस्व के तौर पर लिया जाताहै। मैसूर में भूमियों की कमी नहीं है। मध्य प्रान्त तथा मध्य भारत में खनकों को दूसरे प्रान्तों से मंगाना पड़ता है। अभी तक खुदाई का काम ठेके पर ही होता रहा है। १९१३ से १९१९ तक मैंगनीज़ विदेश में इस प्रकार भेजा गया है।

मैंगनीज़

भिन्न २ बंदरगाहों से मैंगनीज़ का विदेश में भेजा जाना

वर्ष	विजगापत्तम	बम्बई	कलकत्ता	मार्मगोआ
	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में
१६१३-१४	३६७५०	६०६७२४	७४५७५	८६७४७
१६१४-१५	१४२५०	३६५२८६	६१०५४	...
१६१५-१६	२०००	३६२६१५	७७६४८	...
१६१६-१७	७६५०	३८८२६६	२३३३३७	..
१६१७-१८	७००	२४७६०८	१७८३२३	...
१६१८-१६	...	१८०३७६	२०४६३५	...

१६१३-१४ में भारत के कुल ३००००० टन मैंगनीज़ का ६६६००० टन इंग्लैण्ड में, ७५०००० टन बैल्जियम में, ६६०००० अमरीका में, ४८५००० फ्रान्स में, ६३००० हालैण्ड में, ३३००० जर्मनी में और १६००० टन जापान में जाता था। यह महत्व पूर्ण पदार्थ भारत के कारखानों की उन्नति में लगाता तो कितना अच्छा होता। दौर्भाग्य से यहां लोहे के दो ही कारखाने हैं। सभी सभ्य देशो में राज्य देश को व्यावसायिक देश बनाने का यत्न करते हैं। परन्तु भारत सरकार इस ओर उदासीन

Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton pp. 223-225.

रहना ही अपना धर्म समझती है। परतन्त्रता से बढ़कर दुःखजनक घटना और कोई नहीं है।

(ञ)
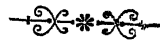
मैग्निसाइट्

मैग्निसाइट् नामक धातु मद्रास प्रान्त के सलेम जिले में बहुत ही अधिक है। यह एक अमूल्य पदार्थ है। बहुत थोड़े ही परिश्रम से इसके द्वारा सीमेंट तैय्यार किया जा सकता है जो कि प्रचलित सीमेंट से बहुत ही उत्तम होगा। क्योंकि साधारण सीमेंट में ५ प्रति शतक मैग्निशिया ही होता है। परंतु इसमें १५ प्रति शतक मैग्नीशिया होगा। इससे जिस स्थानों पर यह लगाया जायगा उसको पत्थर बना देगा। ज़्यादा आंचवाले भट्टों के लिये ईंटें इसके द्वारा तैय्यार की जा सकती हैं। लोहे के कारखाने दिन पर दिन भारत में बढ़ेंगे। अतः इसकी ईंटों का महत्त्व भी दिन पर दिन बढ़ता ही जावेगा। इसीसे मैग्नीशिया नामक नमक भी तैय्यार किया जा सकता है। भारतीय पूंजीपतियों को अपना ध्यान इस पदार्थ के खोदने की ओर रखना चाहिये और नये नये पदार्थों को बना कर और उनके लिये बाजार ढूंढ़ कर लाभ उठाने का यत्न करना चाहिये। कुमारदूभी में

मैग्नीसाइट् से जो ईंटें तैय्यार की जाती हैं वह ताता के कारखाने में लोहे के भट्टों में लगायी गयी है।

१६१२ से इस धातु की उत्पत्ति जिस प्रकार बढ़ी है इस का ब्यौरा इस प्रकार है।

मैग्निसाइट् की उत्पत्ति

वर्ष	राशि—टनों मे	मूल्य—पाउन्डो में
१६१२	१५३७६	४६१४
१६१३	१६१६८	४७७६
१६१४	१६८०	५५७
१६१५	७५४०	३६७४
१६१६	१७६४०	१४३६५
१६१७	१८२०२	१४५५६
१६१८	५८५३	४६४१

इसी का रूपान्तर कैल्सिन मैग्निसाइट् प्रति वर्ष विदेश में भेजा जाता है, जिसका ब्यौरा इस प्रकार है।

कैल्सिन मैग्निसाइट् का विदेश में जाना।

वर्ष	राशि-टनों में	मूल्य—पाउन्डों में
१६१३—१४	३८२४	८६२२
१६१४—१५	७०६४	११८६६
१६१५—१६	८०६७	१८२१३
१६१६—१७	६८४८	१४६६१
१६१७—१८	६४७१	११७८६
१६१८—१६	११४७	५८२२

१६१३-१४ में कुल कैल्सिन मैग्निसाइट् का ६ प्र० श० इंग्लैण्ड में ५५ प्र० श० जर्मनी में तथा ३६ प्र० श० बैल्जियम में गया।
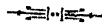
(ट)

फैरोमंगनीज़

मैंगनीज़ की खानें बिहार, बम्बई, मध्यभारत, मध्यप्रदेश, मद्रास तथा माइसोर में हैं। मैंगनीज़ के द्वारा ही फैरो-मंगनीज़ तैय्यार होता है। यह धातु लोहे को इस्पात बनाने के काम में आती है। ताता ने साकचीमें फैरो मंगनीज़ तैय्यार करने के लिये यत्न किया था परंतु कुछ एक असुविधाओं

के होने के कारण इसका बनाना छोड़ दिया है। आजकल बंगाल आयरन ऐण्ड स्टील कम्पनी ही कुल्टी में इसको तैय्यार करती है। अभी तक इस धातु को विदेशी लोग ही खरीदते हैं। १९१८ में अगस्त तक ७५१५ टन मंगनीज़ विदेशों को भेजा गया था। इस ओर भारतीय पूंजीपतियों को विशेष ध्यान रखना चाहिये। इसको स्वदेश में शुद्ध कर और इससे फैरो मंगनीज बनाकर लोहे को इस्पात बनाने का यत्न करना चाहिये।

(ठ)

निकल

बारूद में निकल की बहुत ही अधिक जरूरत पड़ती है। जर्मन सिल्वर के तैय्यार करने में भी निकल का सहारा लिया जाता है। निकल की इकन्नी, दुअन्नी, चवन्नी तथा अठन्नी भारत में चलने लगी है। इससे इसकी मांग भारत में बहुत ही अधिक बढ़ गयी है। दुःख का विषय है कि इस की खानें भारत में बहुतायत से नहीं हैं।

(ड)

प्लाटिनम्

इरावती नदी की घाटियों में यह धातु अल्पराशि में मौजूद है। चिंडविन तथा हूकांगमें भी कुछ कुछ यह

मिलती है। विलोचिस्तान में भी इसके मिलने की आशा है। संसार में यह धातु बहुत ही कम है। अतः सरकार को इस धातु की खानें भारत के पहाड़ों में ढूंढ़नी चाहिये।

---

(८)

कोयला

भारतवर्ष में कोयले की खानें बहुत ही अधिक हैं। शुरू शुरू में रानीगंज से ही कोयला खोदा गया था। उसके बाद झरिया तथा गिरीडीह आदि बहुत सी खानों से कोयला निकालने का यत्न किया गया। आजकल आधे से अधिक कोयला झरिया क्षेत्र ही देता है। उसके बाद रानीगंज का दर्जा है। इन से कुल कोयले का $\frac{१}{२}$ कोयला निकलता है। दल्तनगंज, राजमहल, सम्बलपुर तथा रामगढ़ बुकरियां आदि स्थानों से भी कोयला खोदा जा रहा है। यह भी आशा है कि इनमें कोई ऐसा स्थान निकल आवे जो कि सब क्षेत्रों से अधिक कोयला देना शुरू करे। बङ्गाल, बिहार को छोड़ कर शेष कोयला हैदराबाद की खानों से निकलता है, जो कि कुल कोयले का ४.२ प्र. श. है। मध्यप्रान्त के मोह-मणि खान से ५०००० टन, विलोचिस्तान के सारे रेंज तथा खोस्ट से ४१००० टन, पजाब की नमक की पहाड़ियों से

प्रान्तों के अनुसार

वर्ष	अंग्रेज़ों के अधीन भारत				
	आसाम	बिहार तथा उड़ीसा	बंगाल	पञ्जाब	बलूचिसस्तान
	टनों में	टनों मे	टनों मे	टनों में	टनो में
१६०१-०५ तक की मध्यमा—	२५२०००	....	६४८१०००	५५०००	३६०००
१६०६	२८५४६०	५३२५२६१	३२६२५२६	७३११६	४२१६४
१६०७	२६५७६५	६४८७६१२	३५०५७३६	६०७४६	४२४८८
१६०८	२७५२२४	७६६२३७२	३५६७७३६	५४७६४	४५२१२
१६०६	३०५५६३	७१३४५७३	३५२६२३८	३७२०८	५२४४६
१६१०	२६७२३६	७०४१२०८	३७३७३२२	४६१८६	५२६१४
१६०६-१० तक की मध्यमा—	२६२०००	६७६६०००	३५२६०००	५५०००	४७०००
१६११	२६४८६२	७६१०३३०	३८५८५७४	३०५७५	४५७०७
१६१२	२६७१६०	६१२६३८५	४३०६१२०	३८४०६	५४३८६
१६१३	२७०८६२	१०२२७५५७	४६४६६६५	५१०४०	५२६३२
१६१४	३०५१६०	१०६६१०६२	४४३४५७७	५४३०३	४८२३४
१६१५	३११२६६	१०७१८१५५	४६७५४६६	५७६११	४३६०७
१६११-१५ तक की मध्यमा—	२६६०००	६६६६०००	४४४३०००	४६०००	४६०००
१६१६	२८७३१५	१०७६७६८३	४६६२३७६	४७४४६	४२१६३
१६१७	३०१४८०	११६३२४१६	४६३१५७१	४६८६६	४०७८५
१६१८	२६४४८४	१३६७६०८०	५३०२२६५	५०४१८	४३१२५

कोयले की उत्पत्ति

के प्रान्त		देशी रियासतें			
मध्य प्रान्त	संपूर्ण आंग्ल प्रान्तों की कुल उत्पत्ति	हैदराबाद	राजपूताना बीकानेर	मध्य भारत रीवां	कुल योग
टनों में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में
१६७०००	७००१०००	४२३०००	२८०००	१७५०००	७६२७००६
९२८४८	९११२६६३	४६७९२३	३२३७२	१७०२९२	९७८३२५०
१३४०८८	१०५२६४६८	४१४२२१	२८०६२	१७८५८८	११११४७३३९
२१३७८९	१२१४९०२०	४४४२११	२१२९७	१५५१०७	१२७६९६३५
२३८१००	११२९४२२७	४४२८९२	११४४९	१२१४९६	११८७००६४
२२०४३७	११३९८०९६	५०६१७३	१२७४४	१३०४००	१२०४७४१३
१८००००	१०८९३०००	४५५०००	२१०००	१५१०००	११५२३०००
२११६१६	१२०५१८३५	५०५३८०	१४७६१	१४३५५८	१२७१५५३४
२३६९९६	१४०५६५१५	४८१६५२	१८२५१	१४९९२१	१४७०६३२९
२३५६५१	१५४८८११७	५५२१३३	१८७८१	१४८९७८	१६४६४२६३
२४४७४५	१५७३८१५५	५५५९९१	१७२११	१५२९०६	१६४६४२६३
२५३११८	१६३५९६३२	५८६८२४	१७७९६	१३९६८०	१७१०३९३२
२३६०००	१४७३९०००	५३७७००	१७०००	१४७०००	१५४४००००
[illegible]८७८३२	१६४२४८९३	६१५२९०	१३८४१	२००२८५	१७२५४३०९
३७१४९८	१७३२७८३७	६८०६२९	६०४५	१९८४०७	१८२११२९१८
४८०५७०	१९८५१११२	६५९१२२	११३३४	१९९९७५	२०७२१५४३

कोयला

१९१३ से १९१८ तक पत्थर के कोयले को खान के मुंह पर जो कीमत थी उसका व्योरा इस प्रकार है।

पत्थर के कोयले की कीमत

वर्ष	प्रति टन का खान के मुंह पर मूल्य			विदेश में भेजते समय प्रति टन का मूल्य		
	रु०	आ०	पाई	रु०	आ०	पाई
१९१३	३	८	०	९	१३	०
१९१४	३	९	०	८	१३	०
१९१५	३	५	०	९	३	०
१९१६	३	६	०	९	२	०
१९१७	३	११	०	९	५	०
१९१८	४	६	०	१०	९	०

कोयले की खुदाई में खान के ऊपर ९२३२४ और खान के नीचे १०४९४८ मनुष्य लगे हुए हैं। भारत का कोयला कलकत्ते से बाहर भी भेजा जाता है। १९१३-१४ से आज तक बाहर गये कोयले का व्योरा इस प्रकार है।

निम्नलिखित देशोंमें भारत का कोयला भिन्न भिन्न व्यापारियों तथा कम्पनियों की ओर से गया।

वर्ष	सीलोन	लूबान तथा स्टेट् सैटलमेंट	डच पूर्वीय भारत	अन्य देश	कुल योग
	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में
१९१३–१४	३९३८८९	१८३५०१	९७६५२	४६७१४	७२१७५६
१९१४–१५	३९२६१०	१००६३६	७२८१०	२६४३६	५९२४९२
१९१५–१६	५८७६९१	९७६७४	८४६८३	३१९१०	८०३९५८
१९१६–१७	५३२४४३	१४४११६	१०६८०९	४५७७४	८२९१४२
१९१७–१८	१५३९९१	६८५९५	८४७४	२४८४५	२५५९०५
१९१८–१९	८१३१०	४५७६३	८७७१	७७८३	१४३६२७

ऊपर लिखे व्यौरे में वंकर कोयले तथा अन्य कुछ एक कोयलों का हिसाब सम्मिलित नहीं है। भारत में कोयले की दिन पर दिन जरूरत बढ़ती जाती है। अतः उसका विदेशीय व्यापार भविष्य में विशेष उन्नति करेगा इसमें कुछ कुछ सन्देह है। १९१८ में जहाजों की कमी से कोयले का बाहर भेजना कठिन हो गया। कोल-अध्यक्ष (Coal controloı) ने उच्च कोटि के कोयले को १२ रु० प्रति टन के भाव पर ही विदेश में जाने दिया।

कोयला

१९१७ में कोयले का इधर उधर भेजना कठिन हो गया। लड़ाई से पहिले बंगाल बिहार का कोयला बम्बई में जहाज़ों के द्वारा पहुंचता था। जहाज़ों की कमी के कारण कोयला समुद्र मार्ग से न जाकर रेलों के द्वारा बम्बई भेजा जाने लगा। मालगाड़ी के डब्बे थोड़े थे अतः सरकार ने कोल-अध्यक्ष नियत किया। इसने योरोपीय लोगों को तो सहायता पहुंचायी और भारतीयों को बड़ा भारी नुकसान। यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि पहिले दर्जे की कोयले की खानें प्रायः योरुपीय लोगों के पास ही हैं। उनको तो उसने कोयले के उत्पन्न करने में पूरी स्वतन्त्रता देदी और उनको मालगाड़ी के डब्बे भी खुले तौर पर दिये। परन्तु दूसरे तथा तीसरे दर्जे की खानों की खुदाई को कम कर दिया और उनको मालगाड़ी के डब्बे भी उचित संख्या में न दिये। जो कुछ भी हो। इससे भारतीय खानों के मालिकों को भयंकर नुकसान पहुंचा और उनके मेहनती उनसे टूटकर योरुपीय खानों के मालिकों के यहां नौकर हो गये। १९१९ की जनवरी से कोल-अध्यक्ष का नियन्त्रण कम होने लगा और अप्रेल को भारतीयों को खान खोदने की पूरी स्वतन्त्रता मिल गयी।† आजकल रेल्वे बोर्ड का एक उच्च अधिकारी कोयले के गम-

† Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton pp. 287-292.

नागमन को नियत करता है। यदि यह नियन्त्रण भी हट जावे तो कोयले के खानों के भारतीय मालिकों का व्यवसाय पुनः उन्नति करने लगे। प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि कोल-अध्यक्ष के नियत करने से भारतीयों को जो आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा उसको कैसे भुलाया जावे? महायुद्ध के दिनों में सरकार के हस्तक्षेप से जिस लाभ से वह लोग वञ्चित किये गये उसका क्या प्रतीकार है?

इन सब उपरिलिखित खानों तथा खनिज पदार्थों को देख कर बाल साहब की सम्मति है कि "भारतभूमि धन की खान है। यदि संसार के अन्य देशों से भारत को जुदा किया जा सकता या उसके खनिज पदार्थों की उपज को विदेशी स्पर्धा से बचाया जाता तो निस्सन्देह भारत इस योग्य है कि एक अतीव सभ्य जाति की सब आवश्यकताओं को वह अपने अन्दर से ही पूर्ण कर सकता"। परन्तु दशा बड़ी विचित्र है। जो खानें खुद भी रही हैं उन पर भी विदेशियों का ही स्वत्व है। भारतियों का उनमें कुछ भी प्रवेश नहीं है।

(ग)

अब्रख

आज से पांच वर्ष पहिले संसार का $\frac{3}{4}$ अभ्रख भारत में ही उत्पन्न होता था। शेष $\frac{1}{4}$ अमरीका की खानों से निकलता था। लड़ाई के दिनों में ब्राजील के अन्दर बहुत बड़ी अभ्रख की खान का लोगों को पता चला। इस से इस कदर तक अधिक अभ्रख निकला है कि भारत के अभ्रख-व्यापार का भविष्य अच्छा नहीं कहा जा सकता है। भारत में दो क्षेत्र हैं जहां से अभ्रख निकाला जाता है।

(१) बिहार का अभ्रख क्षेत्र १२ मील चौड़ा तथा ६० से ७० मील तक लम्बा है। गया से शुरू होकर हज़ारी बाग़ तथा मुंगेर तक यही क्षेत्र चला गया है।

(२) मद्रास के नलौन जिले का अभ्रख क्षेत्र।

अजमेर, उदयपुर, मैसूर तथा उड़ीसा में भी अभ्रख की खाने हैं। परन्तु वहां से बहुत राशि में अभ्रख नहीं निकाला जाता है। १६१७ में बिहार से १७०० टन, नलौर से ३०० टन तथा राजपूताने से ३६ टन अभ्रख प्राप्त हुआ था। तारे रहित अभ्रख को उत्तम समझा जाता है। बिहार से लाल तथा नलौर से हरा अभ्रख निकलती है। १६१३-१४ से १६१८-१६ तक भारत का अभ्रख विदेश में निम्नलिखित प्रकार गया।

अभ्रख का भारत से विदेश में जाना

बन्दरगाहें जिनके द्वारा अभ्रख विदेश में जाता है	१९१३—१४		१९१८—१९	
	राशि हंड्रड्वेट् या ५६ सेरोंमें	एक हंड्रड्वेट् का मूल्य	राशि हंड्रड्वेट् या ५६ सेरोंमें	प्रति ५६ सेर या हंड्रड्वेट् का मूल्य
		पौं. शि. पें.		पौं. शि. पें.
कलकत्ता	४१३१३	५ १४ ७	४६४४६	११ ९ ३
मद्रास	१०८७१	५ ३ ९	८१०८	६ १६ १०
बम्बई	१७०७	५ १० १	१४३८	७ १३ ५
कुल योग	५३८९१	५ ९ ६	५५९९२	१० १३ ११

ब्राजील के अन्दर युद्ध के दिनों से अच्छी राशि में अभ्रख खोदा जाने लगा है। ब्राजील की खानों के अभ्रख के कारण भारत के अभ्रख-व्यापार को नुक्सान पहुंचाने की संभावना है। इंग्लैण्ड में भिन्न २ देशों के अभ्रख की कीमत इस प्रकार है:—

इंग्लैण्ड में भिन्न वर्षों में अभ्रख की कीमत

भिन्न भिन्न देशों की अभ्रख	१९१३		१९१४		१९१५		१९१६		१९१७	
	राशि-हंड्रड्वेट् या ५६ सेरों में	प्रति ५६ सेर की कीमत	राशि-हंड्रड्वेट् या ५६ सेरों में	प्रति ५६ सेर की कीमत	राशि-हंड्रड्वेट या ५६ सेरों में	प्रति ५६ सेर की कीमत	राशि-हंड्रड्वेट् या ५६ सेर	प्रति ५६ सेर की कीमत	राशि-हंड्रड्वेट् या ५६ सेरो में	प्रति ५६ सेर की कीमत
		पौं शि पें		पौं शि पें		पौं शि पें		पौं शि पें		पौं शि पें
आंग्ल भारत का अभ्रख	४०१७८	३ ११ ७	२४५०९	३ १७ २	२९४३४	३ २ ४	४३४३२	४ ११ २	४८९८२	७ ३ ५
कनाडा का अभ्रख	१३८३	६ ९ ६	१२२५	६ ४ ३	१८६४	३ ५ ०	८७९	८ १२ ०	४४४	१३ १ ६
अमरीका से आया अभ्रख	८८९	१ ३ ०	१८४५	१ ७ ८	४३५५	० १६ २६	१६२८	१ ८ २	६६३	२ ७ ७

अब्रख की खानों के खोदने में लगभग १५००० मनुष्य लगे हुए हैं। ब्राजील की खानों के खुदने से यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि भारत के अब्रख का भविष्य क्या है?†

(त)

टुंग सटन

टुंग सटन लोहे को कठोर तथा पक्का बनाने के काम में लाया जाता है। इसी का मिश्रण रंगने तथा आग से बचाने के काम में भी आता है। आज से दस साल पहिले एक मात्र अमरीका से ही यह धातु निकलती थी, कुछ वर्षों से वर्मा में भी इस धातु की खानों का ज्ञान प्राप्त हुआ है। १९१७ में संसार की उत्पत्ति का एक तिहाई टुंगसटन वर्मा की खानों से ही निकाला गया। अब चीन ने भी इस ओर पैर धरा है। आशा है कि चीन की खानों से प्रति वर्ष ७००० टन टुंगसटन निकाला जा सकेगा।

टेवाय तथा मर्गुई के जिलों की खानों से १९०९ में ही टगसटन का निकाला जाना शुरू हुआ। भूगर्भ विभाग (Geological Survey) ने ही इसकी सब से पहिले पहिल सूचना दी थी। टेवाय जिले से जितना टुंगसटन प्रति वर्ष निकाला गया है उसका व्योरा इस प्रकार है।

† Hand book of Commercial Information for Iudia by C. W. E. Cotton, pp. 299-309

वर्ष		राशि टनों में
१९११	...	१०९१
१९१२	...	१४९९
१९१३	...	१५०८
१९१४	...	१६३०
१९१५	...	२१ ५
१९१६	...	३०:४
१९१७	...	३६५४
१९१८	...	३६३६

लड़ाई से पहिले पहिल भारत का सारा का सारा टुंगसटन जर्मनी खरीद लेता था। १९१४ के बाद इंग्लैंड ने सारी की सारी धातु स्वयं खरीद ली। सरकार ने टुंगसटन की खानों तक अच्छी सड़कें बनायीं और उनकी खुदाई को प्रत्येक प्रकार से उत्तेजित किया।

यामथिन जिले की बिंगमी खानों से टुंगसटन का निकालना बहुत ही लाभ का व्यवसाय सिद्ध हुआ है। दक्खिनी शान रियासतों में माची नामक एक महत्वपूर्ण खान मौजूद थी। अतून तथा अम्हर्स्ट जिलों में भी इसकी खानें हैं। मर्गुई खान से, ३६८ टन टगसटन १९१७ में विदेश भेजा गया

था। राजपूताने में जोधपुर-बीकानेर रेल्वे के टेगानानामक स्थान में और विहार तथा उड़ीसा में सिंहभूम जिले के अन्दर इसकी खानें मौजूद हैं। मद्रास प्रान्त के त्रिचिनापली जिले में और मध्यप्रान्त के नागपुर जिले में भी टुंगसटन अल्प राशि में मौजूद है। १६१८ में भारत के भिन्न २ भागों में टुंगसटन इस प्रकार उत्पन्न किया गया"।

१६१८ में टुंगसटन की उत्पत्ति

प्रान्त	राशि—टनों में	मूल्य—पाउन्डों में
१ बर्मा—		
टेबाय ...	३६३६	६१०८३२
मर्गुई ...	३७७	५२४६१
दक्खिनी सात रियासतें	२८७	४१६१५
थामटन ...	६२	१३६६३
किआक्सी ...	·१	१७
२. राजपूताना—		
मारवाड़ ...	३७	७२०५
३. बिहार तथा उड़ीसा		
सिंहभूम ...	२	४६८
कुल योग	४४३१·१	७२६३२२

१६१७ में भारत के अन्दर ४५४२ टन टुंगसटन उत्पन्न हुआ था। १६१७-१८ में ४७८२ टन और १६१८-१६ में ४८७० टन टुंगसटन विदेश में भेज दिया गया। वस्तुतः सारी की सारी धातु को एकमात्र इग्लैंड खरीद लेता है।

चीन की खानों के टुंगसटन के बाजार में आने से भारत तथा बर्मा की खानों को खुदाई में पूर्ववत् लाभ नहीं रहा है। यह होते हुए भी इस धातु के खोदनेवालों का भविष्य कुछ भी बुरा नहीं है। आगे चलकर पुनः यह बहुत बड़े लाभ का व्यवसाय हो जावेगा †
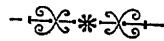
(थ)

टीन

बर्मा में टीन की खुदाई अच्छी तौर पर हो रही है। १६१२ में कुल उत्पत्ति ५०००० पाउन्ड की कूती गयी थी। १६१८ में टीन की जो उत्पत्ति हुई थी उसका ब्यौरा इस प्रकार है।

---

† Handbook of Commerciai Information for India by C. W. E., Cotton, P. P. 229-231.

१६१८ में टीन की उत्पत्ति

उत्पत्ति के स्थान	टीन		टीन की कच्ची धातु	
	राशि ५६ सेरों में	मूल्य--पाउन्डों में	राशि--५६ सेरों में	मूल्य-पाउन्डों में
वर्माः—				
दक्खिनी शान रियासतें	...	...	७६०६	५१३६१
टेवाय	...	...	४०५३	३१०५६
मर्गुई	२०१४	२८१२३	१४७१	१२४३२
थाटन	...	...	११५७	२८६६
अम्हसर्ट	...	...	१३१७	८७६७
कुलयोग	२०१४	२८१२३	१५६०७	१०६५१२

टीन के शुद्ध करने के भारत में कारखाने में बहुत कम हैं। यही कारण है कि बहुत सी धातु इंग्लैण्ड आदि विदेशीय राष्ट्रों में संशोधन के लिये भेजदी जाती है। पिछले छै वर्षों में इसका निर्यात निम्नलिखित प्रकार हुआ।

टीन का निर्यात

वर्ष	विदेशीय राष्ट्रों में		टीन की कच्ची धातु	
	राशि-हंड्रड वेट या ४६ सेरों में	मूल्य-पाउन्डों में	राशि-हंड्रड वेट या ४६ सेरों में	मूल्य-पाउन्डों में
१६१३–१४	४२१२	२४४८२	१४६६	१३७२६
१६१४–१५	२३००	१२६३४	१५४७	१३०१८
१६१५–१६	१७४१	८८२३	२१७८	१८५४६
१६१६–१७	४२८१	२३४५३	१६६२	१६०६३
१६१७–१८	६००४	४२४५०	२३२६	२६४६६
१६१८–१६	७४२३	६२२६८	१८८०	२५१६५

उचित यह है कि भारत में ही टीन को शुद्ध करने के कारखाने खोले जावें। धातु की बहुत सी उत्पत्ति को विदेश में शुद्ध करने के लिये भेजना बहुत ही दुःखजनक घटना है। भारत के पूंजी पतियों कों इस ओर ध्यान करना चाहिये।

‡ Handbook of Commercial Information for India by C. W. E., Cotton, pp. 231-232.

(४)

जांगलिक पदार्थ

भारतवर्ष जंगलों से परिपूर्ण है। खानों के सदृश ही जंगलों का महत्व है। जांगलिक पदार्थों का दवाइयों मकानों तथा व्यावसायिक कामों में प्रयोग ध्यान देने के योग्य है। पशुओं के लिये बड़ी बड़ी चरागाहें जंगलों में ही मौजूद हैं। घरों में आग जलाने के लिये लकड़ियां जंगलों से ही प्राप्त होती हैं।

१६०१ की गणना के अनुसार† भारतवर्ष में कुल मिलाकर २०८३६६ वर्ग मील जंगल है। यह भारत के कुल क्षेत्रफल का २२ प्र. श. है। प्रान्तीय भूमि का ३·८६ प्र. श. संयुक्त प्रान्त में, ६१·१६ बर्मा में, ४४·०६ आसाम में जंगल है। अंडमन में तो ६७·५५ प्र. श. जंगल है। भारत सरकार को १६०१ में जंगलों से १६७७०००० रु० आमदनी थी। इसका ४० प्र. श. उसको एक मात्र बर्मा से ही प्राप्त हुआ था।

भिन्न २ देशी रियासतों में बड़े बड़े जंगल मौजूद हैं। दृष्टान्तस्वरूप:—

देशी रियासत	जंगल वर्गमील	आमदनी	वर्ष
हैदराबाद	५०००	२८००००	१६००

† Imperial Gazateer of India, Vol. III, p. 105.

मैसूर	२०००	१३५००००	१९००
काश्मीर	२१८०	८८००००	१९००
जोधपुर	३४३	२००००	,,
ट्रांवंकोर	१८००	५५००००	,,
अन्य छोटी २ रियासतों में	४२०००	×	×
भारत में व्यक्तियों के पास जंगल	७७०००	×	×

इन जंगलों में नाना प्रकार की लकड़ियां तथा वानस्पतिक पदार्थ मोजूद हैं। गढ़वाल जिले में तथा पंजाब के पहाड़ों में देवदारू, चीड़ तथा शाल के पेड़ बहुतायत से हैं। हिमालय की उपत्यका में बांस तथा भावड़ घास तथा इसी प्रकार के अन्य बहुत से पदार्थ मौजूद हैं। *

इनका प्रयोग यदि उचित विधि पर किया जाय तो भारतवर्ष बहुत अंशों तक स्वावलम्बी हो सकता है। लड़ाई के दिनों में सरकार को बांस तथा टिम्बर लकड़ी की ज़रूरत पड़ी थी। सरकार ने भारत के जंगलों से ही इनको प्राप्त कर अपना काम चलाया। १९१७-१८ में सरकार को जंगलों से १२५०००० पाउन्ड की आमदनी हुई। १९१६-१७ में राजकीय जंगल विभाग (Imperial forest service) ने

* Imperial Gazateer of India, Vol. III, pp. 122-123.

१००००० वर्गमील भूमि क्षेत्र पर अपना नियन्त्रण स्थापित किया। सरकार पच्चास लाख टन लकड़ी प्रति वर्ष जंगलों से प्राप्त करती है। इसमें ३६६००० टन टीक लकड़ी सम्मिलित है जो कि सरकार को बर्मा से प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त देवदार, शाल, शीसम, रोज़वुड्, अंग, कूच, पादौक, पियंकदा, चन्दन तथा केसुदीना आदि की लकड़ा के बेचने से भी सरकार को अच्छी आमदनी प्राप्त होती है।

विदेशीय राष्ट्र भी भारत की लकड़ी को खरीदते हैं। १९१३-१४ में रंगून तथा मौलमीन से क्रमशः ४२६२०० पाउन्ड तथा ६५३०० पाउन्ड की लकड़ी बाहर गयी। इसमें विशेषतः इंगलैंड तथा ज़र्मनी का ही भाग था। महायुद्ध से इसके व्यापार में बहुत धक्का लगा। १९१३-१४ के बाद इस व्यापार की जो दशा रही उसका व्योरा इस प्रकार है। †

† Hand book of Councile information for India by C. W. E. Cotton. I. C. S. PP 278 250.

१६१३-१४ से १६१८-१६ तक लकड़ी का विदेश में जाना

वर्ष	राशि-वर्गीय टनों में	मूल्य-पाउन्डों में
१६१३-१४	५८६७२	५७१६३६
१६१४-१५	४७३४७	५७६५३१
१६१५-१६	३६०२५	४२०८६६
१६१६-१७	२८२७०	३३४८७६
१६१७-१८	१६५०४	२१५६६६
१६१८-१६	३३३१३	४२३६६०

सन् १६२० के अन्तिम महीनों में इंग्लैएड के अन्दर भारत के लकड़ियों की प्रदर्शिनी की गयी। आशा है कि योरुप तथा इंग्लैएड के लोग भारत के जंगलों से लाभ उठाने का यत्न करें। भारतीय पूंजीपतियों को अभी से इस ओर अपना धन लगाना चाहिये।

साधारण लकड़ी के अतिरिक्त व्यावसायिक दृष्टि से कुछ एक जंगली पदार्थ तथा जंगली बांस बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि अब उन पर प्रकाश डालने का यत्न किया जावेगा-

(क)

बांस तथा भावड़ घास

बांस सैकड़ों कामों में आता है। झोपड़ियां, चिकें, डलिया आदि अनेकों चीज़ों में बांस की जरूरत पड़ती है। सब से बड़ी बात तो यह है कि बांस के सहारे कागज भी बनाया जा सकता है। बांस के सदृश ही भावड़घास तथा उसी

की २० और जातें कागज बनाने के लिये बहुत ही अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई हैं। हिमालय की उपत्यका इन चोज़ों से इस कदर अधिक भरी हुई है कि यहां सैकड़ों कागज़ की मिलें खोली जा सकती हैं और सारे संसार को सैकड़ों वर्षों तक कागज़ दिया जा सकता है। दुःख का विषय है कि अभी इस ओर भारतीयों की थोड़ी ही पूँजी लगी है।

तंजोर जिले के ट्रांकिवार नामक स्थान में १७१६ में एक कागज की मिल खोली गयी थी और एक प्रेस भी खुला था। प्रेस तो अब तक विद्यमान है परन्तु मिल की क्या दशा हुई, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। इसके बाद १८११ से सीरामपुर (हुगली जिले में) में कागज बनाने का एक कारखाना खुला परन्तु इसने भी विशेष उन्नति न की। १८७० में एक अंग्रेज़ी कम्पनी ने बाली पेपर मिल नामक कागज का कारखाना खोला। कुछ समय तक यह बड़ी सफलता से चलता रहा। इसकी अधिक से अधिक उत्पत्ति ५००० टन (प्रति वर्ष) तक पहुंची। १९०५ में इसकी दो मशीनों को टीटागढ़ मिल के संचालकों ने खरीद लिया और शेष दो मशीनें खराब हो गयीं। १८७९ में लखनऊ में अपर इण्डिया कूपर पेपर मिल नामक कारखाना खुला। १८९४ में इसके अन्दर दो मैशीनों के द्वारा काम होने लगा। इसकी सालाना उत्पत्ति २३०० टन है। इसी प्रकार १८८१ में

महाराज सिन्धिया ने ग्वालियर में एक कागज का कारखाना खोला और पीछे से मेसर्स बामर लारी ऐण्ड को० के हाथों में बेच दिया। यह आज कल १२०० टनकागज प्रति वर्ष उत्पन्न करता है। १८८२ में टीटागढ़ मिल खुली। इसमें आज कल ८ मैशीनें काम कर रही हैं। यह प्रतिवर्ष १८००० टन कागज बनाती है। १८८३ में दक्कन पेपर मिल पूना में खुली, जो आज कल १००० टन कागज प्रति वर्ष बनाती है। १८९० में बंगाल पेपर मिल खुली और इसने अच्छी उन्नति की। इसकी वार्षिक उत्पत्ति ७००० टन है। इन सारी की सारी मिलों से कुल मिलाकर ३०००० टन कागज बनता है। भारतवर्ष को ७५००० टन कागज की जरूरत है। अभी तक भारत विदेश को धन देकर काम करता रहा है। यदि भारतीय पूंजीपति इस ओर उद्योग करें और अपने जंगलों तथा जंगली घासों से आवश्यकता को पूर्ण करें तो भारतवर्ष शीघ्र ही कागज के मामले में स्वावलम्बी हो जावे। कागज बनाने में बहुत से रासायनिक द्रव्य लगते हैं और वह सब के सब भारतवर्ष में ही बनाये जा सकते हैं। यही स्थान है जहां सरकार की सहायता बहुत कुछ कर सकती है। महाशय हालैण्ड का भी यही विचार है*। परन्तु प्रश्न तो यही

* Some measure of protection would be required until these nascent Industrial developments attained strength

है कि भारतीय सरकार इंग्लैण्ड के हितों को सामने रखते हुए भारत के हित का ख्याल कहां तक रख सकती है? वास्तविक बात तो यह है कि आर्थिक स्वराज्य का प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। बिना इसके प्राप्त किये व्यवसायिक उन्नति स्थिर तथा दृढ़ नहीं हो सकती है।

(ख)

लाख

लाख भारत का महत्वपूर्ण पदार्थ है। बर्मा, स्याम, इंडोचीन तथा भारत में ही इसकी मुख्य तौर पर उत्पत्ति होती है। इंडोचीन तथा स्याम में लाख की कुल उपज का २½ प्र. श. ही उत्पन्न होता है और वह भी भारत में अच्छी लाख बनाने के लिये भेज दिया जाता है।

भारतवर्ष में लाख चार स्थानों में मुख्य तौरपर उत्पन्न होती है:—

(१) मध्य भारत—इसमें छत्तीसगढ़, नागपुर, छोटा नागपुर, उड़ीसा बंगाल तथा हैदराबाद का उत्तर-पूर्वीय जंगल सम्मिलित है।

---

is probable; but whether that protection will be forthcoming is a matter on which I am not in a position to speak.

Indian Munitions Board Handbook, 1919, P. 251.

(२) सिन्ध ।
(३) मध्य आसाम ।
(४) अपर बर्मा तथा शान रियासतें ।

इन चार स्थानों में भी मध्य प्रान्त ही मुख्य है। लाख के कारखाने संयुक्त प्रान्त, बिहार तथा बंगाल में बहुतायत से हैं। मिर्जापुर, बलरामपुर, इमामगंज, पाकुर तथा झालदा लाख के कारखानों के लिये विशेषतः प्रसिद्ध हैं।

कुसुम, बेर, पलास, सिरीस तथा पीपल आदि चार वृक्षों पर ही लाख का कीड़ा पाला जाता है। सिन्ध में बकुल को भी लाख के कीड़े को पालने के काम में लाया जाता है। लाख के कीड़े की बहुत सी किस्में हैं। इनका भोज्य पदार्थ भी एक नहीं है। सिन्ध का बबूल का कीड़ा बिहार के बबूल पर नहीं पाला जा सकता है। क्योंकि वह सिन्ध की आबहवा में ही फलता फूलता है। दूसरे देशों की आबहवा उसके माफिक नहीं बैठती है।

लाख बहुत ही उपयोगी पदार्थ है। सैनिक दृष्टि से भी इसका महत्व कम नहीं है। ग्रामोफोनरिकार्ड, मोहर लगाना, बटन, स्याही, नकली हाथीदांत बनाना, मोमजामा, खेल खिलौने, चूड़ियां आदि बनाने के काम में यह आम तौरपर आता है। बारूद में भी इसकी आवश्यकता पड़ती है। युद्ध सम्बन्धी महत्व को सामने रखकर ही भारतीय सरकार ने लाख का विदेश में भेजना किसी हद तक रोका है।

१८६८ से १९१९ तक भारतीय शुद्ध लाख विदेशों को इस प्रकार गयी *

वर्ष	चपड़ा		बटन लाख		कुलयोग	
	हंड्रेडवेट या ५६ सेरों में	रुपयों मे	हंड्रेडवेट या ५६ सेरों में	रुपयों में	हंड्रेडवेट या ५६ सेरों मे	रुपयों में
१८६८–६९	४३७४६	१५६५८६९	... .	....	४३७४६	११६५८६९
१८७८–७९	६४४९८	२२२४८४३	१७११४	५४६०६१	८१६१२	२७७०९०४
१८८८–८९	८१३९०	३१९४१२५	२११९५	७८८७०२	१०२५८५	३९८२८२७
१८९८–९९	१४६३९५	७००७७८१	३१६०२	१५५२७४०	१७७९९७	८५६०५२१
१९०८–०९	३२२९५३	२४६५१३०७	३१४१५	२३३३००५	३५४३९८	२६९८४३१२
१९०९–१०	४६१०५६	२४६४२६४०	४९४५५	२५४०२५९	५१०५०१	२७१८२८९९
१९१०–११	३५७९४०	१९२९२२६७	३१२७८	१५८७२०५	३८९२१८	२०८७९४७२
१९११–१२	३५११७५	१७८११२१५	२९६८४	१५५७३०६	३८०८५९	१९३६८५२१
१९१२–१३	३३६१७६	१७६८१२५०	४१४९८	२१८६१०६	३७७६७४	१९८६७३५६
१९१३–१४	२७५३५७	१६९७८१३८	२१८६५	१३०७०८९	२९७२२२	१८२८५२२७
१९१४–१५	३०७८४५	१४११४६९१	२५५२६	१२४७०३९	३३३३७१	१५३६१७३०
१९१५–१६	३५८६६१	१५४७३८३६	१२६१०	५७२६५६	३७१२७१	१६०४६४९२
१९१६–१७	३२४२८४	२५५०३९८४	३१०९	१९४८७५	३२७३९३	२५६९८८५९
१९१७–१८	२८९६७६	३५९१४७६३	२७५९०	४२४२२९	२९२४३५	३६३३८९९२
१९१८–१९	२२२८८९	१८६६२६३	३५२०	३७५३३	२२६४०९	१९०३७९३
		(पाउन्ड)		(पाउन्ड)		पाउन्ड

* Indian Munitions Board's Industrial Handbook, P. 324, Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, P. 241.

लाख

कच्ची लाख तथा कोरी भी विदेश जाती है।

१८६८ से १९१८ तक भारत से विदेश को संपूर्ण प्रकार की लाख इस प्रकार गयी *

वर्ष	हंड्रेडवेट या ५६ सेर	रुपया
१८६८—६९	७४५५८	२२७११५८
१८७८—७९	९१४२३	२९८७१५७
१८८८—८९	१०३८११	४०१०७८२
१८९८—९९	१८२१२२	८७१४१४४
१९०८—०९	३८७८२२	२७९४६०४२
१९०९—१०	५५४८१४	२७७१६८९८
१९१०—११	४२१६२९	२१४२८५७६
१९११—१२	४२८४२५	२०१४५०८०
१९१२—१३	४२८१६३	२११३३१८४
१९१३—१४	३३९१८१	१९६५८७०१
१९१४—१५	३६६६९२	१६०५७४३४
१९१५—१६	४१७३२०	१७१७५८१२
१९१६—१७	३१८३४९	२८०३१६९९
१९१७—१८	३२२४२०	३७७६८०३४

* Indian Munitions Board ; Industrial Handbook p. 326

जो जो देश भारत का लाख खरीदते हैं उसका व्योरा इस प्रकार है।†

विदेशी राष्ट्रों में भारत के लाख का जाना

	१९१३–१४		कुल योग	१९१८–१९		कुल योग
	शुद्ध लाख	कच्ची लाख		शुद्ध लाख	कच्ची लाख	
	हंड्रड्वेट में	हंड्रड्वेट में	हंड्रड्वेट में	हंड्रड्वेट में	हंड्रड्वेट में	हंड्रड्वेट में
अमरीका	१३०९६८	२२४६१	१५३४२९	१००१९६	८०३९	१०८२२९
इंग्लैण्ड	९११६०	६६०९	९७७६९	६७३७६	४१०४	७१४८०
जर्मनी	४१५८२	११९८२	५२७६४	...	...	...
फ्रान्स	१२२०२	८१	१२२८३	९७९६	५३९	१०३३५
अन्य देश	२१३१०	१६०६	२२९१६	४९०४१	८	४९०४९

लाख में बहुत प्रकार की चीजें मिला दी जाती हैं। अमरीका, इंग्लैंड तथा कलकत्ते से इसी प्रकार की शिकायतें आयी हैं। इसका उचित उपाय यही है कि लाख मंगानेवाले ठेके में यह भी एक शर्त रखलें कि ३ या ४ प्रति शतक से अधिक

† Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, p. 243.

रजिन लाख में न मिलाया जाय और न किसी ढंग का अन्य पदार्थ लाख में डाला जाय।

बहुत से विचारकों का ख्याल है कि चपड़ा विदेशों को न भेजकर कच्ची लाख ही विदेशों को क्यों न भेजी जाय। क्योंकि ऐसा करने से मंगानेवालों को किसी भी ढंग की शिकायत का मौका न मिलेगा और मनमाने ढंग पर वह लोग लाख को शुद्ध कर सकेंगे। परन्तु यह विचार ठीक नहीं है। कच्ची लाख के विदेशों में भेजने पर भारत को भयंकर आर्थिक नुकसान पहुंचेगा। भारतवर्ष में लाख का व्यवसाय न रहने से लाख के अन्दर काम करनेवाले मेहनती मजदूर बेकार हो जावेंगे। सब से बड़ी बात तो यह है कि भारतवर्ष को दिन पर दिन व्यवसायप्रधान होने का यत्न करना चाहिये। अच्छा तो यह है कि विदेशी लोग जिन २ चीज़ों को लाख से बनाते हैं भारतवर्षी उन्हीं चीज़ों को बनाकर विदेशों को भेजें और यथासंभव चपड़े को भी विदेशों में जाने से रोकें।

विदेशी रंगों के चलने से पूर्व भारत में लाख के रंगका ही प्रयोग होता था। यह रंग बहुत ही पक्का तथा अच्छा होता है। अभी तक कई स्थानों में रंगरेज़ लोग इसी रंग का व्यवहार करते हैं। दुःख का विषय है कि लाख के रंगों का प्रयोग अब दिन पर दिन उठता जाता है। दृष्टान्त स्वरूप—

लाख के रंगों का विदेशों को जाना

	हंड्रेडवेट या ५६ सेर	रुपये
१८६८—६९	१७७४८	७९५६५५
१८७८—७९	८२६१	१९५२८५
१८८८—८९	३३४	८०३८
१९०८—०९	६	८०२३
१९०९ १०	६	२००
१९१०—११	१८	१८०
१९११—१२	०	०

उपर्युक्त सूची से स्पष्ट है कि १८६८ से १९१२ तक किस प्रकार लाख के रंग का विदेशों में जाना दिन पर दिन कम हुआ। अब तो विदेशी लोग इस रंग को पूछते भी नहीं हैं। भारत में भी इसका प्रयोग नाम मात्र को ही है। इसका पुनरुद्धार कुछ कुछ असंभव ही है। विदेशी रंगों के सामने यह नहीं टिक सकता है।
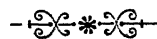
(ग)

चन्दन

चन्दन भारतीय जंगलों का बहुमूल्य पदार्थ है। दक्खिन में मैसूर, कूर्ग, कोयमबेतोर, सेलम आदि जिले ही चन्दन की उत्पत्ति के लिये प्रसिद्ध हैं। चन्दन तथा चन्दन के तेल का व्यापार अति प्राचीनकाल से भारत में प्रचलित था। चौकी, चक्र, सन्दूक तथा तस्वीर का फ्रेम आदि अनेक पदार्थ चन्दन की लकड़ी के बनाये जाते हैं। माथे में तिलक लगाने, पूजापाठ करने तथा अमीर आदमी के मुर्दा जलाने और यज्ञ आदि करने में भी चन्दन को काम में लाया जाता है। चन्दन की लकड़ी में ५ से ७ प्रति शतक तक तेल रहता है। ५०० से ६०० टन चन्दन की लकड़ी भारत में ही खपती है। युद्ध से पहिले २७५० टन चन्दन की लकड़ी प्रति वर्ष बाजार में बिकने के लिये आती थी। युद्ध के दिनों में यह संख्या घटती घटती २०५० टन तक जा पहुंची।

मैसूर तथा कूर्ग में चन्दन के पेड़ों पर राज्य का ही स्वत्व है। मद्रास में यद्यपि चन्दन के पेड़ों पर जनता का स्वत्व है तो भी इस पदार्थ पर सरकार ने अपना ही एकाधिकार स्थापित किया हुआ है। १९१२-१३ में चन्दन की लकड़ी का व्यापार जर्मनी के व्यापारियों ने अपने हाथ में करना चाहा।

यही कारण है कि जिसका दाम पहिले समय में ७०००० पाउन्ड से ८४००० पाउन्ड था उसी का दाम उन्होंने १५१. २०० पाउन्ड तक दिया। लड़ाई के शुरू होने पर जर्मन व्यापारियों ने चन्दन को ख़रीदना छोड़ दिया। इससे उसका दाम पुनः गिर गया। १९१५ में २००० टन चन्दन पुनः ११३३०० पाउन्ड पर बिका। अर्थतत्त्वज्ञों का ख्याल है कि जर्मनी ने अमरीका के द्वारा उस चन्दन को ख़रीदा था।

इन्हीं दिनों में बंगलोर में एक कारखाना खुला और उसने वैज्ञानिक ढंग पर चन्दन का तैल निकालना शुरू किया इससे चन्दन का दाम पूर्ववत् चढ़ा रहा। चन्दन के दाम के न गिरने का एक मुख्य कारण यह भी है कि इसकी लन्दन में मांग दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। वहां के लोग अधिक अधिक इसका दाम दे रहे हैं। शुरू शुरू में मैसूर में चन्दन से तेल निकालना सरकार की ओर से बन्द था। परन्तु सरकार की कृपा से १९१६ की मई में बंगलोर में से चन्दन के तेल निकालने के लिये एक कारखाना खोला गया। यह १००० सेर के लगभग चन्दन का तेल हर महीने निकालता है।

१९१४ के बाद लन्दन में चन्दन के तेल का दाम किस कदर बढ़ा है उसका ब्योरा इस प्रकार है।

चन्दन

लन्दन में चन्दन के तेल के एक पाउन्ड (आधसेर) का दाम

वर्ष		शिलिङ्ग
१९१४:—		
जुलाई	...	२१
अगस्त	...	२३
दिसम्बर	...	२३
१९१५:—		
अधिक से अधिक कीमत	...	२१ १/२
कम से कम कीमत	...	३०
१९१६:—		
अधिक से अधिक कीमत	...	३१
कम से कम कीमत	...	४५
१९१७:—		
अधिक से अधिक कीमत	...	४७ १/२
कम से कम कीमत	...	५३
१९१८:—		
जनवरी	...	५२ १/२
जुलाई	...	५२ १/२

लन्डन में चन्दन के तेल की मांग दिन पर दिन बढ़ने से बंगलोर के कारखाने का रूप बढ़ता ही गया। शुरू शुरू में वह १००० सेर तेल प्रतिमास निकाल सकता था परन्तु अब २००० सेर से अधिक तेल वह निकाल सकता है। १९१७ की अगस्त में मैसूर में एक और कारखाना खुला है जो कि २०००० सेर से अधिक तेल प्रतिमास निकाल सकता है। १९१८ की ३१ दिसम्बर तक इन कारखानों ने २११३ टन चन्दन से १०६१८५ सेर चन्दन का तेल निकाला था। १९१७-१८ में चन्दन के तेल की बिक्री से मैसूर राज्य को १८३३०० पाउन्ड की आमदनी हुई थी।

लड़ाई से पाहले मंगलोर, तेलीचरी, कालीकट तथा कोचीन से ही चन्दन की लकड़ी विदेश में जाती थी। आजकल चन्दन का तेल मद्रास, मंगलोर, कालीकट तथा बम्बई से ही बाहर जाता है। चन्दन के तेल से बननेवाले व्यावसायिक पदार्थ यदि भारत में ही बनते तो बहुत ही अच्छा होता। कच्चे माल का विदेश में जाना देश की समृद्धि का घातक है। परन्तु भारत सरकार तो यही चाहती है। उस को योरुप तथा अंग्रेजों के हित की ही चिन्ता है। उसको इसकी क्या परवाह कि उसकी नीति से भारतवर्ष तबाह हो रहा है या नहीं। झूठी समृद्धि दिखाकर लोगों को अपना पराया पहिचानने से रोकना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। मैसूर राज्य इस ओर

कुछ कर सकता है। परन्तु भारत सरकार की कोप दृष्टि का ही इसको डर है। आजकल चन्दन तथा चन्दन के तेल का निर्यात इस प्रकार है।

चन्दन तथा चन्दन के तेल के निर्यात का ब्यौरा

वर्ष	चन्दन की लकड़ी	चन्दन का तेल
	पाउन्डों में	पाउन्डों मे
१९१३—१४	१२८६२६	
१९१४—१५	६५६१८	
१९१५—१६	१०३७९५	
१९१६—१७	१३०३५१	५४८२*
१९१७—१८	५२३४७	१४५७१३
१९१८—१९	१०५२६	२२७५६३

लड़ाई से पहिले चन्दन की लकड़ी कहां कहां जाती थी इसका ब्यौरा इस प्रकार है।

* इसमें कलकत्ता का निर्यात सम्मिलित नहीं है। क्योंकि उसकी संख्या १९१७ की ही मिलती है।

१९१३-१४ में भारत का चन्दन कौन २ विदेशीय राष्ट्र खरीदते थे।

भारत का चन्दन खरीदने वाले देश		प्रतिशतक
जर्मनी	...	४३.४
इग्लैण्ड	...	२१.७
अमरीका संयुक्तराज्य	...	१५.५
फ्रान्स	...	७.७
हालैण्ड	...	३.१
सीलोन	...	.८
मिश्र	...	३.८
जापान	...	.३

लड़ाई के दिनों में जर्मनी को चन्दन की लकड़ी खरीदनी न मिली। इंग्लैंड तथा अमरीका ने जर्मनी का स्थान स्वयं ले लिया। मैसूर में चंदन का तेल निकलने से लकड़ी का बाहर जाना बहुत कम हो गया। चंदन का तेल कितनी राशि में कौन विदेशीय राष्ट्र खरीदता है उसका ब्योरा इस प्रकार है।

१९१८-१९ में चन्दन का तेल निम्नलिखित विदेशीय राष्ट्रों ने खरीदा

देश		राशि-गैलन्ज़ में	मूल्य पांउडोंमें
इंग्लैण्ड का संयुक्त राज्य	...	१०१५१	१५५०१३
जापान	...	४२३१	६१९८६
फ्रान्स	...	३७४	७२८४
हांगकांग	...	८७	१५८८
जावा	...	५९	१९०
मिस्र	...	४८	८१९
आस्ट्रेलिया	...	२३	४६३
स्ट्रेट् सैट्लमैन्टस् तथा राष्ट्र-संघ	...	९	१३४
अन्य देश	...	३	४६
कुलयोग	...	१४९८५	२२७५६३

आस्ट्रेलिया तथा डच पूर्वीय भारत से सिंगापुर के द्वारा बम्बई में कुछ कुछ चन्दन की लकड़ी पहुंचती है। भारत के अन्दर धार्मिक काम तथा पूजापाठ में ही इसको काम में लाया जाता है †

† Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, I. C. S. pp. 250-283.

(घ)

निम्बू घास

दक्खिन में निम्बू या रूसा घास बहुतायत से होती है। यह बहुत महत्व का पदार्थ है। मालावार, कोचीन, ट्रावंकोर में इसकी खेती की जाती है। जिन पहाड़ों में यह जंगली रूप से उत्पन्न होती है उनमें जनवरी मास में आग लगा दी जाती है। जुलाई में इसकी पहली फसल काटी जाती है। इसके सत निकालने का ढंग अभी तक अच्छा नहीं है। पुराने ढंग के भभकों से ही काम लिया जाता है। यही कारण है कि ८३ प्रतिशतक के स्थान पर केवल ५० प्रति शतक ही सत इसमें से निकलता है। १९०३-०४ तक इसका व्यापार बहुत उन्नत दशा में न था। परन्तु इसके बाद इसका व्यापार बहुत ही बढ़ गया। योरुप तथा अमरीका इसके तेल के बहुत बड़े खरीदार हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इसका तेल साबुन तथा अन्य बहुत प्रकार के सैन्टस तैय्यार करने के काम में लाया जाता है। कोचीन से १९१३-१४ के बाद इसका तेल विदेश में जिस प्रकार गया उसका ब्यौरा इस प्रकार है।

निम्बू घास

निम्बू घास के तेल का निर्यात

वर्ष		राशि-गैलन्ज में	मूल्य-पाउन्डों में
१९१३—१४	...	४७५२२	६७९५५
१९१४—१५	...	२७७९६	३७९१४
१९१५—१६	...	३१७००	३०१०२
१९१६—१७	...	३४९९३	३२०४४
१९१७—१८	...	२७००९	२५९४४
१९१८—१९	...	१७०४९	२२१८१

लड़ाई से पहिले फ्रान्स, जर्मनी, इंग्लैएड तथा अमरीका में इसका तेल जाता था। लड़ाई के खतम होने पर भी इसके व्यापार में किसी प्रकार का भी फरक न पड़ा। जर्मनी के स्थान पर स्विट्जलैंएड ने निम्बू घास के तेल को खरीदना शुरू किया है †

निम्बू घास भारत के अन्य प्रदेशों में भी उत्पन्न किया जा सकता है। इसके व्यापार की उन्नति की भी बहुत आशा है। भारत के व्यापारी व्यवसायियों को चाहिये कि वह इस ओर ध्यान दें।

† Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, I. C. S. pp. 267—268.

(घ)

रबड़

भारत के जंगलों में रबड़ के पेड़ हैं। परन्तु उनकी संख्या इस हद तक अधिक नहीं है कि उन पर रबड़ के किसी बड़े कारखाने का आधार रखा जा सके। १६०० से पूर्व तक जंगलों में रबड़ के पेड़ों को बहुतायत से उत्पन्न करने की ओर सरकार का विशेष ध्यान न था। मलाया के सदृश ही वर्मा का तेनासरीम-समुद्र तट और पच्छिमी घाट के नीचे मालावार-समुद्र तट है। दोनों की जल वायु रबड़ की उत्पत्ति के लिये बहुत ही अधिक उपयुक्त है। ट्रावंकोर जिले में शेन काटाह तथा मन्दाक्यम के जिले और रानीघांटी रबड़ के व्यवसाय के केन्द्र हैं। परियार नदी के किनारे के थटकार नामक जिले में १६०२ से पारा नामक रबड़ का पेड़ उत्पन्न किया जाने लगा है। इन पिछले सात सालों से ट्रावंकोर, कोचीन, ब्रिटिश-मालावार, कूर्ग, सेलम जिले के शेवराय पर्वत आदि स्थान भी रबड़ की उत्पत्ति में आगे बढ़ रहे हैं। वर्मा में मर्गुई नामक स्थान पर सरकार ने रबड़ की पैदावार के लिये योरुपीय लोगों को उत्साहित किया है। रंगून के समीप में बहुत सी जमीनों को १६१० में कुछ एक कम्पनियों ने रबड़ के खातिर खरीद लिया है।

रबड़

१६१८ में सारे भारत के अन्दर १२५००० एकड़ों पर रबड़ उत्पन्न किया जा रहा था। किस प्रान्त में कितनी भूमि पर रबड़ उत्पन्न होता है इसका ब्योरा इस प्रकार है।

१६१८ में रबड़ की उत्पत्ति में भिन्न २ प्रान्तों की भूमि।

प्रान्त	एकड़
वर्मा	६३५६७
ट्रावंकोर	३२०००
मद्रास प्रान्त	१००६२
मालावार	८७८३
सेलम	२१४
नीलगिरि	१०६५
कोचीन	८५८७
कूर्ग	६७३५
आसाम	३०६४
मैसूर	२१५
कुलयोग	१२४२३०

उपरिलिखित ब्योरा उस भूमि का है जो कि रबड़ की उत्पत्ति के लिये सफा की गई है। उससे यह नहीं पता

चलता है कि वस्तुतः कितनी भूमि पर रबड़ उत्पन्न की जा रही है। अभी तक वर्मा में केवल १०००० एकड़ों पर ही रबड़ के पेड़ हैं। इनसे २५००००० पाउन्ड रबड़ उत्पन्न होती है। ट्रावंकोर में २६००० एकड़ों पर रबड़ की खेती है। यदि इनमें भारतीयों के भी छोटे २ टुकड़ों को जोड़ लिया जावे तो यह संख्या २७५०० एकड़ तक जा पहुंचती है। इस समय रबड़ की कुल उत्पत्ति ८००००० पाउन्ड है। इसी प्रकार कोचीन में वस्तुतः ६८४६ एकड़ों पर ही रबड़ के पेड़ हैं। आसाम में चादौर तथा कुल्सी के अन्दर सरकार की ओर से ही रबड़ उत्पन्न की जाती है। १९१६ में सरकार ने रबड़ के खातिर वर्मा की जमीनों को बहुत हल्की शर्तों पर देना शुरू किया है। वर्मा से जो रबड़ विदेश में भेजी जाती है उसके वास्तविक मूल्य पर सरकार २ प्रति शतक रायल्टी लेती है। वास्तविक मूल्य का हिसाब-किताब लन्दन में ही होता है।

१९१४-१५ में भारत से विदेश के अन्दर ३६७६००० पाउन्ड रबड़ बाहर गयी। कोचीन तथा तूतीकोरीन नामक बन्दरगाहों से ही उपरिलिखित रबड़ बाहर गयी था। १९१५-१६ में संपूर्ण भारत से रबड़ विदेश में इस प्रकार गया और निम्नलिखित बन्दरगाहों ने इस व्यापार में भाग लिया।

१९१५-१६ से १९१८-१९ तक कच्ची रबड़ का विदेश में जाना.

बन्दरगाहें	१९१५-१६		१९१६-१७		१९१७-१८		१९१८-१९	
	पाउन्डज़	मूल्य पाउन्डों में	पाउन्डज़	मूल्य पाउन्डों में	पाउन्डज़	मूल्य पाउन्डों में	पाउन्डज़	मूल्य पाउन्डों में
कोचीन	२१४९७२८	४६३५५६	२७८७८९७	४३२२३०	२४८१८५३	३३१९०८	५२३२२४१	६९७६७२
तूतीकोरिन	१४३३१५२	१६३२१२	१९१५०४९	२३१०८४	२२६९९४४	३०००२८	२९९९८७४	३९७७२२
मर्गुई	६६०६१६	१०४८८४	८५९९८९	१०४१२९	१०२७५१२	९९३२६	१६१३६५०	११३२९५
रंगून	५८९१२०	९५१३२	१३२७९३४	१७६८३९	१४२५४४३	१६८१७९	२३११६१६०	१८५७५५
मद्रास	१०५२८	१३६६	२४०८	८९	४१२८१७	५३६०२	६९३०	७७०
कलकत्ता	१४५६	१९५	४७०४	३२९	४५९२	४१६	४११५	३८३
कुलयोग	५२७३८५६	८४४४८२	७५४१३०७	१०५४४१९	८४३००८९	१०८१२८९	१३९०७१२३	१६६९५२७

अभी तक भारत में कच्ची रबड़ से व्यावसायिक पदार्थ बनाने वाला एक भी कारखाना नथा। अब कलकते में एक कारखाना खुला है। परन्तु उसके उद्देश्यों को देखने से यही मालूम पड़ता है कि वह भारत के छोटे मोटे ज़रूरी पदार्थों को ही बनायगा। विदेशों में वह बना माल न भेज सकेगा। भारत का कच्चा रबड़ संसार के भिन्न भिन्न सभ्य देश किस प्रकार लेते हैं इसका ब्योरा इस प्रकार है।

१९१३-१४ से १९१८-१९ तक भारत के कच्चे रबड़ के खरीदार

देश	१९१५-१६		१९१८-१९	
	राशि	मूल्य पाउन्डोंमें	राशि	मूल्य पाउन्डोंमें
इंग्लैण्ड का संयुक्त राज्य	१७१८७५२	३३६११३	१०१३२२३०	११६२०६४
सीलोन	७८४११२	१७१६६४	३०६७६८८	४१४९२२
स्ट्रेट्स सैटलमेन्ट, ब्रूनेई और लाबुआन	७५२६४	११८९१	७५८४२	४६६८
हालैन्ड	२२४००	४१६९	...	...
अमरीकाका संयुक्त राज्य	३८०८	५२०	१२१९९३	१०९०
जर्मनी	१२३२	१२०	...	...
कुलयोग	२६०५५६८	५२४४८६	१३९०७१२३	१६६९५२७

रबड़

१९१३-१४ की अपेक्षया १९१८-१९ में रबड़ के व्यापार में ३२० प्रतिशतक वृद्धि हुई है। आसाम तथा वर्मा में सिंगापुर और दक्षिण भारत में कोलम्बो रबड़ व्यापार का केन्द्र हैं। रबड़ के व्यापार में इंग्लैण्ड तथा अमरीका का मुख्य भाग है। १९१६-१७ में पहिली वार जापान ने १४३३ पाउन्डज़ रबड़ खरादी। अब कनाडा में भी रबड़ जाने लगी है।

रबड़ का विक्रय पाउन्डों में होता है। कलकत्ता से २२४ पाउन्डज़ के बोरों में और मद्रास तथा कोचीन से १०० या २०० पाउन्ड के सन्दूकों में रबड़ विदेश में जाता है।†
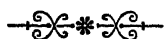
(५)

खाद्य पदार्थ तथा उनका विदेश में भेजा जाना

भारत पर अंग्रेजी राज्य के आने के बाद भूमि का महत्व बहुत ही अधिक बढ़ गया। व्यवसाय तथा व्यापार पर विदेशियों का प्रभुत्व होने से लोगों का एक मात्र सहारा कृषि तथा पशु पालन ही हो गया। गणना विभाग की रिपोर्टों से

† रबड़ के प्रकरण के लिये देखो Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, I. C. S. PP. 284—286.

रबड़ के प्रकरण में १ शि० ४ पैन्स=१ रुपये को

पता लगा है कि १८८१ से पूर्व अंग्रेजी राज्य में भारतीय जनता का ६२ प्र० श० से कम भाग कृषि में था। विदेशियों के व्यावसायिक तथा व्यापारीय आक्रमण से चोट खाकर ६२ प्र० श० लोग १८९१ में खेती के कामों को करने लगे। १९०१ में यही प्रतिशतक ६८ तक जा पहुंचा। देशी रियासतों की दशा अभी तक कम ही बिगड़ी है। वहां ५७ से ६० प्र० श० ही लोग कृषि कार्य्य में हैं। १८९१ से १९०१ तक शिल्पी कारीगर व्यावसायिक तथा व्यापारी लोग अपने अपने कामों को छोड़कर इस प्रकार कृषि कार्य्य में घुसे।*

निम्न संख्या में लोग कृषि कार्य्य में अधिक लगे

पशुओं को पालनेवाले	३३१०००
जिमींदार तथा श्रमी	२७५३०००
श्रमी	१६७३६०००
कृषक	३६७०००
भूमि का निरीक्षण करनेवाले	१०००००

विदेश में कृषि जन्य पदार्थों की मांग दिन पर दिन बढ़ी है। मंहगी का भी मुख्य कारण यही है। मंहगी के कारण ही कृषि में लोगों को सहारा मिला और लगान के अधिक होने पर भी वह किसी न किसी तरीके से अपना निर्वाह

* Imperial Gazetteer of India, Vol. III P.—2

करते रहे। बहुत से जंगल सफा किये गये और रद्दी भूमियों को जोता गया। उन पर यथेष्ट अनाज उत्पन्न किया गया। आजकल भारत में इस कद्र खेती है कि यदि विदेश में अनाज़ न भेजा जाय तो सस्ती तथा सुभिक्ष हो जाय। भिन्न २ चीज़ों की उपज को ध्यान से देखने पर इसका रहस्य जाना जा सकता है। दृष्टान्त स्वरूप—† १९०३-४ में चना १४००००००० सेर, चावल २४६४०००००० सेर और गेहूं ९५२०००००० सेर विदेश में गया। यह तीनों अन्न कुल मिलाकर ३५५६०००००० सेर होता है जो कि विदे-शियों को खाने के लिये १९०३--४ भेजा गया था। यदि यह अन्न बाहर न भेजा जाता तो इस पर एक करोड़ भारतवर्षी पाले जा सकते थे। बड़े से बड़े भारत के दुर्भिक्ष में एक करोड़ से अधिक आदमी नहीं मरे हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि दुर्भिक्ष का भय बहुत अंशों तक दूर हो जाता, यदि अपने ही कृषि जन्य पदार्थों पर जिन पर कि एक करोड़ भारतवासी पाले जा सकते हैं, विदेश में न भेज दिया जाता।

---
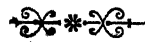
† Imperial Gazetteer of India, Vol. III. pages 29, 30, 31

(क)

गेहूं

गेहूं की अनेक किस्में हैं। लगभग सभी किस्में सर्दी में ही उत्पन्न होती हैं। ३१००० वर्गमील जमीन में इसीका खेती होती है। पन्जाब तथा सीमा प्रांत में १३६००, संयुक्त प्रान्त में १२२००, मध्यप्रान्त तथा बरार में ५३००, बाम्बे में ३४०० और बंगाल में २३०० वर्गमील जमीन पर गेहूं बोया जाता है*। जहां सिचाई का काम होता है वहां प्रतिएकड़ १२०० से १६०० पाउन्ड अर्थात् ६०० से ८०० सेर तक गेंहू उत्पन्न होता है। १८७३ से पूर्वतक भारत का अन्न बाहर न जाता था। १८७३ में निर्यातकर अन्न पर से हटा दिया गया और भारत का अन्न विदेश में बिकने के लिये जाने लगा। स्वेज नहर के खुलने के कारण इसके बाहर जाने में बहुत सी सुविधायें हो गयीं। प्रत्येक वर्ष गेहूं बाहर अधिक अधिक भेजा गया। योरुप के लोगों ने उद्योग धन्धे के कामों में बहुत अधिक आमदनी देख कर कृषि के काम को छोड़ दिया। भारत के पुराने व्यवसायों को चौपट कर उन्होंने भारतीयों को कृषि के काम पर वाधित किया। आजकल भारत सरकार तो भारत का शासन इंग्लैंड के कारखानों के हित को सामने रख करके ही करती है। रेलों की रेट्, बैंकिंग तथा बन्दरगाह सब के सब इंग्लैंड की धन तृष्णा को पूरा करने का काम ही भारत में कर रहे हैं। इन्हीं

के सहारे देश का कच्चा माल विदेश में रवाना किया जाता है। भारत का गेहूं विदेश में निम्न लिखित प्रकार गया है।

सन्	विदेश में भारत के गेंहू का जाना टनों में *
१८७२—७३	१६०००
१८७७—७८	१७३०००
१८८२ - ८३	४४७०००
१८८७—८८	६३७०००
१८९२—९३	६१००००
१८९७—९८	३३३०००
१९०२—०३	५८६०००

योरूप के लोग प्रायः व्यावसायिक तथा व्यापारीय कामों को ही करते हैं। उनकी आबादी भी इस कदर बढ़ गयी है कि उनकी भूमि अपने ही लोगों को पालने में असमर्थ है। यही कारण है कि भारत से गेंहूं मंगाया जाता है। भारत में अन्न के मंहगे होने का मुख्य कारण भी यही है। विदेशीय राष्ट्र भारत के अन्न पर कहां तक निर्भर करते हैं। इसको निम्न व्योरा अच्छी तरह से दिखाता है ‡

* Imperial Gazetteer of India, Vol. III pp. 30-32.

१ मन = ८२-२८६ पाउन्ड। १ टन + ३ मन=२२४० पाउन्डज़

‡ The Economist, Vol. XC, No. 4009 Saturday, January 26th 1920. P. 1388. Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, I. C. S. P. 147.

भारत में गेहूं की उत्पत्ति तथा उसका विदेश में भेजा जाना

वर्ष	भूमिक्षेत्र जिसपर गेहूं उत्पन्न किया जाता है	गेहूं की उत्पत्ति	विदेश में भेजा जाना
	एकड़ों में	टनों में	टनों में
१९१३—१४	२८४७५०००	८३५८०००	७०६३८३
१९१४—१५	३२४७५०००	१००८७०००	६५२८७९
१९१५—१६	३०३२००००	८६५२०००	७४८९१५
१९१६—१७	३२९४००००	१०२३४० ०	१४५४३७५
१९१७—१८	३५४८७०००	९९२२०००	४७६१०३
१९१८—१९	२३७६४०००	७५०२०००	....

पिछले पांच वर्षों में करांची से ही बहुतसा गेहूं इंग्लैण्ड में गया। गणना विभाग की रिपोर्ट से पता चला है कि पिछले ५ वर्षों में करांची से ८१·४ प्र० श०, बम्बई से १३·३ प्र० श० तथा कलकत्ता से ५·३ प्र० श० गेहूं बाहर गया। इसका मुख्य कारण यह है कि पन्जाब में गेहूं बहुत ही अधिक उत्पन्न होता है। दृष्टान्त स्वरूप।

गेहूं की उत्पत्ति में संसार के भिन्न भिन्न राष्ट्रों के सन्मुख भारत की स्थिति इस प्रकार है।

१६१४ में गेहूं की उत्पत्ति तथा निर्यात †

राष्ट्र	उत्पत्ति टनों में	निर्यात टनों में	निर्यात उत्पत्ति का कितना प्रतिशतक है
अमरीका	२३८१६८८५	४६४७३००	२० प्र० श०
रूस	१५२२४०४७	२३६८५००	१६ प्र० श०
भारतवर्ष	८३३६४८४	६६४६८०	८ प्र० श०
अर्जेन्टाइन-प्रजातन्त्र राज्य	४४६८२१५	६६३०००	२१ प्र० श०
कनाडा	४३११०१५	१८७६२००	४४
कुलयोग	५६२८६६४६	१०५५२६८०	१६ प्र० श०

अमरीका में २३८१६८८५ टन गेहूं उत्पन्न होता है और ४६४७३०० टन गेहूं बाहर जाता है। इस प्रकार (२३८१६८८५--४६४७३००) १६१६६५८५ टन गेहूं अमरीकन लोग अपने खाने के लिये अपने देश में ही रख लेते हैं। भारत की आबादी अमरीका से तीन गुना है। इस हिसाबसे भारतवर्ष को (१६१६६५८५ × ३ =) ५७५०८७५५ टन गेहूं देश में जनता के खाने के लिये रखकर फिर विदेशमें भेजना चाहिये। दुःख का विषय है कि भारत में गेहूं की 'कुल उत्पत्ति

† Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton.

८३२६४८४ टन है जो कि जनता के खाने के लिये पर्याप्त नहीं है। इसी को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर (५७५०८७५५–८३३६४८४८) ४११७२२७१ टन गेहूं भारत में और उत्पन्न किया जाय तो अमरीकन लोगों का मात्रा में भारतीयोंको गेहूं खाने को मिल सकता है। देखने में तो भारत उत्पत्ति का ८ प्र० श० ही गेहूं भेजता है परन्तु वास्तव में वह अपना सर्वस्व बाहर भेज रहा है। पहिले ही भारत में ४६१७२२७१ टन गेंहू जरूरत से कम उत्पन्न हो रहा है। इस दशा में भारत के गेंहूं को खरीदने में विदेशियों को पूरी स्वतन्त्रता देना एक प्रकार से भारत में दुर्भिक्षों तथा दुर्भिक्ष जन्य बीमारियों को निमन्त्रण देना है। यही बात अन्य प्रकार के अनाजों के साथ ह। परन्तु भारत सरकार को इसकी क्या चिन्ता है। इंग्लैण्ड के लोगों को कष्ट न होना चाहिये यही उसकी नीति का मुख्य आधार है। दुःख की बात तो यह है कि—पिछले १५ सालों से दश लाख टन के लगभग गेंहू विदेश में भेजा जा रहा है। केवल१६०४--५ में ही २१५०००० टन गेंहू बाहर भेजा गया था। १६१३ से १६१६ तक भारत का गेंहू भिन्न २ बन्दरगाहों से विदेश में किस प्रकार गया इसका व्योरा इस प्रकार है:---

भिन्न भिन्न भारतीय बन्दरगाहों से गेहूं का विदेश में भेजा जाना

बन्दरगाह		१९१३-१४	१९१४-१५	१९१५-१६	१९१६-१७	१९१७-१८	१९१८-१९
		टनों में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में
करांची	...	८६३३२४	६६३२२६	५२६१४६	६७६१६६	१०८४२०१	४१०१२७
बम्बई	...	२३५६४०	११५३२	७८६२२	६१८१४	२४२७४६	३६६१३
कलकत्ता	...	७३१६१	१६१६	४६१०४	७६०४	१२६४०६	२५३६२
कुलयोग	राशि—टनों में	१२०२२०५	७०६३८३	६५२८७६	७४८६१४	१४५४३७५	४७६१०३
	मूल्य-पांउन्डोंमें	८७५५५७१	५५४६२४४	५६२७१०६	६१०२३२१	१२६६८५११	४५०२०३२

गेहूं के सदृश ही मैदा भी विदेश में भेजा जाने लगा है

दृष्टान्त स्वरूप:—

मैदे का विदेश में जाना

वर्ष	राशि टनों में	मूल्य-पाउन्डों में
१९१३—१४	७६४१२	८८४०६८
१९१४—१५	५३६८५	६११६२२
१९१५—१६	५८६०८	७४६८१२
१९१६—१७	७०१५६	८६५२८७
१९१७—१८	७१५६८	१००६२४६
१९१८—१९	३०९४२	५४३०२२

उपरिलिखित राशि में यदि गेहूं तथा मैदा भारत से विदेश में न जाता तो मंहगी बहुत कुछ कम हो जाती। करोड़ों मनुष्यों को आधापेट भोजन खाकर गुजारा न करना पड़ता। यह पूर्व में ही लिखा जा चुका है एक मात्र कृषि पर निर्भर करना किसी भी जनसमाजके लिये हितकर नहीं है। व्यवसाय तथा व्यापार में भारतीयों का बहुसंख्या में जाना नितान्त आवश्यक है। व्यापार तथा व्यवसाय को बढ़ाये बिना कृषिजन्य पदार्थों को विदेश में जाने से रोकना बहुत कठिन है। भारत सरकार इस मामले में कहां तक सहायता देगी यहसन्देहास्पद है। क्योंकि भारत की गेहूं का सब से बड़ा ख़रीदार इंग्लैण्ड है। भारत का व्यापार व्यवसाय

नष्ट होने के बाद अंग्रेज लोगों ने भारतीयों को बना बनाया मालदेना शुरू किया और उसका मेहनताना ले कर भारत से ही अन्न खरीद कर निर्वाह करना प्रारम्भ किया। व्यापारी व्यवसायी लोगों की आमदनी कृषकों से अधिक होती है। भारत में अनाज दिन पर दिन अंग्रेज़ों के कारण मंहगा हो रहा है। इससे तकलीफ एक मात्र भारतीयों को ही है। एकमात्र कृषि सम्बन्धी कामों में लगने के कारण उनकी आमदनी कम है और भारत सरकार की मौल गुजारी भी भयंकर तौर पर अधिक है। इसका परिणाम यह है कि दुर्भिक्ष तथा दरिद्रता जन्य रोग भारतीयों को दिन पर दिन दुर्बल बना रहे हैं। भारत सरकार निरपेक्ष है। कृषि जन्य पदार्थों को इंग्लैण्ड में जाने से भारत सरकार कैसे रोक सकती है? अपने ही देश वासी अंग्रेज़ों को भारत सरकार कैसे भूखा मार सकती है? भारतीयों का व्यापार व्यवसाय में बढ़ना भी अंग्रेज़ों को नुकसान पहुंचाये बिना नहीं हो सकता है। इसलिये भारत सरकार इस ओर भी भारतीयों को खुले तौर पर दिल से सहारा नहीं दे सकती है। इस हालत में क्या किया जाय? वास्तविक बात तो यह है कि बिना आर्थिक स्वराज्य के भारत किसी प्रकार भी अपना उद्धार नहीं कर सकता है। १९०४ से भारत जागने लगा है। सब प्रकार के यत्नों के करने पर भी भारतवर्ष दिन पर दिन

व्यवसायिक तथा व्यापारीक कामों में पीछे पड़ता जा रहा है। १९०४ में जो जो पेशे भारतीयों के हाथों में थे आज उनमें से बहुतों पर विदेशियों का ही एकाधिकार है। १९०४ के वर्ष से आज ड्योढ़ा गेहूं इंग्लैण्ड में जा रहा है। दुर्भिक्षों की संख्या तथा भयंकर प्रकोप भी दिन पर दिन बढ़ता जाता है। भारत सरकार से इस ओर आशा रखना सर्वथा निरर्थक है। हमारा तथा इंग्लैण्ड का आर्थिक स्वार्थ एक नहीं है। इस दशा में भारत सरकार हमारा पक्ष ले ही कैसे सकती है?

प्रस्तावना में यह दिखाया जा चुका है कि भारत सरकार खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति तथा व्यापार पर अपना नियन्त्रण स्थापित करना चाहती है। १९१५ की अप्रैल को सरकार ने इसका श्रीगणेश कर दिया। उसी दिन सरकार ने गेहूं के विदेशीय व्यापार से लाभ उठाने वाले प्रत्येक व्यक्ति के हाथों से कारबार छीन लिया और गेहूं का व्यक्तियों द्वारा विदेश में भेजना सर्वथा बन्द कर दिया। इसका मुख्य-उद्देश्य यही है कि भारत का सस्ता गेहूं अधिक राशि में विदेशों में भेजकर सारा का सारा लाभ भारत सरकार स्वयं उठाना चाहती है और भारत में भी यूरुपीय देशों के सदृश ही अन्न की कीमतों के चढ़ाने की चिन्ता में है। १९१५ के बाद से ह्वीट्कमिश्नर ने अपने एजन्टों के द्वारा भारत का गेंहू खरीदना शुरू किया और गेहूं का बाजारी दाम भी स्वयं ही

नियत किया। यह कार्य्य बहुत ही असन्तोषजनक है। क्योंकि सरकार एक ओर तो शासन का काम करे और दूसरी ओर व्यापार का काम करे और तीसरी ओर अपने लाभों को सामने रखकर पदार्थों का बाजारी दाम नियत करे इन तीनों ही बातों का एक ही सरकार के द्वारा किया जाना भयंकर दोष है। इससे जनता तथा व्यापारी व्यवसायियों की स्वतन्त्रता सर्वथा नष्ट हो जाती है। सरकार प्रलोभन में आकर बहुत से अन्याय युक्त कामों को करने में प्रवृत्त हो सकती है।

१९१६ की पहिली मई को ह्वीट्कमिश्नर ने भारतीय व्यापारियों को गेंहू में विदेश के साथ व्यापार करने में कुछ कुछ स्वतन्त्रता दी परन्तु १९१७ की फरवरी के बाद पुनः उस पर उसने अपना नियन्त्रण स्थापित किया। १९१७ में गहूं बहुत अच्छा उत्पन्न हुआ। सरकार ने १४५४४००० टन्ज़ गेंहू विदेश में भेज दिया जिसमें से २५६०० टन्ज़ सैनिकों के भोजन में खर्च किया गया। १९१७-१८ में ह्वीट्कमिश्नर ने विदेशियों के लिये १५७८२४६ टन्ज़ गेंहू खरीदा और इसको विदेश में भेज दिया।*

* Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, I. C. S. PP. 147—148.

इसी १६२० सन् के अक्टूबर की घटना है कि संयुक्त प्रान्त तथा पञ्जाब में कृषि न हुई और महंगी के डर से लोग घबड़ा रहे थे। इन प्रान्तों में गेहू को ही लोग विशेषतः खाते हैं और यहां वृष्टि का न होना विशेषतः चिन्ताजनक था। लोगों के ऐसे भय तथा कष्ट के समय का तनिक सा भी ख्याल न कर भारत सरकार ने ४००००० टन्ज़ गेहूं विदेश में भेजने के लिये घोषणा करदी। सरकारी काम्युनिक् के शब्द हैं कि :—†

"गेहू के बाहर भेजने के विषय में भारत सरकार विचार कर रही है। यह होते हुए भी सरकार ने ४ चार लाख टन या लगभग सवा करोड़ मन गेहूं १६२० की मार्च के अन्त तक करांची बन्दरगाह से विदेश में भेजने के लिये आज्ञा देदी है। सरकार की इच्छा है कि ६ रु २ आ ६ पाई प्रतिमन के भाव से ही गेहूं खरीद कर विदेश में भेजी जावे। लायलपुर की मंडी में ५रु-८ आना प्रतिमन के भाव से भी गेंहू खरीदी जा सकती है। भारत सरकार अपनी आमदनी को बढ़ाने के खातिर इस गेहूं को बाहर भेजना चाहती है। सरकार एक स्कीम बना रही है जिसके अनुसार भविष्य में विदेश के अन्दर गेंहू भेजा जा सकेगा"।

---

† The Leader, Monday October 4, 1920.
Article 'Exports of Wheat'

इस घोषणा के होते ही देश में शोर मच गया और कलकत्ते में लोगों ने अधिवेशन किया और सरकार से प्रार्थना की कि वह अपनी इस नीति से बाज आवे। परन्तु फल कुछ भी न हुआ। खेद तो यह है कि लायलपुर में ३१ अगस्त को गेहूं एक रुपये को ८ से ४ छटांक मिलता था। वृष्टि के अभाव को देखकर इसका भाव ८ से ४ छटांक से ७ सेर ८ छटांक तक जा पहुंचा। लाहोर अम्बाला तथा फिरोजपुर में भी गेहूं का भाव चढ़ रहा था। संयुक्त प्रान्त में भी गेहूं का भाव तेज हो रहा था। सरकारी काम्युनिक में भी यही प्रकाशित हुआ कि "अधिक वृष्टि की बहुत ही ज़रूरत है। भविष्य अच्छा नज़र नहीं आता है" ऐसे चिन्ताजनक समय में एक करोड़ मन से ऊपर गेहूं जिस पर कि एक करोड़ भारतीय परिवार या ४ करोड़ स्त्री मर्द तथा बाल बच्चे पल सकते हों, सरकार का विदेश में भेज देना कहां तक देश को हानि पहुंचा सकता है। यह किसी से भी छिपा नहीं है। यही समय है जब कि किसानों को बीज के लिये गेहूं की जरूरत पड़ेगी। दुर्भिक्ष तथा महंगी से बचने का एकमात्र उपाय आर्थिक स्वराज्य है। बिना आर्थिक स्वराज्य के भारत का भविष्य कभी भी चिन्तारहित नहीं हो सकता है।

(ख)
चावल

अच्छी ऋतु में जौ मकई दाल आदि अनेक पदार्थ भारत से विदेश में जाते हैं। परन्तु इन सब से अधिक महत्वपूर्ण पदार्थ गेहूं तथा चावल हैं। गेहूं के विषय में लिखा जा चुका है, अब चावल पर प्रकाश डाला जायगा। संसार के कुल चावल का ४० प्रति शतक भारतवर्ष में उत्पन्न होता है। ७ प्रति शतक विदेश में भेज दिया जाता है। चावल के विदेशीय व्यापार का केन्द्र वर्मा है। यहां वर्षा बहुत अधिक होती है। यही कारण है कि चावल के दुर्भिक्ष का प्रश्न बहुत कम उठता है और विदेशीय व्यापार भी प्रायः स्थिर रहता है।

वर्मा का यदि विशेष तौर पर ख्याल न किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि अति प्राचीन काल से भारत में चावल की खेती होती रही है। आजकल १०६००० वर्गमील जमीन में चावल बोया जाता है। संयुक्त प्रान्त में ११०००, मद्रास में १००००, मध्यप्रान्त में ७००० तथा बाम्बे में ४००० वर्गमील जमीन चावल की खेती में लगी है। कुछ वर्षों से वर्मा और आसाम ने चावल की उपज में आगे बढ़ना शुरू किया है। आजकल वर्मा में १३००० और आसाम में ५००० वर्गमील जमीन पर चावल बोया तथा काटा जाता है।

चावल

भारत से गेंहू के सदृश ही चावल भी विदेश में जाता है। १८९९१९०० में ३१५००००० हन्ड्रड्वेट चावल (१ हन्ड्रड वेट = ५६ सेर) जिसका दाम १३ करोड़ रुपया था, विदेश में भेजा गया। १९०२-०४ में ४४०००००० हन्ड्रडवेट अर्थात् १६ करोड़ रुपयों का चावल विदेश में गया। १९१८ में १०९०,००० टन्ज़ चावल विदेश भेजा गया। पिछले वर्षों से यह २२ प्रति शतक के लगभग अधिक था। प्रस्तावना के आर्थिक भविष्य नामक प्रकरण में लिखा जा चुका है कि भारत सरकार कच्चे माल पर अपना नियन्त्रण स्थापित करना चाहती है। १९२० के अन्तिम महीनों में इंपीरियल ईंस्टिट्यूट ने चावलों पर एक ग्रन्थ प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थ में उन सब तरीकों का वर्णन है जिनके सहारे (इंग्लैंड के खातिर भारत सरकार) देशी चावलों पर अपना नियंत्रण स्थापित करेगी। चावलों से अल्कोहल भी तैयार की जा सकती है। इसी उद्देश्य से योरुप तथा अमरीका वाले भारत के चावलों पर दिन पर दिन अधिक टूटेंगे। इससे मंहगी तथा दुर्भिक्ष बढ़ेगा।

आजकल चावल भिन्न भिन्न प्रान्तों से निम्न लिखित प्रकार विदेश में जाता है :—

भिन्न २ प्रान्तों से निम्नलिखित राशि में चावल विदेश के अन्दर गया।

प्रान्तीय विचार से चावल का विदेश में जाना।

वर्ष	प्रान्त				कुलयोग	
	बर्मा	बंगाल	मद्रास	बाम्बे तथा सिन्ध	राशि टनों में	मूल्य
	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में		पाउन्डों में
१९०९-१० १९१३-१४ वार्षिक मध्यमा	१८१४०००	३७४०००	१२१०००	६००००	२३६८०००	१४१०७०००
१९१३-१४ लड़ाई के दिनों में	१८३५०००	३२७०००	१५५०००	८२०००	२४२००००	१७५६६०००
१९१४-१५	१११५०००	१७००००	१८३०००	६६०००	१५३८०००	११३३६०००
१९१५-१६	६४५०००	७५०००	२३६०००	८००००	१३४००००	१०१६२०००
१९१६-१७	११८६०००	६४०००	१८४०००	१५४०००	१५८५०००	१२३२६०००
१९१७-१८	१४६६०००	७१०००	१७३०००	१६६०००	१६३६०००	१३७७४०००
१९१८-१९	१६११०००	१५३०००	६६०००	१५७०००	२०१८०००	१५३१००००

चावल

ऊपर लिखे ब्यौरे से स्पष्ट है कि युद्ध के पहिले तीन वर्षों में चावल का विदेश में गमन घटा। परन्तु उसके बाद पुनः बढ़ गया। इंग्लैण्ड का संयुक्त राज्य दिन पर दिन भारत के चावल को अधिक अधिक खरीदता गया है। इसका ब्यौरा इस प्रकार है।

पिछले छै वर्षों में इंग्लैण्ड के संयुक्त राज्य में चावल का गमन

	१९१३–१४	१९१४–१५	१९१५–१६	१९१६–१७	१९१७–१८	१९१८–१९
टन्ज़	१६१४०९	२११७९४	२९७१४२	३२१४५२	५२३१७४	२५२०१०

लड़ाई से पहिले भारत का चावल जर्मनी में सीधा जाता था और वहां से सफा हो इंग्लैण्ड में बिकने के लिये पहुंचता था। युद्ध से पहिले रंगून से इंग्लैण्ड तक चावल के पहुंचने में प्रति टन २५ शिलिङ्ग किराया पड़ता था। युद्ध के दिनों में यही किराया १२५ शिलिङ्ग तक जा पहुंचा। यह किराया भी इंग्लैण्ड के लिये ही था। दूसरे देशों को तो ४०० शिलिङ्ग देना पड़ता था।

† Imperial Gazetteer, Vol. III. p. 29.

‡ India in the year 1917-1918 by T. I. Rushbrook Williams. p. 102.

भारत का जितना चावल भिन्न भिन्न देशों में जाता है उसका ४७ प्रतिशतक एक मात्र येरोप ही खरीदता है। शेष ४२ प्रति शतक सीलोन, जापान तथा स्टेटस् सैटलमैन्ट्स में और ११ प्रतिशतक अफ्रीका, वैस्टइन्डीज़ तथा दक्षिणी अमरीका में जाता है। युद्ध के पूर्व जर्मनी आस्ट्रिया, हंग्री हालैण्ड तथा इंग्लैण्ड भारत का चावल विशेष तौर पर खरीदते थे। कभी कभी जापान तथा जावा भी चावल भारत से मंगा लेते हैं।

भारत में चावल की कुल उत्पत्ति तथा उसका विदेश में गमन इस प्रकार है।

१६१३-१४ से १६१८-१६ तक भारत में चावल की उत्पत्ति

वर्ष	भूमिक्षेत्र	उत्पत्ति	विदेश में जाना	कुल उत्पत्ति का कितना प्रति शतक विदेश में गया
१	२	३	४	५
	एकड़	टन	टन	
१६१३-१४	७६६०८०००	३०१३८०००	२४१६८५०	८ प्र. श.
१६१४-१५	७७६६६०००	२८२४४०००	१५३८३००	५ 1/2 प्र. श.
१६१५-१६	७८६७६०००	३३२०६०००	१३३६८००	३
१६१६-१७	८१०२००००	३५४४२०००	१५८४७५०	४ 1/2
१६१७-१८	८०६६८०००	३६५६४०००	१६१०८८४	५
१६१८-१६	७६७३४०००	२४०६५०००	२०१७६१६	८

चावल

भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में चावल किस प्रकार उत्पन्न होता है उसका ब्यौरा इस प्रकार है।

१९१७-१८ चावल की प्रान्तीय उत्पत्ति।

प्रान्त		एकड़	प्रतिशतक
बंगाल	...	२०९६२०००	२६
बिहार तथा उड़ीसा	...	१५६४६०००	१९½
मद्रास	...	११६५५०००	१४½
बर्मा	...	१०८०३०००	१३
संयुक्त प्रान्त	...	७४१७०००	९
मध्य प्रान्त तथा बरार	...	५२७१०००	६
आसाम	...	४८०२०००	६
बम्बई तथा सिंध	...	३०८१०००	४
पञ्जाब	...	१००५०००	१
कुल योग		८०६६८०००	१००

चावल के निर्यात पर तीन आना प्रतिमन समुद्र तट कर है। उससे पिछले छै वर्षों में निम्नलिखित आमदनी सरकार को हुई है।

चावल के निर्यात कर से सरकार को आमदनी

वर्ष	आमदनी
	पाउन्ड
१९१३—१४	८६००००
१९१४—१५	५५३०००
१९१५ - १६	५०७०००
१९१६—१७	५८००००
१९१७—१८	७०२०००
१९१८—१९	७४१०००

जावा, इन्डोचीन तथा श्याम में भी चावल बहुतायत से उत्पन्न होता है। जापान अभी तक चावल के मामले में स्वावलम्बी देश नहीं है। इससे देश युद्ध के दिनों में शत्रु का चिरकाल तक मुकाबला नहीं कर सकता है। जर्मनी अन्न के मामले में बहुत कुछ स्वावलम्बी था। इस पर भी अंग्रेजों के जहाजी बेड़ों के घेरे से उसको बहुत ही अधिक तकलीफ पहुंची। रूस राज्यक्रान्ति तथा भिन्न राष्ट्रों के षड्यन्त्रों से अब तक अपने आपको बचाता रहा। क्योंकि कच्चा माल रूस में बहुतायत से था। जो कुछ भी विदेशीय राष्ट्र तथा जापान भारत से चावल मँगाते ही हैं। १९१८-१९ में रायलह्वीट् कमीशन ने भिन्न भिन्न देशों में चावल इस प्रकार भेजा।

भिन्न भिन्न देशों में भारत का चावल इस प्रकार गया

वह देश जिनमें भारत का चावल गया	१९१३—१४			१९१८ १९		
	टन	प्रतिशतक	पाउन्ड	टन	प्रतिशतक	पाउन्ड
सीलोन ...	३३५०५९	१३·८	३१६२४५०	३४०९५९	१६·९	३११८८६०
लूवान आदि स्टेट सैटलमेन्टस ...	२८४५८९	११·८	१९१५०२९	३३७७९९	१६·७	२०६१२८०
इंग्लैण्ड का संयुक्त राज्य ...	१६१४०९	६·७	११२६६७७	२७०१४३	१३·४	१६६६५६४
मिश्र	५३८८४	२·२	३७१०६७	५९६६	·३	५५३५७२
मरिशस तथा आधीन देश ..	५१३४४	२·१	५०३९८८	४२२४९	२ ०	३६०२१८
अन्य आधीन देश ...	१४४८७८	६·०	११८९५४१	१०७५४५	५ ४	१३११६८८
ब्रिटिश साम्राज्य में गये चावल का कुलयोग ...	१०३११६३	४२·६	८२७१७८२	११०४६६१	५४ ७	८४९५५९२

हालैण्ड	३३३७३२	१३·८	२०२६२२१	....	....	....
जर्मनी	३१४८६५	१३·१	२०६६०५४	....	....	....
आस्ट्रिया हंगरी	२११४४७	८·७	१३७००३२	....	....	....
जापान	१६०६४६	६·६	१०७६८८६	२०५३७२	१०·१	१२७०२८४
एशियाटिक टर्की ...	८१०५७	३·४	६६५८६६	४४६०५	२·२	६२६८०५
जावा	३६४१२	१·६	२१६१५८	८३७६०	४·१	५२६१६३
फ्रान्स	२३६७६	०·९	१५२६७२	११३३४६	५·६	७३५००२
इटली	६०१	·०४	६११०	१२६६०६	६·४	८२६६६४
अन्य विदेशी राष्ट्र ...	२२१९९८	९·२६	१६२६४९८	३३६२६३	१६·६	२८२६२०३
विदेशीय राष्ट्रों में गये चावल का कुल योग ...	१३८८७००	५७·४	९३२७८००	९१३२५५	४५·३	९८१४४३१
कुल योग ..	२४१९८६३	१००	१७५९९५८२	२०१७६१६	१००·०	१५३१००२३

चावल

शुरू शुरू में रद्दी भूस सहित चावल को १५ जनवरी से १५ अप्रैल तक विदेश में भेजा जाता था। अन्य ढंग का चावल दिसम्बर के मध्य तक धीरे धीरे विदेश में रवाना किया जाता था। युद्ध के बाद से व्यापारियों ने चावल को गोदाम में भरना शुरू किया है। अब वह लोग इसको धीरे धीरे सारे सालभर बेचते रहते हैं। सहोद्योग समितियां भी बन गई हैं। इन समितियों के सहारे किसान लोग कुछ महीनों तक चावल अपने पास रखते हैं और बाजार का भाव अच्छा देख कर बेचते हैं।

यदि यह संपूर्ण चावल विदेशों में न जाकर भारत में ही रहता और इससे विपरीत भारत व्यावसायिक पदार्थों को ही बाहर भेजता तो भारत की काया पलट जाती। भारत दीन दरिद्र देश से शक्ति शाली समृद्ध देश हो जाता। बिना स्वराज्य के उल्टा घुमाया गया चक्र सीधे ढंग पर नहीं घूम सकता है। गेंहू के सदृश ही चावल पर भी भारत सरकार ने अपना नियन्त्रण स्थापित किया है। इसके भी वही दोष हैं जिनका कि गेंहूं के उपप्रकरण में उल्लेख किया जा चुका है†

† Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, p. p. 133-140.

(ग)

जौ

संयुक्तप्रान्त तथा बिहार में जौ बहुतायत से बोया जाता है। सारे भारत में सत्तर लाख एकड़ भूमि पर १६१७-१८ में जौ बोया गाया था। जयपुर अल्वर भरतपुर तथा ग्वालियर में लगभग ४ लाख एकड़ भूमि पर जौ उत्पन्न किया जाता है। अक्टूबर तथा नवम्बर में इसको बोया जाता है और मार्च तथा अप्रैल में काटा जाता है। जुलाई में इस का व्यापार तेजी पर होता है। स्वदेश में ही इसकी बहुत ही अधिक मांग है। इस पर भी यह इंग्लैंड में भेजा जाता है। ज्यों ही इंग्लैण्ड में जौ कम हुआ त्यों ही भारत से वहां भेज दिया जाता है। १६१२-१३ में ६१५१७७ टन जौ बाहर भेजा गया था। इसमें से बम्बई से ८२८७२ टन, कलकत्ता से १५४४२० टन और करांची से ३७७८७४ टन बाहर गया। १६१३-१४ से १६१८-१६ तक जौ भिन्न भिन्न बन्दरगाहों से विदेश में निम्नलिखित प्रकार गया †

---

† Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, p. 150.

पिछले छै वर्षों में विदेश में भेजा गया जौ

बन्दरगाहें		१९१३-१४	१९१४-१५	१९१५-१६	१९१६-१७	१९१७-१८	१९१८-१९
		टन	टन	टन	टन	टन	टन
करांची	...	१२७६२२	२८८६५	१५९५३३	१७२०३४	३४७७४७	२१५३०५
कलकत्ता	...	५४२४९	५४	७४	१४७८	९७	४३
बम्बई	...	८५१९	३९४	६१४७	३५९२९	१०७८७	१०९९९
रंगून	...	१०	४	३	५	९१	४
कुलयोग राशि	...	१९०४००	२९३१७	१६५७५७	२०९५०२	३५८७२२	२२६३५२
कुलयोग मूल्य पाउन्डोंमें		१०४३७९९	१७४५४८	११६८००३	१५०९६१५	२६९३५१२	१८४५१११

वस्तुत भारत का संपूर्ण जौ इंग्लैएड में ही जाता है। पिछले दो वर्षों से ३२०००० और २०५००० टन्ज़ मिश्र के नाम जौ रवाना किया गया है।
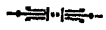
(घ)

दाल

भारत में दाल का व्यवहार बहुत ही अधिक है। विदेश में भी यह जाने लगी है।

भारत से विदेश में गयी दाल का ब्योरा

वर्ष	मात्रा या राशि टनों में	मूल्य पाउन्डों में
१९१३—१४	११४६२८	७११००९
१९१४—१५	८८११५	६७६१४३
१९१५—१६	११००३५	९७२१५९
१९१६—१७	१६७९३९	१७५०३०३
१९१७—१८	२२९७२४	२४३८५७८
१९१८—१९	५०६१८	४४६७४५

इंग्लैएड, मारीशस, सीलोन, स्ट्रेट्स सैटलमैंट्स, जापान ही आजकल दालों के खरीदार हैं। लड़ाई से पहिले जर्मनी, हालैएड तथा बैल्जियम में भी दालें जाती थीं।
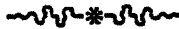
(ङ)

ज्वार तथा बाजरा

ज्वार तथा बाजरा मद्रास, हैदराबाद तथा बम्बई में बहुतायत से खाया जाता है। संयुक्तप्रान्त तथा मध्यप्रान्त

में इसकी अच्छी खेती होती है। वर्मा ने भी अब इसको बोना शुरू किया है। पिछले छै वर्षों में ज्वार तथा बाजरा विदेश में इस प्रकार भेजा गया है।

विदेश में भेजे गये ज्वार तथा बाजरे का ब्यौरा

वर्ष	राशि टनों में	मूल्य पाउन्डों में
१९१३—१४	८४२९४	५७६१६४
१९१४—१५	१०५२०६	७३३४४१
१९१५—१६	४१८४५	२८८१०२
१९१६—१७	३६३०१	२६१२१७
१९१७—१८	१५३२२	१२०३००
१९१८—१९	५३९६	५६१८२

मिश्र, अदन, इंग्लैंएड, अरब, एशियाटिक टर्की तथा इटैलियन पूर्वी अफ्रीका में ही इसकी विशेष तौर पर मांग है।*

(च)

चना

भारत में चना बहुतायत से खाया जाता है। गरीब लोगों का यही भोजन है। पिछले छै वर्षों से विदेश में चना अधिक अधिक राशि में जाने लगा है।

चने का विदेश में जाना

वर्ष	राशि टनों में	मूल्य पाउन्डों में
१९१३—१४	६६५६७	४१५१०४
१९१४—१५	२३२९८	१५६१९५
१९१५—१६	३२४९४	२२४५९०
१९१६—१७	३८२२३	२७५४६५
१९१७—१८	३२७०६३	२३२८५३२
१९१८—१९	२८२१९३	२२३३४१४

युद्धसे पहिले भारत का चना जर्मनी में बहुत राशि में जाता था। परन्तु युद्ध के दिनों से फ्रांस, इंग्लैंड, मारीशस, सीलोन तथा स्ट्रेट्स सैटलमन्ट आदि देश ही भारत के चने को मंगाते हैं। १९१८-१९ में चना विदेश में बहुत ही अधिक गया। इसका मुख्य कारण यह था कि भारत सरकार ने अपनी ओर से मिश्र में चना मंगाया था और इसी वर्ष इटली को भी चना गया †। चने का बाहर जाना बहुत ही दुःखदायी है। क्योंकि भारत के गरीब लोग इसी पर

* Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, PP. 152—153.

† Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, P. 153.

निर्भर करते हैं। युद्ध के दिनों से आजतक चना मंहगा ही होता गया है। परन्तु सरकार को इसकी कुछ भी चिन्ता नहीं है। वह तो स्वयं अपनी ओर से चने को विदेश में भेजने लगी है। १६१८-१६ में मिश्र में चने का भेजना इसीका ज्वलन्त उदाहरण है।

(छ)

मकई या भुट्टा

सारे भारत में मकई की खेती होती है। संयुक्त प्रान्त, बिहार तथा उड़ीसा, पञ्जाब, बम्बई तथा मध्य प्रान्त (Central Provinces) में इसकी उत्पत्ति विशेष तौर पर होती है। पिछले पांच वर्षों से लगभग ६४००००० एकड़ भूमि पर इसकी खेती होती है और कुल अन्न २२००००० टन्ज़ उत्पन्न होता है। यह भी विदेश में बिकने के लिये भेजी जाती है। पिछले वर्षों से अर्जन्टाइन प्रजातन्त्र राज्य में मकई बहुतायत से बोयी जाने लगी है अतः इसका विदेश में जाना घट गया है।

विदेश में भेजी गयी मकई का व्योरा

वर्ष	राशि टनों में	मूल्य पाउन्डों में
१९१३—१४	२८८१	१३९६९
१९१४—१५	१४२९	८१९१
१९१५—१६	४०६६	१४३३२
१९१६—१७	२४८७७	१६९०८३
१९१७—१८	९१०१४	६३१४८९
१९१८—१९	१३७६१	१०४८३२

१९१६-१७ में अर्जेन्टाइन प्रजातन्त्रराज्य से मकई यूरोप में न जा सकी। इसका मुख्य कारण यह था कि जर्मनी की सब मैरीन्ज़ जहाज़ों को डुबा देती थी। भारत सरकार ने भारत से मकई को खरीद कर विदेश में भेजना शुरू किया। युद्ध से पूर्व जितनी मकई विदेश में जाती थी उससे तीस गुना ज्यादा मकई भारत सरकार ने इंग्लैंड, मिश्र तथा यूनान में रवाना की। १९१८-१९ में वृष्टि के ठीक न होने से मकई विदेश में बहुत न जा सकी। कराँची रंगून तथा कलकत्ते से ही मकई विदेश में रवाना की जाती है। कुल निर्यात का $\frac{3}{4}$ एक मात्र इंग्लैंड ही खरीदता है*। भारत में मकई पर

* Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, PP. 154-155.

कुल निर्यात का ६० प्रति शतक कलकत्ते से बाहर जाता है। मारीशस सीलोन तथा अस्ट्रेलिया में ही यह अन्न अभी तक जाता रहा है।

(झ)

मूंगफली या चीना बादाम

भारतीय मेवों का व्यवहार यूरूप में कुछ ही समय से शुरू हुआ है। १८९५–९६ में बाम्बे प्रान्त में १६४००० एकड़ भूमि और मद्रास प्रान्त में २४३००० एकड़ भूमि मूंगफली को उत्पन्न करती थी। इसके बाद चार सालों तक मूंगफली की उत्पत्ति दिन पर दिन कम होती गई। इसका मुख्य कारण यह था कि मूंगफली की किसम अच्छी न थी। १९००--०१ में सेनीगाल तथा मोजम्बिक् से नया बीज मंगाया गया। इस बीज में तेल भी अधिक था और इस पर कीड़ा भी जल्दी नहीं लगता था। १९१३--१४ में २१००००० एकड़ भूमिपर मूंगफली बोई जाने लगी और उसकी उत्पत्ति ७९९००० टन्ज़ तक जा पहुंची। उसके १९१९ तक मूंगफली की जो स्थिति रही उसका ब्योरा इस प्रकार है।

मूंगफली या चीना बादाम

१६१३ से १६१६ तक मूंगफली की उत्पत्ति

वर्ष	एकड़	उत्पत्ति टनों में
१६१४—१५	२४१३०००	६४७०००
१६१५—१६	१६७३०००	१०५८०००
१६१६—१७	२३३४०००	११६६०००
१६१७—१८	१६३३०००	१०८३०००
१६१८—१६	१३११२०००	४६००००

महायुद्ध के दिनों में मार्शलीज़ के अन्दर श्रम सम्बन्धी बाजार की शिथिलता तथा असंगठन और बहुत फरांसीसी मिलों के बन्द हो जाने के कारण मूंगफली की विदेशीय मांग कम हो गई और इसीलिये उसकी उत्पत्ति दिन पर दिन घट गई। १६१५--१६ में जहाज़ों का किराया बढ़ गया और पाण्डेचरी में जहाज़ों का जाना सर्वथा ही रुक गया। इससे मूंगफली का विदेशाय व्यापार बहुत उन्नत न हुआ। १६१७-१८ में मूंगफली कम बोई गई परन्तु फसल अच्छी हुई। १६१८-१६ में तो मूंगफली बोने के समय वर्षा न हुई और इससे वह बहुत कम बोई गई और उसकी फसल भी अच्छी न हुई। मूंगफली के विदेशीय व्यापार पर निम्नलिखित ब्योरा अच्छी तरह से प्रकाश डाल सकता है।

मूंगफली, उसकी खली तथा तेल का विदेश में आना

	१९१३-१४	१९१४-१५	१९१५-१६	१९१६-१७	१९१७-१८	१९१८-१९
मूंगफली टन्ज में	२७८०००	१३८०००	१७५०००	१४७०००	११५०००	१७०००
मूंगफली की खली टन्जमें	६२०००	६४०००	८२०००	५४०००	५००००	५६०००
मूंगफली का तेल गैलन्जमें	२८८०००	२३३०००	१७३०००	६८२०००	१०५७०००	५६००००

मूंगफली या चीना बादाम

भारत की तीस करोड़ जनता को मूंगफली कितनी खाने को मिलती है और उसको कितनी बाहर भेजनी पड़ती है इसका ब्योरा इस प्रकार है।

१६१३-१४ में मूंगफली की उत्पत्ति तथा उसका बाहर जाना

प्रान्त	उत्पत्ति	मूंगफली तथा उसके तेल का विदेशमें जाना	उत्पत्ति का कितना प्रति शतक विदेश में चला जाता है।
	टनों में	टनों में	
मद्रास	४११३००	२८७२७७	६६ प्र० श०
बम्बई	२४६५७०	५३६७२	२१½ ”
बर्मा	८८०००	२६६६६	३१ ”
कुलयोग	७४८८००	३६८०००	४६ प्र० श०

विदेशीय राष्ट्र भारत की मूंगफली कितनी खरीदते हैं इसका ब्योरा इस प्रकार है।

पिछले छ वर्षों में भिन्न २ राष्ट्रों का भारत की मूंगफलीको खरीदना

वह राष्ट्र जिनमें कि मूंगफली जाती है		१९१३-१४	१९१४-१५	१९१५-१६	१९१६-१७	१९१७-१८	१९१८-१९
		टनों में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में
फ्रान्स ...	...	२२२३८०	१०९१०८	१६५७९९	१२१२१५	३८८४९	२५५३
बेल्जियम	...	१६६०८	१२४३	...	...	...	...
आस्ट्रिया हंग्री	...	१०७०६	६९७२	..	...	...	...
जर्मनी ...	...	९४३६	३७९०	...	...	...	...
इटली ...	...	१२२५	६३५३	...	...	...	...
इंग्लैण्ड का संयुक्त राज्य..		४८०	४३४८	२५२०	१६४७५	१७९४९	४१६
अन्य राष्ट्र	...	१७०७२	४५०८	४१९६	२६७१३	५८५३६	१२२००
कुलयोग	राशि ...	२७७९०७	१३८३२२	१७५४५३	१४७४५०	११५३३४	१७१९९
	मूल्य पाउन्डों ॥	३२५४२४६	१५१५६०८	१६६८९५७	१६९९७०१	१२३८२४७	२४९८९१

जहाजों का किराया बढ़ जाने से छिलके सहित मूंगफली का विदेश में भेजना कुछ कुछ कठिन है। मूंगफली को गरी

छिलका उतरने पर आधा स्थान घेरती है। यही कारण है कि आजकल गरी भेजने की ओर ही व्यापारियों का विशेष ध्यान है। कुछ समय पहिले की बात है कि पानी में मूंगफली को भिगोकर छिलका उतारा जाता था। इससे गरी में नमी पहुंच जाती थी और वह सड़ने लगती थी। अब कलों के द्वारा सूखा छिलका उतारा जाने लगा है। इससे गरी टूटती भी नहीं है और उसके सड़ने का भय भी बहुत कम हो गया है।

खाद्य तथा कच्चे पदार्थों का विदेश में जाना किसी भी राष्ट्र के लिये हित कर नहीं है। दूसरे देशों पर व्यावसायिक पदार्थों के लिये निर्भर करना और अपने कच्चे माल के खरीदने के लिये विदेशियों को खुला छोड़ देना बड़ी भयंकर घटना है। इससे विदेशियों की इच्छाओं के अनुसार देश की खेती बढ़ती घटती है। मूंगफली की उत्पत्ति का इतिहास इस बात को बहुत अच्छी तरह से दिखाता है। बिना आर्थिक स्वराज्य के इस विपत्ति से बचना कठिन है। देश में खाद्य पदार्थ विदेश में भेजने कारण मंहगे हैं इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि लड़ाई शुरू होने के बाद विदेश में मूंगफली के न पहुंचने से मूंगफली सस्ती हो गयी थी।

(६)
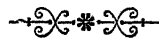
तेलहन पदार्थ तथा उनका विदेश में जाना

तेलहन पदार्थ अनेक कार्य्यों में आते हैं। यह जीवन निर्वाह के छोटे से छोटे साधन से लेकर भोगविलास के बहुमूल्य पदार्थ तक का रूप धारण करते हैं। खाना पकाने, चमड़ा रंगने, वार्निश करने, इतर फुलेल तैय्यार करने तथा स्त्री पुरुषों के शृंगार तथा भोगविलास को बढ़ाने में इनका जो भाग है वह किसी से भी छिपा नहीं है। दुःख का विषय है कि तेलहन पदार्थ बहुत राशि में भारत से विदेश में भेज दिये जाते हैं। व्यावसायिक तथा उत्पादक दृष्टि से भारत को जो नुकसान है उस पर प्रस्तावना में ही प्रकाश डाला जा चुका है। तेलहन द्रव्यों के विदेश में जाने से उनकी खली विदेशीय राष्ट्रों की कृषि को ही बढ़ाती है। यदि तेल भारत में ही निकाला जाता तो उसकी खली भारत की भूमियों की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाती और भारत को तेलहन द्रव्यों की तुलना में धन भी अधिक मिलता।

खनिज, जांगलिक तथा खाद्य पदार्थों के सदृश ही तेलहन पदार्थों में भी भारतवर्ष की स्थिति संसार के सब राष्ट्रों से ऊंची है। भारत में तेलहन पदार्थों की वार्षिक उत्पत्ति ५००००० टन और जिसका बाजारी दाम ५०००००० पाउन्ड

के लगभग है। संपूर्ण उत्पत्ति का एक तिहाई विदेश में भेज दिया जाता है। इसके व्यापार का अन्दाज़ लगभग १८००००००० पाउन्डज़ के है। भारत के तेलहन द्रव्य किस राशि में विदेश के अन्दर जाते हैं इसका व्यौरा इस प्रकार है।

संसार में तेलहन पदार्थों को उत्पन्न करनेवाले राष्ट्रों का निर्यात

तेलहन पदार्थ	तेलहन पदार्थों को उत्पन्न करनेवाले राष्ट्रों का निर्यात	१९१३-१४ मे भारत का निर्यात	प्रति शतक
	टनों में	टनों मे	
तीसी तथा अलसी	१८०८०१०	४१४०००	२३
मूंगफली	७७६०००	३६४०००	४६
बिनौला	८५८०००	२८४०००	३३
राई तथा सरसो	३८५०००	२५४०००	६६
अंडी का तेल	१३५०००	१३५०००	१००
तिल	२६४०००	११२०००	४२
नारियल	५३७०००	३८०००	७
महुआ	३३०००	३३०००	१००
पोस्ते का वीज	२५०००	१९०००	७६
काला तिल	४०००	४०००	१००

भारत से जितने तेलहन पदार्थ विदेश में जाते हैं उनका पांचवां भाग एक मात्र इंग्लैंड खरीदता है। तीसी, बिनौला तथा अंडी की ही इंग्लैंड में विशेष तौर पर मांग है। इसका मुख्य कारण यह है कि इग्लैंड के किसान (इनकी खली को) खाद के तौर पर काम में लाते हैं। इंग्लैंड के बाद फ्रान्स तथा जर्मनी और उसके बाद वैल्जियम इटली तथा आस्ट्रिया हंग्री भारत के तेलहन द्रव्यों को खरीदते थे। परन्तु युद्ध के दिनों में जर्मनी, वैल्जियम, इटली तथा आस्ट्रिया हंग्री की मांग कम हो गयी। अमरीका नारियल के तेल और आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड अंडी के तेल के खरीदार हैं।

लड़ाई खतम होने के बाद इग्लैण्ड को तेलहन द्रव्यों का महत्व अच्छी तौर पर मालूम हो गया। उसको यह अनुभव हुआ कि वह कितना बेवकूफ था कि उसने शुरू से ही इस व्यापार को अपने काबू में नहीं किया। अन्त में इंग्लैण्ड के अन्दर इंपीरियल इंस्टिट्यूट् की एक समिति बैठी और उसने इंग्लैण्ड के राज्य को निम्न लिखित सलाह दी।

(१) हिन्दुस्तानी किसानों को रुपया देकर काबू करो और सारा का सारा तेलहन पदार्थ इंग्लैण्ड में भेज दो।

(२) अफीम तमाखू के सदृश ही तेलहन द्रव्यों की उत्पत्ति को अपने कब्जे में कर लो और यदि

संभव हो तो इनमें भी ठेके तथा लाइसैन्स का प्रयोग करो।

(३) इंग्लैण्ड के तेल पेरने के बड़े बड़े कारखानो को सहायता पहुंचाने के लिये विदेशीय तेल पर बाधित सामुद्रिक कर लगा दो और उसको इंग्लैण्ड में न जाने दो।

(४) इंग्लैण्ड में भारत का तेलहन पदार्थ सारी की सारी राशि में पहुंच सके, इसके लिये रेलों का तथा जहाजों का किराया ऐसा रखो कि वह उसे इस स्थान तक सुविधा के साथ पहुंचा सके। साथ ही भारत से तेलहन पदार्थों को इंग्लैण्ड में भेजने के लिये सामुद्रिक कर इस सीमा तक घटाओ कि उसकी संपूर्ण राशि इंग्लैण्ड में सुगमता से पहुंच जाय।

प्रस्तावना में 'धन शोषण का नया तरीका' नामक शीर्षक में जो लिखा जा चुका है उसी को यह भी पुष्ट करता है। शीघ्र ही भारतसरकार भारत के कच्चे माल पर अपना नियन्त्रण स्थापित करेगी। भारतीयों को अभी से सावधान रहना चाहिये।

लड़ाई से पहिले भारत से विदेश में गये तेलहन द्रव्यों का ब्योरा इस प्रकार है।

१९१३-१४ में भारत के तेलों का विदेश में जाना

तेल	विदेशमेंभेजीगयी राशि गेलन में	मूल्य पाउण्डों में	वह देश, जिन्होने भारत का तेल मंगाया
नारियल का तेल	१०९१४७७	१५५०७३	अमरीका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, स्वीडन, बैल्जियम, तथा हालैण्ड।
अंडी का तेल	१००७००१	९२५०४	आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, स्टेट्ससैटलमेन्ट्स, मारीशस, इंग्लैण्ड तथा सीलोन।
राईतथासरसोंकातेल	४०७१७८	४८६२४	मारीशस, नैटाल, फिजी तथा ब्रिटिशगियाना।
मंगफली का तेल	२८८१९०	१००१३	सीलोन, मारीशस तथा फ्रान्स।
तिल का तेल	२०८०५३	२८९९९	मास्कट, अदन, सीलोन तथा जर्मन पूर्वीयअफ्रीका
अलसी का तेल	१०२३९०	१७४९३	न्यूजीलैण्ड, हांगकांग, आस्ट्रेलिया, इंग्लैण्ड।
बिनौले का तेल	२५०७	३४७	इंग्लैण्ड।
अन्य वानस्पतिकतेल	१३५३२१	१५८००	जर्मनी, बेल्जियम, सीलोन तथा इंग्लैण्ड।

(क)

तीसी या अलसी

अलसी का प्रयोग भारत में बहुत ही कम है। विदेश में भेजने के लिये ही इसको उत्पन्न किया जाता है। योरुप में इसके पौदे के रेशों को कपड़े आदि बुनने के काम में लाया जाता है। यदि यहां पर इसी काम के लिये तीसी बोयी जाय तो योरुप से तीसी का बीज मंगाना आवश्यक है।

१६१२--१६१४ तक प्रतिवर्ष पांच लाख टन तीसी भारत में उत्पन्न होती थी। इसका ८० प्र० श० इंग्लैंड खरीद लेता था। १६०४-०५ तक तीसी की उत्पत्ति में भारत का एकाधिकार था। आजकल अर्जेन्टाइन प्रजातन्त्र राज्य, अमरीका, कनाडा तथा रूस में भी इसकी उत्पत्ति बढ़ गई है।

मद्रास में तीसी नहीं बोयी जाती है। बिहार, संयुक्तप्रांत, बंगाल तथा मध्यभारत ही इसकी उत्पत्ति के केन्द्र हैं। संपूर्ण प्रान्तों में लगभग ३५००००० एकड़ों पर ही तीसी बोयी जाती है। इसी में संयुक्त प्रान्त के ६००००० एकड़ भी सम्मिलित हैं जिन पर कि तीसी के साथ ही साथ और अनाज भी बोया जाता है।

१६१३-१४ से १६१८-१६ तक इसकी प्रान्तीय उत्पत्ति का ब्यौरा इस प्रकार है।

१९१३—१५ से १९१८— ९ तक तीसी की उत्पत्ति

प्रान्त		१९१३—१४	१९१४—१५	१९१५—१६	१९१६—१७	१९१७—१८	१९१८—१९
		एकड़	एकड़	एकड़	एकड़	एकड़	एकड़
मध्य प्रान्त तथा बरार		९५२१००	१२२४०००	१०४८०००	११७६०००	१२५७०००	५१६०००
संयुक्तप्रान्त		२४०६००	२६६०००	२९५०००	३३००००	३६२०००	६९०००
		*३६७०००	*६२००००	*६५००००	*६७५०००	*६९५०००	*३२१०००
बिहार तथा उड़ीसा		६५२९००	६२४०००	६६३०००	७०४०००	७३६०००	५९५०००
हैदराबाद		४१२६००	२३४०००	२८८०००	३२१०००	३४१०००	२१६०००
बंगाल		१९३७००	१८२०००	१८१०००	१५७०००	१४४०००	१४४०००
बम्बई		१७३१००	१२६०००	१७६०००	१६६०००	१६१०००	८००००
पञ्जाब		३९०००	४९०००	३२०००	३२०००	३९०००	३१०००
कुलयोग	कुल एकड़	३०३१०००	३३२५०००	३३३३०००	३५६४०००	३७९७०००	१९७२०००
	कुल उत्पत्ति टनों में	३८६२००	३९७०००	४७६०००	५२६०००	५१५०००	३२९०००

* इस चिह्न का तात्पर्य यह है कि तीसी के साथ साथ उस जमीन पर अन्य चीजें भी बोयी गयी थी।

तीसी या अलसी

भारत में तीसी अकेले तथा कभी कभी दूसरे अनाज के साथ बोयी जाती है। हिसाब से मालूम पड़ा है कि प्रति एकड़ पर तीसी की उत्पत्ति पक्के तीन मन के लगभग होती है। पीली तथा भूरी दो रङ्गों के नाम पर तीसी के दो भेद हैं। पीली तीसी प्रायः फ्रांस ही मंगाता है। १८३२ में भारत में तीसी का बोया जाना शुरू हुआ और १८३६ में ६०००० टन तक इसकी उत्पत्ति जा पहुंची। १६०५ से १६१६ तक निम्नलिखित राशि में तीसी विदेश में भेजी गयी।

१६०४-०५ से १६१८-१६ तक तीसी का विदेश में भेजा जाना

वर्ष	राशि--टनों में	मूल्य पाउन्डों में
१६०४-०५	५५६१००	४२१६१५०
१६०५-०६	२८६४४३	२७४३६६३
१६०६-०७	२१८६४१	२१७३२३८
१६०८-०६	१६०४७७	१७०३५२०
१६१०-११	३७६५५२	५५६३४६२
१६१२-१३	३५४४८६	५३८८३८३
१६१३-१४	४१३८७३	४४५७६६८
१६१४-१५	३२१५७६	३५०२४११
१६१५-१६	१६२६८७	१६८२७८२
१६१६-१७	३६६१६३	४८३६०५१
१६१७-१८	१४६११२	१७८५३०७
१६१८-१६	२६२४५३	४३६१४०२

बैल्जियम पर विपत्ति पड़ने से १९१४-१५ तथा १९१५-१६ में तीसी की उत्पत्ति बहुत ही कम हो गयी। १९१८-१९ में तीसी से निकाले हुए ग्लैसरीन की युद्ध में बहुत ही अधिक आवश्यकता थी अतः इसका दाम चढ़ गया और इसकी उत्पत्ति भी पूर्वापेक्षा बढ़ गयी। १९१८-१९ में तीसी के कुल निर्यात का ८३ प्र० श० एकमात्र इंग्लैंड ने ही खरीद लिया। कौन कौन देश भारत की तीसी खरीदते हैं इसका ब्यौरा इस प्रकार है।

भारत की तीसी का विदेशीय राष्ट्रों में जाना

वह विदेशीय राष्ट्र जो कि भारत की तीसी लेते हैं।	१९१३–१४		१९१८–१९	
	राशि—टनो में	प्रति शतक	राशि—टनों में	प्रति शतक
इग्लैंड	१५७३१५	३८	२४२३१६	८३
फ्रान्स	११५४५६	२८	६६६७	२
जर्मनी	४८३२६	११·५	...	...
बैल्जियम	३८४५६	९·३	...	...
इटली	३०६५७	७·४	१३३८१	५
हालैण्ड	९५७५	२·३	...	...
आस्ट्रिया हंग्री	६५००	१·५	...	...
आस्ट्रेलिया	३३६०	·७	१८६९२	६
अन्य देश	४२२२	१·३	११३९३	४
कुलयोग	४१३८७३	१००		१००

तीसी या अलसी

३७ से ४३ प्रति शतक तक तीसी में तेल होता है। नये ढंग के कारखानों में तीस से चालीस हजार टन तीसी से तेल निकाला जाता है। कलकत्ता के समीप के तीन बड़े कारखानों में १९१८ में १३११८६७ गैलन तेल निकाला था। निम्नलिखित प्रकार तीसी का तेल भारत से विदेश में जाता है।

१९१०-११ से १९१८-१९ तक तीसी के तेल का भारत से विदेशों में जाना

वर्ष	राशि-गैलन में	मूल्य-पाउन्डों में
१९१०-११	३१६१११	४२५६४
१९११-१२	२४९९७५	४९९९६
१९१२-१३	१०६८६७	२०८२३
१९१३-१४	१०२३६०	१७४९३
१९१४-१५	१३२७९६	२७८६६
१९१५-१६	२८०८५०	४७२७४
१९१६-१७	१७८२५७	३२८२६
१९१७-१८	५६०१७६	१२७५८२
१९१८-१९	१६७४९५८	४३१०१०

हांगकांग, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड में ही तीसी का तेल विशेषतः जाता है। कुल निर्यात का दो तिहाई यही देश

खरीदते हैं। १९१७-१८ से आस्ट्रे लिया के अन्दर भी तीसी जाने लगी है।

सरसों तीसी तथा तिल की खली भी विदेश में जाती है। इसका ब्यौरा इस प्रकार है।

खली का विदेश में जाना

वर्ष	राशि-हंड्रड्वेट् या ५६ सेर में	मूल्य-पाउन्डों में
१९१३-१४	१७८९७७७	५४२८३७
१९१४-१५	१०२४७१०	३४५४११
१९१५-१६	९३६०२२	३१८०८९
१९१६-१७	११०९४३५	३४८६६६
१९१७-१८	५९९६८७	२०६६२६
१९१८-१९	४५६४०६	२६६७१

*इंग्लैण्ड, सीलोन तथा जापान में खली को खाद के तौर पर काम में लाया जाता है यही देश भारत की खली के विशेष तौर पर खरीदार हैं। खली का विदेश में जाना भारत के लिये हितकर नहीं है इस पर पूर्व में ही प्रकाश डाला जा चुका है।†

* Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton pp. 155-163.

(ख)

सरसों

सरसों के अनेक भेद हैं। पीली तथा ललियापन लिये भूरी रङ्ग की सरसों ही भारत से विदेश में जाती है। उत्तरीय भारत में ही इसकी खेती विशेष तौर पर होती है। लगभग ६०००००० एकड़ भूमि पर सरसों उत्पन्न की जाती है। सरसों की उत्पत्ति में भिन्न २ प्रान्तों का भाग इस प्रकार है।

संयुक्तप्रान्त	४०	प्र० श०
बंगाल	२२	प्र० श०
पन्जाब	१६	प्र० श०
बिहार तथा उड़ीसा	१०	प्र० श०
शेष अन्य प्रान्त	६	प्र० श०
	१००	

अक्टूबर तथा नवम्बर में सरसों को बोया जाता है और फर्वरी तथा मार्च में इसको काटा जाता है। लगभग २२४ सेर सरसों प्रति एकड़ पर उत्पन्न होती है। कानपुर तथा फारोज-पुर ही सरसों की मुख्य मंडियां हैं। बाम्बे तथा करांची के द्वारा ही इसको बाहर भेजा जाता है।

योरुप में भारत के सरसों को बहुत ही अधिक मांग है। संसार के सरसों के बाह्य व्यापार का २० प्र० श० एक मात्र भारतवर्ष के ही हाथ में है। १६१३-१४ से १६१८-१६ तक

भारत की सरसों विदेश में जिस प्रकार गयी उसका ब्यौरा इस प्रकार है।

विदेशीय राष्ट्रों में भारत की सरसों का जाना

भारत की सरसों मंगाने वाले राष्ट्र		१९१३–१४	१९१४–१५	१९१५–१६	१९१६–१७	१९१७–१८	१९१८–१९
		टनों में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में
बेल्जियम	...	९८८६९	२६८६१	...	......	......	......
जर्मनी	...	५८१९९	८१०७	......	......	......	......
फ्रान्स	...	४३९४३	२०५९३	४०२७९	२३४२६	२७३९	१०७२९
इंगलैण्ड	...	१४०९९	२४६८१	४७४७३	८९०२१	३६९००	५४४८९
जापान	...	१	१०	१६	४६२९	१९२११	९९०५
इटली	...	१३७२६	१४७५७	६३७४	४७५८	२२५	४०६८
अन्य राष्ट्र	...	१०१६८	१९०३	१०९२८	४३८	२३४	४७२

सरसों

लड़ाई से पहिले भारत की सरसों के योरुपीय व्यापार का केन्द्र बैल्जियम था। बैल्जियम के द्वारा ही हालैण्ड तथा जर्मनी में भारत की सरसों पहुंचती थी। महायुद्ध का सरसों के विदेशीय व्यापार पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। १९१३-१४ में कुल मिलाकर २४९००० टन सरसों योरुप गयी थ परन्तु १९१४-१५ में ही यह संख्या घट कर ९७००० टन रह गयी। फ्रांस तथा इंग्लैण्ड ने पूर्वापेक्षया अधिक सरसों खरीदी। बाम्बे तथा करांची में जहाज़ों की कमी के कारण १९१७-१८ में सरसों इंग्लैण्ड में बहुत राशि में न पहुंच सकी। जापान ने भी भारत की सरसों से अधिक अधिक लाभ उठाना शुरू किया है। १९१३-१४ में वह १ टन सरसों मंगाता था परन्तु उसी ने १९१७-१८ में १९२११ टन मंगाया। कलकत्ता तथा बम्बई से ही सरसों बाहर जाती है।

सरसों के तेल को गरीब लोग पकाने के काम में लाते हैं। बंगाल में तो गरीब अमीर सभी घी के स्थान पर सरसों के तेल का ही मुख्य तौर पर प्रयोग करते हैं। शरीर में लगाने तथा आचार बनाने के काम में भी इसकी बहुत जरूरत पड़ती है। इसका विदेश में जाना और इसका मंहगा होना भारतीयों की प्रसन्नता का कभी भी कारण नहीं हो सकता है। १९१६-१७ में ५७४००० गैलन तथा १९१७-१८ में ४८८००० और १९१८-१९ में २६५६०० गैलन सरसों का तेल

भारत से विदेश में गया। जापान तथा इंग्लैंड में सरसों की

सरसों तथा सरसों के तेल का विदेश में जाना

	१९१३–१४	१९१४–१५	१९१५–१६	१९१६–१७	१९१७–१८	१९१८–१९
सरसों की राशि टनों में	२५४१०९	९९४६५	९८३९२	१२८४६४	६१२०३	८१५५०
मूल्य पाउन्डों मे	२९२२४३५	११२४११९	९९४३५४	१३०६६२२	६२९५२३	१०१७६२८
सरसों का तेल गैलन में	४०७१७८	४१३१८०	४६५७३५	५७४६९६	४८८५२७	२६५६७२
मूल्य पाउन्डों में	४८६२४	४९५९४	५१०१७	६६०३०	५९४१५	५१५३२

खली भी बहुत राशि में जाती है। सरसों तथा सरसों का तेल भारत से विदेश में निम्नलिखित प्रकार गया। (देखो पृष्ठ २६६)

(ग)

तिल

भारतवर्ष में तिल तथा तिल के तेल का प्रयोग बहुत ही अधिक है। भिन्न भिन्न प्रकार के सुगन्धित तेल इसी के सहारे तैयार किये जाते हैं। खाने, पकाने, सिर में लगाने तथा अन्य बहुत से कामों में तिल का तेल काम में आता है। पपड़ी, खुटियां या रेउड़ी तथा अन्य बहुत सी मिठाइयां तिल की बनायी जाती हैं। संयुक्त प्रान्त में तिल को अन्य फसलों के साथ बोते हैं। बम्बई, बर्मा, मद्रास तथा मध्य प्रान्त में तिल को पृथक् तौरपर तथा बहुत मात्रा में बोया जाता है। भिन्न २ प्रान्तों में किस मात्रा के अन्दर तिल उत्पन्न होता है इसका व्यौरा इस प्रकार है।

१६१८--१६ में ३५०१००० एकड़ जमीनपर तिल बोया गया और २५८००० टन तिल उत्पन्न हुआ। विदेशीय राष्ट्र भारत के तिल को निम्नलिखित मात्रा में खरीदते हैं।

१९१३-१४ १९१७-१८ तक भारत में तिल की उत्पत्ति

प्रान्त		१९१३—१४	१९१४—१५	१९१५—१६	१९१६—१७	१९१७—१८
		एकड़	एकड़	एकड़	एकड़	एकड़
मध्य प्रान्त तथा बरार	...	८६५७००	८७८०००	९२७०००	७५९०००	५०२०००
बम्बई प्रान्त	...	८५१२००	१०५५०००	८२००००	९०५०००	७५८०००
मद्रास	...	८०९३००	८६१०००	८२३०००	७७९०००	८२४०००
हैदराबाद रियासत	...	६१२०००	५९९०००	५४६०००	५६९०००	५८९०००
संयुक्त प्रान्त	...	३७८४००	३१२०००	२९९०००	२१८०००	१८८०००
	*	८५००००	*१००००००	*११०००००	*१००००००	*८५००००
बंगाल	...	२४१०००	२५१०००	२४८०००	२२३०००	२२५०००
बिहार तथा उड़ीसा	...	२१९७००	२०६०००	१९६०००	१८९०००	१४४०००
पंजाब	...	१४४१००	२२२०००	१२७०००	२४६०००	१२२०००
अन्य प्रान्त	...	१०४१००	१२१०००	७२०००	७५०००	६९०००
कुलयोग	एकड़ ...	५०७६०००	५५६५०००	५१०८०००	५०२३०००	४२७१०००
	उत्पत्ति टनों में	४०३५००	५५१०००	४८२०००	५१३०००	३८१०००

* अन्य चीज़ की फसलों के साथ बोयी गयी।

विदेशीय राष्ट्रों में भारत के तिल का जाना

वह राष्ट्र जो कि भारत का तिल खरीदते हैं	१९१३—१४	१९१४—१५	१९१५—१६	१९१६—१७	१९१७—१८	१९१८—१९
	टनों में	टनो में	टनो मे	टनों मे	टनो में	टनो में
बेल्जियम ...	३३८००	५५००	......	......		......
फ्रान्स ...	२२२००	१३३००	९०००	५१५६६	४५१४	१५०
आस्ट्रिया हंग्री ...	१९०००	४०००	......	......	......	......
जर्मनी ...	१६०००	१९००	...	...	......	......
इटली ...	१४०००	९५००	१७००	८४८३	९९३	......
सीलोन ...	१५१७	१४४६	१४३२	५५३	१५४२	......
मिश्र ...	१२४२	३६८५	८	८०	३११७	६७
अदन ...	८७९	१५९९	४७३	६४२	१५३७	१०९
इंग्लैण्ड ...	......	३००	३५०	२१२९७	१००५	......
अन्य राष्ट्र ...	३५६३	५४६७	८३७	९७९	३५१५	२०५८
कुल { राशि-टनों में	११२२००	४६७००	१३८००	८३६००	१६१९३	२३८४
योग { मूल्य-पौंडों में	१७९६८४१	७११८८५	१६४१७०	१०९१९५९	२३००६४	४७०७६

उपरिलिखित दोनों सूचियों को देखने से स्पष्ट है कि १९१८—१९ में ३५०१००० एकड़ों पर तिल बोया गया था और उस पर २५८००० टन तिल उत्पन्न हुआ था। लड़ाई से पहिले प्रति वर्ष ११२२०० टन तिल भारत से बाहर जाता था। १८७० से १८९० तक भारत के तिल का सब से बड़ा खरीदार फ्रान्स था। ७५ से ८५ प्र० श० तक तिल वही खरीदता था। लड़ाई के शुरू होने के बाद तिल का व्यापार भी इंग्लैंड के हाथ में ही आ गया। तिल का तेल भी भारत से विदेश में जाता है। तिल में ४० प्र० श० तेल होता है। आमतौर पर २००००० गैलन तिल का तेल विदेश में जाता है। १९१३-१४ से १९१८-१९ तक भारत से तिल का तेल भिन्न भिन्न राष्ट्रों ने निम्नलिखित प्रकार मंगाया।

१९१३-१४ से १९१८-१९ तक भारत से तिल के तेल का विदेश में जाना

वह राष्ट्र जो कि भारतसे तिल का तेल मंगाते हैं	१९१३—१४	१९१४—१५	१९१५—१६	१९१६—१७	१९१७—१८	१९१८—१९
	गैलन	गैलन	गैलन	गैलन	गैलन	गैलन
मास्कट्देशतथाट्रूसियल ओमान ...	६३५७०	६३५९९	४८२८४	६९८४२	६८३१३	२७३०४
अदन तथा आधीनराज्य	३५६४७	४३३७४	२९७२०	१३१२२	५५०२	२५६१
सीलोन ...	३१६०९	३००२०	२२३७१	१८११९	१५७१३	४८९४
जर्मन पूर्वीय अफ्रीका	१०४४३	३९९३	......	......	६७५३	३५३१
स्टेट् सैटलमेंट ...	१५३६७	७९८१	८१४६	८०२५	११५६३	६९३
मारीशसतथाआधीनराज्य	६९८९	३५७४	४५२२	३७९४९	३२०३	१६३२७
नैटाल ...	५६६२	४५४०	६०९१	४४०२	७४८७	२०७०
इंग्लैण्ड ...	४१९६	३३	५५८०	४४६०	४१४७	७९
अन्य राष्ट्र ...	३४३३३	३१४३९	१६५८७	७१९१५	११७५१८	५५०४१
कुल योग — राशि-गैलन में	२०८०५३	१८८५८३	१४१३०१	२१९८३४	२४०१९९	११२५००
कुल योग — मूल्य-पाउन्डोंमें	२८६९९	२५४६२	१७४९०	२७६९५	३३०४६	१९५५७

(घ)

बिनौला

बिनौले की उत्पत्ति में अमरीका के बाद भारतवर्ष का ही सब से ऊंचा दर्जा है। संसार की ११०००००० टन बिनौले की कुल उत्पत्ति में २०००००० टन बिनौला एक मात्र भारत वर्ष ही उत्पन्न करता है। बिनौले की वार्षिक उत्पत्ति का लगभग १५ प्रतिशतक विदेश चला जाता है। २०००००० टन बिनौले को रुई उत्पन्न करने के लिये और इतना ही गौ तथा बैलों को खिलाने के लिये पन्जाब में काम में लाया जाता है। तेल तथा खली निकालने के काम में भी, भारत के अन्दर बिनौले का काफी उपयोग है। १९०१--०२ के बाद १९१३--१४ तक बिनौला प्रति वर्ष भारत से अधिक अधिक बाहर गया है।

भारत से बिनौले का विदेश में जाना

वर्ष	राशि टनों में	मूल्य पाउन्डोंमें	बाहर भेजे गये बिनौले का कितना भाग इंग्लैंड लेता है
१९१३—१४	२८४३[illegible]७	१४१६७४३	९८ प्र० श०
१९१४—१५	२०७१८९	१००४५२४	९७ प्र० श०
१९१५—१६	९५६६४	४४५०७७	९८ प्र० श०
१९१६—१७	३९६३०	२०३९४०	९४ प्र० श०
१९१७—१८	१६७५	९५८७	×
१९१८—१९	१४५४	१२८१०	×

बिनौला

जनवरी तथा जुलाई में ही भारत से इंग्लैण्ड में बिनौले जाते हैं। १९१४ के बाद लड़ाई के कारण जहाज कम हो गये अत इंग्लैण्ड में प्रति वर्ष बिनौले कम गये।

भारत में बिनौले के तेल का व्यवहार बहुत ही कम है। १९१३--१४ में केवल २५०७ गैलन तेल ही भारत से बाहर गया। इसके बाद इसके बाह्यव्यापार की क्या स्थिति रही इसका व्यौरा इस प्रकार है।

बिनौले के तेल का भारत से बाहर जाना

वर्ष	राशि गैलनो में	मूल्य पाउन्डो में
१९१३—१४	२५०७	३४७
१९१४—१५	१२४७१	१०५९
१९१५—१६	४३०३०	४०३१
१९१६—१७	८४१५६	१०००४
१९१७—१८	७६३०८	९५९५
१९१८—१९	९३५६	१२८३

(ङ)

अंडी या रेंडी

भारत में अति प्राचीन काल से अंडी उत्पन्न की जाती है। कुछ वर्षों से इसको भी विदेशीय लोगों ने खरीदना शुरू किया है। मद्रास, हैदराबाद, बम्बई तथा मध्य प्रान्त में लोग इसको बहुतायत से पैदा करते हैं। प्रतिएकड़ १५० से २०० सेर तक अंडी उत्पन्न होता है। २५०००० से ३००००० टन तक अंडी की कुलउपज है। जावा, इंडोचीन तथा मन्चूरिया में व्यापारीय दृष्टि से अंडी को उत्पन्न किया जाने लगा है। यह होते हुए भी भारतवर्ष का अंडी की उपज में कोई भी मुकाबला नहीं कर सकता है। १८७७-७८ में २८५ टन अंडी बाहर गयी थी। १९१३-१४ में यही संख्या १३४८८८ टन तक जा पहुंची। लड़ाई से पहिले बाहर गयी अंडी का ८० प्रति शतक एकमात्र इंग्लैण्ड खरीदता था। वहां से ही अमरीका तथा रूस अंडी तथा अंडी का तेल खरीदते थे। लड़ाई के दिनों में जहाज़ों कमी की तथा किराया बढ़ने से अंडी की अपेक्षया अंडी के तेल के भेजने में अधिक सुगमता तथा अधिक लाभ था। १९१३-१४ के बाद भिन्न भिन्न देशों में भारत की अंडी किस प्रकार गयी इसका ब्यौरा इस प्रकार है।

१९१३-१४ से १९१८-१९ तक अंडी का विदेशों में जाना

वह देश जो भारत की अंडी खरीदते हैं	१९१३—१४	१९१४—१५	१९१५—१६	१९१६—१७	१९१७—१८	१९१८—१९
इंगलैण्ड ...	५५६७५	३५२८५	४१४५८	३९००७	५७०३६	६२८३८
फ्रान्स ...	२०९८९	११५८४	१४१२८	१६६५७	१४६५३	१६७३५
अमरीका ...	२०२७९	१६०८३	१७७२०	२१०६७	१८१९४	......
बैल्जियम ...	१४८२२	५६६९	......	......	......	......
इटली ...	११७८८	११२०३	७७८८	१०५८५	४९२७	११२७
जर्मनी ...	९६७१	७३२	......	......	......	......
स्पेन ...	९७५	१३००	१८३४	१०७५	५९९	......
आस्ट्रेलिया ...	५८९	३६२	४००	११२४	६०१	१२७८
अन्य राष्ट्र ...	१	५९८	४६२०	३३३७	२०२७	११
कुलयोग — राशि ...	१३४८८८	८२८१५	८७९४८	९३१४३	९८०३७	८१९८९
कुलयोग — मूल्य पाउन्डोंमें	१३३६६४९	७७३२८९	८०२१८१	९६४३९६	११७७४३६	१५३४२२८

१९१८-१९ में हवाई जहाज़ में अंडी का तेल बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ। अतः अंडी की उत्पत्ति दिन पर

दिन बढ़ेगी यही आशा है। १९१३--१४ से १९१८--१९ तक अंडी का तेल विदेश में इस प्रकार गया।

अंडी के तेल का विदेश में जाना

	१९१३—१४	१९१४—१५	१९१५—१६	१९१६—१७	१९१७—१८	१९१८—१९
अंडी का तेल गैलनों में	१००७००१	८९८२६९	१४५२६५५	१७२४७०७	२०८४९५९	१६५८४३९
अंडी के तेल का मूल्य पाउन्डों में	९२५०४	८३५५०	१२६३०१	१७४३५५	४५५३३१	२६८१०२

Handbook of Commerical Information for India by C. W. E. Cotton, p.p. 178—182.

भारत के अंडी का तेल कौन कौन राष्ट्र खरीद हैं इसका ब्योरा इस प्रकार है।

वह राष्ट्र जो कि अंडी का तेल खरीदते हैं	१९१३-१४	१९१४-१५	१९१५-१६	१९१६-१७	१९१७-१८	१९१८-१९
	गैलनों में	गैलनों में	गैलनों में	गैलनों में	गैलनों में	गैलनों में
आस्ट्रेलिया ...	३६०२५२	३०१७८०	१३१८७७	१०२०८७	८९५६	१४९७७
न्यूजीलैण्ड ...	१४६६५६	१६८३३६	२१२५१५	१२६४४१	१०२६२	५८९९७
स्टेट् सैटलमेन्ट्स ...	१४१४१४	१०८१२०	९१७४०	८५६७०	६७५७२	३०७३
मारीशस् ...	९२०५०	१०४६५४	११८६९६	८१८१७	७७५४१	१७०६६
इंग्लैण्ड ...	८७२५६	५३६६०	६६८२८०	११२१६३५	१०८६३०१	८६३७७६
सीलोन ...	७३७३०	५१५२४	६६८७२	५४६२०	५०४५६	११९३०
दक्षिणीय अफ्रीका का संघ	५९६५६	५७४६०	७३२६१	५८३७८	१५२१०६	२६५३०
सियाम ...	१६२७३	१३०६७	१३५७२	११७००	१२४८८	३३६
पुर्तगालियों की पूर्वीयअफ्रीका	८३६५	१८१६२	१३८१६	५३६६	२०३६३	...
इटली ...	..	२३०४	...	१२५६७	३२६३४५	६२७१७३
फ्रान्स ...	...	...	१८२२	२३३१	...	...
अन्य राष्ट्र ...	२१०४३	८८७२	२६१७१	६०१५४	१३६२९७	४६७८

अंडी के तेल निकालने वाली छोटी छोटी मिलें कलकत्ते के आसपास ही हैं। इनमें से दोतीन योरूपीय लोगों की

संपत्ति हैं। अंडीं का तेल भारत में जलाने, चमड़ा नरम करने तथा कुछ एक खास प्रकार के तेलों के बनाने में काम आता है। विदेशियों की मांग से जो तेल बचता है उसको उपरि लिखित कामों में खर्च किया जाता है। अंडी का तेल निकालने के बाद जो खली बचती है वह भी विदेशीय लोग खरीद लेते हैं। खली के निर्यात का ब्यौरा इस प्रकार है।

अंडी की खली का विदेश में जाना †

वर्ष	राशि टनों मे	मूल्य पाउन्डों में
१६१३—१४	४६०२	१६३८५
१६१४—१५	३६४७	१३८३६
१६१५—१६	११४७६	४४६०६
१६१६—१७	६६६६	४६८८५
१६१७—१८	२८६६	१३६३७
१६१८—१६	४२८४	२३२६७

(च)

नारियल

नारियल व्यापारीय दृष्टि से बहुत ही लाभदायक पदार्थ है। नारियल की (१) जटामें (२) नरेली (३) गरी (४) तथा

† Handbook of Commercial Information for India by C. W. E Cotton. P.P. 178-182.

गरी की खली, चारों ही चीज़ें किसी न किसी व्यवसाय के काम में अवश्यही आती हैं। नारियल की उत्पत्ति के लिये ७५ फाईनाइट से ८५ फाईनाइट तक का ताप तथा ५० इन्च से अधिक वृष्टि और नमी वाली जमीन चाहिये। २००० फीट् की ऊंचाई तक इसके पेड़ लगाये जा सकते हैं। अभी तक काठियावाड़, कनारा, रतनगिरि, मालावार, गोदावरी का मुहाना, ट्रावंकोर तथा कोचीन की रियासतें और वर्मा में ईरावती की मुहाने पर ही इसकी बहुतायत से उत्पत्ति होती है। अन्य स्थानों पर भी यदि इसको बोया जाय तो बहुत संभव है कि यह उत्पन्न हो जाय और अच्छा फल दे।

एक पेड़ प्रति वर्ष ५० से २०० नारियल तक उत्पन्न करता है। मालावार में प्रति एकड़ पर ४००० से ५००० नारियल उत्पन्न होता है। मद्रास प्रान्त में ८००००० एकड़ जमीन पर नारियल के पेड़ हैं। कारोमण्डल का समुद्रीतट, बम्बई तथा कलकत्ता की नारियल की फसल, लोगों के खाने में ही काम आती है। प्रति वर्ष चालीस करोड़ नारियल लोगों के खर्च में उठ जाता है।

इन पिछले पांच वर्षों में गरी की कीमत दुगुनी हो गयी है। संसार का एक सातवां भाग नारियल भारत से ही विदेश में जाता है। १९०८ से १९१४ तक भारत से नारियल की गरी तथा गरी का तेल विदेश में इस प्रकार गया।

गरी तथा गरी के तेल का विदेश में जाना

वर्ष	गरी		गरी का तेल	
	राशि टनों में	इंडक्स नंबर	राशि गैलनमे	इंडक्स नंबर
१९०८—०९	१९७५६	१००	२८४५४०४	१००
१९०९—१०	२६७०१	१३५	२५२६३२८	८८
१९१०—११	२२४८१	११४	१९३४६०८	६८
१९११—१२	३१८७६	•१६१	२१६५१०३	७६
१९१२—१३	३४३४९	१७४	९६९४९३	३४
१९१३—१४	३८१९१	१९३	१०९१४७७	३८

लड़ाई से पाहले ७३ प्रतिशतक नारियल की गरी एक-मात्र जर्मनी में ही जाती थी। हम्बर्ग में इसका तेल निकाला जाता था और तेल को पुनः कुछ एक व्यवसायिक पदार्थों को तैय्यार करने के लिये इंग्लैण्ड में भेज दिया जाता था। लड़ाई के शुरू होने पर जर्मनी में नारियल की गरी के न पहुंचने पर इसके वाह्य व्यापार को बहुत काफी धक्का लगा। परन्तु शीघ्र ही फ्रान्स ने जर्मनी का स्थान ले लिया और भारत से नारियल की गरीको मंगाना शुरू किया। इंग्लैण्ड भी इस ओर दिन पर दिन पैर बढ़ा रहा है और आशा की जाती है कि इसके वाह्य व्यापार का एकाधिकार भी उसी के हाथ में चला जायगा।

भिन्न भिन्न बन्दरगाहों से नारियल की गरी का बाहर जाना
१९१३-१४ से १९१७-१८ तक

बन्दरगाह	१९१३—१४	१९१४—१५	१९१५—१६	१९१६—१७	१९१७—१८
	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में
मद्रास प्रान्त—					
कोचीन ...	२७२२५	१९९१२	७४२३	१२१९२	४२३६
कालीकट ...	४२८९	४८२६	३२४०	४६५३	६१९
वदागरा ...	४१३४	४५७३	३२९५	२७८९	......
टैलीचरी ...	२४३८	२३७५	६६९	१२६५	४४१
बाम्बे प्रान्त—					
बम्बई ...	८५	५२	३५	१२९१	४०४
कुल योग ...	३८१९१	३१३४५	१५६७८	२६६०६	५८७३

१८१७-१८ में जहाज़ों की कमी के कारण गरी बहुत राशि में बाहर न भेजी जा सकी। साबुन में तथा चर्वी के स्थान पर

गरी का तेल योरुप में काम आता है। मालाबार की गरी में तेल को मात्रा बहुत ही अधिक होती है। मट्टी के तेल के प्रयोग से पूर्व भारत में नारियल का तेल ही जलाने के काम में आता था। पुराने ढंग पर ही अभी तक भारत के बहुत से स्थानों में नारियल का तेल निकाला जाता है। नये ढ़ंग के कलों के सहारे तेल निकालने में अधिक किफायत है। कोचीन, कालीकट तथा अलिप्पी में इन्जन से चुक नाम की छोटो छोटी मिलें चल रही हैं जो कि पुराने ढंग के कोल्हू से अच्छी हैं। इर्नाकुलम् में एक बड़ा भारी कारखाना भी खुला है जो कि बहुत बड़ी राशि में गरी से तेल निकालेगा। गरी को गरमाहट देकर तेल सुगमता से निकल आता है परन्तु रंगत तथा गुण में उतना अच्छा नहीं होता है जितना कि बिना गरमाहट के निकला तेल। गरी का तेल बहुत बड़ी मात्रा में बाहर से भारत से जाता है। दृष्टान्त स्वरूप १६१३-१४ से १६१८-१६ तक गरीका तेल विदेश में निम्नलिखित मात्रा में गयाः—

विदेश में जाना शुरू हो गया है। इंग्लैण्ड ने अपना हाथ इस ओर विशेष तौर पर बढ़ाया है:—

गरी को खली का विदेश में जाना १९१२-१३ से १९१८-१९ तक

वर्ष	राशि-हंड्ड्वेट् या ५६ सेरों में	मूल्य पाउन्डों में
१९१२—१३	१२८०७४	४१४६३
१९१३—१४	८४१६६	२६९६५
१९१४—१५	६०९५८	१८५४३
१९१५—१६	१४१७	३८२
१९१६—१७	१	……
१९१७—१८	११५२	३५३
१९१८—१९	२२००६	५४२८

नारियल की नरेली बहुत ही लाभदायक चीज है। जर्मनी में नरेली से एक प्रकार का कीमती तेल निकाल कर नरेली की खली से बटन बनाये जाते थे जो कि बहुत ही सस्तें विकते थे। हुक्के में ही भारत के अन्दर इसका विशेषतौर पर प्रयोग है। उचित है कि भारतवर्ष नरेली की कीमती चाज़ों को नष्ट न होने दे और जर्मनी की तरह उससे भी लाभ प्राप्त करे। नारियल की जटाय रस्सी आदि के काम में आती हैं। नारियल का भिन्न भिन्न प्रकार का माल विदेश में इस प्रकार गया।

नारियल सम्बन्धी पदार्थों का विदेश में जाना
१९१३-१४ से १९१८-१९ तक

नारियल की चीज़ें	१९१३—१४		१९१८—१९	
	राशि	मूल्य पांउडों में	राशि	मूल्य पांउडों
नारियल-(संख्या)	३४४१११	१५१७	६६३०३५	३३५८
जटायें-(हंड्रड्वेट् या ५६ सेरों में)	१४८१२	११४४९	६००६	४३५३
जटाओं का बनामाल	७७२२६२	५९२७४१	२६३३०९	२३३३४६
रस्सी ...	६०४२०	७०१८९	५४३३६	७८४४८
गरी -(टनों में) ...	३८१९१	१०३९८२६	४५०	१३९९०
गरी की खली-(हंड्र-ड्वेट् या ५६ सेरोंमें)	८४१६६	२६९६५	२२००६	५४२८
गरी का तेल-(टनोंमें)	४५४८	१५५०७३	२९९९५	९७६९८०
कुलयोग	...	१८९७७६०	...	१३१५९१०

(छ)

महुआ

भारत के ग्रामीण लोग महुआ को खाते हैं तथा उसकी शराब बनाकर पीते हैं। कभी कभी महुए के तेल को घी के स्थान पर भी वह लोग काम में लाते हैं। जर्मनी में महुआ

का तेल साबुन तथा मोमबत्ती बनाने के काम में आता था। यही कारण है कि १९१३-१४ में कुल निर्यात का ८५ प्रतिशतक एक मात्र जर्मनी ने ही खरीदा था। १९१३-१४ में विदेशीय राष्ट्रों ने महुए को निम्नलिखित राशि में खरीदाः—

१९१३--१४ में महुए का विदेश में जाना

महुए को खरीदने वाले देश	राशि टनों में	मूल्य पाउन्डों में
जर्मनी ...	२८३८४	३०९७९१
वैल्जियम ...	४४३९	४८५९६
फ्रान्स ...	४२५	४६९६
हालैंड ...	५०	५३३
आंग्ल उपनिवेश ...	१	१
कुलयोग	३३२९९	३६३६३४

युद्ध के दिनों में महुए के बहुत बड़े खरीदार जर्मनी को भारत का महुआ न मिला। धीरे धीरे अन्य देश भी जहाज़ों के किराये के बढ़ने से मंगाने में असमर्थ होगये। १९१८-१९ में महुआ विदेश में बिलकुल भी न गया।

(ञ)

पोस्ता तथा काला तिल

संयुक्त प्रान्त में पोस्ते को विशेष तौर पर बोया जाता है।

पेस्ता तथा काला तिल

प्रति वर्ष ३७८०० टन पोस्ता उत्पन्न होता है। विदेश में इसका जाना दिन पर दिन कम हो रहा है।

भारत के पोस्ते का भिन्न २ राष्ट्रों में जाना

पोस्ते को खरीदने वाले राष्ट्र	१९१३-१४	१९१४-१५	१९१५-१६	१९१६-१७	१९१७-१८	१९१८-१९
	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में
फ्रान्स ...	१०७००	४१७५	६६३५	५२४०	१६००	२५३४
वैल्जियम ...	४८००	१३६०	...	...	...	...
जर्मनी ...	३१००	९६०	...	...	...	...
इंग्लैण्ड ...	...	८४	१४३	२०५	६०	...
कुलयोग { राशि टनों में	१८६८०	६६६२	६८७२	५५२७	२०२७	२६६५
कुलयोग { मूल्य पाउन्डोंमें	३१०५८६	९५६१०	८२०१२	६३१४०	२८१६४	५०३३६

पोस्ते के सदृश ही काला तिल भी विदेश में दिन पर दिन कम जा रहा है।

भारत के काले तिल का भिन्न भिन्न राष्ट्रों में जाना

काला तिल खरीदनेवाले राष्ट्र		१९१३-१४	१९१४-१५	१९१५-१६	१९१६-१७	१९१७-१८	१९१८-१९
		टनो में	टनो में	टनों में	टनों में	टनों में	टनों में
जर्मनी	...	२०२९	५९१	...	...	...	...
फ्रान्स	...	१०४७	५	१०	...	...	...
आस्ट्रिया हंग्री	...	५६६	...	...	...	...	...
इंग्लैण्ड	...	३६७	१६६०	३८१	१६७३	...	१०
इटली	...	५०	२६	१७५	...	...	.
अन्य राष्ट्र	...	४८	४८	२३	१५	६	१४
कुलयोग	राशि टनों में ...	४१०७	२३३०	५८९	१६८८	६	२४
	मूल्य-पाउन्डों में...	४२९२६	२२१५४	५८२३	१५७४३	५०	४६२

+ Hand book of Commerceal Information for India by C. W. E. Cotton. P. P.173—176.

(झ)

अजवायन

अजवायन मसाले के तौरपर काम में आता है और इसका तेल बहुत सी बीमारियों को दूर करता है। १९१२--१३ से १९१८--१९ तक इसके निर्यात का ब्यौरा इस प्रकार है।

अजवायन का विदेश में जाना

वर्ष	राशि-हंड्रड्वेट् में	मूल्य पाउन्डों में
१९१२—१३	२१६५०	६१३५
१९१३—१४	९७८४	२९८३
१९१४—१५	७३६८	२७३६
१९१५—१६	१३०६२	४८७१
१९१६—१७	११०९३	४३०४
१९१७—१८	३९९०	२७६५
१९१८—१९	१९१७	ःः१०२

(ञ)

चीड़ वृक्ष

हिमालय चीड़ वृक्ष से भरा हुआ है। चीड़ की लकड़ी से टर्पन्टाइन नामक तेल निकलता है। चार लाख एकड़ पर चीड़ का जंगल है जो कि भारत सरकार के प्रभुत्व में हैं। इस व्यवसाय में लाभ देख कर सरकार ने पन्जाब में

जम्लो तथा संयुक्त प्रान्त में भुवाली नामक स्थान पर तर्पन्टाइन निकालने को कारखाने खोले हैं। १९०७-०८ से भारत में टर्पन्टाइन निम्नलिखित मात्रा में उत्पन्न किया गया।

राल तथा टरपन्टाइन की उत्पत्ति

वर्ष	राल हंड्रड्वेट् में	टर्पन्टाइन-गैलन में
१९०७—०८	४८७०	१६०३६
१९०८—०९	७२३०	२३५९२
१९०९—१०	७७००	२४१०५
१९१०—११	६६७५	१७०५१
१९११—१२	९०४०	२७७५६
१९१२—१३	२०६१०	६०२४९
१९१३—१४	२०२२०	५८५०३
१९१४—१५	२४९६०	७८४८९
१९१५—१६	३४७६०	१११८३५
१९१६—१७	४३८८०	१२५६६३
१९१७—१८	४५९५०	१३६०५२

अभी तक टर्पन्टाइन जरूरत के अनुसार नहीं उत्पन्न हो रहा है। विदेश से भारत में टर्पन्टाइन इस प्रकार मंगाया गया।

चीड़ वृक्ष

सन्	टर्पेन्टाइन की मात्रा गैलन में
१९०७—०८	३३३५००
१९१३—१४	१९३९३७
१९१५—१६	८६७००
१९१६—१७	८००००
१९१७—१८	५००००
१९१८—१९	६५०००

भारतवर्ष के व्यवसायी लोग यत्न करें तो सारे के सारे एशिया की टर्पेन्टाइन सम्बन्धी जरूरतों को पूरा कर सकते हैं। †

(७)

अन्य व्यवसाय योग्य पदार्थों की उत्पत्ति तथा उनका विदेश में जाना

(क)

जूट

भारत की औद्योगिक उन्नति में जूट तथा रुई का बहुत ही अधिक भाग है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के अत्याचारों

---

† इस सारे प्रकरण के लिये देखो।

Hand book of commerceal information for India by C. W. E. Cotton. P. P. 153, 194, 320,

तथा आंग्ल राज्य की कूट नीतियों से चिरकाल तक भारत किसी भी नये उद्योग धन्धे में पैर न बढ़ा सका। धीरे धीरे अंग्रेज़ों ने अपने अधिक रुपयों को भारत में लगाना शुरू किया। और उन्होंने नील के सदृश ही चाय कोयला रबड़ तथा जूट के उद्योग-धन्धों की नींव भारत में रखी। बम्बई के पूंजी-पतियों ने अंग्रेजों के देखा देखी रुई के उद्योग धन्धे को अपने हाथों में लिया और नये नये कारखानों को खोल कर कपड़ा बनाना शुरू कर दिया। इस प्रकार जूट तथा रुई के दो बड़े खम्भों पर भारत की औद्योगिक उन्नति का महल बनाया गया।

आजकल जूट की खेती गङ्गा-ब्रह्मपुत्र-द्वाब, आसाम, कूच बिहार तथा बिहार उड़ीसा के प्रान्त में ही होती है। हर साल नदी के बाढ़ से जमीनों पर खाद पड़ जाती है और यही कारण है कि जूट की उत्पत्ति में किसानों को बहुत खर्चा नहीं उठाना पड़ता है। जूट का पेड़ तीन गज लम्बा होता है। सन् की तरह ही जूटके रेशे निकाले जाते हैं। मार्च से मई तक के दो महीनों में जूट बोया जाता है और जुलाई से सप्तंबर तक काटा जाता है। ३१ मार्च तक सारा का सारा जूट बाजार में पहुंच जाता है। १८७४ से १९१९ तक जूट की उत्पत्ति भारत में इस प्रकार बढ़ी।

जूट

१८१७ से १६१६ तक जूट की उत्पत्ति

वर्ष		जूट की उत्पत्ति में लगी भूमि एकड़ों में	४०० पाउन्ड (आधसेर) के गट्ठों की संख्या
१८७४	...	मालूम नहीं	२७००००००
१६०२	...	,,	६६००००००
१६०६	...	२८७६६००	७२०६६००
१६१४	...	३३५८७००	१०४४३६००
१६१५	...	२?७५६००	७३४०६००
१६१६	...	२७०२७००	८२०५६००
१६१७	...	२७३६०००	८८६४६००
१६१८	...	२५००३८२	६६६०८७७
१६१६	...	२८२१५७५	८४२८०२३

पिछले सालों की अपेक्षया आजकल जूट की खेती ४०० प्र० श० बढ़ गयी है। भिन्न भिन्न प्रान्ता में जूट की खेती इस प्रकार है।

१६१६ में भिन्न भिन्न प्रान्तों में जूट की उत्पत्ति

प्रान्त		भूमि–एकड़ों में	गट्ठे (४०० पाउंडके)
बंगाल	...	२४५८६५५	७५६७८३३
बिहार तथा उड़ीसा		२०३४३०	४६५८५६
आसाम	...	१२००००	२६४५३५
कूचबिहार	...	३६१६०	६६७६८
कुलयोग	...	२८२१५७५	८४२८०२३

जूट की कीमतें दिन पर दिन बढ़ती गयी हैं। १८५१ में जूट का एक गट्ठा १४॥) रु० में मिलता था परन्तु १९०६ में इसी का दाम ५७॥) और १९१९ के अन्त में ६० से ७० के बीच में जा पहुंचा।

कलकत्ता में ४०० पाउन्ड के जूट के गट्ठे का दाम *

महीना	१९१६—१७			१९१७—१८			१९१८—१९		
	रु.	आ.	पा.	रु.	आ.	पा.	रु.	आं.	पा.
अप्रिल	५७	०	०	४८	०	०	४१	०	०
मई	५६	०	०	४८	०	०	३९	०	०
जून	५४	०	०	४६	०	०	३७	०	०
जुलाई	४८	०	०	४०	०	०	४३	०	०
अगस्त	५१	०	०	३५	०	०	५०	०	०
सितम्बर	५८	८	०	३८	०	०	७४	०	०
अक्टूबर	५५	०	०	३७	०	०	७५	०	०
नवम्बर	५५	०	०	३७	०	०	६८	०	०
दिसम्बर	५५	०	०	३७	०	०	७६	०	०
जनवरा	५३	०	०	३७	०	०	७७	०	०
फर्वरी	५२	०	०	३७	८	०	७६	०	०
मार्च	५०	०	०	३८	०	०	७०	०	०

* जूट के प्रकरण की संख्याओं के लिये देखोः—

Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton pp. 103—114.

१९१४ से १९१९ तक भारत के कच्चे जूट का विदेश में जाना।

राष्ट्र		१९१३—१४ गट्ठों में	१९१४—१५ गट्ठों में	१९१५—१६ गट्ठों में	१९१६—१७ गट्ठों में	१९१७—१८ गट्ठों में	१९१८—१९ गट्ठों में
इंग्लैण्ड	...	१६२६०६७	१४८७२४८	१८६६५०१	१४५७२७१	३७९६८०	१२५५०७५
जर्मनी	...	८८६६२८	१६८१७४	......	......	......	.....
अमरीका	...	८५९३६६	४५४२४४	५९७१४५	६९२७९८	५२७५७०	३४२८८२
फ्रान्स	...	४०७१६५	१९१४९२	१६५६७८	२५१०८७	१५७९२०	२४०५९३
आस्ट्रिया हंग्री	...	२५६०७२	६४८८२	......	......	......	......
इटली	...	२११५१२	२३२४३३	३४०१४४	२१५३२५	१३८८३०	१४९१४४
स्पेन	...	११८६१३	१४०७४५	२०१३८५	२११०८०	१९४८८०	७३११३
अन्य राष्ट्र	...	१३७७०३	८९३१४	१५६४७९	१६५१३९	१५८४८०	१६८९०७
कुलयोग — गट्ठ	...	४३०३३२६	२८२८५३२	३३६०६३२	३०२२७००	१५५७३६०	२२२६६१७
कुलयोग — टन	...	७६८४५१	५०५०९५	६००११३	५३६७६८	२७८१००	३९८१४६
कुलयोग — मूल्य-पांउडोंमे		२०५५०९२९	८६०६८०२	१०४२८०२४	१०८५८७३६	४३०२५५९	८४८००५२

विदेशीय राष्ट्र कच्चा जूट भी भारत से खरीदते हैं। लड़ाई से पहिले जर्मनी में ८००००० गट्ठे जाते थे जिनमें से २५०००० गट्ठे आस्ट्रिया लेता था। जर्मनी में जूट का सूत कम्मल गलीचे आदि तैय्यार करने के काम में लाया जाता था। भिन्न २ विदेशीय राष्ट्र भारत से कच्चा जूट जितनी राशि में मंगाते हैं उसका ब्योरा पृ० २६८में दिया जा चुकाहै।

जूट के कारोबार में भारतवर्ष संसार के सब देशों से आगे है। भारतवर्ष तथा स्काट्लैंड दोही देश हैं जिनमें जूट के कारखाने बहुतायत से हैं। पहिला जूट का कारखाना रिशरा नामक स्थान में १८५५ में खोला गया था। इसके चार साल बाद बारंगर में चार कारखाने खुले। १८७५ तक जूट का उद्योग धन्धा दिन पर दिन उन्नति करता गया। १८७५ में जूट की चीज़ों की उतनी मांग न थी जितनी कि चीजें तैय्यार की गयीं। इससे कुछ कुछ जूट के व्यवसाय को धक्का पहुंचा। परन्तु इसके बाद से १६२० तक जूट का कारोबार दिन पर दिन उन्नति करता गया। आजकल जूट के भारतीय कारखाने ३००० टन जूट की चीज़ें तैय्यार करते हैं। १८७० में ५ मिल थीं परन्तु आजकल इनकी संख्या ७६ तक जा पहुंची है। निम्नलिखित ब्योरा जूट के व्यवसाय पर अच्छी तौर पर प्रकाश डालता है।

१८८० से १९१९ तक जूट के कारखाने

वर्ष	काम करती हुई मिलें	लाख रुपयों में पूंजी	संख्या १००० में मनुष्य		
१८७९-८० से १८८३-८४	२१ (१००)	२७०·७ (१००)	३८·८ (१००)	५·५ (१००)	८८·० (१००)
१८८४-८५ से १८८०-८९	२४ (११४)	३४१·६ (१२०)	५२·७ (१३६)	७·० (१२७)	१३८·४ (१५७)
१८८९-९० से १८९३-९४	२६ (१२४)	४०२·६ (१४९)	६४·३ (१६६)	८·३ (१५१)	१७२·६ (१९६)
१८९४-९५ से १८९८-९९	३१ (१४८)	५२२·१ (१९३)	८६·७ (२२३)	११·७ (२१३)	२४४·८ (२७८)
१८९९-१९०० से १९०३-०४	३६ (१७१)	६८०·० (२५१)	११४·२ (२९४)	१६·२ (२९५)	३३४·६ (३८०)
१९०४-०५ से १९०८-०९	४६ (२१९)	९६०·० (३५५)	१६५·० (४२५)	२४·८ (४५१)	५१०·५ (५८०)
१९०९—१०	६० (२८६)	११५१·० (४२५)	२०४·१ (५२६)	३१·४ (५७०)	६४५·९ (७३४)
१९१० –११	५८ (२७६)	११५०·० (४२४)	२१६·४ (५५८)	३३·१ (६०२)	६८२·५ (७७६)
१९११—१२	५९ (२८१)	११९३·० (४४१)	२०१·३ (५१९)	३२·९ (५९८)	६७७·५ (७७०)
१९१२—१३	६१ (२९०)	११९९·५ (४४२)	२०४·० (५२५)	३४·० (६१८)	७०८·६ (८०५)
१९१३—१४	६४ (३०५)	१३०९·२ (४८६)	२१६·३ (५५७)	३६·० (६५५)	७४४·· (८४६)
१९१४—१५	७० (३३३)	१३९४·३ (५१५)	२३८·३ (६१४)	३८·४ (६९८)	७९५·५ (९०४)
१९१५—१६	७० (३३३)	१३२२·५ (४८८)	२५४·१ (६५५)	३९·९ (७२५)	८१२·४ (९२३)
१९१६—१७	७४ (३५२)	१४०२·४ (५१७)	२६२·५ (६७६)	३९·६ (७२०)	८२४·३ (९८७)
१९१७—१८	७६ (३६२)	१४२८·४ (५२८)	२६६·० (६८५)	४०·६ (७३८)	८३४·० (९४८)
१९१८—१९	७६ (३६२)	१४४७·२ (५३६)	२७०·० (७१०)	३९·३ (७१०)	८३३·७ (९४६)

१६१६ में भारत सरकार ने कलकत्ता में जूट कमिश्नर नियत किया। इस का मुख्य काम यह था कि डन्डी के कारखानों के लिये भारत से जूट खरीद कर भेजा करे। १६१७ में जूट कन्ट्रोलर नियत किया गया। इसने नियत दाम पर मित्रराष्ट्रों के लिये जूट का सामान खरीदना शुरू किया। फल यह हुआ कि बाईस करोड़ पच्चास लाख रुपये को मित्रराष्ट्रों को बचत हुई। परन्तु भारत को तो यह नुक्सान हुआ ही। जूट कन्ट्रोलर ने १६१५ से १६१६ तक जो माल मित्रराष्ट्रों के लिये खरीदा उसका ब्योरा इस प्रकार है।

भारत सरकार का जूट के माल को खरीदना

१६१५-१६ से १६१८-१६ तक

वर्ष	बोरे	बोरों का कपड़ा
१६१५—१६	२७२००००००	४१००००००
१६१६—१७	४०३००००००	१४८००००००
१६१७—१८	४६८००००००	२६७००००००
१६१८—१६	२०५००००००	२५७००००००
कुलयोग	१३७८००००००	७१३००००००

यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि संसार में स्काटलैंड तथा भारतवर्ष ही जूट व्यवसाय के केन्द्र हैं। १६१४ में

जूट

भारत सरकार का अनुमान था कि संसार के सारे जूट सम्बन्धी पदार्थों का ५३ प्र० श० भारतवर्ष में और १३ प्र० श० डन्डी में तैय्यार होता है। १८१८ तथा १९१९ में भारतीय जूट मिलों का कारोबार बहुत ही अधिक बढ़ गया। १९२० के ३१ मार्च तक जूट का माल भारत के संपूर्ण निर्यात पदार्थों का १६ प्रति शतक था। निर्यात में कच्ची रुई का दर्जा ही जूट से ऊंचा था।

१९१० से १९२० की मार्च तक जूट के माल का विदेश में जाना†

वर्ष	सूत आध सेर या पाउन्ड में	बोरे का कपड़ा वर्ग गज़ मे	बोरों की संख्या	दाम पाउन्डोंमें
१९१०-१४	२३४०००	९६९९७१०००	३३९१२२०००	१३४९९०००
१९१५	५१०००	१०५७३२४०००	३१ ७५६५	१७२१३०००
१९१६	८१७०००	११९२२५७०००	७९४१५३	२५३१९०००
१९१७	३३९५०००	१२३०९५१०००	८०५०९५	२७७८१०००
१९१८	४०२५०००	११९६८२६०००	७५८३९१	२८५६२०००
१९१९	५११५०००	११०३२११०००	५८३०९६	३५१०२०००
१९२०	३६०६०००	१२७५०५५०००	३४[illegible]७२९	३२३४४०००

संसार के भिन्न भिन्न देश भारत से बोरों का कपड़ा निम्नलिखित प्रकार खरीदते हैं।*

† Capital. November. 25. 1920. p. 1260.

* Capital. November. 25. 1920. p. 1260.

विदेश में बोरों के कपड़ों का जाना

राष्ट्र	१६१६ हजारगज़ो मे	१८१८ हजार गजोंमें	१९१९ हजार गजोसे	१९२० हजार गजोंमें
अमरीका	६६०५५४	७९७१४५	६३९५८२	८१८७८७
इंग्लैण्ड	१८१६३५	१०३४३३	१२३६२८	१००१०१
आस्ट्रेलिया	२३९७३	२५७२४	२१६२१	१४१३३
कनाडा	६३०८४	६१९३३	५९३६८	३९२५३
सीलोन	२३९६	११६४	१९७७	×
ईजिप्ट	२९८०	६०९०	४४७१	८८०
न्यूजीलैण्ड	३०३३	३३८४	५११३	×
दक्खिनी अफ्रीका	१००२	५५४१	२९३७	×
अन्य आंग्ल-उपनिवेश	१५७६	९६३	१९१५	×
फ्रान्स ...	३३०३३	९१५७६	७५८४६	३०२६३
जर्मनी ...	×	...	...	...
रूस ...	१९१८४	२२३८	..	...
चीन ...	५३१७	४११९	३७०५	४१७१
जापान ...	२४५	२८८६	१९४५	×
टर्की ...	६७	१५५	×	×
अर्जेन्टाइन ...	१८०२६९	७५३५४	१३५१६८	२३०५३२
चिल्ली ...	११५६	५९७	३२९१	×
ईक्वेडार ...	१९५	५०	१२८८	×
पेरू ...	६६२	१४४०	३५२४	×
उर्गुई ...	५६९२	३१७६	६७८०	१७१४४
फ़िलीपाइन्ज...	२८४८	४१०२	४०८४	×
हवाई द्वीप ...	१७६०	११०५	३८५०	×
कुल योग ...	११९२२५७	११९६८२६	११०३२११	१२७५०५५

जूट

बोरे के कपड़ों के सदृश ही बोरे निम्नलिखित संख्या में विदेशीय राष्ट्रों में गये।

१९१६ से १९२० तक बोरों का विदेश में जाना †

राष्ट्र		१९१६ हजारों की संख्या में	१९१८ हज़ारो की संख्या में	१९१९ हज़ारो की संख्या में	१९२०
अमरीका	...	४४०९५	४५७८३	४६४४८	४३०३४
इंग्लैण्ड	...	२९७३९३	३०३१३७	१३५०५८	५८३१३
आस्ट्रेलिया	...	५९०३८	६६७४६	७८८७६	२९५२२
ब्रिटिश गिनाना	...	११९८	१३४०	६९९	+
कनाडा	...	८६१	५७४	...	+
सीलोन	...	६५४	१०१०	१६४५	+
ईजिप्ट	...	१५२१८	७७०१२	८२२९३	+
हांगकांग	...	४२९७	९१३५	६६६८	+
मारीशस	...	३७९८	२०९४	२७८३	+
न्यूजीलैंड	...	९५७७	६७१०	८५०६	+
दक्षिणी अफ्रीका	...	२००१०	३०९०७	३३२१०	+
स्टेट सैटलमेन्टस	...	१०४३१	६०७२	७०३६	+
पश्चिमी भारतीयद्वीप	...	१४३२	४५३९	२३७९	+
अन्य ब्रिटिश उपनिवेश	...	३३६३	३५९३	४०६६	+
बल्जियम	...	+	+	+	+
फ्रान्स	...	८५६८९	१२२७६	६२९०	५११९
जर्मनी	...	...	...	...	+

† Capital. November 25. 1920. P 1261.

१९१६ से १९२० तक बोरों का विदेश में जाना

राष्ट्र		१९१६ हजारों की सख्या मे	१९१८ हजारों की संख्या में	१९१९ हज़ारों की संख्या में	१९२०
इटली	...	...	१००००	७४९६	+
नार्वे	...	७५	११५०	१७४७	+
रूमानिया	...	७५०	...	...	+
पोर्तुगीज़ पूर्वीय अफ्रीका		३१४२	१६१६	२३६८	+
मैडागास्कर	...	१०१२	७४६	१५३५	+
चीन	.	१७३१४	७६९९	४६१०	१५७७३
इंडोचीन	...	१११८४	१२६०५	२३२३७	१२३७६
जापान	...	७०७८	१८३७६	१६६८६	२१३२२
जावा	..	१९६३९	२०७१८	२२४२७	१७३९८
स्याम	...	१२८२८	१४४६०	६०४८	+
टर्की	...	२२१	३३	२०२	+
अर्जेन्टाइन	...	२९१२	१८५२६	७९९०	४६६२
चिल्ली	...	३७५१७	४३७१३	४३७०४	१५३८२
कूवा	...	१८१०६	२२०१४	१७०८०	+
हवाई द्वीप	...	७०८३	५६८१	५५७६	+
कुलयोग	...	७९४१५३	७५८३९१	५८३०९६	३४२७२९

१९२० के अन्तिम दिनों में जूट् के बाजार मे भयंकर उलट पुलट हो गयी। अक्टूबर चौदह से दिसम्बर ९ तक पौने दोही मास में जूट् के हिस्से कहीं से कहीं जा पहुंचे। आल्वियन ६००। से ४२५। ८, अलक्ज़न्ड्रा ८०० से ६६८। ८,

अलायन्स ८६६।८ से ६२६, ऐंग्लो इन्डिया ५३८ से ४२०, आकलैण्ड ४८७।८ से ३३६, वाली ३३२ से २७७।८, बारंगर १८६ से १६५, बाल्दीयर ७१५ से ५८८, वज वज ७६८ से ५४३, कैलेडोनियम ८२६।८ से ६७० पर जा पहुंचा।

जूट् के बाजार के गिरने के कारण यह आमतौर पर प्रश्न उठा हुआ है कि जूट के कारोबार का भविष्य क्या है? कलकत्ता के व्यापारियों तथा व्यवसायियों का यह आमतौरपर ख्याल है कि अभी डेढ़ साल तक जूट् का कारोबार मन्दा रहेगा। क्योंकि एक तो अगले साल जूट् की फसल कम होगी। दूसरे योरुप की उथल पुथल अभी पांच छै महीनों तक सुधरती नहीं दीखती। तीसरा अर्जेन्टाइन रिपब्लिक बोरों का बड़ा खरीदार है। दक्खिनी अमरीका की फसलों के बिगड़ जाने से वहां बोरों की मांग नहीं है। चौथा उत्तरी अमरीका में बोरे काफीराशि में मौजूद हैं। पांचवां अभी सारे संसार में कारोबार शिथिल हो रहा है और उसके शीघ्र ही सुधरने की कोई आशा नहीं है। इन सब बातों को सामने रखते हुए यह कहना ही पड़ता है कि अभी जूट् का भविष्य कुछ समय तक अच्छा नहीं मालूम पड़ता है। इस समय जूट् के हिस्सों का जो दाम गिरा है उसमें भारत सरकार की विशेष तौरपर कारस्तानी है। १६२० के मार्च में जब भारत सरकार ने विदेशीय हुन्डी २ शि० ११ पैन्स पर बेंचनी शुरू

की थी उसी समय बम्बई के लोगों ने शोर मचाया था कि इसमें कुछ बेईमानी है। वैबिंगटन स्मिथ की 'सिक्के की नीति' के सम्बन्ध में जो समिति बैठी थी उस पर भी लोगों को सन्देह था, कि कुछ दाल में काला अवश्य है। इस समिति के चंगुल में भारत का गला देने के लिए जब भारत सरकार ने दस रुपये की गिन्नी करके लोगों के जेबों से सोना घसीटना शुरू किया, तब भी बहुत से लोगों का यही ख्याल था कि सरकार का दिल साफ नहीं मालूम पड़ता। इसी साल के मार्च महीने में रिवर्स कौन्सिलस बेच करके सरकार ने विदेशी हुन्डी की दर २ शि० ११ पैन्स करदी। इससे भारत का कच्चा माल बाहर जाना रुक गया और वह सब के सब व्यापारी चौपट हो गये जिन्होंने कि भारत का कच्चा माल विदेश में भेजा था। २ शि० ११ पैन्स की दर पर इंग्लैण्ड से माल मंगाना सस्ता पड़ता था अतः अरबों रुपयों के आर्डर भारत से इंग्लैण्ड में गये। इंग्लैण्ड ने कारस्तानी यह की कि हुन्डी की दर के साथ ही साथ अपने माल का दाम भी चढ़ा दिया। इससे फुटकर माल मंगाने वाले बहुत नुकसान में रहे। इसके बाद विदेशी हुन्डी का भाव गिरते गिरते १ शि० ४ पैन्स पर जा पहुंचा। २ शि० ११ पैन्स को आंखों के सामने रख करके जिन व्यापारियोंने विलायत से माल मंगाया था उनका माल भारत में तब आकर

पहुंचा जब कि विदेशीय हुन्डी का भाव १ शि० ४ पैन्स हो गया था। अब क्या था? उन विचारे व्यापारियों के आंखों के सामने अंधेरा छा गया। भयंकर विपत्ति के बादल उनके सिर पर मंडराने लगे। बिचारे फुटकर मंगाने वालों ने तो सरकारी सामुद्रिक गोदामों से अपना माल ही न छुड़ाया और ज़मानत के तौर पर बैंकों के पास जो धन जमा किया था उसको खोजाने दिया; बड़े २ व्यापारियों में से कुछ एक ने तो अपना दिवाला ही निकाल दिया और जिन बिचारों को अपने तन ढांकने की परवाह थी उन्होंने सर्वस्व बेच करके किसी तरीके से उस माल को छुड़ाया। जिस जिस व्यापारी के पास जिस जिस कम्पनी के हिस्से थे उसने उनको बेंच कर अपनी जान छुड़ाई और सरकारी गोदामों से विलायती माल छुड़ाया। दुःख का विषय तो यह है कि कलकत्ते के बैंकों ने भी इस विपत्ति में उन व्यापारियों का हाथ न बंटाया। अच्छी कम्पनियों के हिस्से की जमानत पर भी उन्होंने यथेष्ट धन उधार पर न दिया। इससे भारतीय व्यापारियों का हिस्सों के बेचने के सिवाय और कोई चारा न था। भारत सरकार से कलकत्ते की व्यापारीय चैम्बर ने और पञ्जाब की व्यापारीय चैम्बर ने भयंकर तूफान से बचाने के लिए सहायता मांगी, खुशामदें की और हज़ारों प्रकार की मिन्नतें की। परन्तु सरकार का कठोर दिल ज़रा भी न पिघला। उसने अन्तिम उत्तर दिया

कि "हमारे वश में कुछ भी नहीं है। हम को अब अनुभव हो गया है कि व्यापार व्यवसाय तथा सिक्के के मामले में हस्तक्षेप करना ठीक नहीं है।" क्या ही कठोर उत्तर है? हाथी डुबाऊ पानी में पहिले तो किसी को धक्के देकर के गिराओ, और जब वह डूबने लगे और प्राण रक्षा के लिए मिन्नतें करें तो यह उत्तर दो, "अहा! अब मैं समझा कि दूसरों के मामले में हाथ लगाने से कैसी भयंकर बात हो जाती है। भैइया! अब मैंने आज से कसम खायी कि किसी के भी मामले में हाथ न लगाऊंगा।" ठीक यही मामला। यहां पर भी है। उपरिलिखित लाभदायक कम्पनियों के हिस्सों का दाम इसलिए नहीं गिरा है कि उनमें कुछ भी दोष है। वह जैसी पक्की कम्पनियां पिछले साल थीं वैसे ही आज है। दुख में पड़े हुए भारत के व्यापारी इन हीरे जवाहरातों को पानी के दाम में बेंच रहे हे। अच्छी अच्छी कम्पनियों के हिस्सों का दाम से भी नीचे दाम गिरना इस बात का सूचक है कि सरकार ने अपनी कुटिल आर्थिक नोति से कितने घरों का खून कर दिया है। क्या इन्हीं बातों पर सरकार भारतीयों का सहयोग चाहती है? क्या भारत के लोग सरकार का सहयोग इसी लिए करें कि उनको और भो चौपट किया जा सके? जहां देखो वहां ही कुटिलनीति का राज्य है। क्या अब भी हम लोग सोये पड़े रहेंगे? क्या अब भो भारत के व्यापारी व्यवसायी सरकार की कारस्तानियों को न समझेंगे?

(ख)

रुई

भारत के बाह्य व्यापार में जूट तथा रुई का बहुत ही अधिक भाग है। विदेश में जानेवाली कच्ची चीज़ों का ३३ फी० श० एक मात्र रुई ही है। भारत में रुई का दाम इंग्लैंड की जरूरतों पर ही निर्भर करता है। इंग्लैंड अपनी रुई सम्बन्धी आवश्यकताओं को भारत के सदृश ही मिश्र तथा अमरीका से भी पूरा करता है। जिस साल मिश्र तथा अमरीका में रुई की खेती अच्छी न हो और इंग्लैंड की जरूरतें पूर्ववत् ही बनी हों, उस साल भारत में रुई का दाम बहुत ही अधिक चढ़ जाता है।

साम्राज्य कपास समिति (The Empire Cotton Committee) के मन्त्री प्रोफेसर टाड्ड का अन्दाज़ है कि संसार में कुल रुई प्रति वर्ष २६५००००० गट्ठे उत्पन्न होती है। इसमें एक मात्र अमरीका १५०००००० गट्ठा रुई उत्पन्न करता है। इस अधिक राशि के कारण ही रुई के दामों पर उसका बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ता है। अमरीका में रुई के कारखानें भी हैं जो कि स्वदेशके लिये जरूरी सामान तैय्यार करते हैं। ५७६६००० गट्ठा रुई अमरीकन कारखानों में ही खर्च हो जाती है।

कुछ वर्षों से अर्थशास्त्रज्ञ लोग कह रहे हैं कि संसार में रुई के सामान की मांग दिन पर दिन बढ़ती जाती है। अभी तक जितनी रुई उत्पन्न होती है, वह मांग से कम है।

आजकल भारत में रुई की खेती इस प्रकार है।

१९१५-१६ से १९१८-१९ तक रुई की खेती तथा ४००

	१९१५—१६		१९१६ —
	उत्पत्ति एकड़ों में	उत्पत्ति गट्ठों में	उत्पत्ति एकड़ों में
बम्बई (+ सिन्ध तथा देशी रियासतें) ...	५१६६०००	१०९९०००	७२७७०००
मध्य प्रान्त तथा बरार ...	४०६१०००	११०६०००	४४०२०००
हैदराबाद ...	२९६४०००	४५००००	३२०००००
मद्रास (+ देशी रियासतें)	२०६१०००	२४५०००	२१६८०००
मध्य भारत रियासतें ...	९९९०००	२१६०००	१४१९०००
पन्जाब (+ देशी रियासतें)	९०२०००	१९५०००	११६३०००
संयुक्त प्रान्त (+ रामपुर)	८३४०००	२६२०००	११८५०००
राजपूताना+अजमेर मारवाड़ा	२६७०००	६४०००	३८१०००
बर्मा ...	१८७०००	२७०००	२२३०००
बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा तथा आसाम ...	१८७०००	५६०००	१७३०००
मैसूर ...	९२०००	१४०००	१२६०००
सीमा पश्चिमी प्रान्त ...	२६०००	४०००	७८०००
कुल ...		००	२१७४५०००

रुई

पाउन्डों (= लगभग पक्के पांच मन) के गट्ठों में उत्पत्ति

—१७	१९१७—१८		१९१८—१९	
उत्पत्ति गट्ठों में	उत्पत्ति एकड़ों में	उत्पत्ति गट्ठों में	उत्पत्ति एकड़ों में	उत्पत्ति गट्ठों में
१७२४०००	८९७८०००	१६९५०००	६१५००००	७६६०००
६९१०००	४५८२०००	५९१०००	४२११०००	७८९०००
५०००००	३४५१०००	४५००००	२४०६०००	३५००००
३४७०००	२५९२०००	४५००००	३११८०००	६३३०००
३११०००	१४५४०००	११६०००	१२३३०००	२१६०००
३३५०००	१८०००००	३०७०००	१५४१०००	४९३०००
३०९०००	१३१५०००	१९८०००	८६३०००	१७५०००
१६३०००	५०५०००	६८०००	२८००००	६९०००
४००००	२४७०००	४८०००	३४७०००	७८०००
४७०००	१७२०००	४९०००	१८५०००	६१०००
१६०००	१५४०००	२३०००	१२४०००	३१०००
६०००	३८०००	५०००	३९०००	१००००
४४८९०००	३५१८८०००	४००००००	२०४९७०००	३६७१०००

रुई

भारत की रुई इंग्लैण्ड आदि विदेशीय राष्ट्र खरीदते हैं और उसके कपड़े आदि बनाकर चौगुने दाम में उसी को भारत में बेचते हैं। भारत से जो रुई विदेश में जाती है उसका व्यौरा इस प्रकार है।

विदेशीय राष्ट्रों का भारत की रुई को खरीदना

विदेशीय राष्ट्र	१६१३—१४	१६१४—१५	१६१५-१६	१६१६—१७	१६१७—१८
	हंड्रड्वेट्	हंड्रड्वेट्	हंड्रड्वेट्	हंड्रड्वेट्	हंड्रड्वेट्
जापान	४८१७५६०	४४५४६३१	५६१७६६३	६१५३५३१	५१८८५७०
जर्मनी	१६८८०७०	१२३६४७२	......	......	......
बैल्जियम	११३३०८३	७६४३६६	......	......	......
इटली	८५८५७६	१३५४६०२	११२४१०६	६६६३६१	५५३६३०
आस्ट्रिया हंग्री	७४७०४१	५८५७३५	......	......	......
फ्रान्स	५२४२६४	५५२२७३	२०५४५७	२७०८६०	१६०२५७
इग्लैण्ड	३८४६१४	७०७१७६	८३३६२८	८२५१६८	११३७५००
स्पेन	१६६६३३	२२४६६४	२३६०२५	२५४६७७	१२४४३
हांगकांग	१०६४८१	१०२१६५	८४७७१	५५६६४	......
चीन	८४७०७	१६४०२६	२६०००४	२६३२४८	८८६२८
हालैण्ड	२८६२२	१७६६५	२०३०	२५८६	......
अमरीका	२६४८२	३०८०६	२४३८४	१४४२०	३१५३०
रूस	२६३२७	५४६६१	६३७	२७६७४	४२६११
अन्य राष्ट्र	३६८५२	८३०४५	११५३०२	४७६६०	६२२३६
कुलयोग	१०६२६३१२	१०३४६०४५	८८५३६६७	८६१२३०२	७३०८१०५

१९१३ से १९१७ तक जापान ने भारत की कच्ची रुई बहुत ही अधिक खरीदी। युद्ध बन्द होने के बाद उसका कारोबार इस ओर कुछ कुछ घट गया। इंग्लैण्ड रुई के व्यापार के मामले में बहुत ही सावधान है। भारत में उसीका रुई के कपड़ों में एकाधिकार है। जापान ने जर्मनी के सदृश ही भारत के बाजार को काबू करने का यत्न किया है। स्वाभाविक ही है कि अंग्रेज़ पूंजीपति जापान से इसका बदला लेना सोचें और किसी एक नये भयंकर युद्ध में एशिया को फेंकें।

इसी १९२१ के पहिले महीने की बात है कि रूटर ने तार दिया कि कोई विदेशीय फर्म ओल्डहम तथा मोस्ले के रुई के सारे के सारे कारखानों के खरीदने का यत्न कर रही है। लंकाशायर् के रुई के कारखानों के खरीदने की कोशिश तो निष्फल हुई परन्तु ओल्डहम तथा मोस्लेके कारखाने एशिया के एक राष्ट्र के हाथ में पड़ गये। शुरू शुरू में ख्याल था कि बम्बई वालों ने यह साहस किया है। परन्तु अब पोल खुली है कि उसमें जापान की कारस्तानी थी। जापान ने बम्बई के एक फर्म के द्वारा ओल्डहम तथा मोसले के कारखानों को खरीदा और उन कारखानों के सब कलों तथा पुर्जों को जापान पहुंचा दिया। जापान में रुई के कारखाने खुलें और अंग्रेज़ों को भारत की लूट से वंचित रहना पड़े

यह अंग्रेज़ों को कब सहन हो सकता है। यदि इसी ढ़ंगपर जापान साहस करता रहा तो इंग्लैण्ड वाले उससे लड़ाई किये बिना न मानेंगे। अखबारी दुनियां अंग्रेजों के पास है। यह लोग इसको स्वतन्त्रता की लड़ाई का नाम देकर जापान को बदनाम करेंगें और भारतीयों को उल्लू बना कर लड़ाई में कटवांयगे। इस महायुद्ध में यही हो चुका है और आगे भी यही होगा यदि भारतीय सावधान न हो जांयगे।

यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि भारत के उद्योग-धन्धे जूट तथा रुई के कारखानों पर खड़े हैं। जूट के कारखानों के सदृश ही रुई के कारखाने भी आजकल कल लाभ पर चल रहे हैं। फरक केवल यही है कि पहिले में विदेशियों की और दूसरे में भारतीयों की पूंजी लगी है। रुई के व्यवसाय पर आगे चलकर विस्तृत तौरपर प्रकाश डाला जायगा। इसलिए इस प्रकरण को यहां पर छोड़ देना ही उचित प्रतीत होता है।†

---

† Handbook of cmmercial information for India by C. W. E. cotton. P.P. 114-125.

(ग)

रेशम

भारत में मुख्य तौर पर तीन प्रदेश हैं जहां कच्चा रेशम उत्पन्न किया जाता है।

(१) मैसूर तथा कोलीगाल

(२) मुर्शिदाबाद, माल्दा, राजशाही तथा बीरभूम

(३) काश्मीर तथा जम्मु।

इन उपरिलिखित तीन स्थानों के साथ साथ छोटा नागपुर उड़ीसा तथा मध्यप्रान्त में भी कच्चा रेशम उत्पन्न होता है। मैसूर में रेशम का कारोबार टीपू सुलतान के समय से शुरू हुआ। उसीने चीन से रेशम के कीड़े मंगाये थे। फरांसीसी तथा जापानी कारीगरों के सहारे मैसूर तथा बंगाल में भी कच्चा रेशम उत्पन्न करने का यत्न किया जा रहा है। कश्मीर में रेशम के व्यवसाय पर रियासत का एकाधिकार है। रियासत को इस एकाधिकार से ७०००० पाउन्ड सालाना आमदनी है। कश्मीर में २००००० पाउन्ड (तोल) कच्चा रेशम उत्पन्न होता है और सबका सब विदेश में भेज दिया जाता है। भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में रेशम किस प्रकार उत्पन्न होता है इसका ब्योरा इस प्रकार है।

१९१६ में भारत में रेशम की उत्पत्ति

प्रान्त		राशि–तोल के पाउन्डों में
मैसूर	...	११५२०००
बंगाल	...	६००००
मद्रास	...	४०००००
कश्मीर	...	९६०००
वर्मा	...	१५०००
आसाम	...	१२०००
पञ्जाब	...	१८००
कुलयोग	...	२२७६८००

दुःख का विषय है कि भारत का बहुतसा कच्चा रेशम विदेश में भेज दिया जाता है। मुख्य तौरपर यह फ्रान्स तथा इंग्लैण्ड में ही जाता है। कभी कभी इटली तथा अमरीका भी कच्चा रेशम भारत से मंगा लेते हैं। परन्तु उसकी मांग स्थिर नहीं है।

भारत मेंकच्चा रेशम बहुत राशि में उत्पन्न किया। जा सकता है। यदि इस ओर कोई यत्न करे तो उसको पर्य्याप्त सफलता मिल सकती है। परतु यह तो विदेश में भेज दिया जाता है।

कच्चे रेशम का विदेश में जाना*

पदार्थ	१९१३	१९१४	१९१५—१६	१९१६—१७	१९१७—१८	१९१८—१९
	पाउन्डो मे	पाउन्डो मे	पाउन्डो मे	पाउन्डों मे	पाउन्डो मे	पाउन्डो में
कच्चा रेशम	१६०२२२	८२७१२	१२५१६६	२१८६३६	१६१५१५	२६०६८६
चशम	६०६०७७	३४७७५४	७६३१२०	७६६०३८	४२८३२३	५५१२६६
कोकून	१३३७८६	८५८१६	३४४५१७	५२६४२६	१८५६४६	११२६८०

* Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton P, P. 207—309.

इस ब्योरे में तोल का पाउन्ड है न कि मूल्य का।

(घ)

ऊनकी उत्पत्ति तथा रफ़्तनी

भारत में कई प्रकार की ऊन होती है। कम्मल, गलोचा, रंग आदि बनने के लिये ही ऊन भारत से बाहर भेजी जाती है। आस्ट्रेलिया तथा योरुप के मुकाबले भारत की ऊन बहुत रद्दी है। बीकानेर की ही ऊन ऐसी होती है जो कि कपड़े बनाने के काम में आसकती है। वह भो योरूप की ऊन के सामने नहीं थमतो है। भारत की एक भेड़ से प्रति वर्ष एक सेर ऊन निकलती है। परन्तु आस्ट्रेलिया में प्रति भेड़ ३½ सेर के लगभग ऊन उत्पन्न होती है। भारत में ३०००००० सेर के लगभग ऊन की सालाना उपज है। ऊन के व्यापार का मुख्य स्थान पंजाब में हिसार जिला, और संयुक्तप्रान्त में गढ़वाल, अल्मोड़ा तथा नैनीताल, है। इसी प्रकार सिन्ध, बिलोचिस्तान, तथा बीकानेर भी ऊन के लिये प्रसिद्ध हैं। भारत के दक्खिन में खान्देश की काली ऊन, सिन्ध की सफेद ऊन, और गुजरात काठियावाड़ की ऊन का व्यापार अच्छी उन्नति पर है। मैसूर, वैलरी, कर्नूल तथ कायम बेतूर भी ऊनके लिये प्रसिद्ध हैं।

अफगानिस्तान की ऊन बहुत अच्छी होती है। व्यापारी लोग काली तथा सफेद ऊन को एक साथ मिला देते हैं इस से उसका यथोचित दाम नहीं मिलता है। करांची से ही

यह ऊन विदेश में जाता है। अफगानिस्तान तथा मध्य एशिया से पशम भी बहुतायत में भारत के अन्दर आता है। क्वेटा, शिकारपुर, अमृतसर तथा मुल्तान ही सीमा प्रान्तीय ऊन तथा पशम में और दुशाले, लोई तथा पट्टू में व्यापार करते हैं। तिब्बत से भी कुछ कुछ ऊन भारत में आती है। दार्जिलिङ्ग हिमालयन रेल्वे की टीस्टाघाटी पर स्थित कालिंपांग तथा अवध रुहेलखण्डरेल्वे पर स्थित टनकपुर शहर में ही तिब्बती ऊन का व्यापार होता है। पन्जाब तथा संयुक्तप्रान्त की ऊन की मिलें आस्ट्रेलिया से भी ऊन मंगाती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत की ऊन कपड़ों के बिनने के काम में नहीं आसकती है। सब से पहिले पहिल १८३४ में भारत से ऊन बाहर गयी जो कि ७०००० पाउन्ड से अधिक न थी। दो वर्ष के बाद यही संख्या १२००००० पाउन्ड तक जा पहुंची। उसके बाद से लड़ाई शुरू होने तक भारत की ऊन विदेश में दिन पर दिन अधिक गयी। लड़ाई के दिनों में भारत सरकार को सैनिकों के लिये ऊनी कपड़ों की जरूरत थी। इसी उद्देश्य से भारत सरकार ने १९१५ की १५ जनवरी को भारत की ऊन को विदेश में जाने से सर्वथा ही रोक दिया और इस प्रकार भारत के ऊन व्यवसाय को अच्छी उत्तेजना दी। महायुद्ध के कारण योरूप में भी ऊनी कपड़ों की इतनी अधिक जरूरत थी कि भयंकर निर्यात कर

लगते हुए भी भारत का ऊन विदेश में चला ही गया। १६१६ की अप्रैल में भारत-सरकार ने अमरीका में ऊन का भेजना बिल्कुल बन्द कर दिया और इंग्लैण्ड के लिये ऊन का भेजना पूर्ववत् जारी रखा। इससे ऊन की कीमत कम हो गयी। ऊनकी रफ़्नी जहाज़ों की कमी के कारण अभी तक पूर्वावस्था को नहीं पहुंच सकी है। १६१३-१४ से १६१६ तक भारत का ऊन विदेश में कितनी राशि में गया इसका व्यौरा इस प्रकार है।

ऊन का विदेश में जाना

वर्ष	निर्यात	पुनः-निर्यात	कुलयोग	
	राशि—पाउन्ड या आध सेर	राशि—पाउन्ड या आध सेर	राशि—पाउन्ड या आध सेर	मूल्य—पाउन्ड मे
१६१३—१४	४८६२२०६१	१०२४५५३८	५६१६७५६६	२०००१५६
१६१४—१५	४४६१०२८७	६६२३४३३	५४५३३७२०	१६१३३२६
१६१५—१६	६५०२३७५२	१६८४२०३७	८१८६५७८६	३२०८७६१
१६१६—१७	४८८२६८४०	१३१२०८८१	६१६५०७२१	३२६२१७५
१६१७—१८	४२५६८४६३	१२८१७१८६	५५४१५६८२	३४१४७७३
१६१८—१६	४७३७६१६३	१५६६२०७६	६३०३८२२६	४५६०१२८

ऊन की उत्पत्ति तथा रफ़्नी

भारत के ऊन का सब से बड़ा खरीदार इंग्लैण्ड है। इस में सन्देह नहीं है कि तिब्बत की ऊन कुछ कुछ जर्मनी फ्रांस तथा अमरीका में भी युद्ध से पहिले जाती रही है।

छोटे व्यापारी लोग ही भेड़ों के मालिकों से ऊन इकट्ठी करते हैं। यह लोग ऊन छांटने से छै महीने पहिले ही भेड़ों के मालिकों को रुपया अगाऊ दे देते हैं और फसल पर ऊन खरीद लेते हैं और बड़े व्यापारी के हाथ बेच देते हैं। बड़े व्यापारी ऊन को विदेश में बिकने के लिये भेज देते हैं।

१९१८ के अन्त में ब्रिटिश भारत के अन्दर छै बड़ी बड़ी ऊन की मिलें थी इनमें ४०९८० तकुए तथा १३०६ करघे चलते थे। मैसूररियासत में भी एक उनका कारखाना है जिसमें २११४ तकुए तथा ४५ करघे चलते हैं। उपरले छै कारखानों में तीन कारखाने सब प्रकार का ऊनी माल बनाते हैं। शेष कारखाने केवल कम्मल तथा पट्टू ही बनाते हैं।

१८५१ की प्रदर्शनी से योरूप में भारत के गलीचों की मांग बहुत ही अधिक बढ़ गयी। ऊनी, सूती, रेशमी ऊनी, इत्यादि कई प्रकार के गलीचे होते हैं। पन्जाब में अमृतसर इस व्यवसाय का केन्द्र हैं। वहां लगभग २०० करघे चल रहे हैं। मुलतान, जयपुर, बीकानेर, आगरा, मिर्जापुर, अलौर आदि नगर भी गलीचों के लिये प्रसिद्ध हैं। भारत से गलीचे तथा रंग विदेश में इस प्रकार जाते हैं।

गलीचे तथा रंग का विदेश में जाना

वर्ष		राशि—पाउन्ड में	मूल्य—पाउन्डों में
१९१२—१४	...	१६४०७७०	१५३४४६
१९१४—१६	..	१०४३७७२	१०२०५४
१९१५—१६	...	१५८१८६९	१४५३२०
१९१६—१७	...	१९२३१९०	१९०८७३
१९१७—१८	...	७७३१८६	९९४८५
१९१८—१९	...	८४४१३२	९८४६६

(ङ)

कच्चा चमड़ा तथा चमड़े का माल

भारतवर्ष में कुल मिला कर १८००००००० अट्ठारह करोड़ पशु हैं जिनमें ८७०००००० आठ करोड़ सत्तर लाख भेड़ें तथा बकरियां हैं। भारत में चमड़े का अन्तरीय व्यापार वृष्टि, पर निर्भर है। जब खेती अच्छी न हो और वृष्टि के न होने से भूसा मंहगा हो गया हो तो किसान अपने पशुओं को बेच देते हैं। लड़ाई के दिनों में १९१४ की अपेक्षा चमड़े का व्यापार बढ़ गया। १९१३-१४ में पशुओं का चमड़ा भारत से विदेश में इस प्रकार गया।

लड़ाई छिड़ते ही जर्मनी आस्ट्रिया आदि में चमड़ा न जाने से भारतवर्ष में चमड़े की उपलब्धि बहुत ही अधिक बढ़ गयी। धीरे धीरे इंग्लैण्ड वालों ने भारत का चमड़ा अधिक अधिक खरीदना शुरू किया। अमरीका तथा इटली ने भी चमड़े के व्यापार में प्रवेश किया। युद्ध की उद्घोषणा होते ही कलकत्ता, आगरा, कानपुर तथा उत्तरी भारत में चमड़े के व्यापारियों ने बहुत राशि में चमड़ा एकत्रित कर लिया था। मद्रास ने इन स्थानों से उचित कीमत पर चमड़ा खरीद लिया। १९१७ की जून में इण्डियन म्यूनीशन बोर्ड (Indian Munitions Board) ने चमड़े का विदेशीय व्यापार अपने हाथ में कर लिया। इसी बोर्ड ने मित्रराष्ट्रों को आवश्यक मात्रा में चमड़ा दिया १९१८-१९ में इंग्लैण्ड ने २१७७५२ इटली ने १००३७८, अमरीका ने ४१४५६ और अन्य राष्ट्रों ने २१९६१ हंड्रड्वेट् चमड़ा खरीदा १९१४ से १९१८ तक चमड़े के वाह्य व्यापार में जो परिवर्तन उपस्थित हुआ उसका व्यौरा इस प्रकार है।

भारत के बड़े पशुओं के चमड़े का भिन्न भिन्न देशों में १९१८ तक जाना

भारत का चमड़ा खरीदने वाले राष्ट्र		१९१४—१५ हंड्रड्वेट् में	प्रति शतक	१९१५—१६ हंड्रड्वेट् में	प्रति शतक	१९१६—१७ हंड्रड्वेट् में	प्रति शतक	१९१७—१८ हंड्रड्वेट् में	प्रति शतक
अमरीका	...	१८९१७३	२७	३१२९६५	३५	४६११६७	५१	७८१२३	१८
जर्मनी	...	१४६५७५	२०	...	...	...	...	...	...
इंग्लैंड	...	१३२३२२	१८	९९२९०	११	१४११४०	१६	१७६८४७	४२
इटली	...	७२११९	१०	३८३३६०	४३	१७२८७१	१९	१५६२३१	३७
आस्ट्रिया	...	६०१४३	८	...	...	...	...	...	...
स्पेन	...	४७०११	७	२९५५२	३	४१३१७	५	...	...
हालैंड	...	५५१८	.०८	...	...	...	...	...	...

भिन्न भिन्न पशुओं का चमड़ा भारत से विदेश में किस प्रकार गया इसका ब्यौरा इस प्रकार है :—

गौ बैल बछड़े के चमड़ों का विदेश में जाना

वर्ष	गौ का चमड़ा ५६ सेरों में	बैल का चमड़ा ५६ सेरों में	बछड़े का चमड़ा ५६ सेरों में	कुलयोग राशि ५६ सेरों मे	मूल्य पाउन्डों में
१९१३–१४	७४३०३७	३४५८६४	२६११६	११९५७४७	५५३०६३८
१९१४–१५	४८०५१३	२११७४५	२११५८	७१३९२६	३५००६९३
१९१५–१६	६८९११३	१६२८८७	२९७६१	८८१८८५	४५२३५९०
१९१६–१७	५८१६४५	२६१०९९	५०९३३	८९४०२८	४९९४६७५
१९१७–१८	३१७५८८	८४९००	१५४१५	४१७९०३	२०५९०९२
१९१८–१९	२८३९९४	७८९८४	१८९६९	३८१९४७	१७४२७३६

लड़ाई के पहिले जर्मनी के व्यापारी भी कलकत्ते से कच्चा चमड़ा योरूप में भेजते थे। लड़ाई शुरू होने पर यह व्यापार अंग्रेज़ों के हाथ में चला गया और इसका लाभ भी अब वही उठाते हैं। १९१८-१९ में भारत से चमड़ा और भी अधिक राशि में जाता यदि चमड़े को ले जाने वाले जहाज़ मिल जाते। जहाज़ों के भाड़े के बढ़ने से भी चमड़ा विदेश में न जासका। भारत से कमोया हुआ चमड़ा विदेशों में इस प्रकार जाता रहा है।

कच्चा चमड़ा तथा चमड़े का माल

१९१३ से १९१९ तक बड़े पशुओं के कमाये हुए चमड़े की रफ़्तनी का ब्यौरा

वर्ष	विदेश में गया राशि—५६ सेरों से	मूल्य पाउन्डों में
महायुद्ध से पहिले		
१९१३	१९४७६३	११६६७२०
१९१४	१८७७०२	१३२२७५८
महायुद्ध के दिनों में		
१९१४—१५	२१७०२०	१६०६६४९
१९१५—१६	२७२००२	२०४१५८२
१९१६—१७	३२३६७६	२९९५५६१
१९१७—१८	३६५१४५	३२६९५९५
१९१८—१९	३०९११०	४७४४९७९

बड़े पशुओं के कच्चे तथा कमाये चमड़े के सदृश ही छोटे बच्चे तथा छोटे पशुओं का कमाया हुआ चमड़ा भी विदेश में काफी राशि में जाता है। दृष्टान्तस्वरूपः।*

इस प्रकरण की संख्याओं के लिये देखो।

The Habdbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton, p. 206-215.

छोटे बच्चों के तथा छोटे पशुओं के कमाये हुए चमड़े की रफ़्नी

वर्ष	विदेश मे भेजी गयी राशि—हंड्रवेट् या ५६ सेरों में	इंडक्स नम्बर	मूल्य पाउन्डों मे	इंडक्स नम्बर
१९१४—१५	११७४०५	१००	१५५२२६६	१००
१९१५—१६	१२७३२२	१०९	१६९९१७७	१०९
१९१६—१७	१६६०५१	१३९	३३०९३३७	२०८
१९१७—१८	३४१८६	३१	९०४३९०	६३
१९१८—१९	५९६७०	५१	१७०१४२८	१०९

भेड़ बकरी के कमाये चमड़े के व्यापार में भिन्न भिन्न सभ्य देशों का भाग इस प्रकार है।

भेड़ बकरी के कमाये हुए चमड़े का भिन्न भिन्न देशों में जाना

कमाए हुए चमड़े का लेने वाले राष्ट्र	बकरी का चमड़ा				भेड़ का चमड़ा			
	१९१४—१५	१९१५—१६	१९१६—१७	१९१७—१८	१९१४—१५	१९१५—१६	१९१६—१७	१९१७—१८
इंग्लैण्ड ...	६३·५	६३·२	६४·८	८१·९	६३·९	६२ ९	६३·४	७०·८
अमरीका ...	३६·२	३५ ८	३४·६	१५·१	१९·८	२४·२	२२·१	१६·०
जापान ...	·०५	·१३	·३	·०८	१०·७	९·७	६·७	९·७

१९२० के साल के अन्तिम दिन चमड़े के व्यापारियों के लिये भी अच्छे न निकले। वैसे तो साल के शुरू से ही चमड़े का कारोबार शिथिल था परन्तु साल के अन्त में तो चमड़ा कमानेवाले लोग बहुत ही घबड़ा गये। १९२० के ९ दिसम्बर की बात है कि लगभग सब के सब चमड़े का काम करने-वाले कारखानों ने अपना काम बन्द कर दिया। केवल २५ फी सैकड़ा ही कारखाने थे जो कि किसी न किसी तरीके से काम चला रहे थे।

दक्खिनी लोगों की बहु संख्या का अन्न दाना पानी इसी व्यवसाय पर निर्भर था। वहां के बहुत से उद्योग धन्धों का आधार चमड़े के कारोबार पर ही था। लड़ाई के शुरू होते ही भारत सरकार ने विशेष प्रकार के चमड़े के कारोबार को उत्तेजित किया और चमड़े के विदेशीय व्यापार का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया। चमड़े का काम करनेवाले लोगों ने सरकार का पूरे तौर पर साथ दिया। सरकार के नियन्त्रण से उनको जो कम लाभ मिल रहा था उसको भी उन्होंने चुपचाप सहा। उस समय वह लोग बहुत ही अधिक धन कमा सकते थे। क्योंकि लड़ाई के कारण बूटों तथा जूतों की मांग बहुत ही अधिक बढ़ गयी थीं। परन्तु चमड़े का कारो-बार करने वालों को लड़ाई के समय में धन कमाने का मौका न मिला। परन्तु ज्यों ही लड़ाई बन्द हुई, सरकार ने १५ प्र०

श० बाधक सामुद्रिक कर लगा दिया, जिससे भारत का चमड़ा बाहर न जा सके। इसका परिणाम यह हुआ कि (भारत में) चमड़े का दाम बहुत ही अधिक गिर गया। इससे लोगों ने चमड़े को बहुत राशि में खरीद लिया। क्योंकि अमरीका तथा लन्डन में चमड़े का दाम ज़्यादा था। वहां यदि उनको चमड़ा भेजना मिल जाता तो उनकी बहुत ही अधिक आमदनी हो जाती। यही समय है जबकि महाशय हेली ने रिवर्स काउन्सिलस बेंचकर इन व्यापारियों को चौपट कर दिया और करोड़ों रुपया लन्डन के अमीरों की जेबों में पहुंचा दिया। १६२० का साल जब खतम हुआ और १६२१ का अप्रिल महीना शुरू हुआ तो विदेशीय हुंडी की दर १ शि ५$\frac{1}{2}$ पैन्स तक जा पहुंची और दश रुपये की गिन्नी एक किस्सा बन गयी। इस विदेशीय हुंडी की दर पर भारत का सारा का सारा व्यापार उलट पलट गया। विदेशीय माल मंगानेवाले व्यापारियों का दिवाला निकलना शुरू हो गया। इन्हीं लोगों के साथ ही साथ चमड़े का उद्योग धन्धा भी चौपट हो गया। यदि तो लड़ाई के दिनों में चमड़े का कारोबार करने वालों को धन कमाने का मौका मिल जाता तो इस समय की शिथिलता को वह आसानी से ही संभाल जाते परन्तु भारत सरकार की कारस्तानी से वह न तो इस लोक के रहे और न परलोक के। भारत सरकार का सहयोग

करने वालों को जो कडुआ फल मिल सकता था मिला। विदेशीय व्यापारियों के प्रतिनिधि-स्वरूप सरकार पर भरोसा कर कबतक कोई व्यापारी तथा व्यवसायी अमनचैन में गुज़ारा कर सकता है। भारतीय वैश्यों को अब इससे पूरे तौर पर शिक्षा लेनी चाहिये।

(च)

चाय

चाय में भारत का एकाधिकार है। १६१७-१८ में ३५६०-००००० पाउन्ड (तोल) चाय विदेश में विकने के लिये गयी थी। इसका कुल मूल्य ११७८०००० पाउन्ड था। भारत के कुल निर्यात का ७ प्र० श० भाग चाय का है। कुछ समय से चाय में चीन तथा सीलोन भी भारत का मुकाबला करने लगे हैं। चीन का मुकाबला करना तो स्वाभाविक ही है। क्योंकि शुरू शुरू में चाय को चीन ही उत्पन्न करता था। १८ वीं सदी के अन्तिम ५० सालों में चीन से ही चाय योरुप में जाती थी। १७८७ में २०००००००० पाउन्ड चाय चीन से इंग्लैण्ड में गयी थी। अंग्रेज़ों को ख़्याल हुआ कि यदि चीन राज्य से झगड़ा हुआ तो बिना चाय के कैसे

† Commerce December 9, 1920, P. 1203.

गुजारा होगा? यही कारण है कि १८३४ तक भारत में चाय पैदा करने का यत्न किया गया। १८३४ में लार्ड विलियम वैन्टिक ने चीन में अपने आदमी चाय के बीजों को लाने के लिये भेजे। १८३४ में चीनी चाय के पौदे आसाम में बोये गये और १८३८ में उनकी फसल काट कर इंग्लैण्ड में भेजी गयी। १८५२ में भारत में चाय इतनी अधिक हो गयी कि लन्डन में चीन की चाय के साथ मुक़बला करने लगी। भारत ने चाय के मामले में इतनी उन्नति की १८६५ में ईष्ट-इंडिया कम्पनी ने चीन से चाय खरीदना छोड़ दिया। भारत में सब से पहिली चाय की कम्पनी आसाम कम्पनी थी। इसने ५०००७० पाउन्ड देकर सरकार से शिवसागर के पास जमीन खरीदी और चाय के पौदे उस पर बोये। १८४० में दार्जलिङ्ग तथा चिटगांव जिले में भी चाय के बाग लगाये गये। अंग्रेज लोग चाय की ओर इस कदर झुक पड़े कि १८६६ में मांग की अपेक्षा चाय बहुत ही अधिक उत्पन्न हुई और इसका व्यवसाय किसी हद तक शिथिल हो गया। इसके बाद १९३० के साल के शुरू तक बंगाल प्रान्त में इसका व्यवसाय उन्नति करता ही गया। उत्तरी भारत में चाय बहुत थोड़ी राशि में उत्पन्न की जा रही है। संयुक्तप्रान्त में देहरादून, अलमोड़ा, कुमायूं तथा गढ़वाल ही चाय के लिये प्रसिद्ध हैं। बिहार तथा उड़ीसा के छोटा नागपूर जिले में

भो इसके बाग हैं। दक्खिनी भारत में बीनाद, नीलगिरि, अनमलाया तथा ट्रावंकोर की ऊंची पहाड़ियों पर भी चाय के बाग हैं। कलकत्ता का छोटी छोटी कंपनियें ही बंगाल तथा आसाम के चाय के बागों का प्रबन्ध करती हैं। परन्तु दक्खिनी भारत में यह बात नहीं हैं। वहां चाय के बागों के मालिक व्यक्ति ही हैं।

१८७५ से लंका ने भी चाय की उत्पत्ति में पैर बढ़ाया है। आजकल तो लंका में चाय इस कदर उत्पन्न हो गयी है कि उसने भारतवर्ष में भी सस्ती चाय भेजनी शुरू की है। १९१८ में भिन्न प्रान्तों के अन्दर चाय की उत्पति इस प्रकार थी।

१९१८ में चाय की उत्पत्ति

प्रान्त	क्षेत्रफल-एकड़ों में	उत्पत्ति–पाउन्डों (आधसेर) में
आसाम	४०५९५१	२५३२७००९३
बंगाल	१६९१०८	८९९८३५६१
ट्रावंकोर	४४४५८	२२६२९२५०
मद्रास	३८५२८	१०५१८३७३
संयुक्त प्रान्त	७९८७	२२३४७६०
पन्जाब	७५०८	१३८८७२९
वर्मा	२८१५	११०३४५
विहार तथा उड़ीसा	२१७८	३२३८६४
कुलयोग	६७८५३३	३८०४५८९६५

† इस प्रकरण के लिये देखिये। Handbook of Commercial Information for India by C. W. E. Cotton P. 195—206.

लड़ाई के दिनों में चाय के बाग भारत में और भी अधिक बढ़ गये। १९१४ के बाद आसाम में ३०००० एकड़, बंगाल मद्रास में १०००० एकड़ और ट्रावंकोर में ६००० एकड़ जमीन चाय की उत्पत्ति में और भी अधिक आयी। भारत से चाय विदेश में किस प्रकार जाती है इसका ब्योरा इस प्रकार है:—

१८९० से १९१९ तक चाय का विदेश में जाना

वर्ष	कुल निर्यात		इंग्लैण्ड में चाय का जाना	
	राशि-पांउडो (तोल) मे	मूल्य पांउडोमें	राशि-पांउडों (तोल) में	मूल्य-पांउडोंमें
१८९०—९१	१०७०१४९९३	३४७९४८९	१००१०८६२५	३२८४१४४
१८९५—९६	१३७७१०२०५	५१०९९२५	१२३९४७३६९	४६२५४५२
१९००—०१	१९०३०५४९०	६३६७२८९	१६६१७१५५६	१७६८५२४
१९०५—०६	२१४२२३७८८	५८९८४०२	१६६५९१४३३	४५९३४५४
१९१०—११	२५४३०१०८९	८२७६९१२	१८२९३५४२४	५९८२५८९
१९१३—१४	२२९४७३५९१	९९८३३७२	२०९०५०७७१	७२३२०४९
१९१४—१५	३००७३३४३४	१०३५२३२९	२३७३०३७९२	८१६२२३१
१९१५—१६	३३८४७०२६२	१३३२०२१५	२५०२९०२९१	९८००७३५
१९१६—१७	२९१४०२६०८	१११८०६४९	२२४९२७८९४	८६७१२६६
१९१७—१८	३५९१७४२३२	११७८१७४६	२६६९६३५१६	८५३५०००
१९१८—१९	३२३६५९७१०	११८५०४०४	२८२२०५१९६	९८५९०५०

योरुपीय देशों में इंग्लैण्ड की व्यापारीय कोठियां ही चाय बेचती हैं। भारत से मंगायी चाय योरुप में किस प्रकार बेची गयी इसका ब्यौरा इस प्रकार है:—

इंग्लैण्ड से योरुप में गई चाय का ब्यौरा

	१९१३	१९१४	१९१५	१९१६	१९१७
	पाउन्ड (तोल)	पाउन्ड (तोल)	पाउन्ड (तोल)	पाउन्ड (तोल)	पाउन्ड (तोल)
रूस ...	९९७९८८३	१७७७९३०	२२११०९९	३८२२३७७	१६६५८६
डैन्मार्क ...	२६६३७२	२०१४३०३	४७५३४५०	१६६६२६०	७५०६०
जर्मनी ...	७६४९५४	४७६०७३	......	...	...
हालैण्ड ...	२०२६३३१	१२३२५१७३	३४२५८६२	८४९०२४	२६८४०
बैल्जियम ...	११५५७५	८९१०८	५४	६६	४९९
फ्रान्स ...	१२४६४९	६७०७७५	९८५२६०	६११८६१	२६४४१५
आस्ट्रिया हंग्री ...	२५९११९	१५६५८५	...	...	...
योरुपीय टर्की ...	८१९५४	३९१७०	...	...	...
एशियाटिक टर्की ...	१७०९९२	९६१९०	...	...	...

पोर्तुगीज़ पूर्वीय अफ्रिका	१८४७४३	१६७३६३	८७६६२	५१७६७	१००६२
अमरीका ...	२१७५६७२	३०१५८०५	२६५५८७६	४७००७४२	५४१७४०
कनाडा ...	२२६२३१३	४२७६३६४	४४३१६७३	३१३६२२	८७३३२१
चिल्ली ...	१३६३६५१	८८०१२५	८३६६६७	१६६३८१३	२६५२५१
अर्जेन्टाइन ...	६५५६४६	७२६६१७	८८३५४०	११४१०२४	१३१८६१
कनालआइलैंडज़ ...	७६२०८२	६६०६४६	८२८४४४	८७०६०३	४३४६६८
दक्षिणी अफ्रीका राष्ट्रसंघ	१५६३४४०	१३८७२४६	१३३८६६४	७१२७१३	१०५५६
न्यूफाउंडलैंड ...	७१३३०	४४३६७	४६३५२	७८५७४	११०३६
अन्य देश ...	१६०७६६५	१५६२०३६	२०४६४७३	५५०७२५५	४६६४४३
कुल योग ...	२१८२६६७४	३०३६६२३६	२४५४०७६६	२५३१६६४४	३२८०६०४

चाय के बागों में कुली प्रथा के द्वारा ही काम लिया जाता है। बिचारे हिन्दुस्तानियों को बहका कर उनसे कुछ वर्षों के लिये बाधित तौर पर काम करने की शर्त लिखवा ली जाती है और उनको चाय के बागों में ढकेल दिया जाता है। आम तौर पर चाय के बागों के मालिक अंग्रेज़ तथा अंग्रेज़ी कंपनियां ही हैं। वही इनकी आमदनी से लाभ उठाती हैं। भारत को किसी प्रकार से भी चाय के बागों से लाभ नहीं है। भयंकर क्रूर कुली प्रथा इन्हीं बागों में जारी है। बिचारे शर्त बन्दी कुलियों पर घोर अत्याचार किये जाते हैं और उनसे अधिक समय तक काम लिया जाता है। भारत सरकार इन क्रूर अंग्रेज़ों की गुलाम है। यही कारण है कि इनके विरुद्ध बिचारे कुलियों की कुछ भी सुनवायी नहीं है। १९१७ में साढ़े सात लाख आदमी इन्हीं चाय के बागों में काम करता था। अभी तक इन लोगों की दशा में कुछ भी सुधार नहीं हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि किसी भी दयालु देश प्रेमी मनुष्य का इतना साहस नहीं है कि इनको गुलामी से छुड़ा सके। क्योंकि इनको गुलामी से छुड़ाने के लिये यत्न करने का दूसरा मतलब यह है कि अंग्रेज़ी फौज़ों के साथ युद्ध करना। साधारण हिन्दुस्तानी ताल्लुकेदारों के विरुद्ध तो किसान उठ ही नहीं सकते हैं और जब उठने का यत्न करते हैं तो उनको रायबरेली की तरह गोलियों से भूना

जाता है। अंग्रेज़ों के बागों में गुलाम बने भारतीयों का छुड़ाना तो और भी अधिक कठिन है। क्योंकि इस काम में यत्न करते ही सरकारी सब फौजें मैशीनगन चलाने के लिये तैयार हो सकती हैं। भारत सरकार का रूप ही ऐसा है कि वह किसानों तथा गुलामों का पक्ष नहीं ले सकती है और न उद्धार ही कर सकती है। रुपया कमाने वालों की ही यह सरकार है और उन्हीं का यह हित चिन्तन कर सकती है।

१६२० का अन्तिम महीना चाय के बागों के लिये भी अच्छा साबित न हुआ। चाय की उत्पत्ति मांग की अपेक्षया कई गुना अधिक हो गयी। १६२१ के पहिले महीने से ही अंग्रेज़ी कंपनियां चाय को दूसरे देशों में भेजने का प्रबन्ध कर रही हैं। रूस के साथ व्यापारीय सन्धि होने के कारण उनको भयंकर व्यापारीय शिथिलता से किसी हद तक बचने की आशा है। अभी भविष्य अन्धकारमय है। इसलिये किसी एक निर्णय पर पहुंचना कुछ कुछ कठिन है।

(छ)

शक्कर या चीनी

ईख की उत्पति भारतवर्ष में बहुत पुराने समय से है। संसार के सभी राष्ट्रों से अधिक ईख की खेती भारतवर्ष में

है। परन्तु प्रति एकड़ उत्पत्ति बहुत ही कम है। भारत सरकार ने इसके व्यवसाय की उन्नति की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। जर्मनी तथा आस्ट्रिया ने अपने २ राज्यों से धन की सहायता प्राप्त कर भारत में चुकुन्दर की शक्कर भेजनी शुरू की। इसपर भी भारत सरकार ने लोगों को कुछ भी सहायता न दी। विदेशी सस्ती शक्कर की चोट से मुरझाते व्यवसाय को मुरझाने दिया। १९१३-१४ से भारत की चीनी का बाज़ार मोरीशस तथा जावा के हाथ में आ गया। विदेश से भारत में जो शक्कर आई उसका ब्योरा इस प्रकार है।

१९१३ से १९१९ तक भारत में विदेशी शक्कर का आना

सन्	मूल्य-पाउन्डों में
१९१३-१४	९९७१२५१
१९१४-१५	७०१४९९०
१९१५-१६	११०७८५३१
१९१६-१७	१०३००२१०
१९१७-१८	१०२१३१७३
१९१८-१९	१०४०१०५४

लगभग तीस लाख एकड़ भूमि पर भारत में शक्कर बोई जाती है।

समग्र भू मंडल में जितने एकड़ों पर ईख बोयी जाती है उसके आधे एकड़ों पर भारत में ईख बोयी जाती है। परन्तु

उत्पति आधी के स्थान पर चौथाई होती है। भारतको भूमि तथा ईख का किस्म दोनों ही दोष पूर्ण हैं। भूमि की उपजाऊ शक्ति की कमी का मुख्य कारण सरकार का मालगुजारी बहुत ज़्यादा लेना है और इसी कारण किसानों को अपना सारी जीवन कर्जे तथा दरिद्रता में गुजारना पड़ता है। वह इतनी पूंजी कहां के लावें कि भूमिपर खाद डाल सकें और ईख की अच्छी किसम खरीद सकें? १८६० में जावा में भी यही हालत थी। भूमि की उत्पादक शक्ति बहुत कम थी। परन्तु जावा सरकार की सहायता से वहां के किसानों की हालत सुधरी। भूमि पर पूंजी लगायी गयी। धीरे धीरे भूमि की उत्पादक शक्ति भी बढ़ गयी। १६१८ में जावा का दर्जा हवाई द्वीप से ही नीचे रह गया। हवाई द्वीप में ईख की उत्पत्ति प्रति एकड़ बहुत ज़्यादा है।

संयुक्त प्रान्त में ही सबसे अधिक ईख तथा गुड़ उत्पन्न होता है। इसके बाद पञ्जाब तथा बङ्गाल बिहार का दर्जा है। समग्र भारत का आधा गुड़ एक मात्र संयुक्त प्रान्त में ही उत्पन्न होता है। डाक्टर सी ए वार्बर ने आविष्कार निकाला है कि बीजों के द्वारा गन्ने की प्रति एकड़ उत्पत्ति बढ़सकती है और उनसे गुड़ भी अधिक निकाला जा सकता है। (१)

१६१८ में समग्र भूमण्डल में १२०००००० टन्ज शक्कर थी

(1) The Modern Review for April, 1920—PP. 487-488.

जिसमें से ३०००००० शक्कर भारत ने बनायी थी। भारत में २४४६००० एकड़ भूमि पर ईख बोयी जाती है। इस पर भी भारत को जावा और अंग्रेजी उपनिवेशों से चीनी या शक्कर मंगाना पड़ता है। भारतवर्ष को इसमें स्वावलम्बी होने का यत्न करना चाहिये।

(८)

प्राकृतिक संचालक शक्ति

मनुष्यों की उपयोगितानुसार पदार्थों की आकृति परिवर्तन का नाम ही उत्पत्ति है। उत्पत्ति करना सर्वदा ही सुगम नहीं होता। क्योंकि बहुधा बहुत से पदार्थ आकृति परिवर्त्तन करते समय विशेष बाधाओं को डालते हैं। अति-प्राचीन काल से आज तक मनुष्यों ने इन बाधाओं को र करने के लिये प्राकृतिक तथा सामाजिक संचालक शक्ति क प्रयोग किया।

आजकल कलों का प्रयोग दिन पर दिन बढ़ता जाता है। कलों को हाथ से न चलाकर प्राकृतिक संचालक शक्तियों से ही चलाया जाता है। इन शक्तियों को प्राप्त करना सुगम काम नहीं है। संचालक शक्ति जितनी अधिक शक्ति की ाती है, वह उतनी ही देर में मिलती है। संचालक शक्ति मुख्यतः पांच प्रकार की है जिनका आज कल मनुष्य लोग प्रयोग करते हैं।

१—पशु शक्ति।

२—वायु शक्ति।

३—जल शक्ति।

४—वाष्प शक्ति।

५—विद्युत् शक्ति।

१—पशु शक्ति

पशु शक्ति मनुष्य समाज की सब से पुरानी संपत्ति है। अपरिमित आविष्कारों के होने पर भी इसकी जरूरत पूर्ववत् ही विद्यमान है। पुराने जमाने में भारत के अन्दर घरेलू पशु बहुत ही अधिक थे। गौ को तथा घी को बेचना पाप समझा जाता था। मुसलमानी जमाने तक भारत की दशा बहुत अधिक न बिगड़ी। भारत पर जब से अंग्रेज़ों का राज्य आया, भारत की काया ही पलट गयी। भारत के अन्न पर योरूपीय लोगों के पलने से अनाज मंहगा हो गया और जरूरत से अधिक ज़मीनों पर खेती की गयी। गांव के आसपास के चरागाह नष्ट हो गये। जंगलात् के महकमे की सख्ती से पशुओं को वहां भी भोजन न मिला। इधर छावनियों के बढ़ने से तथा वहां की गोरी फौज के लिये अनन्त पशुओं के कटने से पशुओं की घटती संख्या और भी घटी। कुछ वर्षों से विदेशीय लोग भारत के पशुओं को भी खरीदने लगे हैं। लड़ाई के दिनों में भारत का भूसा सरकार ने खरीदना

शुरू किया। इससे भूसा बहुत ही अधिक मंहगा होगया। इस सब का परिणाम यह है कि पशुओं की संख्या घट रही है और उनकी नसल भी बिगड़ती जाती है। बम्बई के लोग चिरकाल से शोर मचा रहे हैं कि उनके प्रान्त से पशु विदेश जारहे हैं। पशुओं का विदेश में जाना रोका जाय परन्तु सरकार ने कुछ भी नहीं सुना। दुःख की बात है कि आबादी के अनुसार जितने पशु भारत में होने चाहिये नहीं है। पशुओं के विचार से, आस्ट्रेलिया, नार्वे स्वीडन जर्मनी अमरीका आदि देश भारत से कहीं आगे हैं। उनके मुकाबले में भारत के अन्दर पशु बहुत ही कम हैं।

२—वायु शक्ति

वायु शक्ति अस्थिर है। जब वायु चलती है तब तो वह शक्ति मिलती है अन्यथा नहीं। पुराने जमाने में नावों तथा सामुद्रिक जहाज़ों के चलाने में ही इसको काम में लाया जाता था। आजकल इसका प्रयोग बहुत ही घट गया है। भारत में छोटी छोटी नावों को चलाने में इससे काम लिया जाता है परन्तु वह भी दिन पर दिन घट ही रहा है।

३—जल शक्ति

आजकल जल का सीधा प्रयोग बहुत उन्नति पर नहीं है। भारत में पार्वतीय प्रदेशों के अन्दर आटा पीसने का काम लोग इसी से करते हैं। जगह जगह पर पहाड़ों में

पन्चक्कियां लगी हैं। मैदानों में इसका रिवाज़ बहुत कम है। इसका मुख्य कारण यही है कि मैदानों में पन्चक्की लगाना बहुत कठिन है। पहाड़ों में पानी स्वभावतः ऊपर से नीचे गिरता है। सुगमता से ही वहां पन्चक्की लगाई जासकती है। मैदानों में पानी नीची तह पर बहता है और उसकी गति भी धीमी होती है अतः वहां पन्चक्की लगाना संभव नहीं है। जल की भाफ बनाकर वाष्प शक्ति, नदी की नहर बनाकर और उसके प्रपात के द्वारा जलीय विद्युत् शक्ति का प्रयोग मैदानों में बहुत सुगम है।

४—वाष्प शक्ति

जल को भाफ बनाकर भाफ की संचालक शक्ति से रेल आदि चलायी जाती हैं। आजकल इसका प्रयोग बहुत ही अधिक है। इसमें एक सुगमता यह है कि प्रत्येक स्थान पर इससे काम लिया जा सकता है। जहां लकड़ी कोयला और पानी है वहां यह भी प्राप्त की जासकती है। परन्तु इसमें एक हानि है जिसको कि भुलाना न चाहिये। कोयला लकड़ी आदि के जलाने में खर्चा बहुत बैठता है। प्रपातों से जो पन्चक्कियां चलायी जाती हैं और वायु के वेग से जो नावें चलायी जाती हैं उनमें संचालक शक्ति के प्राप्त करने में कुछ भी खर्च नहीं होता है। एक बार उन शक्तियों के

प्रयोग का प्रबन्ध करना पड़ता है। उसके बाद बिना किसी प्रकार के खर्च के सारा का सारा काम होता जाता है। भारतवर्ष में वाष्पशक्ति का प्रयोग रेलों में, कारखानों में तथा पिसान पीसने वाली चक्कियों में किया जाता है। योरूपीय राष्ट्रों की तुलना में भारत में वाष्प शक्ति का प्रयोग दाल में नमक के बराबर है। राष्ट्र की शक्ति मापने का यह एक मुख्य साधन हैं। जिस राष्ट्र में वाष्प शक्ति का प्रयोग अधिक है वह अधिक शक्तिशाली समझा जाता है। खर्च के साथ साथ वाष्प शक्ति का दूसरा बड़ा दोष यह है कि बिना पत्थर के कोयले के इसको प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई है। संसार में सैकड़ों ऐसे राष्ट्र हैं जहां पत्थर के कोयले की खानें नहीं है। दृष्टान्त स्वरूप हिमालय पर्वत को ही लीजै। हिमालय में आम तौरपर पत्थर के कोयले की खाने नहीं है। वहां कैसे काम किया जाय? मैदान से पहाड़ के ऊपर पत्थर का कोयला ले जाना सुगम नहीं है। योरुप में स्विट्जलैंण्ड आदि पार्वतीय देशों को इसी प्रकार का कष्ट है। इस असुविधा को जलप्रपात की शक्ति से दूर करने का वैज्ञानिकों ने यत्न किया है जिस पर आगे चलकर प्रकाश डाला जायगा।

५—विद्युत् शक्ति

अभी तक पानी की भाफ बनाकर यन्त्र चलाना और फिर बिजली निकालना प्रचलित था। इसमें वाष्प शक्ति वाले संपूर्ण दोष विद्यमान हैं। इसमें खर्चा अधिक है। और कोयले की खानें जहां नहीं वहां इस शक्ति का प्राप्त करना कठिन है। यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि संसार में ऐसे बहुत से देश हैं जहां कि कोयले की खानें नहीं है। वहां के लोग कैसे अपना काम करें? क्योंकि आज कल बिजली द्वारा कलयन्त्र चलाये जाते हैं, रोशनी की जाती है और गरम देशों में पंखे भी चलाये जाते हैं। अमरीकामें ऊंचे ऊंचे मकानों में लिफ्ट ऊपर उठाने का काम बिजली ही करती है। भारत की कोयलों की खानों में प्रायः कोयले की छोटी छोटी गाड़ी को जमीन के नीचे से ऊपर बिजली के सहारे ही लाया जाता है। जिन खानों में पानी अधिक है वहां बिजली के सहारे ही नलकों के द्वारा पानी ऊपर निकाला जाता है। यहीं पर बस नहीं। जमीन के अन्दर चलने वाली रेलें तथा ट्राम्बे बिजली के द्वारा ही चलती हैं। वैज्ञानिकों ने इस अपूर्व शक्ति को अन्य नये तरीकों से प्राप्त करने का यत्न किया और सफल भी हुए। वाष्पीय शक्ति से सहारा न लेकर जलप्रपात की शक्ति के द्वारा कलयन्त्र चलाकर बिजली निकालने में बड़ा लाभ है। ईश्वर की कृपा से जहां कोयले की खानें नहीं हैं वहां जल-

प्रपात की शक्ति मौजूद है। दृष्टान्त स्वरूप स्विट्जलण्ड, नार्वे तथा उत्तरीय इटली में कोयले की खानें नहीं हैं परन्तु वहां जल प्रपात बहुत हैं। इंग्लैण्ड में कोयले की खानें बहुत हैं परन्तु वहां जलप्रपात नहीं हैं। अमरीका में जल-प्रपात हैं परन्तु कोयला कम है। सौभाग्य से भारत में मैदानों के अन्दर कोयले की खानें और पहाड़ों में जलप्रपात अनन्त संख्या में विद्यमान हैं। गङ्गा नदी बहुत ऊंचाई से बह कर नीचे आती है। यही बात जेहलम, सिन्ध सतलज आदि सभी नदियों के साथ है। हिमालय में जगह जगह पर प्रपात विद्यमान हैं। इस हालत में यदि जलप्रपात से भारत में बिजली निकाली जाय तो भारत को व्यावसायिक शक्ति बनने में बहुत सुगमता हो जाय।

फ्रान्सके अर्थ शास्त्रज्ञों ने संसार के भिन्न भिन्न राष्ट्रों की जल प्रपात की शक्ति का जो अनुमान लगाया है वह इस प्रकार है। *

राष्ट्र		जल प्रपात की शक्ति अश्व शक्तिः—
संयुक्त अमरीका	...	३०००००००
कनाडा	...	२५००००००
नार्वे	...	७५०००००

* Capital, April, 14, 1921, p. 795.

स्वीडन	...	६७५००००
आस्ट्रिया हंग्री	...	६४५००००
इटली तथा स्पेन	...	५००००००
जर्मनी	...	१५०००००
इंग्लैण्ड	...	१००००००

भारत सरकार ने इस साल (१६२०-२१) भारत को जल प्रपात की शक्ति का पता लगाने के लिए भिन्न भिन्न प्रान्तों के चतुर लोगों की समिति नियत की है। संयुक्तप्रान्त में महाशय टी एम लाइल को ही यह काम सौंपा गया है। १६२० की अक्टूबर में शिमला में जल प्रपात की शक्ति के जांच का काम शुरू हुआ। १६२१ के शुरू होने पर संयुक्त प्रान्त के बहुत के जिलों का निरीक्षण किया जा चुका * * बनारस रियासत की कर्मनाशा तथा चन्द्र प्रभा और मिर्ज़ापुर जिले की वेलन तथा उसकी सहायक नदियों की जल प्रपातीय शक्ति की जांच की जा चुकी है। इन दोनों जिलों में चार स्थान ऐसे मिले हैं जहां बहुत ही अधिक जल प्रपात की शक्ति विद्यमान है और जहां बिजली प्राप्त करना सुगम भी है। १६२०-२१ में गंगा नदी की पहाड़ी घाटी का भी अन्वेषण किया गया। अन्वेषण से तीन स्थानों का पता लगा है जहाँ जल प्रपात

* The Pionees, Wednesday, April, 20, 1921, P. 11.

की शक्ति विद्यमान है और जो कि सुगमता से प्राप्त की जा सकती है। वह तीनों स्थान निम्नलिखित प्रकार हैं:—

(i) बद्रीनाथ जिले की सड़क पर हरिद्वार से ३७ मील दूर तथा पी० डब्लू० डी के बंगले से तीन मील नीचे गंगा नदी में बांध लगा कर जल प्रपात बनाया जा सकता है और बिजली प्राप्त की जा सकती है।

(ii) बद्रीनाथ जिले की सड़क पर हरिद्वार से ५८ मील दूर देव प्रयाग में भी जल प्रपात से बिजली प्राप्त की जा सकती है।

(iii) बद्रीनाथ ज़िले की सड़क पर हरिद्वार से ६८ मील दूर कोटेश्वर पर भी जल प्रपात बनाना संभव है। इनके अतिरिक्त गंगा नदी की घाटी में और भी बहुत से स्थान हैं जहां अल्प राशि में बिजली प्राप्त की जासकता है। दृष्टान्त स्वरूप पीपल कोठी पर बने बंगले के पास अलक नन्दा के पुल पर गङ्गा का जल प्रपात बनाकर बिजली प्राप्त की जा सकती है। गोहना झील तथा श्रीनगर का भी निरीक्षण किया गया है परन्तु अभी तक कोई परिणाम नही निकला है। पिन्डार, सर्जू, शारदा तथा गौरी नदियों में भी जल प्रपात बनाने के स्थान ढूंढे गये हैं परन्तु पूरी सफलता नहीं मिली है। सोमेश्वर पर कौशी नदी और बैजनाथ से नीचे गोमती नदी में भी बांध लगा कर जल प्रपात तैयार किया जा सकता

है और बिजली प्राप्त की जा सकती है। धर्म्मा नदी में सीबला झील पर जल प्रपात बनाकर बहुत राशि में बिजली उत्पन्न की जा सकती है। रीवां रियासत में १००००० एक लाख अश्व शक्ति जल प्रपात से प्राप्त की जा सकती है। पन्ना तथा बुन्देलखन्ड में केन तथा पैशुनी नदी की जांच की गई है और जल प्रपातों के स्थानें को दूंढ़ा गया है। इस वर्ष (१९२०-२१) भारत के संपूर्ण प्रान्तों की प्रपातीय शक्ति की जांच हो जायगी। इस जांच से यह स्पष्ट हो जायगा कि अंग्रेजों की पुरानी स्वार्थ नीति से हम लोगों को कितना नुकसान पहुंचा। उद्योग धन्धों को नष्ट कर भारत सरकार ने कितनी प्रबल प्राकृतिक शक्ति के प्रयोग से हमको वंचित कर दिया। यदि भारत में उद्योग धन्धे पूर्ववत् प्रफुल्लित रहते तो इस जलीय शक्ति के सहारे भारत बहुत ही समृद्ध हो जाता। अंग्रेजों की कूटनीति का ही यह फल है कि भारतवर्ष अपनी ही प्राकृतिक संपत्ति का प्रयोग करने में असमर्थ है और दरिद्रता तथा दुर्भिक्ष के कारण दिन पर दिन दुर्बल हो रहा है।

जलप्रपात के द्वारा बिजली निकालने में जल तथा प्रपात की ऊंचाई इन दोनों बातों को सामने रखना पड़ता है दृष्टान्त स्वरूप १०० फीट् की ऊंचाई पर से यदि १००० पाउन्ड पानी गिरे तो उससे जितनी बिजली प्राप्त की जा सकती है उतनी ही बिजली १०००० पाउन्ड पानी केवल १० फीट् की

ऊंचाई से गिर कर दे सकता है। पहाड़ों की छोटी नदियां छोटे काम के लिये उपयुक्त हैं परन्तु किसी एक बड़े व्यावसायिक काम का आधार नहीं बन सकती हैं। इसी प्रकार मैदान की कम पानी वाली नदियां विशेष अर्थ की नहीं हैं। जल द्वारा बिजली प्राप्त करने के लिये बहुत अधिक पानी का कम या अधिक ऊंचाई पर से गिरना नितान्त आवश्यक है। बहुत बार यह भी देखा गया है कि किसी एक बड़ी नदी के जल प्रपात से बिजली निकालने में बहुत अधिक खर्चा बैठ जाता है। यह बात प्रायः ऐसे स्थानों में होती है जहां जलप्रपात पहाड़ के बीच में तथा रेल्वे लाइन से बहुत दूर हो। चालीस मील तक पहाड़ में कलयंत्र ले जाने में बहुत बार उतना ही धन खर्च हो जाता है जितना कि इंग्लैण्ड से भारतवर्ष तक कलयन्त्र के आने में खर्च होता है।

इन सब उपरिलिखित ऊंच नीच बातों का विचार करते हुए भी यही कहना पड़ता है कि भारतवर्ष में जलप्रपात की अनन्त शक्ति विद्यमान है। स्विट्ज़लैंण्ड, नार्वे तथा अमरीका ने अपनी जलप्रपात की शक्ति का उचित प्रयोग किया परन्तु भारतवर्ष सभ्य अंग्रेज़ों के दो सौ सालके राज्य में भी अभी तक उन देशों से इस बात में पीछे है। प्रस्तावना में ही यह दिखाया जा चुका है कि व्यावसायिक शक्ति को प्राप्त करने पर ही कोई देश अपनी प्राकृतिक संचालक शक्ति का

उपयोग कर सकता है। गङ्गा की धारा अनन्त काल से अपनी शक्ति पहाड़ों तथा पत्थरों के तोड़ने में ही खर्च कर रही है। परन्तु यदि भारतवर्ष योरूपीय ढ़ंग पर कलयन्त्र चलाता और सञ्चालक शक्ति को ढूँढता तो यही गङ्गा सचमुच माता का काम करती।

दुःख का विषय है कि अंग्रेज़ों ने भारत की बागडोर अपने हाथों में करते ही उसको व्यवसायी देश से कृषि प्रधान देश बनाने का यत्न किया। पुराने व्यवसायों को उन्होंने जड़से उखाड़ दिया और भारत को लूटने के लिये यूरूपीय राष्ट्रों के लिये भारत का दरवाजा खुला छोड़ दिया। कारीगर धीरे २ अपने अपने कामों को छोड़ कर खेती में घुसते चले गये। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत अपनी प्राकृतिक संपत्ति का उचित ढंग पर प्रयोग न कर सका।

पिछले कुछ सालों से बम्बई के पूंजीपतियों ने अनन्त विघ्नों के होते हुए और सरकार से किसी प्रकार की भी आर्थिक सहायता न प्राप्त करते हुए नये नये कारखानों के खोलने का उद्योग किया। सरकार ने मान्चैस्टर तथा पैस्ले की मिल मालिकों के दबाव में पड़कर इन व्योवसायों पर ३ $\frac{1}{2}$ प्र० श० का व्यावसायिक कर लगाया। इन विघ्नों तथा अन्याय पूर्ण रुकावटों को सहते हुए भारत के साहसी व्यवसायियों ने कुछ एक कारखाने सफलता पूर्वक चला ही लिये।

महाशय ताता का दर्जा इन व्यवसायियों से सबसे ऊंचा है। उन्होंने भारत की जल प्रपात की शक्ति से काम लेने का उद्योग किया है। बाम्बे प्रान्त में जल प्रपात द्वारा बिजली निकालने के लिये उन्होंने ताता हाइड्रो-एलैक्ट्रिक पावर सप्लाई को नामक कम्पनी खोली है। यह जल प्रपात से ५०००० किलो वाट्स शक्ति उत्पन्न करेगी। इसी प्रकार का एक जल प्रपात कावेरी नदी में है। इससे अंग्रेजी-कंपनियां बिजली उत्पन्न करती हैं और मैसूर की सोने के खानों से इसके सहारे सोना खोदती हैं। एेलूमीनियम् तथा इस्पात का व्यवसाय बहुत उन्नति पर हो सकता है यदि जल प्रपातों से जगह २ पर बिजली निकाली जाय। सरकार की सहायता की बहुत ही अधिक जरूरत है। परन्तु सरकार भारतीय व्यवसायों की उन्नति में सहायता देगी इसमें सन्देह है। इन सब विघ्नों के होते हुए भी भारत के लोग अब इस ओर यत्न कर रहे हैं।

पञ्जाब के बड़े बड़े शहरों में बिजली की रोशनी, बिजला के पंखे आदि लगाने का यत्न किया जा रहा है। लाहौर तथा अमृतसर में बिजली का प्रबन्ध हो चुका है। रावलपिंडी, मुल्तान, लायलपुर, जालंधर सियालकोट, गुजरांनवाला में भी बिजली की विशेष आवश्यकता है। शिमले को भी अधिक बिजली की जरूरत है। इस उद्देश्य से तीन पञ्जाबी पूंजीपतियों ने पञ्जाब जल प्रपातीय-विद्युत तथा व्यावसायिक समिति की स्थापना

की है और उसका मुख्य आफ़िस दिल्ली में रक्खा है। इनका उद्देश्य है कि पञ्जाब की पांचों 'नदियों' की नहरों के प्रपातों से बिजली निकाली जाय और सारे के सारे विद्युत गृहों को एकदूसरे केसाथजोड़ दिया जाय ताकि यदि किसी नहर में पानी रहे, तो भी काम न बन्द हो सके। नहर के प्रपातों से बिजली निकालने का ठेका ले लिया गया है। यदि यह लोग अपने उद्देश्य मेंसफल हो गये तो पञ्जाब में बिजली की कमी न रहेगी और छोटी छोटी आटेकी चक्कियां तथा अन्य व्यवसायिक काम बिजली के सहारे सुगमता से किये जासकेंगे।

(६)

भारत में वृष्टि

अत्यन्त उपजाऊ भूमि, बहु मूल्य खानें तथा अपरिमित प्राकृतिक सञ्चालक शक्ति के सदृशही भारत में बहुत नदियां हैं और कृषि भी प्रर्य्याप्त राशि में होती है। इस अनन्त संपत्ति के होते हुए भी करोड़ों मनुष्य भूखे मर रहे हैं। यह क्यों? यदि यह कहा जाय कि वृष्टि के कारण कभी २ अनाज उत्पन्न नहीं होता है अतः भारतीय कृषक भूखों मरने लगते हैं। यह उत्तर ठीक नहीं है क्योंकि यदि किसानों के पास अपनी उपज का पर्य्याप्त भाग रखा हो तो एक या दो बार वृष्टि के न होने पर भो कृषिकों

को कष्ट नहीं पहुंच सकता है। भारतमें नदियां इतनी हैं कि यदि उनकी नहर बनायी जांय तथा नहरों के जल देने का रेट बहुत थोड़ा हो तो दरिद्र कृषकों का कृषि सम्बन्धी कष्ट भी कम हो सकता है। भारत में औसतन ३७½ इंच वृष्टि होती है। अन्न की उत्पत्ति के लिये २० इंच वृष्टि ही पर्य्याप्त है। विचित्रता तो यह है कि भयंकर से भयंकर दुर्भिक्ष के समय में भी भारत में वृष्टि पर्य्याप्त हुई थी।

दुर्भिक्ष के वर्ष	इंचों में वृष्टि
१८७७	६६
१८६६-६६	६०
१८७६	५०
१८६६ ६७	५२,४२

१९११-१२ में भारत के संपूर्ण प्रान्तों में जो वृष्टि हुई थी उसका ब्योरा इस प्रकार है।

क—इंचों में (साधारण वृष्टि)

भारतीय प्रदेश

छोटा वर्मा	१२३
पच्छिमी घाट (कोंकन का उत्तरीय अर्ध भाग) ...	१११
मालावार का दक्षिणी अर्ध भाग	१२८

बंगाल डल्टा	...	...	...	६२
पूर्वीय बंगाल	...	...	...	८५
आसाम	...	...	...	१००

ख—इंचों में तीव्र वृष्टि

भारतीय प्रदेश

बंगाल	...	...	...	५६
छोटा नागपुर	...	...	...	५३
उड़ीसा	...	...	...	५७
पूर्वीय मध्य प्रदेश	...	...	...	५३
बिहार	...	...	...	५०

ग—इंचों में मध्यम वृष्टि

भारतीय प्रदेश

अपर वर्मा	...	...	...	४१
पश्चिमीय मध्य प्रदेश	...	...	...	४५
मध्य भारत पूर्वीय	...	...	...	४५
,, पश्चिमीय	...	...	...	३४
उत्तरीय मद्रास तट	...	...	...	४०
युनाइटिड् प्राविन्सिज़	...	...	...	३६

बरार	...	...	...	३१
बम्बई (दक्षिणीय	...	...	...	३२
निजाम का प्रदेश (उत्तरीय)		...	...	३५
माइसोर	...	...	...	३६
गुजरात	...	...	...	३५

घ—इंचों में न्यून वृष्टि

भारतीय प्रदेश

मद्रास दक्खिन	...	...	...	२४
पूर्वीय राजपूताना	...	...	...	२४
पूर्वीय तथा उत्तरीय पञ्जाब		...	...	२३
पश्चिमीय राजपूताना	...	...	...	११
दक्षिण पश्चिमीय पञ्जाब	..	...	...	८
सिंध	...	...	...	६

आमतौर पर भारत के भिन्न २ प्रान्तों में औसतन वृष्टि इस प्रकार होती है:—*

प्रान्त	औसतन वृष्टि इंचों में
बर्मा	८१.०
आसाम	६३·२

* Economies of Biritish India. Sarkar. Third Edition P. 15-16-

बंगाल	५८·८
बिहार तथा उड़ीसा	४७·५
संयुक्त प्रान्त	३९·७
पन्जाब	१५·८
उत्तर पश्चिमी संयुक्तप्रान्त	५·१
सिन्ध	४·८
राजपूताना	१८·५
बाम्बे	३६·८
मध्यभारत	३५·१
मध्यप्रान्त	४१·६
हैदराबाद	२८·४
मैसूर	१६·३
मद्रास	२६·७

उपरिलिखित ब्योरे से स्पष्ट हो गया होगा कि भारत में चार पांच स्थानों को छोड़ कर २० इंच से न्यून वृष्टि किसी स्थान पर भी नहीं होती है। यह होते हुए भी भारत में लगातार भयंकर दुर्भिक्ष पड़ते हैं। भारत में इन दुर्भिक्षों की वृद्धि का मुख्य कारण भारत सरकार का भारत की भूमि तथा प्राकृतिक संपत्ति को अपनी मलकीयत बना लेना है और मालगुजारी या लगान को बहुत ही अधिक बढ़ाना है। इसीको दिखाने के लिये अब दूसरा परिच्छेद प्रारंभ किया जाता है।

दूसरा परिच्छेद

जातीय संपत्ति पर स्वत्व तथा मालगुजारी की वृद्धि

(१)

भारत की जातीय संपत्ति पर भारत सरकार का स्वत्व

भारत की जातीय संपत्ति पर अंग्रेजों की प्रतिनिधि स्वरूप भारत सरकार अपना स्वत्व प्रगट करती है और किसान तथा जमींदारों को अपना आसामी समझती है। खानों तथा जंगलों पर भी उसीका अधिकार होगया है। गरीब किसानों को जलाने के लिये लकड़ियां तथा पशुओं को चराने के लिये चरागाह उस सुगमता से नहीं मिलते हैं जिस सुगमता से कि उनको पुराने जमाने में मिलते थे। खानों पर भारत सरकार का स्वत्व होने से योरूपीय कम्पनियों को उनकी खुदाई का अधिकार बड़ी आसानी से प्राप्त हो रहा है। भारत वर्ष अपनी जातीय संपत्ति से अपने आप लाभ उठाने में असमर्थ है।

प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि भारतीय भूमि, जंगल, खान आदि पर भारत-सरकार का स्वत्व किस न्याय से है? क्यों कि इन प्राकृतिक सम्पत्तियों को भारत-सरकार ने नहीं बनाया है। भारत-सरकार आंग्लजनता की प्रतिनिधि है और उसीके

प्रति उत्तरदायी है। इस हालत में प्रतिनिधि के रूप में भारत सरकार का इंगलिस्तान की भूमि खान नदी जंगल आदि पर स्वत्व होना उचित है। परन्तु भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति पर ऐसा स्वत्व न्याय संगत कभी भी नहीं कहा जा सकता है। सब से बड़ी बात तो यह है कि स्वत्व संबंधी यह झगड़ा उठा ही क्यों? भारत-सरकार ने भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति पर स्वत्व क्यों स्थापित किया? यदि वह स्थापित न करती तो उसको क्या नुकसान था? इन प्रश्नों का उत्तर कुछ भी कठिन नहीं है। यह आगे चल कर दिखाया जायगा कि भारत-सरकार की शिक्षा के सदृश ही आय-व्यय की नीति विचित्र है। उसने एक ओर तो भारत को कृषिप्रधान देश बनाया है और भारत के व्यापार व्यवसाय का एकाधिकार इंग्लिस्तान के लोगों के हाथ में दे दिया है। और दूसरी ओर यूरोपीय व्यावसायिक देशों के भयङ्कर तौर पर बढ़े हुए खर्चों को भारत पर फेंक दिया है। भारत-सरकार ने भारत को खेतिहारा देश बनाया है। और नौ सेना, स्थल सेना तथा वायु सेना की वृद्धि में भारत-सरकार की दिनरात चिन्ता है। यूरोपीय लोगों को भारत के उच्च से उच्च पद सरकार देती है और उनकी तनख़ाहें भी बहुत अधिक रखती है। इनसब भयंकर खर्चों का परिणाम यह हुआ है कि शिक्षा आदि उत्तम बातों पर कुछ भी खर्च नहीं किया जाता है। और दिवाला निकलने के भय

तासे किसानों को अपना साराकासारा अनाज बेचना पड़ता है। इस अनाज को यूरोपीय देशों के लोग खरीदते हैं। वे लोग समृद्ध हैं। और अधिक से अधिक दाम देकर यहां का अनाज़ खरीदते हैं। इससे भयंकर मंहगी उत्पन्न हो गयी है। इस मँहगी का दूर होना तब तक असंभव है जब तक सरकार भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति से अपना स्वत्व न हटायगी। क्योंकि इस स्वत्त्र के हटते ही मालगुज़ारी का लेना रुक जायगा और भारतीय किसान समृद्ध होजांयगे और उनके कर्जे चुकते हो जांयगें। वे लोग बिदेशियों के हाथ में अपना अनाज उस हद तक न बेचेंगे जिस हद तक अब वेचते हैं। इसके साथ ही भारत-सरकार को भारतीय अनाज का विदेश में जाना रोक देना चाहिए।

यहां पर भारत सरकार यह कह सकती है कि भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति पर राज्य का स्वत्त्व अनंत काल से चला आया है। एक वही उस स्वत्व का परित्याग क्यों करे? इस का उत्तर यह है कि जो बात अनुचित है वह अनुचित ही है। कब से कौन बात चली और कब से नहीं चली? और क्योंकि पुराने जमाने से एक बात चली आयी है अतः वही ठीक है, इस ढंग के विचार तो स्वार्थी या मूर्खों के होते हैं। यदि भारत सरकार स्वराज्य देने में जात पात को भारतीय स्वराज्य का दिलसे बाधक मानती है तो फिर क्या

भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति पर अपने स्वत्व के लिए वंशागत तथा पुरागत के तत्त्वों को सामने रखती है। प्राचीन काल में क्या था? इससे भारत सरकार को क्या मतलब? प्रश्न तो यह है कि भारत-सरकार का भारत की प्राकृतिक संपत्ति पर स्वत्व किस न्याय से है? क्या भारत सरकार ने भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति को बनाया है? क्या भारत सरकार ने भारत की भूमियों की दलदलों को सुखाया है और जंगलों को काटा है? यदि वह बातें भारत सरकार ने नहीं की है और इससे विपरीत मालगुजारी ज्यादा बढ़ा कर भारतीय भूमिये की उत्पादक शक्ति तथा भारतीय किसानों की शक्ति को घटाया है और दोनों को नीरस निःशक्त तथा दरिद्र कर दिया है तो इस हालत में भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति पर उसका स्वत्व किस ढंग पर माना जा सकता है?

सब से बड़ी बात तो यह है कि भारत के प्राचीन राजाओं ने कभी भी भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति नहीं बनाया। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण बंगाल ही है। बंगाली जमींदारों का अभी तक अपनी भूमियों पर स्वत्व पूर्ववत् बना है। यद्यपि रोडेसस आदि अनेक राज्य करों ने बंग देश की प्राकृतिक सम्पत्ति पर उनके स्वत्व को निरर्थक तथा लाभ रहित बना दिया है परन्तु इसको कौन छिपा सकता है कि बंगदेश की प्राकृतिक सम्पत्ति पर बंगीय प्रजा का स्वत्व है।

भारत की जातीय संपत्ति पर भारत सरकार का स्वत्व

भारत के प्राचीन राजा भारतीय भूमि का अपने आप को मालिक न समझते थे। प्रजा का ही भारतीय भूमि जंगलों तथा मकानों पर स्वत्व है। यही विचार मीमांसाकारों ने हम लोगों के सन्मुख रखा है। महाराज जैमिनी ने मीमांसा दर्शन में लिखा है कि "न भूमिः सर्वान् प्रत्यवशिष्टत्वात्" मीमांसा अध्याय ६ पा० ७-अधि० १-२

देया न वा महाभूमिः स्वत्वाद्राजा ददातुताम्।
पालनस्यैव राज्यत्वान्नस्वं भूर्दीयतेनसा ॥ २ ॥

यदा सार्वभौमो राजा विश्वजिदादौ सर्वंददाति, तदा गोपथ राजमार्ग जलाशयाद्यन्विता महाभूमिस्तेन दातव्या कुतः भूमिस्तदीयधनत्वात्। "राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जम्" इतिस्मृते इतिप्राप्तेः ब्रूमः। दुष्ट शिक्षाशिष्ट परिपालनाभ्यां ईशितृत्वमभिप्रेतमिति राज्ञो न भूमिर्धनम्। किन्तु तस्यां भूमौ स्वकर्मफलभुञ्जानानाम् सर्वेषाम् प्राणिनां धनम्। अतोऽसाधरणस्य भूखंडस्य सत्यपिदाने महा भूमेर्दानम् नास्ति।

अर्थात् जब राजा सार्वभौम विश्वजित यज्ञ में दान करता है तो क्या वह नहर, तालाब, सड़क आदि समेत सम्पूर्ण भूमिका भी दान कर सकता है? क्योंकि स्मृतियों में कहा है कि राजा ब्राह्मणों को छोड़ कर सब का स्वामी है। ऐसा पूर्व पक्ष होने पर सिद्धान्ती का उत्तर है कि राजा का स्वामित्व

प्रबंध के विषय में है न कि भौमिक सम्पत्ति के विषय में। इस प्रकार सिद्ध है कि " न भूमिः राज्ञोधनम् " अर्थात् भूमि राजा की सम्पत्ति नहीं है वह तो उन सब प्राणियों की सम्पत्ति है जो कि उन पर निवास करते हैं (अर्थात् प्रजा की सम्पत्ति है) यही कारण है कि राजा अपनी सम्पत्ति स्वरूप भूमि के किसी एक टुकड़े का दान कर सकता है, परन्तु सम्पूर्ण भूमि का दान नहीं कर सकता है।

महाराज जैमिनि भारताय सम्पत्ति पर प्रजा का ही स्वत्व समझते हैं और राजा का नहीं, यह उपरिलिखित प्रमाण से सर्वथा स्पष्ट है।

संस्कृत के अति प्राचीन ग्रन्थों को यदि देखा जाय तो मालूम पड़ सकता है कि प्राचीन आर्य्य भूमि पर स्वत्व अपना ही समझते थे और इस मामले में बहुत ही अधिक सावधान थे। महाराज जैमिनि से बहुत पूर्व विश्वकर्मा भौवन के समय में ही भूमि सम्बन्धी स्वत्व का झगड़ा उठ खड़ा हुआ था और राजा ने जनता का स्वत्व स्वीकृत कर लिया था। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि—

एतेन हवा ऐन्द्रेण महाभिसेकेण कश्यपो
विश्वकर्माणं भौवनभमिषिषेच। तस्मा-
दु विश्वकर्मा भौवनः समन्तः सर्वतः पृथि-
वींजय न्परीयायाश्वेन चमेध्येनेजे।

भूमि ह जगा वित्युदाहरन्ति ।
नमा मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति विश्वकर्मन्भौ-
वन मां दिदासिथ। निमंदयेऽहं सलिलस्य
मध्ये, मोघस्तएष कश्यपायाऽऽस
संगर इति
(ऐतरेये ब्राह्मणम् । अध्याय ३६ । पृष्ठ ६५:
आनन्दाश्रम संस्करण)

अर्थात् एकबार कश्यप आचार्य्य ने विश्वकर्मा भौवन का इन्द्रमहाभिषेक से राज्याभिषेक संस्कार किया। राजा बनने के बाद उसने सारी पृथ्वी को जोता और जीतकर कश्यप आचार्य्य को दान में देने का इरादा किया। किवदन्ती है कि भूमि सहसा ही जाग उठी और उसने राजा से कहा कि मुझ को कोई भी कसी को नहीं दे सकता। आश्चर्य है कि विश्वकर्मा भौवन मुझ को कश्यप आचार्य्य को देना चाहता है। मैं पानी में पुनः डूब जाऊंगा। इस पर विश्वकर्मा भौवन कश्यप को सारी पृथ्वी नदे सका"। हमारा प्रश्न है कि किस न्याय से ईस्ट-इंडिया कम्पनी ने बंगाल को आंग्ल प्रजा के हाथों में बेचा और किस न्याय से आंग्ल प्रजा ने बंगाल खरीदने का रुपया बंगाल से वसूल किया? असली बात तो यह है कि धर्म्म अधर्म, पाप पुण्य, तो पुराने जमाने की बाते हैं। वह तो प्राचीन राजाओं तथा

स्मृतिकारों के साथ ही चिता में जल गये। सरकार को जो कुछ करना है, वह करती है। परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि प्राचीन स्मृतिकारों तथा सूत्रकारों ने भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति पर राज्य का स्वत्व कभी भी न माना और अपने आप को अपने ही रुपयों से बेचने का विचार तो उनको स्वप्न में भी न आया। वह विचारे जब कभी सोचते थे तब यही सोचते थे कि—

"स्वभाग भृत्या दास्यत्वे प्रजानां चनृपः कृतः
ब्रह्मणा स्वामिरूपस्तु पालनार्थं हिसर्वदा।

शुक्र नीति अ० १ पृष्ठ १७

अर्थात् राजा, प्रजा का धन राज्य करके तौर पर लेता है। अतः वह प्रजा का दास है। वह तो स्वामी के पद पर तभी तक है जब तक कि प्रजा का पालन करता है। इसके सिवाय किसी अन्य समय में वह प्रजा का स्वामी नहीं हो सकता।

परन्तु आंग्ल राज्य ने तो इस स्वामित्व को इस हद तक बढ़ाया कि भारत की भूमि खान जंगल आदि सभी भारतीय प्राकृतिक सम्पत्ति उसके पेट में चली गई, पालन करना तो दूर रहा। उसने उसको कामधेनु समझ कर बुरी तरह से निचेड़ना शुरु किया। परन्तु भारत के प्राचीन राजा ऐसा न करते थे। संवत् ४५७ में फाहियान ने अपनी यात्रा लिखते समय लिखा है कि—

"मथुरा के आगे रेगिस्तान है। रेगिस्तान (राजपूताना) के लोग बौद्ध हैं। उसके समीप ही वह देश है जो कि मध्य प्रदेश कहलाता है। उस देश का जल वायु गरम और एकसा रहता है। न तो वहां पाला पड़ता है न बर्फ़। वहां के लोग बहुत अच्छी अवस्था में हैं। उनको राज्य कर नहीं देना पड़ता और न राज्य की ओर से उनको कोई रोक टोक है। केवल जो लोग राज्य की भूमि जोतते हैं उन्हीं को भूमि की उपज का कुछ अंश देना पड़ता है। वह जहाँ चाहें जा सकते हैं और जहां चाहे रह सकते हैं"[१]

इसी प्रकार संवत् ६८७ में आये चीनी यात्री ह्वेन्सांग का कथन है कि :—

"देश की शासन-प्रणाली उपकारी सिद्धान्तों पर होने के कारण सरल है। राज्य चार मुख्य मुख्य भागों में बटा है। एक भाग राज्य प्रबंध तथा यज्ञादि के लिए। दूसरा मंत्री और राज्य कर्मचारियों की आर्थिक सहायता के लिए। तीसरा बड़े बड़े योग्य मनुष्यों के पुरस्कार के लिए और चौथा यश की वृद्धि के लिए। इस प्रकार लोगों पर राज्य कर हल के हैं और उनसे शारीरिक सेवा हल की ली जाती है।

1. Buddhist Records of the Western world by Samuel Beal (1884), Vol. I. Introduction p.p. XXXVII and XXXVIII

प्रत्येक मनुष्य अपनी सांसारिक सम्पत्ति को शान्ति के साथ रखता है और सब लोग अपने निर्वाह के लिए भूमि जोततेबोते हैं। जो लोग राजा की भूमि कोजोतते हैं उनको उपज का छठां भाग राज्य कर की भाँति देना पड़ता है। ....नदी के मार्ग तथा सड़क बहुत थोड़ी चुंगी देने पर खुले हैं।"[२]

ह्यूनत्सांग तथा फाहियान के उपरिलिखित वाक्यों में "जो लोग राजा की भूमियों को जोतते हैं उनको उपज का छठाँ भाग राज्य कर की भांति देना पड़ता है।" ये शब्द अत्यन्त ध्यान देने योग्य हैं। क्योंकि इन शब्दों से यह स्पष्ट झलकता है कि राजा का प्रजा की सम्पूर्ण भूमि पर स्वत्व न था। उसकी जो वैयक्तिक सम्पत्ति स्वरूप भूमि थी उस पर खेती करने के लिए छठां भाग किसानों को राज्य करके तौर पर देना पड़ता था।

'प्रजा का भूमि पर स्वत्व था, इसी कारण से भूमि पर राज्यकर राजा लोग न बढ़ाते थे। शुक्र नीति में लिखा है कि—

प्राजापत्येन मानेन भूमि भाग हरणं नृपः
सदा कुर्याच्च स्वापत्तौ मनुमानेननान्यथा॥
लोभात्तु संकर्षयेद्यस्तु हीयते सप्रजोनृपः।

2. Buddhist Records of the wstern world, by Samue Beal (188 ,4Vol. I, PP 87

अर्थात् प्रजापति महाराज ने जो भूमि भाग राजा के लिए नियत किया है उसी के अनुसार राजा को अपना भाग लेना चाहिए। जब बहुत विपत्ति पड़े तब मनुमहाराज के अनुसार भूमि का भाग ग्रहण करे। जो राजा भूमि से अधिक राज्य-कर ग्रहण करते हैं वे प्रजा को तो नष्ट करते ही हैं परन्तु उसके साथ २ स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं। इन सब प्रमाणों के होते हुए भी भारत सरकार अपनी इच्छा तथा ज़रूरत के अनुसार भूमि से मालगुज़ारी बढ़ाती जाती है। दुर्भिक्ष पड़ते हैं और करोड़ों लोग भूखों मरते हैं परन्तु भारत सरकार को इसकी क्या चिन्ता। अकबर के समय से अब मालगुजारी दुगनी से बहुत अधिक ली जारही है। जब कि भूमि की उत्पादक शक्ति उस समय की अपेक्षा आधी रह गयी है। बंगाल, मद्रास तथा बंबई के प्रान्त इसी मालगुजारी की वृद्धि से उद्यान से बीयावान हो गये थे। अवध का समृद्ध प्रान्त इसी मालगुजारी की वृद्धि से सब से अधिक दरिद्र प्रान्त हो गया था। परन्तु सरकार को इससे क्या मतलब। उसको तो भारत में इंग्लैण्ड के पूंजीपतियों तथा पुतली घर के मालिकों के स्वार्थ पूर्ण उद्देश्यों को पूरा करना है। इसी कूटनीति का यह परिणाम है कि भारत के सम्पूर्ण व्यवसाय लुप्त हो गए और जो बचे हैं वह भी दिन पर दिन लुप्त हो रहे हैं। कृषकों की स्थिति भी

बहुत ही भयंकर है। बेगारी में उनको पकड़ा जाता है और उनसे लगान इतना अधिक लिया जाता है कि एक भी फसल के बिगड़ते ही वह दुर्भिक्ष के शिकार हो जाते हैं। प्राचीन काल से अंग्रेजों के समय तक लगान किस प्रकार बढ़ा है, अब अगले प्रकरणों में इसी पर प्रकाश डाला जायगा।

---

(२)

भारत में लगान बढ़ने का इतिहास

प्राचीन काल में सभी सभ्य जातियों में भूमि को राज्य आय का एक मुख्य साधन समझा जाता था। यह होते हुए भी प्रायः भूमि पर राज्यकर बहुत अधिक न होता था। प्राचीन इतिहास के पढ़ने से प्रतीत होता है कि उस समय में भिन्न २ जातियों में निम्नलिखित धन राशि राज्यकर के तौर पर ली जाती थी।

देश	लगान
यूनान	उपज का $\frac{१}{१०}$ भाग
फारस	,,
चीन	,,
रोम	,,

डायो क्लोशियन के काल में

	रोम में	"	$\frac{1}{5}$ या $\frac{1}{6}$ "
भारतवर्ष (क)"	(गौतम धर्म सूत्र) अ० १"२४	"	$\frac{1}{10}$ "
	(वशिष्ठ धर्म सूत्र) अ. १'४२	"	$\frac{1}{6}$ "
	(मनु धर्म सूत्र) अ० ७'१३०	"	$\frac{1}{12}$ "

भारत में उपरिलिखित राज्यकर कभी भी बढ़ाया न जाता था। इस अल्प राज्यकर के कारण कृषकों की दशा बहुत ही उन्नत थी। प्राचीन काल में भारत में जो जो विदेशी भ्रमण करने आये वह सब के सब इसी बात का परिचय देते हैं।

(क) :—भूमि कर:—

पञ्चाशद् भाग आदेयो राज्ञा पशु हिरण्ययोः
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एववाः—
मनु० अ० ७ श्लो० १३०

कृषक राज्य को उत्पत्ति का $\frac{1}{10}$, $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{6}$ भाग्य राज्य को देवे :—
गौतम धर्म शास्त्र X. २४

धर्म नियमों के अनुसार राज्य करने वाले राज्य को धन का $\frac{1}{6}$ भाग लेना चाहिये
वशिष्ठ धर्म शास्त्र I. ४२

३१० ई० पू० में यूनानी राजदूत भारत में आया था। उसने भारत के विषय में जो लिखा है वह अतिशय प्रामाणिक समझा जाता है। वह भारत का जो कुछ वर्णन करता है वह इस प्रकार है:—"पोषण के बहुल साधनों के कारण निवासियों का क़द साधारण से बड़ा है। और वे आत्मसम्मानपूर्ण ढंग के लिये विख्यात हैं। वे कलाओं में भी खूब ही निपुण हैं जैसी कि शुद्ध वायु और उत्तम जल पाने वाले मनुष्यों से आशा की जा सकती है। भूमि सब प्रकार के फल उत्पन्न करती है, और भूमि के गर्भ में सब प्रकार की धातुओं की अनेक खानें हैं। उसमें बहुत सोना और चाँदी है। तांबे और लोहे की भी मात्रा कम नहीं है। और टीन तथा अन्य धातुयें भी हैं, जिन से व्यवहार की चीज़ें, गहने तथा औज़ार एवम् युद्ध-कवच बनाये जाते हैं। अनाजों में, जुआर आदि के सिवाय, संपूर्ण भारत में बाजरा पैदा होता है, जो नदियों की बहुलता के कारण खूब सींचा जाता है। अनेक प्रकार की दालें, और चावल भी पैदा होते हैं—और भी बहुत तरह के खाद्योपयोगी पौधे, भारत में होते हैं, जिनमें अधिकांश आपही आप उपजते हैं। भारत कीभूमि और भी बहुतेरीपशुओं के खाद्योपयुक्त वस्तुएं उत्पन्न करती हैं, जिनका वर्णन कहां तक किया जाय। अतएव पक्की तौर से यह कहा जाता है कि, भारत में अकाल कभी नहीं पड़ा, और पोषक खाद्यपदार्थ की कमी कभी नहीं हुई।

वर्ष में दो चार वर्षा होने के कारण भारतवासी साल में प्रायः सर्वदा दो फसलें काटते हैं, और यदि एक फसल न हुई तो दूसरी का निश्चय तो उन्हें रहता ही है। इसके अतिरिक्त, स्वतः फलने वाले फल और मधुर कन्दमूल मनुष्य के पोषण के लिये बहुलता से उत्पन्न होते हैं।......

इसके साथ ही भारतवासी ऐसी रीतियों का पालन करते हैं जिनके कारण उनके यहां दुर्भिक्ष नहीं पड़ने पाता। समर काल में भूमि को उजाड़ देना और खेतों को नष्ट कर देना अन्य जातियों में साधारण बात है। इसके विपरीत, भारतवर्ष में, जहां कृषकवर्ग को पवित्र और अदंड्य माना जाता है, इस ढंग की बात नहीं की जाती है। यही कारण है कि उस समय भी किसानों में किसी प्रकार की अरक्षा का भाव और उद्वेग नहीं होता, जबकि उनके समीप ही युद्ध हो रहा हो। क्योंकि यद्यपि दोनों पक्ष के लड़ाके एक दूसरे का संहार करते हैं किसानी में लगे हुए लोगों को बिल्कुल नहीं छेड़ते। इसके सिवाय, वे शत्रु की भूमि न तो आग लगाकर तबाह करते हैं और न उसके पेड़ काट डालते हैं।

(डायोडोरस— २-३५-४२)

हिन्दूराजाओं के समय में भारतवर्ष सुखी तथा समृद्ध था। भूमिकर बहुत कम तथा स्थिर था और भूमि पर

प्रजा का ही स्वत्व था। परन्तु भारत की वह प्राचीन सुख संपत्ति चिरकाल तक न रह सकी। जब भारत पर मुसल्मानों ने आक्रमण किया उन्होंने भारत की भौमिक संपत्ति को अपने अधिकार में कर लिया। मुसल्मानों तथा मुसल्मान सम्राटों को आर्य जनता क्यों घृणा की दृष्टि से देखती रही इसका कुछ रहस्य इधर भी है। उन्होंने प्रजा की संपत्ति स्वरूप भूमि को 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के सिद्धान्त पर काम करते हुए छीन लिया और उसके स्वामी वह स्वयं बन बैठे।

यह अत्याचार का काम करते हुए भी उन्होंने लगान बहुत अधिक न नियत किया था। जामी अस साघीर (Jami us Saghir) में लिखा है कि "विजित भूमि-चाहे वह नहर द्वारा सिञ्चत हो और चाहे वह झरनों द्वारा-यदि उसमें अनाज उत्पन्न होता है तो उस पर लगान लिया जायगा। सम्राट् अकबर ने अधिक से अधिक उपज का $\frac{१}{३}$ भाग करमें लेने के लिये निश्चय किया था परन्तु वास्तव में जो कर उसको मिलता था वह उपज का $\frac{१}{६}$ भाग से कुछ भी अधिक न था।"(१)

आईन ई अकबरी में लिखा है कि "बहुत से प्रान्तों में

(१) Famines in India by R. C, Dutta Appendix.

भूमि का माप न किया गया था वहां पर लगान अनुमान से लिया जाता था-और जहां पर माप किया गया भी था वहां पर भी माप की विधि के ठीक न होने से लगान निश्चत करने के लिये कृषक, जमीन्दार तथा गांव के चौधरियों पर ही निर्भर करना पड़ता था। यह लोग अपनी उत्पत्ति को कब अधिक बताने लगे। इससे प्रायः राज्य को लगान पर्य्याप्त न मिलता था। सब से अधिक बात यह है कि लगान प्राप्ति के लिये प्राचीन यवन राजा अधिक से अधिक रुपये निश्चित करते थे जिससे मौके पड़ने पर अधिक ले सकें परन्तु वास्तव में वह रुपयों की संख्या राज-कोष में कभी न जाती थी। और प्रजा कम लगान के कारण आनन्द में दिन काटती थी।"(२)

भौमिक दृष्टि से मुसल्मानी काल में जो कुछ दोष था, वह यही था कि राज्य ने बलात्कार से प्रजा की भूमि पर अपना प्रभुत्व कर लिया था। इस दोष के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसी बात न थी जिससे प्रजा को विशेष कष्ट पहुंच सकता। मुसल्मान राजा लोग भारतवर्ष में रहते थे। इस दशा में ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो कि यह चाहे कि वह प्रजा की गालियों में अपना जीवन काटे? प्रजा को सता कर और प्रजा को कष्ट में देखकर ऐसा कौन राजा होगा जो कि सुख मनावे। परन्तु यह सब बातें वहां नहीं रहतीं

(२) पूर्वोक्त ग्रन्थ

जहां कि राजा प्रजा से सैकड़ों मील दूर रहता हो या कोई विदेशीय जाति किसी की शासक हो। रोम के इतिहास पढ़ने वालों को यह पता ही है कि रोमन प्रान्तों के साथ क्या अत्याचार होता था ? अमेरिका का इतिहास जो कुछ शिक्षा देता है वह भी यही है।

(३)

आंग्ल काल में लगान

यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि मुसलमानी काल में भारतीय भूमि पर राज्य का प्रभुत्व हो गया। परन्तु उसने इस प्रभुत्व से कोई विशेष लाभ उठाने का यत्न न किया। इससे भूमियों का लगान कम ही रहा और प्रजा अपने दिन सुख तथा संपत्ति में काटती रही।

परन्तु आंग्ल राज्य में कुछ कुछ और परिवर्तन उपस्थित हो गये। भूमि पर से स्वत्व जहां राज्य ने न छोड़ा वहां उस स्वत्व का लाभ उठाना भी प्रारम्भ कर दिया। यदि यह लाभ प्रजा के स्वार्थों के अनुकूल ही होता तब तो कोई भी बात न रहती। परन्तु शोक से कहना पड़ता है यह बात ऐसी नहीं है।

भारतीय प्रजा तथा भूमि का विक्रय किया गया और भूमि से अधिक अधिक रुपया प्राप्त करने का यत्न किया गया।

इसका परिणाम यह हुआ कि समृद्ध से समृद्ध भारत का प्रदेश दरिद्रता की भयंकर निधि में जा पड़ा। अधिक न इस दुःख कथा को बढ़ा कर 'तन्जौर' के प्रदेश से ही इस विषय को स्पष्ट करने का यत्न किया जायगा।

महाशय पैट्रि १७६८ में तन्जौर के अन्दर भ्रमण करने के लिये आये थे। उनका कथन है कि उस समय तन्जौर भारत के समृद्ध प्रदेशों में से एक प्रदेश समझा जाता था। विदेशीय तथा अन्तरीय व्यापार का वह केन्द्र था। उसमें बम्बई तथा सूरत से रुई आती थी, बंगाल से रेशम और सुमात्रा मलक्का से गरम मसाले आते थे। इसी प्रकार अन्य बहुत से पदार्थ भिन्न २ प्रदेशों से उसमें पहुंचते थे। मरहट्टा तथा हैदर अली के साम्राज्य में योरूपियन पदार्थ तन्जौर द्वारा ही पहुंचते थे। भारतीय वस्त्र तन्जौर के बन्दरगाहों से अफ्रीका तथा दक्षिणीय अमेरिका आदि प्रदेशों में जाते थे। तन्जौर की भूमि अतिशय उपजाऊ थी। राज्य का प्रबन्ध इतना उत्तम था कि कावेरी तथा कोलरून की नदियों का जल प्रायः प्रत्येक खेत में पहुंचता था। तन्जौर का ही एक प्रदेश है जिसको संपूर्ण भारत में इंग्लैंड से उपमा दी जा सकती है।" परन्तु १७७१ में कंपनी के राज्य ने रुपया प्राप्त करने की इच्छा से तन्जौर पर आक्रमण कर दिया और १७७३ में तन्जौर पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इन कुछ ही

वर्षों के बीच में संपूर्ण तन्जौर प्रदेश उजड़ गया। उसका व्यापार व्यवसाय नष्ट हो गया। जनता कृषि को छोड़कर इधर उधर भाग गयी (१) यह होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि व्यापार व्यवसाय तो वहीं निवास करते हैं जहां स्वतन्त्रता होती है। तन्जौर का इतिहास भी उसी सत्य को सिद्ध करता है जिसका स्थान २ पर पिछले पत्रों में उल्लेख किया जा चुका है।

पूर्व ही लिखा जा चुका है कि आंग्ल राज्य का भूमियों पर स्वत्व होने के साथ साथ उनका लगान भी बढ़ा दिया गया। निम्नलिखित सूची इसी बात को स्पष्ट करती है।

Statistical Abstract relating to British India:—1888-89 to 1897-98. P. 98.

(१) (Fourth Report of the Commitee of secrecy. 1782) Appendise (No. 22.)

—महाकवि वैङ्कट ने तन्जौर के विषय में लिखा है कि तन्जौर प्रदेश अति समृद्ध है। धन वैभव से परिपूर्ण है। इतना होने पर भी इसका राजा बड़ा असन्तोषी है। वह अन्यों के राज्य पर आक्रमण करता है।

प्राज्ये हन्तधनेस्थितोपिनृवरो राज्येऽपि सत्यूर्जिते
संभोगानुगुणा विलोचन गुणौ रम्भोजदम्भद्रनः।
कल्याणीस्तरुणीरुपेचय करुणाहीनः ससेनःस्वयम्
हर्तुं शत्रुधरांचिरादभिलषन् मर्तुं रणेजुम्भते ॥

विश्व गुणा दर्शचरित्रम। प्रकरण २०। श्लो ३७७

यह महाकवि १६५० में हुआ था। इसने उसी समय का तन्जौर का वर्णन किया है। महाशय पैट्रि तथा कवि का कथन सर्वथा मिलता है।

अकबर के समय में निम्नलिखित ८ प्रान्तों की कल्पित लगान यह था*

बंगाल	...	१४९६१४८२
बिहार	...	५५४७९८५
अलाहाबाद	...	५३१०६९५
अवध	...	५०४३९५४
आगरा	...	३६५६२५७
दिल्ली	...	१५०४०३८८
लाहौर	...	१३१८६४६०
मुलतान	...	३७८५०९०
		७७३३२३११ कल्पित लगान

इन आठ प्रान्तों का भूमिक्षेत्र अद्यकालीन इंग्लिश तीन प्रान्तों १ बंगाल, २ उत्तर पश्चिमीय प्रान्त तथा अवध, (N.W. Provinces & Oudh) और (३) पंजाब, के बराबर होता है-

इन तीन प्रान्तों का लगान आंग्ल राज्य में १८९५-९६ में निम्नलिखित थाः—

बंगाल	३९०५२२१०
उत्तर पश्चिमीय प्रान्त तथा अवध, (N.W. Provinces & Oudh)	६०१६९४४०
पंजाब	२२९६६९९०
	१२२३१८८६४० गृहीत कर

* Eamines in India by R. C. Dutt Appendix

आंग्ल काल में लगान

उपरिलिखित व्योरे से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि किस प्रकार आंग्ल काल में १८९५ के साल के अन्दर ही मुसल्मानी काल की अपेक्षा लगान दुगुना हो गया था। आज-कल तो इसकी मात्रा का कोई अन्त ही नहीं है। तिगुने से भी किसी कदर अधिक ही है। संपूर्ण भारत पर स्वत्व राज्य का है अतः योरुपीय देशों के सदृश भूमि का स्वामित्व यहां कृषकों का नहीं है। भारत में प्राचीन काल के अन्दर कृषक ही भूमियों के स्वामि होते थे। उनसे वही कर लिये जाते थे जो कि अन्य व्यापारी या व्यावसायियों से लिये जाते थे। जो कृषक राजा की भूमि को जोतते बोते थे उनसे भी लगान बहुत ही थोड़ा लिया जाता था। परन्तु आजकल कृषकों का भूमि पर स्वत्व नहीं है। उनकी वही स्थिति है जो रोम में दासों की स्थिति थी।

दश या पन्द्रह वर्षों के बाद भिन्न २ स्थानों का लगान राज्य बढ़ा देता है। इसका जो भयंकर परिणाम हुआ है उसका सविस्तर आगे वर्णन किया जायगा। कुछ एक ऐसे भी भारतीय प्रदेश हैं जिनमें राज्य ने कृषकों को यह प्रण दिया है कि वह उनकी भूमियों पर लगान न बढ़ायगा।

भारतीय संपत्ति-शास्त्र में लगान की इस विधि को रैय्यत वारी स्थिर लगान के नाम से पुकारा जाता है। योरुप में कृषक स्वामित्व की रीति ही प्रायः प्रचलित है। वहां पर वास्तव

में कृषक ही भूमि का स्वामी होता है। अतः वह राज्य को लगान आदि कुछ भी नहीं देता है। अन्य व्यापारी व्यवसायियों के सदृश ही वह भी राष्ट्र को कर देता है जो कि बहुत भारी नहीं होता।

बिहार तथा बनारस के कुछ एक ग्रामों में कुछ एक व्यक्ति रैय्यत वारी स्थिर लगान विधि पर राज्य को लगान देते हैं। परन्तु भारत के अन्य प्रदेशों को यह भी सौभाग्य नहीं प्राप्त है। बंगाल में कृषक स्वामित्व के स्थान पर भूमि पति स्वामित्व विधि प्रचलित है जिसमें भूमि पति लोग राज्य को स्थिर लगान प्रतिवर्ष दे देते हैं। पञ्जाब, मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रान्त आदि महाप्रदेशों में राज्य प्रत्येक वार लगान बढ़ाता जाता है। इससे प्रजा को अनन्त कष्ट पहुंचा है। लगान इस सीमा तक बढ़ चुका है कि लगान राज्य को दे चुकने पर प्रजा के पास खाने पीने तक को कुछ भी नहीं बचता।

परिणाम इसका यह होता है कि ग्राम के सेठ साहूकारों से अधिक व्याज पर रुपया ले लेकर कृषक राज्य को लगान दे देते हैं। यह इसीलिये कि राज्य को यदि वह समय पर लगान न दें तो राज्य उनकी उसी समय भूमि छीन लें। परन्तु सेठ साहूकार तो तभी भूमि ले सकते है जबकि उनसे इतना रुपया उधार ले लिया जाय जो कि भूमि के मूल्य के बराबर हो। सरकार का सब से पहिला

कर्त्तव्य था कि वह स्वयं लगान लेना तथा बढ़ाना सदा के लिये बन्द कर देती और यदि इस पर भी कृषकों को उधार लेना ही पड़ता तो ऐसा उपाय करती जिससे उनको कम व्याज पर रुपया उधार मिल सकता।

ताल्लुकेदारों की संस्था को तो बिलकुल मिटाही देना चाहिये। क्योंकि अब समाज को इनको कुछ भी जरूरत नहीं है। यह समाज रूपी शरीर के वह सड़े गले अंश हैं जो कि सारे समाज को ही मुर्दा बना रहे हैं। जब तक समाज में ताल्लुकेदार तथा नामधारी राजा महाराजा मौजूद हैं तब तक न्याय का प्रचलित होना, गुलामी तथा अर्धदासता का दूर होना और शान्ति का स्थापित होना असंभव है। इनकी जमीनों को गरीब किसानों में बांट देना चाहिये। बहुत देर तक इन लोगों ने प्रजा की लूटी संपत्ति से अमन चैन में जीवन व्यतीत किया। अब इस ढंग के स्वेच्छाचारी पुरुषों के पालने का समय नहीं रहा। परन्तु भारत सरकार तो इन ताल्लुकेदारों को इसीलिये पालपोष रही है कि इनके सहारे वह सुगमता से ही देश को निचोड़ सकती है और मनमाना धन प्राप्त कर सकती है।

१७९३ में बङ्गाल में कुल उपज का ६० प्र० श० स्थिर लगान भूमिपतियों से राज्य ने सदा के लिये स्थिर कर दिया

था। यह सभी अनुभव कर सकते हैं कि यह लगान कितना अधिक था। प्राचीन आर्य्य राजा कुल उपज का $\frac{1}{10}$ भाग कर के तौर पर लेते थे परन्तु आंग्ल राज्य ने $\frac{9}{10}$ भाग उपज का लगान के तौर पर बंगाल में निश्चित किया (प्राचीन राजाओं की अपेक्षा $\frac{9}{10}$ गुणा अधिक लगान लिया)। सौ वर्ष की लगातार वृद्धि तथा पदार्थों की मंहगी के होते हुए भी बङ्गाली भूमिपतियों को २५॥ प्र०श० लगान राज्य को देना पड़ता है जो कि कुल उपज का $\frac{1}{4}$ भाग हुआ। प्राचीन राजाओं के काल में यह अधिक से अधिक राज्य कर समझा जाता था और युद्ध आदि विपत्ति के काल में लिया जाता था। साधारण तौर पर उन दिनों में १० प्र० श० राज्य कर ही भूमि पति या कृषकों से राज्य लेता था। इस समय तक बंगाल में जो लगान की मात्रा है वह प्राचीन आर्य्य राजाओं तथा मुसलमानी राजाओं के काल में युद्ध के समय में प्रजा से ही जाती थी। (१)

यह तो दशा उस प्रान्त की है जिस में आंग्ल राज्य की दृष्टि में अतिशय न्यून लगान लिया जाता है। जो प्रान्त आंग्ल राज्य के प्रभुत्व में है और जहां आंग्ल राज्य मनमाना लगान

(१) (२) बगाल की लगान की मात्रा १७९३ में ९० प्र० श० थी और अब २५ प्र० श० रह गयी है। यह (Famines in India by R. C. Dulta) पुस्तक से लिया गया है।

बढ़ा सकती है उन प्रान्तों की दशा का पाठकों को स्वयं ही अनुमान कर लेना चाहिये। आजकल निम्न लिखित प्रान्तों से सरकार जो लगान लेती है उसका व्योरा इस प्रकार है†:—

सरकारी लगान की मात्रा सन् १९१८—१९ में

प्रान्त-	लगान रुपयों में
उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त	२२७००००
मद्रास	६११३८०००
बंबई	५३४७९०००
बंगाल	२९८६४०००
संयुक्त प्रान्त आगरा तथा अवध	६५१०५०००
पन्जाब	२८७६५०००
वर्मा	५४८४२०००
बिहार तथा उड़ीसा	१५८६५०००
मध्य प्रान्त तथा वरार	२००५४०००
आसाम	८४४७०००

पुराने आर्य्य राजाओं तथा मुसल्मानी राजाओं के समयकी अपेक्षा उपरि लिखित लगान की मात्रा कई गुणा अधिक है:—

पूर्व प्रकरण में सरकारी रिपोर्ट के द्वारा दिखाया जा

† Budget of the Government of India for 1918-19 P.P 202-2u7.]

चुका है कि आज 'कल भूमिपति स्वामियों' से बंगाल में २५ प्र. श० लगान लिया जाता है। १६११-१ की कृषि सम्बन्धी रिपोर्ट से पता लगा है कि प्रत्येक एकड़ पर यही रेट् ७ पेन्स के अनुसार बैठती है। अर्थात् प्रत्येक एकड़ पर बंगाल में स्थिर लगान ७ पेन्स है जो कि भूमिपतियों को कुल आमदनी का २५ प० श० है। अन्य प्रान्तों में जहां पर कि स्थिर लगान की विधि प्रचलित नहीं है और जहां पर कि सरकार मनमानी तौर पर लगान को बढ़ाती है। वहां पर लगान पृष्ठ के साथ में लगी सूची के अनुसार बढ़ा है:—(१)

मुहम्मद अली के समय में मद्रास में अंधाधुंध मची। यह बंगाल के नवाब मीर कासिम से सर्वथा भिन्न था। मीर-कासिम प्रजाभक्त तथा स्वदेशभक्त था परन्तु मुहम्मद अली सर्वथा विपरीत। यह अत्यन्त भोग विलासी था। और इसी में अपना जीवन तबाह कर रहा था।

ऐसे नवाब के प्रभुत्व में आंग्ल कंपनी की बहुत बन आयी। वह दिन पर दिन शक्ति प्राप्त करती गयी और अन्त में उसने नवाब को एकमात्र लगान इकट्ठा करने वाला ही बना दिया। नवाब की संपूर्ण राष्ट्रीयशक्ति आंग्ल कम्पनी ने अपने हाथ में की—

(१) Imperial Gazetteer of India. Vol III chapter. IX P. 447.)

मद्रास में लगान वृद्धि और प्रजा का महा कष्ट मे पड़ना

इससे आंग्लों के प्रति जनता के अन्दर क्या भाव हो गये इसका तो हम आगे चल कर ही वर्णन करेंगे। १६४० में फरांसीसियों तथा अंग्रेज़ों की मद्रास में जो स्थिति थी उसका वेङ्कटाध्वरि नाम के प्रसिद्ध कवि ने बहुत ही उत्तम वर्णन किया है। उसका कथन है कि हूण लोग बहुत ही अस्वच्छ रहते हैं। ईश्वर की विचित्र महिमा है कि इनके पास रुपया भी अधिक है और इनकी स्त्रियां भी खूब सूरत हैं। इनमें कुछ २ गुण भी हैं। यह लोग सामने २ जबर्दस्ती से रुपया नहीं छीनते हैं। अच्छी २ वस्तुयें दिखला कर तथा लगान, कर आदि बढ़ा कर प्रजा से धीरे २ रुपया निचोड़ते हैं। (१) १६४० में महाकवि वेङ्कटाध्वरि ने फरांसी-

(१) हूणाः करुणा हीना स्तृणवत् ब्राह्मणगणं नगणयन्ति
तेषां दोषाः पारे वाचां येनाचरन्ति शौचमपि ॥ २६२ ॥
शौचत्यागिषु हूणकादिषु धनं शिष्टेषु चक्लिष्टताम्
दुर्मेधस्सु धराधिपत्व मतुलं दक्षेषु भिक्षाटनम्
लावण्यं ललनासु दुष्कुल भवास्वन्यासु नीरूपताम्
कष्ट स्रष्टवता त्वया हतविधे किं नाम लब्धं फलम् ॥ २६३ ॥
प्रसह्य न हरन्त्यमी परधनौघमन्यायतो
वदन्ति न मृषावचो विरचयन्ति वस्त्वद्भुतम्
यथाविधि कृतागसां विदधति स्वयं दण्डनम्
गुणानगुणाकरेष्वपि गृहाण हूणेष्वमून् ॥ २६४ ॥
प्रसह्य न हरन्त्यमी, अमी हूणा परेषां लोकानां

सियों तथा आंग्लों में जो दूषण देखे थे १७६३ के अनन्तर उन्हीं दूषणों ने प्रबल रूप धारण किया। आंग्लों के राज्य से पूर्व मद्रास की क्या दशा थी और उनके राज्य के बाद क्या दशा हो गयी इसका महाशय जार्थ स्मिथ ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है जो कि इस प्रकार है। "मैं पहिले पहिल १७६७ में मद्रास के अन्दर आया था। उस समय उसकी अवस्था बहुत ही उन्नत थी। भारत के व्यापारीय केन्द्रों में से मद्रास एक केन्द्र समझा जाता था। परन्तु १७७६ में जब मैं मद्रास को छोड़ कर यूरोप को रवाना हुआ उस समय मद्रास की आकृति सर्वथा बदल गयी। कृषि अतिशय अवनत हो गयी जन संख्या घट गयी और अन्तरीय व्यापार भी अतिपरिमित हो गया।" (१) कर्नाटक के विषय में भी इसने मद्रास के सदृश ही सम्मति प्रगट की थी। आंग्लों के आगमन से पूर्व कर्नाटक की दशा बहुत ही अच्छी थी। कृषि

धनौघं द्रव्यसमूहं, अन्यायतः प्रसह्य बलात्कारेण
नहरन्ति, किन्तु विचित्र वस्तु प्रदर्शनादिना
मोहयित्वा, करग्रहणादिना च प्रतिवर्ष
स्वल्पस्वल्पमिति बहुना कालेन बह्वेव हरन्तीति ध्वनिः—
विश्वगुणादर्शचम्पू। प्रकरण. २० पृष्ठ २६२. २६३. २६४.

(१) श्री रमेशचन्द्रदत्त लिखित भारत का प्राचीन इतिहास

मद्रास में लगान वृद्धि और प्रजा का महा कष्ट मे पड़ना

इससे आंग्लों के प्रति जनता के अन्दर क्या भाव हो गये इसका तो हम आगे चल कर ही वर्णन करेंगे। १६४० में फरांसीसियों तथा अंग्रेज़ों की मद्रास में जो स्थिति थी उसका वेङ्कटाध्वरि नाम के प्रसिद्ध कवि ने बहुत ही उत्तम वर्णन किया है। उसका कथन है कि हूण लोग बहुत ही अस्वच्छ रहते हैं। ईश्वर की विचित्र महिमा है कि इनके पास रुपया भी अधिक है और इनकी स्त्रियां भी खूबसूरत हैं। इनमें कुछ २ गुण भी हैं। यह लोग सामने २ जबर्दस्ती से रुपया नहीं छीनते हैं। अच्छी २ वस्तुयें दिखला कर तथा लगान, कर आदि बढ़ा कर प्रजा से धीरे २ रुपया निचोड़ते हैं। (१) १६५० में महाकवि वेङ्कटाध्वरि ने फरांसी-

(१) हूणाः करुणा हीना स्तृणवद् ब्राह्मणगणं नगणयन्ति
तेषां दोषाः पारे वाचां येनाचरन्ति शौचमपि ॥ २६२ ॥
शौचत्यागिषु हूणकादिषु धनं शिष्टेषु चाक्लिष्टताम्
दुर्मेधस्सु धराधिपत्व मतुलं दक्षेषु भिक्षाटनम्
लावण्यं ललनासु दुष्कुल भवास्वग्र्यासु नीरूपताम्
कष्ट सृष्टवता त्वया हतविधे किं नाम लब्धं फलम् ॥ २६३ ॥
प्रसह्यन हरन्त्यमी परधनौघमन्यायतो
वदन्तिन मृषावचो विरचयन्ति वस्त्वद्भुतम्
यथाविधि कृतागसां विदधति स्वयं दण्डनम्
गुणानगुणाकरेष्वपि गृहाण हूणेष्वमून् ॥ २६४ ॥
प्रसह्यनहरन्त्यमी, अमी हूणापरेषां लोकानां

सियों तथा आंग्लों में जो दूषण देखे थे १७६३ के अनन्तर उन्हीं दूषणों ने प्रबल रूप धारण किया। आंग्लों के राज्य से पूर्व मद्रास की क्या दशा थी और उनके राज्य के बाद क्या दशा हो गयी इसका महाशय जार्थ स्मिथ ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है जो कि इस प्रकार है। "मैं पहिले पहिल १७६७ में मद्रास के अन्दर आया था। उस समय उसकी अवस्था बहुत ही उन्नत थी। भारत के व्यापारीय केन्द्रों में से मद्रास एक केन्द्र समझा जाता था। परन्तु १७७६ में जब मैं मद्रास को छोड़ कर यूरोप को रवाना हुआ उस समय मद्रास की आकृति सर्वथा बदल गयी। कृषि अतिशय अवनत हो गयी जन संख्या घट गयी और अन्तरीय व्यापार भी अतिपरिमित हो गया।" (१) कर्नाटक के विषय में भी इसने मद्रास के सदृश ही सम्मति प्रगट की थी। आंग्लों के आगमन से पूर्व कर्नाटक की दशा बहुत ही अच्छी थी। कृषि

धनौघं द्रव्यसमूहं, अन्यायतः प्रसह्य बलात्कारेण
नहरन्ति, किन्तु विचित्र वस्तु प्रदर्शनादिना
मोहयित्वा, करग्रहणादिना च प्रतिवर्षं
स्वल्पस्वल्पमिति बहुना कालेन बह्वेव हरन्तीति ध्वनिः—
विश्वगुणादर्शचम्पू। प्रकरण. २० पृष्ठ २६२. २६३. २६४.

(१) श्री रमेशचन्द्रदत्त लिखित भारत का प्राचीन इतिहास

भी अति उन्नति पर थी। परन्तु आंग्लों के शासन होते ही इसने भी मद्रास का रूप धारण कर लिया ” ।(२)

तन्जौर के अधःपतन के विषय में पूर्व ही उल्लेख किया जा चुका है। अतः उस पर कुछ न लिख कर अब यह दिखाने का यत्न किया जायगा कि मद्रास में किस प्रकार आंग्लों ने लगान दिन पर दिन बढ़ाया और प्राचीन भूमिपतियों से भूमि का स्वामित्व लेकर उनको एक आसामी के रूप में परिवर्तित कर दिया ।

सरथोमास रम्बोल्ड ने उत्तरीय सरकार नामी प्रान्त के विषय में लिखा है कि "कम्पनी के प्रबन्ध कर्ताओं की यह नीति चिरकाल से चली आ रही है कि वह प्रत्येक भूमिपति को उसकी भूमि से पृथक् कर दें और उस भूमि का स्वामित्व स्वयं अपने हाथ में लेलें। प्रश्न प्रायः उठता है कि भारत के वह प्रसिद्ध २ भूमिपति, ताल्लुकेदार, मांडलिक-राजा आदि कहां चले गये ? इसका उत्तर स्पष्ट है। कम्पनी

(२) महाकवि वेङ्कराध्वरि ने भी कर्नाटक का वैसाही वर्णन किया है जैसा कि महाशय जार्जस्मिथ की सम्मति थी। वह बताता है कि—

प्रतिनगरमिहारामाः प्रत्यारामं पचेलिमः, क्रमुकाः ॥

विश्वगुणा दर्शन चम्पू-प्रकरण १४

रजतपीठ पुरंननुकाञ्चनश्रिय मिदं वहते मह दद्भुतम्
इह वसन् शुभगीति वहन् बुधपरमयोगत एव विराजते ।

॥ विश्वगुणा० प्र० १४ श्लो० १६५ ॥

ने संपूर्ण भूमिस्वामियों के स्वामित्व को तथा शासन के अधिकार को उनसे सदा के लिये ले लिया। इस समय उनकी जो कुछ दशा है वह एक आसामी की ही दशा है। भारत की भूमि कम्पनी की भूमि बन गयी है और पुराने स्वतन्त्र भूमिपति, कम्पनी के कृषक तथा खेतिहारे के रूप में परिवर्तित हो गये हैं। पहिले समय में भूमिपति लोग जो आधीनता सूचक कर मुगल सम्राटों को देते थे उसको अब लगान का रूप दे दिया गया है"

उत्तरीय सरकार की भूमि पर अपना स्वामित्व प्रगट करने के अनन्तर कम्पनी के भारतीय अधिकारियों ने बड़े २ भूमिपतियों को मद्रास में बुलाया और उनकी भूमिका लगान पूर्वापेक्षया ५० फी सैकड़ा अधिक बढ़ा दिया। १७८१ में लार्डमिकार्टनी मद्रास का शासक नियत हो कर भारत में आया। उसने संपूर्ण मद्रास को अत्यन्त दरिद्रता तथा कष्ट से पीडित देखा। कुप्रबन्ध का जो कुछ फल होता है मद्रास ने वह सब सहा। घावपर नमक छिड़कने के अनुसार हैदर अलीने ने मद्रास पर आक्रमण कर दिया और इधर उधर का सपूर्ण प्रदेश उजाड़ कर दिया।" परिणाम इसका यह हुआ कि १७८३ में मद्रास में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा जिससे लाखों मनुष्य करालकाल के ग्रास हो गये।

मद्रास प्रान्त की भूमियों के लगान बढ़ाने के उद्देश्य से

कम्पनी के राज्य ने १७८३ में एक भ्रमणीय समिति नियतकी, जो कि १७८८ तक अपना काम करती रही। समिति ने भी भूमि के स्वामित्व के विषय में वही उल्लेख किया है जो कि हम पूर्व लिख चुके हैं।

समिति की रिपोर्ट से पता लगा है कि मद्रास में दो प्रकार की भूमियां थी। एक तो जमींदारों के स्वामित्व में और दूसरी राष्ट्र के स्वामित्व में जिसको हैवली नाम से पुकारा जाता था।

हैवलीभूमि मद्रास में अत्यन्त परिमित थी। उस पर लगान निश्चित था, जो कि उपज का $\frac{1}{6}$ भाग होता था। मुसल्मान सम्राट् इसी लगान के द्वारा तथा अन्य व्यापार व्यवसाय सम्बन्धी करों केद्वारा संपूर्ण राष्ट्र कार्य चलाते थे। भूमिपतियों की जो भूमियां थीं उन पर राष्ट्र का कुछ भी प्रभुत्व न था। सम्राट् या नवाब का उन भूमिपतियों से जो व्यवहार था वह भी एक जमींदार के सदृश न था। अपितु एक छोटे माण्डलिक राजा के सदृश। उनसे जो कुछ वार्षिक धन लिया जाता था वह लगान न था अपितु उनकी आधीनता सूचक कर था। यह आधीनता सूचक कर इतना अल्प था, जिसकी कल्पना भी पाठकगण नहीं कर सकते हैं।

आंग्ल कम्पनी ने पुरातन अवस्था को सर्वथा बदल दिया। जो भूमि के स्वामी थे उनको एक आसामी का रूप दे दिया

और हैवलि भूमिपर जो मुजेरे के तौर पर काम करते थे उनको एक अर्धदास की स्थिति में डाल दिया। उनकी भूमि-पर जिस विधि से चाहें लगान इकट्ठा करें और जिसको चाहें कृषक के तौर पर रखें, यह संपूर्ण बातें आंग्ल कम्पनी ने अपने ही अधिकार में समझ लीं। ऐसा उसका समझना कुछ कुछ उचित भी था क्योंकि उसके पास शक्ति थी।

बहुतों को यह सन्देह हो सकता है कि प्राचीन भूमिपति अपनी भूमि के कृषकों पर अत्याचार करते होंगे, जो कि प्रायः संभव ही है, जहां पर भी शक्ति किसी के एकमात्र हाथ में देदी जाय। सत्य है? परन्तु भूमिपति के स्वेच्छाचार को रोकने के लिये सहस्रों वर्ष से ग्रामीण पञ्चायतें ग्रामों का प्रबन्ध कर रही थी जिनके सन्मुख भूमिपति लोग कांपते थे। भूमिपति लोग पञ्चायतों के चौधरी थे। उनको पञ्चायतों के सामने सिर झुकाना पड़ता था। चौधरी के हैसियत में ही उनको लगान दिया जाता था। लगान का यह अर्थ कभी भी उन दिनों में न लिया गया कि भूमि भूमिपतियों की मल-कीयत है। भूमिपति लोग उस ज़माने में किसानों को बेदखल न कर सकते थे। बेदखली तो अग्रेज़ी ज़माने में शुरू हुई।

१७६२ से १८०२ तक आंग्ल कम्पनी ने मद्रास प्रान्त के अन्य छोटे २ राष्ट्रों का भी विजय कर लिया। इन राष्ट्रों में से बहुत से राष्ट्र अपनी समृद्धि तथा संपत्ति के लिये चिर-

काल से प्रसिद्ध थे। परन्तु कम्पनी का प्रभुत्व होते ही उनकी भी वही दशा हो गयी जो कि पहिले राष्ट्रों की हो गयी थी।

सरथोमास मुनरो को मद्रास में लगान निश्चय करने का काम दिया गया। यह स्थिर लगान का पक्षपाती था। जिस प्रकार बंगाल में लार्ड कार्नवालिस ने जिमींदारी स्थिर लगान की विधि प्रचलित की उसी प्रकार मुनरो ने मद्रास में रैय्यतवारी स्थिर लगान की नवीन विधि का आविष्कार किया। आंग्ल कम्पनी की प्रबल इच्छा थी कि लगान, जहां तक हो सके अधिक से अधिक प्रजा से लिया जाय। १८०७ में मुनरो भारत छोड़कर के इंग्लैंड चला गया। कम्पनी उसके कामों से अति प्रसन्न थी क्योंकि उसने जिस स्थान में ४०२६३८ पउन्डज़ पहिले पहिल लगान था वहां ६०६६०६ पाउन्डज़ लगान कर दिया था अर्थात् ५० प्र० श० लगान बढ़ा दिया था।

१८०१ से १८०७ तक जिन २ प्रदेशों में स्थिर लगान तथा अस्थिर लगान की विधि प्रचलित कर दी गयी उसका ब्योरा इस प्रकार है।

———

(I)

स्थिर लगान

प्रदेश		सन् जिसमें स्थिर लगान किया गया—
मद्रास के चारों ओर की जागीरें	...	१८०१-२
उत्तरीय सरकार ...	...	१८०२-५
सेलम. पश्चिमीय भूमिपतियों के प्रदेश, चितूर „, दक्षिणीय „	...	१८०२-३
रमनाद	...	१८०३-४
कृष्णागिरी	...	१८०४-५
दिन्दीगाल	...	१८०५-५
त्रिवद्पुरम्, जागीरी ग्राम ...	...	१८०६-७

(II)

प्रदेश अस्थिर लगान

माइसोर	मालावार
	कनारा
	कायम बेतोर
	सोडिड् प्रान्त
	बालाघाट

प्रदेश		अस्थिर लगान
कर्नाटक	...	पालैन्ड
		नीलौर तथा आंगोल
		अर्काट
		सतीबोद
		ट्रिचिनावली
		मदुरा
		तिन्निपली

मुनरो का आजीवन यही यत्न रहा कि मद्रास में स्थिर लगान की विधि ही प्रचलित रहे। इसका सब से बड़ा लाभ यह था कि प्रत्येक कृषक अपनी भूमि की उन्नति करने का यत्न करता और अपने यत्न का फल वह आपही भोगता। १८५५-५६ के एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट के शब्द हैं कि "रैय्यत उस भूमि से तब तक नहीं पृथक् की जायगी जब तक राज्य को वह स्थिर लगान देती रहेगी।" इसी प्रकार १८५७ के मद्रासी लगान रिपोर्ट के शब्द यह हैं कि "मद्रासी रैय्यत स्थिर लगान देती हुई चिरकाल तक अपनी भूमिपर स्वत्व रख सकती है"। इस प्रकार का स्थिर लगान आरम्भ करने से पूर्व बङ्गाल के सदृश ही मद्रास में भी लगान बहुत बढ़ा दिया गया था।

मद्रास में लगान वृद्धि और प्रजा का महा कष्ट में पड़ना

भारतीय सचिव सर चार्लस वुड् का कथन है कि मद्रास में कुल उपज का $\frac{1}{2}$ लगान के तौर राज्य लेना चाहता है। वर्तमान काल में राज्य ने कुल उपज का $\frac{1}{3}$ लगान नियत कर दिया है। परन्तु वास्तव में कृषकों पर यह १०० प्रति शतक से ऊपर बैठता है। इसका कारण यह है कि लगान लेते समय राज्य भूमि की उपज का $\frac{1}{3}$ लेता है न कि कृषकों की आमदनी का। परिणाम इसका यह होता है कि कृषकों के पास उपज का कुछ भी भाग नहीं बचता है। दृष्टान्तस्वरूप कल्पना करिये कि किसी एक छोटे से खेत की उपज १२ पाउन्ड के बराबर होती है। इस पर राज्य ४ पाउन्ड लगान लेता है और ८ पाउन्ड किसान का अनाज के उत्पन्न करने में व्यय होता है। अंतिम जो कुछ किसान के पास बचा, उसको शून्य से अधिक क्या कह सकते हैं।

भौमिक लगान की दृष्टि से जनवरी १८८५ सन् का दिन मद्रासी इतिहास में सबसे अधिक शोक का दिन है। भारत सेलार्डरिपन के चले जाने के अनन्तर आंग्ल राज्य की नीति बदल गयी और मद्रासी कृषक प्रजा को जो अधिकार आंग्ल राज्य दे चुका था उसीका उसने अति क्रमण किया। सारांश यह है कि जिन प्रान्तों में स्थिर लगान कर भी दिया गया था वहां पर भा अस्थिर लगान की नीति का अवलम्बन किया गया और कृषकों पर लगान बढ़ा दिया गया। अभी दिखाया

आजकल मद्रास का लगान निम्नलिखित है।*

सन्	मद्रास का भौमिक लगान
१९१६-१७	५९८७८६३६
१९१७-१८	६०४६८०००
१९१८-१९	६११३-०००

यह लगान पूर्वकालीन लगान से कई गुना अधिक है। सरकार इस अधिक लगान से इंग्लैण्ड के स्वार्थों तथा हितों को ही पूरा करती है। कृषक प्रजा की हालत तो दिन पर कष्टमय होरही है। यहां पर ही बस नहीं। आंग्ल राज्य के लगान बढ़ा देने से जिस प्रकार मद्रासी कृषक प्रजा दरिद्रता के भयंकर निधि में पड़ गयी उसी प्रकार जलसिंचन सम्बन्धी कठोर नियमों के द्वारा उनको और भी कष्ट पहुंचा। प्राचीन काल में नहरें आदि प्रजा की समृद्धि के लिये खोदी जाती थी परन्तु वर्त्तमान काल में यह बात नहीं रही। कुछ ही वर्ष गुजरे

"The evils of the Mohratha Farming system has been pointed out in my "History of the Bombay Land Revenues", but I dout if that systam at its worst could have shown such a spectacle as that of nearly 850000 ryots in the course of eleven years sold out about 1,900000 acres of land.

* Budget of the Government of India for 1918 19. P. 303.

मद्रास में लगान वृद्धि और प्रजा का महा कष्ट में पड़ना

मद्रास की नियामक समिति में 'जलसिंचन' को वाधित कर नियतकरने का प्रश्न उठा। जिसका तात्पर्य यह था कि चाहे भूमि नहर का पानी ले या न ले यदि वह नहर द्वारा पानी लेने वालो भूमियों के निकट होगी तो उससे भी वही कर लिया जायगा जो कि नहरों द्वारा सिञ्चित भूमियों से कर लिया जाता है।

उपरिलिखित नियम की कठोरताओं को पाठकगण स्वयं ही समझ सकते हैं। एक तो पहिले से ही लगान उपज की अपेक्षा अधिक सरकार लेती है और फिर उस पर भी जल सिञ्चन के कर को वाधित कर करना चाहती है।

इन भयंकर कष्टों से बचने का एक ही उपाय है कि समस्त भारतवर्षी सम्मिलित हो कर सरकार से कह दें कि सरकार एक मात्र आय व्यय सम्बन्धी संपूर्ण प्रबन्ध उनके अपने हाथ में दे दे। राज्य प्रबन्ध आंग्ल ही करें परन्तु धन सम्बन्धी संपूर्ण प्रश्नों पर विचार तथा उनका प्रबन्ध भारतीय जातीय सभा ही करे।

इस एक विधि के बिना कोई दूसरी विधि कृषकों की दशा के सुधारने की नहीं है। सारे संसार में यही विधि प्रचलित है। इंग्लैण्ड स्वयं भी इसी प्रकार अपने राष्ट्र का आय व्यय संबन्धी कार्य चलाता है। आजकल यह सार्व-[illegible] समझा जाता है कि जो राज्य को कर के तौर पर

धन दे वही उस धन का प्रबन्ध करे। भारतवर्षियों की आर्थिक अवस्था तभी सुधरेगी जबकि संपूर्ण आय व्यय सम्बन्धी प्रबन्ध वह स्वयं ही करेंगे। इसके बिना कोई दूसरी विधि आर्थिक अवस्था के सुधार की नहीं है। आंग्ल महानुभावों ने बहुत पूर्व यह सूत्र बना दिया था कि 'जो धन दे वही उसके व्यय का भी प्रबन्ध करे"No Taxation without ropresentation"

---

(५)

बम्बई में लगान वृद्धि और प्रजा का महाकष्ट में पड़ना

१८१७ में बाजीराव पेशवा के साम्राज्य पर आंग्लों का प्रभुत्व हो गया। उसके अति विस्तृत प्रदेश का प्रबन्ध आंग्लों ने करना प्रारम्भ किया। प्रबन्ध का जो कुछ तात्पर्य था वह लगान को बढ़ाना ही कहा जा सकता है। आंग्लों की सम्मति में प्राचीन आर्यराजाओं का सब से बड़ा कुप्रबन्ध यही था कि उनके काल में लगान थोड़ा लिया जाता था। और कृषक प्रजा सुखी थी।

१७९९ में माउन्ट स्टूअर्टएल्फिन्स्टन को लगान बढ़ाने का काम आंग्ल राज्य ने दिया। यह उच्च विचार का था। इसके हृदय में प्रजा प्रेम तथा उदारता कूट २ कर भरी हुई थी। मरहट्टों के काल में ग्रामों तथा कृषकों की अवस्था क्या

थी इसका इसने अपनी १८१९ के अक्टूबर की रिपोर्ट (Raport on the Teritories conquered from the Pashwa) में सविस्तर वर्णन किया है। विषय के स्पष्ट करने के लिये संक्षेप से उसका कुछ २ उल्लेख कर देना आवश्यक ही प्रतीत होता है।

महाशय एल्फिन्स्टन का कथन है कि बाजीराव के काल में महाराष्ट्र देश बहुत ही अधिक समृद्ध था। ग्रामों का प्रबन्ध अत्युन्नत अवस्था में था। दक्षिणीय ग्रामों में पाटिल्ज़ नामी भूमिपति ही ग्राम में लगान को एकत्रित करते थे तथा उसका प्रबन्ध भी वही करते थे। इनके स्वेच्छाचारित्व को रोकने के लिये ग्राम पञ्चायतें थीं जिनका आगे चलकर विस्तार पूर्वक वर्णन किया जावेगा।

पाटिल्ज़ तथा बहुत से कृषक अपने २ भूमियों के स्वामी थे जो कि स्थिर भूमिकर राज्य को देते थे। महाराष्ट्र में भी भूमि का स्वामित्व प्रजा का ही था न कि राज्य का।

परन्तु १८१७ में आंग्लों का राज्य जब महाराष्ट्र में आया, प्राचीन प्रबन्ध सर्वथा पलट दिया गया। प्रजा की भूमिपर आंग्ल राज्य ने अपना स्वामित्व प्रगट किया और प्राचीन स्थिर भूमि कर की विधि को अस्थिर लगान की विधि में परिवर्तित कर दिया। इसका प्रजा की दरिद्रता में क्या भाग है, पाठकगण स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं।

बम्बई में लगान वृद्धि और प्रजा का महा कष्ट में पड़ना

बम्बई में स्थान स्थान पर लगान बढ़ाया गया। विचित्रता तो यह है कि लगान बढ़ाने वाले स्वयं इस बात को अनुभव करते थे कि यह लगान अनुचित सीमा तक बढ़ गया है। परन्तु वह भी क्या करते! वह तो कम्पनी के आंग्ल डाइरेक्टरज़ के कर्मचारी थे। महाशय एल्फिन्स्टन ने सूरत के अन्दर १८२१ में लगान निश्चय करते समय कहा था कि "यहां की कृषक प्रजा के पास वस्त्रतक पहिनने को नहीं हैं रहने के घर भी इनके अच्छे नहीं हैं। यह सब होते हुए भी लगान बढ़ा ही दिया गया। दक्खन के खान्देश, पूनो आदि कई प्रदेशों में मरहट्टा समय में १८१७ में ८०००० अस्सी हजार पाउन्डज़ लगान था परन्तु १८१८ में आंग्लों ने वहां का राज्य प्राप्त करते ही १५००००० पन्द्रह लाख पाउन्डज़ लगान कर दिया।

महाशय चाप्लिन ने लिखा है कि उन दिनों में दक्खन के २० एकड़ भूमि वाले जिमींदार की १२ पाउन्डज़ की उपज होती थी। जिसमें से निम्नलिखित व्ययकाट कर के उसको ४ पाउन्डज़ २ शिलिङ्ग बचते थे।

	पाउन्ड	शि०
बैल इत्यादि का वार्षिक व्यय	१	५

(१) Sec. Mr. Choplin s Report, dated 20th Agust' 1822, section. 105'

	पाउन्ड	शि०
श्रमियों तथा हल जुतवाने का "	०	१६
बीजों का मूल्य "	०	१९
ग्राम प्रबन्ध के लिये भूमि कर	०	१२
परिवार के भोजनका व्यय	२	४
,, वस्त्रादिका ,,	१	१०
अन्य तेल आदि का ,,	०	१२
	७	१८

कंपनी के राज्य ने १२ पाउन्डज़ उपज़ की भूमि पर ४ पाउन्डज़ २ शिलिङ्ग लगान लेना प्रारम्भ किया। परिणाम इसका यह हुआ कि कृषक प्रजा, संपत्ति विहीन हो गयी और उसको २ शिलिङ्ग अपनी जेबमें से सरकार को और अधिक देना पड़ा। हिसाब लगाने से पता लगा है कि यह लगान १०२.५ प्रतिशतक है। अर्थात् जिस स्थान से कृषक को १०० पाउन्डज मिलते हैं, आंग्ल राज्य उनसे १०२.५ पाउन्ड्ज़ उस स्थान का लगान के तौर पर लेती है। इस शोकजनक लगान वृद्धि का भी वही परिणाम होना आवश्यक ही था जो मद्रास में दिखाया जा चुका है। कंपनी के नवीन राज्य में लगान वृद्धि से संपूर्ण भारत की प्रजा पीडित थी। १८२४ से १८२६ तक विशप हीवर ने भारत के

भिन्न २ प्रदेशों में भ्रमण किया था, उन्होंने जो देश की दशा के विषय में लिखा है पाठकों को हृदय थाम करके पढ़ लेना चाहिये। वह लिखते हैं कि—

"योरुपियन तथा भारतीय, किसी भी किसान का साहस नहीं है कि वर्तमान कालीन अधिक लगान में अपनी आजीविका कृषि के द्वारा ही कर सके। उपज का आधा भाग राज्य कृषकों से लगान के तौर पर मांगता है। इस लगान को देते हुए कृषकों के समीप कुछ भी नहीं बचता है। इस अवस्था में कृषक अपनी भूमियों को उन्नत ही कैसे कर सकते हैं। जब कभी फसल बिगड़ जाती है, कृषक प्रजा भूखों मरने लगती है। सरकार के लाखयत्न करने पर भी उनकी रक्षा नहीं होती है। लाखों प्राणियों का कुछ ही समय में घात हो जाता है। बंगाल में स्थिरलगानविधि प्रचलित है यही कारण है कि लोगों का दुर्भिक्ष संबंधी कष्ट कम हो गया है। भारत के उत्तरीय प्रदेशों में, मेरे सदृश ही अन्य आंग्ल राज्य कर्मचारियों ने भी यही अनुभव किया है कि कृषक प्रजा देशीय राजाओं के राज्य में अधिक सुखी है। आंग्ल राज्य में वह अत्यंत कष्ट में हैं। इसका कारण यह है कि देशीय राजा प्रजा से प्रत्येक समय में अधिक लगान लेने का यत्न नहीं करते हैं। परन्तु आंग्ल राज्य में

प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव कर रहा है कि राज्य कर अधिक हैं और लोग दिन पर दिन दरिद्र हो रहे हैं। (१)

विशप हीवर के सदृश ही रावर्ट रिचर्ट का कथन है कि "मैं बहुत सी भूमियों के विषय में जानता हूं, जहां कि लगान कुल उपज की अपेक्षा भी अधिक लिया जाता है"। (२) सारांश यह है कि आंग्ल राज्य ने लगान वृद्धि की जो विधि अवलम्बन की है वह भारतीय प्रजा के लिये अति भयंकर सिद्ध हुई है। कृषकों के जीवन सुख रहित हो गये हैं। उनको कष्ट ही कष्ट जन्म से मरण पर्यंत भोगने पड़ते हैं। इससे अधिक शोकजनक अवस्था किसी देश की और क्या हो सकती है?

यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि १८१७ में जब नया बन्दोबस्त हुआ था उस समय नवीन प्राप्त प्रान्त की भूमियों का लगान बढ़ा दिया गया था। यह लगान हर समय बढ़ता ही चला गया। १८१७ में जिस भूमि पर ८० लाख था १८१८ में उसी पर ११५ लाख और कुछ ही वर्ष बाद १५० लाख लगान कर दिया गया। इस भयंकर लगान वृद्धि से प्राचीन ग्राम पञ्चायतें टूट गयीं और बम्बई में भी लगान की रैय्यत वारी विधि का अवलम्बन किया गया।

(१ Bishop Heber's Memoirs and Correspondence, by his London. 1830, Vol H P 713.

(2) Answers to Quaries 2825, 2828, and 2829.

बम्बई में लगान वृद्धि और प्रजा का महा कष्ट में पड़ना

१८२५ में महाशय प्रिंगल ने मद्रास विधि पर ही बम्बई में भी लगान का निश्चय किया। जिस भूमि पर जितनी उपज का अनुमान किया गया उस पर उतनी उपज न होती थी। इसका जो कुछ परिणाम हुआ वह यही था कि कृषकों पर अनुचित सीमातक लगान बढ़ गया और वह दरिद्रता तथा कष्ट में अपनी जीवन यात्रा करने लग पड़े।

१८३६ में राज्य ने संपूर्ण मामलात की जांच के लिये महाशय गोल्डस्मिथ को नियत किया और इसकी सहायताके लिये कैप्टिन विंगर तथा लैफ्टिनन्ट वाश को भी भेजा। इन्होंने सरकार से प्रार्थना की कि एक नवीन विधि से पुनः भूमियों का लगान निश्चित किया जावे। उस नवीन विधि की मुख्य २ विशेषतायें निम्नलिखित थीं।

(१) प्रत्येक कृषक से पृथक् २ उसकी भूमियों का लगान निश्चय किया जाय।

(२) प्रत्येक बन्दोबस्त ३० वर्ष बाद हुआ करे।

(३) लगान भूमियों के मूल्य के अनुसार नियत किया जाय न कि उपज के अनुसार।

इन उपरि लिखित महाशयों ने १८३६ से बन्दो वस्त प्रारम्भ किया और १८७२ में समाप्त किया। परन्तु जो बुराई थी उसको कम करने के स्थान पर और भी अधिक बढ़ा दिया। सारांश यह है कि जहां लगान १५३३००० रु०

था वहां उसको बढ़ा करके २०३१००० रुपया कर दि १।
अर्थात् ३० प्रति शतक वृद्धि करदी।

१८६६ में आंग्लराज्य ने पुनः बन्दोबस्त करवाया परन्तु उसमें भी लगान और बढ़ाया गया। दृष्टान्त तौर पर जिन १३३६६ ग्रामों का लगान पहिले १४४६००० रुपया था उनका १८८६००० रुपया कर दिया गया। अर्थात् ३० प्रति शतक पुनः बढ़ा दिया गया। विचित्रता तो यह है कि १८६६ के नवीन बन्दोबस्त में ३० प्रति शतक वृद्धि लगान में पुनः करदी गयी।

किसी जाति या देश के लिये अत्य त भयंकर तथा शोक-जनक घटना यदि कोई हो सकती है तो एक यह भी है कि कृषक प्रजा पर कठोरतायें होंवें। उनसे अनुचित तौर पर धन राशि लगान आदि में ली जाय। बम्बई में न तो भूमि की उपज ही उन दिनों में बढ़ी थी और न भूमि के गुण ही विशेष रूप में बढ़ गये थे। परन्तु लगान प्रत्येक बन्दोबस्त में ३० प्रतिशतक अवश्यमेव बढ़ा दिया गया।

१८७९ की वाइसराय की समिति में सर विलियम हन्टर ने कहा था* कि—"दक्खिनी किसानों के कष्टों के कम करने

*"The fundamental difficulty of bringing relief to the Deckan peasentry ......is that the Government assesment does not leave enough food to the cultivators to support himself and his family through out the year."

में सब से अधिक आधार भूत जो कठिनता है वह यह है कि राज्य का लगान इतना अधिक बढ़ा हुआ है कि कृषक प्रजा के पास अपने तथा अपने परिवार के पोषण के लिये पर्य्याप्त भोजन नहीं रहता है "।

इसका क्या उपाय किया जायं ? यदि राज्य कर्मचारी कृषक प्रजा पर अनुचित रीति पर लगान बढ़ा दें तो प्रजा के पास कौनसा साधन है जिससे वह उस भयंकर अत्याचार से छुटकारा पा सकें। आंग्लराज्य, किसानों के मुकद्मे सुनने को तैय्यार है यदि किसी भारतीय के विरुद्ध उनका मुकद्मा हो परन्तु अपने कर्मचारी के अनुचित कार्य को रोकने के लिये उनके विरुद्ध किसानों के मुकद्मे सुनने के लिये राज्य तैय्यार नहीं है। यह क्यों ?

इंग्लैंड में न्यायालय विभाग की बहुत ही अधिक शक्ति है। भारत में ही न्यायालय विभाग की शक्ति को आंग्लराज्य ने क्यों कम कर दिया है ? यहां तो इंग्लैंड की अपेक्षा भी न्याया लय विभाग को अधिक शक्ति देनी चाहिये थी। क्योंकि राज्य कर्मचारियों के अत्याचार इंग्लैण्ड की अपेक्षा यहां अधिक सम्भव हैं।

१८७३ के बाम्बे हाईकोर्ट में सैटलमन्ट आफिसर के विरुद्ध प्रजा ने एक अभियोग खड़ा किया। जिससे हाईकोर्ट ने प्रजा के पक्ष में ही सम्मति देदी थी। परिणाम इसका यह

हुआ कि बम्बई राज्य ने अपनी समिति में यह नियम पास किया कि "आगे से लगान आदि के सम्बन्धी अभियोग राज्य कर्मचारियों के विरुद्ध नहीं किये जा सकेगें"। यह क्यों? इस नियम के पास हो जाने से यदि वास्तव में ही राज्य कर्मचारी कृषक प्रजा को पीडित करें तो प्रजा के पास कौन सा ऐसा साधन है जिससे वह उनके कष्टों तथा अत्याचारों से छुटकारा पा सके। शायद आंग्ल सरकार यह समझती हो कि उसके कर्मचारी ऐसे देवता हैं कि वह अत्याचार कर ही नहीं सकते हैं?

आजकल बम्बई प्रान्त का लगान बढ़ते बढ़ते। निम्न लिखित संख्या तक पहुंच गया है।

सन्	लगान--रुपयों में
१६१६--१७	५११६८१८४
१६१७--१८	५०२६३०००
१६१८--१६	५३४६६०००

——•——

(६)

बंगाल में स्थिर लगान विधि

बंगाल के अति प्राचीन इतिहास के पठन से ज्ञात होता है कि बंगाल की संपूर्ण भूमि बहुत से छोटे बड़े जिमींदारों

में विभक्त थी । यह जिमींदार ही अपनी २ भूमियों के अन्तरीय शासक तथा राजा थे । अफगान काल में इन जिमींदारों की शक्ति पर बहुत कुछ धक्का पहुंचा परन्तु राज्य में उनकी स्थिति वही रही जो कि उनकी प्राचीन काल में स्थिति थी ।

बंगाली जिमींदार अपने अपने ग्रामों में न्यायाधीश, लगान निर्णायक तथा चौधरी का काम करते थे । इन्हीं जिमींदारों में से एक जिमींदार ने अपनी सेना के द्वारा १२८० में दिल्ली के अफगान शासक को पर्य्याप्त अधिक सहायता पहुंचायी थी । दूसरे ने अपने आपको बंगाल का शासक बना लिया था । यहसब घटनायें जो कुछ सूचित करती हैं वह यही है कि बंगाल के जिमींदार प्राचीन काल से ही राजा की स्थिति में थे न कि मुगल या अफगान सम्राटों के आसामी के रूप में

अफगान काल के अनन्तर १६ वीं सदी में अकबर ने बंगाल का पुनः विजय किया, परन्तु उसने भी बंगाली जिमींदारों की स्थिति में कोई विशेष भेद न डाला । आईन अकबरी के पढ़ने से हमको मालुम पड़ता है कि बंगाल के जिमींदार प्रायः कायस्थ थे । प्रान्त की सेना तथा लगान आदि इस प्रकार था ।

(i) अश्वारोही २३३३०

(ii) पदाति ८०११५०.

(iii) हाथी ११००.

(iv)	तोप बन्दूकें	४२६०
	नौकायें	४४००
	लगान	१५०००००० रुपये

बंगाल के सदृश ही विहार में सेना लगान आदि इस प्रकार था।

(i)	अश्वारोही	११४१५
(ii)	पदाति	४४६३५०
(iii)	नौकाये	१००
(iv)	लगान	५४५७६८५

उपरिलिखित ब्योरे के देखने से प्रतीत होगा कि बंगाल विहार उड़ीसा का अकबर के काल में लगान २ करोड़ रुपये राज्य की ओर से नियत था जो कि प्रायः लिया नहीं जाता था। परन्तु इन्हीं प्रान्तों का १८७६-६८ में लगान ३६७८३१६० चार करोड़ के लगभग था। अकबर के समय की अपेक्षा आंग्लकाल में लगान भारतीयों पर दुगुना हो गया है। आंग्लकाल में बंगाली लगान का इतिहास अतिशय रुचि प्रद है अतः उसी पर कुछ प्रकाश डाला जायगा।

१८ वीं सदी में जब बंगाल कपनी के हाथ में आया तो बंगाल के लगान का प्रश्न उनके संमुख उपस्थित हुआ। आंग्ल अपने देश की लगान की विधि से ही परिचित थे। आयर्लैण्ड में जिस प्रकार भूमियां नीलाम की जाती हैं या

कुछ थोड़े से वर्षों के लिये किसानों को लगान पर दी जाती हैं उसी विधि का उन्होंने भारत में भी प्रचार करने का यत्न किया। बङ्गाली जिमींदारों की क्या उच्चस्थिति है इसको बिना समझे होआंग्लों ने उनको एक साधारण आसामी समझ लिया और बंगाल की संपूर्ण भूमि को राजकीय मलकीयत बना लिया। ५ वर्ष के लिये बन्दोवस्त करने की विधि पहिले पहिल स्वीकृत की गयी और मन माना लगान बढ़ाया गया। परन्तु जब इससे आंग्लराज्य को कुछ भी सफलता न प्राप्त हुई तो जिमींदारों की भूमियां नीलाम की जाने लगीं। इसके क्या भयंकर परिणाम हुए इस पर अभी चल कर लिखा जायगा। १७७४ में बंगाल की आंग्ल प्रबन्ध कारिणी सभा में लगान विधि पर बड़ा भारी विवाद हुआ। उसमें संसार प्रसिद्ध 'जूनियस के पत्र' नामी पुस्तक लिखने वाले महाशय फिलिप फ्रान्सिस ने स्थिर लगान विधि का प्रस्ताव पेश किया (१) परन्तु बंगाल के दौर्भाग्य से वह प्रस्ताव उस समय पास न हो सका।

---

(1) (Ayin-i-Akbori, Vol. II. Col. Joesesetts' translation, P P. 129 & 158)

फिलिपफ्रान्सिस के शब्द यह हैं कि—

The jumna (asessmant) once fixed, must be a matter of public reeord. It must be pirmanent and unalterable; and the people must, if possible, be convenced that

डाइरैक्टर्ज़ लोग अधिक लोभ में थे। उनको स्थिर लगान पसन्द न था। अतः उन्होंने भारत के आंग्ल शासकों को यही सम्मति दी कि वह अल्पकाल के लिये ही बन्दोबस्त करें। १७७७ में पंच वार्षिक बन्दोबस्त समाप्त हुआ। १७८१ में पुरानी बन्दोबस्त की विधि में पुनः परिवर्तन किया गया और बन्दोबस्त केवल एक ही वर्ष के लिये किया गया। इससे संपूर्ण बंगाली जिमींदारों को बड़ा भयंकर धक्का पहुंचा। किस प्रकार बहुत से प्राचीन जिमींदारों के परिवारों पर विपत्ति पड़ी उसका संक्षेप से वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है।

(क) दीनाज़पुर

१७८० में दीनाज़पुर का राजा मर गया। इस प्रान्त का लगान १४०००० पाउन्ड था। राजा का पुत्र ५ वर्ष का था और उसकी विधवा स्त्री ही अपने पुत्र की संरक्षक बनी और राज्यकार्य अत्यन्त धैर्य्य से चलाने लगी। परन्तु कंपनी के राज्य को यह सहन न हुआ। उसने एक पहले दर्जे के क्रूर देवी

---

it is so. This condition must be fixed to the lands themselves, independent of consideration of who may be the immediate or future proprietors. If there be any hidden wealth still existing, it will then be brought forward and employed in improving the land.

सिंह नामी आदमी को दीनाज़पुर की रियासत के प्रबन्ध के लिये भेजा। देवीसिंह पुर्निया तथा रंगापुर में भी क्रूरता तथा अत्याचार के दोष में दोषी ठहराया जा चुका था। आंग्लराज्य ने ऐसे आदमी को दीनाज़पुर के प्रबन्ध के लिये इसलिये नियत। किया था कि किसी प्रकार से उस प्रान्त से लगान अधिक लिया जा सके। इस क्रूरने दीनाज़पुर के छोटे२ जिमींदारों पर कोड़े लगाये और ऐसे २ भयंकर अत्याचार किये जो कि कल्पना से बाहर हैं। स्त्रियों के साथ भी भयंकर क्रूरतायें की गयीं। इन क्रूरताओं से तंग आकर के बंगाली किसान अपने २ ग्रामों को छोड़ करके भागने लगे। विचित्रता की बात है कि उनको सैनिकों द्वारा पकड़वा २ कर पुनः भूमि जोतने पर वाधित किया गया। इस पर दीनाज़पुर तथा रंगापुर में भयंकर विद्रोह हो गया। इस विद्रोह के शान्त करने में जो कठोरतायें तथा क्रूरतायें की गयीं वह भी बंगाल में कभी भी नहीं भुलायी जा सकती हैं।

(ख) वर्द्वान

वर्द्वान का राजा तिलकसिंह १७६७ में मर गया। तिलकसिंह का पुत्र तेजसिंह छोटी उमर का था। कम्पनी के राज्य ने ब्रिजकिशोर नामी व्यक्ति को उसका संरक्षक नियत किया ब्रिजकिशोर भी अत्याचार में देवीसिंह का दूसरा भाई था। तेजसिंह की माता ने इस बदमाश को राज्य की मुद्रा न दी।

मुद्रा के लेने के लिये ब्रिजकिशोर ने प्रत्येक प्रकार से रानी को तंग किया और अन्त में जब भावी युवराज को ही उसने कैद कर लिया तब पुत्र प्रेम से रानी ने राजकीय मुद्रा बृज-किशोर को सुपुर्द करदी। परिणाम इसका यह हुआ कि रियासत का बहुत सा धन नष्ट किया गया और बर्दवान पर गङ्गा गोविन्द सिंह ने लगान इस सीमा तक बढ़ाया जो कि कल्पना से भी बाहर है। स्थिर लगान विधि के प्रचलित होने के बाद भी संपूर्ण बंगाल में वर्दवान की रियासत ही आंग्लराज्य को सब से अधिक लगान दे रही है।

(ग) राजशाही

राजशाही रियासत की रानी भवानी का नाम बंगाल में छोटे से छोटा बालक तक जानता है। यह स्त्रीस्वरूप में पूर्ण-देवी थी। धर्म तथा पवित्र कार्यों के करने में इसका दर्जा भारत की प्रातः स्मरणीय पूज्य देवियों में से एक है। कराल-काल के प्रभाव से इस पर भी विपत्ति आकर के पड़ी। इसका राज्य बहुत विस्तृत था। प्लासी के युद्ध के समय में संपूर्ण उत्तरीय बंगाल इसी के राज्य में था। राज्य प्रबन्ध में रानी भवानी अत्यन्त योग्य थी। दया दाक्षिण्य इसका संपूर्ण बंगाल में प्रसिद्ध था। आंग्लराज्य ने इस पर भी लगान बढ़ाया और जब इसने लगान देने में कुछ देरी की (क्योंकि यह अपनी प्रजा को सताना न चाहती थी) तो दुलालराय को सरकार

ने लगान एकत्रित करने के लिये नियत किया। इस लुच्चे ने भी संपूर्ण रियासत का तहस नहस किया और पूज्य रानी भवानी को अत्यंत कष्ट पहुंचाया। इस संपूर्ण संदर्भ का जो कुछ तात्पर्य है वह यह है कि क्षणिक बन्दोवस्त ने भारत को बहुत हानि पहुंचायी। इस हानि को अनुभव करके ही बंगाल में स्थिर लगान विधि के प्रचलितकरने के लिये विचार किया जाने लगा। क्षणिक बन्दोवस्त से बंगाल का बहुत सा भाग खेती से उठ गया था और जंगल तथा वीयावान् के रूपमें परिवर्तित हो गया था। बंगाल का लगान आंग्लकाल तक किस प्रकार बढ़ा इसका महशय शोर ने बहुत उत्तम विवरण दिया है जिसका लिखना आवश्यक ही प्रतीत होता है।

सन्	राज्य	बन्दोवस्त का करने वाला	लगान रुपयों में
१५८२	मुसलमानी राज्य अकबर	टोडरमल	१०७९३१५२
१६१८	+	सुल्तानसुजा	१३१२५९०९
१७२२	मुसलमानी राज्य	जफ्फरखान्	१४२८८१८३
१७२२	,,	सुजाखान	१४२४५५६१
१९१७	+	+	३०८८४१८४
१९१८	×	×	२९९०५०००
१९१९	+	×	२९८५४०००

बंगाल में स्थिर लगान विधि

इस उपरिलिखित ब्योरे से स्पष्ट है कि १५८२ से १७२२ तक बंगाल का लगान न बहुत बढ़ा और न बहुत घटा। सारांश यह है कि मुसलमानी काल में बंगाल का लगान बहुत कुछ स्थिर था। परन्तु आंग्ल राज्य ने ही लगान बढ़ाने की विधि का भारत में आविष्कार किया। कुछ एक प्रान्तों का लगान किस प्रकार आंग्ल काल में बढ़ा इसका ब्यौरा इस प्रकार है।

सन्	दीवानी-	राज्य-	लगान
१७६२	कालिमअली	आंग्ल राज्य	६४५६१६८
१७६३	नन्दकुमार	,,	७६१८४०७
१७६४	,,	,,	८१७१५३३
१७६५—	रजाखान्	,,	१४७०४८७६

बंगाल में आंग्ल राज्य के आते ही किस प्रकार दिन पर दिन लगान बढ़ा उसका ज्ञान पाठकों को हो ही गया होगा। वारन हेस्टिंग के अनन्तर लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल का बन्दोवस्त किया। यह बहुत ही बुद्धिमान पुरुष था। उसने जमींदारों को उनकी पुरानी खोई हुई प्रबन्ध तथा न्याय की शक्ति को तो न दिया परन्तु उसने उनका लगान सदा के लिये स्थिर कर दिया। स्थिर लगान नियत करते समय लगान अनंत सीमा तक बढ़ाया गया जो कि ६० प्रतिशतक तक पहुंचता है। जो कुछ भी हो। स्थिर लगान कर देने से बंगाल

को बहुत ही अधिक लाभ पहुंचा। उन लाभों को इस प्रकार गिनायाजा सकता है।

(१) बंगाल के कृषक भारत के संपूर्ण कृषकों की अपेक्षा अधिक समृद्ध हैं।

(२) कृषि में उन्नति दिन पर दिन की गई है। बंगाल में लोग भूमि पर बहुत ही अधिक पूंजी लगाने लगे हैं।

(३) बंगाली भूमिपतियों की आमदनी अधिक है। उन्होंने उस रुपये को शिक्षा, औषधालय तथा अन्य पवित्र कार्यों में व्यय करना प्रारम्भ किया है। दृष्टान्त तौर पर १८९७ के दुर्भिक्ष में दरभंगा के राजा ने लोगों के कष्टों को दूर करने के लिये एक लाख रुपया अपनी ओर खर्च किया था। इसको छोटी बात न समझना चाहिये। स्थिर लगान विधिका सदाचार की उन्नति में क्या प्रभाव है यह इससे स्पष्ट हो जाता है।

(४) बंगाली जिमींदारों ने समृद्ध होकर के बंगाल में शिल्प, कलाकौशल तथा व्यवसायों की उन्नति में बड़ा भारी भाग लिया है। कृषि की उन्नति का भी उन्होंने पर्य्याप्त यत्न किया है। इससे बंगाल की भूमियों की उपज बढ़ी है और वहां के प्रत्येक प्रकार के व्यवसाय अवनत होने से बहुत कुछ बचे हैं।

बंगाल में स्थिर लगान विधि

(५) बंगाली जिमींदारों ने आंग्लराज्य के संरक्षण में जो भाग लिया है उसको सोच करके तो आंग्लराज्य को संपूर्ण भारत में कम से कम स्थिर लगान विधि को अवश्यमेव प्रचलित कर देना चाहिये। सरकार ने बंगाली किसानों को जिमींदारों के अत्याचार से बचाने के लिये जो उत्तम २ नियम बनाये हैं उनको हम कभी भी नहीं भुला सकते हैं। १५९३, १८५९ तथा १८६८ में बंगाली कास्तकारों के हित के लिये सरकार ने भिन्न २ नियम बनाये थे परन्तु १८८४ के टिनैन्सी एक्ट से कास्तकारों के मौरूसी हकको बहुत दूर तक बढ़ाने का सरकार ने यत्न किया है।

बंगाल में उपज का कितनवां भाग लगान है इसका ब्योरा पाठकों के सन्मुख रख देना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

जिला		प्रति एकड़ उत्पत्ति			प्रति एकड़ लगान			उपज और लगान में अनुपात
		पा.	शि.	पै.	पा.	शि.	पै.	
२४ परगने*	(क)	५	३	०	०	१८	०	१८·७ प्रति शतक
	(ख)	२	२	०	०	६	०	

* इन में क और ख क्रमशः उत्तम तथा निकृष्ट भूमियों को प्रगट करने के लिये रखे गये हैं।

जिला		प्रति एकड़ उत्पत्ति पा.	शि.	पै.	प्रति एकड़ लगान पा.	शि.	पै.	उपज और लगान में अनुपात	
नदिया	(क)	३	३	०	०	६	०	१३·८	,,
	(ख)	०	१३	६	०	६	६		
जेसोर	(क)	३	१३	६	०	६	०	१२·३	,,
मिदनापुर	(क)	३	१५	०	०	६	०	१२·०	,,
हुग्ली	(क)	३	१२	०	१	१	०	२६·४	,,
	(ख)	१	१०	०	०	६	०		
हावड़ा	(क)	३	८	०	०	१८	०	२५·०	,,
	(ख)	२	०	०	०	६	०		
बंकुरा	(क)	२	१७	०	०	१४	०	२५·५	,,
	(ख)	१	१४	६	०	६	०		
बीरभूमि	(क)	४	३	०	०	१८	०	२२·७	,,
	(ख)	१	१६	०	०	६	०		
ढाका	(क)	४	१३	०	०	१०	०	११·२	,,
बकरकंज	(ख)	१	१६	०	०	५	८	१५·७	,,
फरीदपुर	(ख)	१	१०	०	०	३	६	०२·५	,,
मैमनसिंह	(क)	५	२	०	०	०८	०	०७·३	,,
	(ख)	२	०४	०	०	६	०		
नोआखाली	(क)	३	५	०	०	६	०	०३·८	,,
टिप्पर	(क)	३	०२	०	०	०८	०	२४·५	,,
	(ख)	०	०८	३	०	६	०		

बंगाल में स्थिर लगान विधि

जिला		प्रति एकड़ उत्पत्ति			प्रति एकड़ लगान			उपज और लगान में अनुपात	
		पा.	शि.	पैं.	पा.	शि.	पैं.		
दीनाजपुर	(ख)	०	०६	०	०	९	०	२५·०	,,
राजशाही	(ख)	०	०३	०	०	९	०	२७·२	,,
पटना	(क)	३	१५	०	०	९	०	०२·०	,,
गया	(क)	०	०२	०	०	०८	०	२०·०	,,
	(ख)	२	००	५	०	९	०		
मानभूम	(ख)	०	०२	०	०	९	०	२८·०	,,
शालसोर*	(क)	०	०	०	०	६	०	२८·०	,,
	(ख)	०	०२	०	०	३	०		

दिन पर दिन कीमतों के चढ़ने से और कृषि में उन्नति के होने से बंगाली जिमींदारों का अपनी आमदनी का अब २५% लगान सरकार को देना पड़ता है। हमारी सम्मति में यह भी कम नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि प्राचीन काल में लगान आमदनी का $\frac{१}{६}$ से $\frac{१}{१०}$ तक राज्य लेता था। जो कुछ भी हो। लगान की स्थिरता के कारण बंगाली काश्तकारों की दशा बहुत ही अधिक उत्तम हो गयी है। वह समृद्ध हो गये हैं और उनका आचार व्यवहार तथा शिक्षा भी अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक हो गयी है। सारांश यह है कि अस्थिर लगान की अपेक्षा स्थिर लगान विधि अत्यन्त उत्तम है। वास्तव में तो कृषकों का ही भूमि पर स्वामित्व होना चाहिये और ताल्लु

केदारी प्रथा को मटिया मेट कर देना चाहिये और सरकार को लगानके स्थान पर इंकमटैक्स लेना चाहिये। *

---

(७)

उत्तरीय भारत में लगान वृद्धि

पूर्व प्रकरणों में भिन्न २ प्रान्तों के लगान वृद्धि को सविस्तर दिखाया जा चुका है अतः इस प्रकरण को अब संक्षेप से ही लिखा जायगा।

संयुक्तप्रान्त के भिन्न २ भाग आंग्लों के वश में भिन्न २ सन् में आये। १७७५ का सन्धि से अवध के नवाब से बनारस तथा उसके साथ के जिले आंग्लों ने लिये और १७९५ में उन में बङ्गाल के सदृश ही स्थिर लगान विधि प्रचलित कर दी। अलाहाबाद तथा आगरा के प्रान्त १८०१ तथा १८०३ में क्रमशः आंग्लों के अधिपत्य में आये। आंग्लराज्य ने अपने पूर्व अभ्यास के सदृश इन प्रांतों पर अधिक से अधिक लगान नियत किया।[१] १८०२ में एक उद्घोषणा की गयी कि दो वार त्रिवार्षिक बन्दोवस्त और तीसरी वार चतुर्वार्षिक

---

* Famines in India, by Romesh Chander Dath, P. 61—62.

(1) Baden Powell's "land systems of British India." Vol. II. P. IX.

बन्दोबस्त कर देने के अनन्तर स्थिर लगान विधि प्रचलित करदी जायगी। परन्तु निश्चितसमय के आने से पूर्व ही आंग्ल शासकों के विचार बदल गये और उन्होंने स्थिर लगान विधि की नीति का परित्याग कर दिया। परिणाम इसका यह हुआ कि १८२२ के बाद भी समय समय पर लगान बढ़ाया जाता रहा। १८३७ में एक भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा तथा उसने अलाहाबाद से लेकर देहली तक के संपूर्ण प्रदेश को उजाड़ कर दिया। आगरा के निकट यह दुर्भिक्ष नितान्त भयंकर था। दुर्भिक्ष के अनन्तर राज्य का लगान बहुत से जिलों में स्थिर तौर पर रहा। १८५५ में सहारनपुर नियम पास किया गया जिसके अनुसार $\frac{२}{३}$ के स्थान पर $\frac{१}{२}$ लगान सरकार ने लेना शुरू किया। कर्नल वेअर्डस्मिथ की तो यह सम्मति है कि भारत में स्थिर लगान की विधि का प्रचार करना चाहिये।

१८५६ में अवध को सरकार ने प्राप्त किया और १८५७ में भारत में भयंकर आक्रान्ति आयी। आक्रान्ति के अनन्तर सरकार ने १८५८ में संपूर्ण भूमियां छीनलीं और उनका फिर से विभाग किया। ५० राजभक्त ताल्लुकेदारों के ताल्लुकेदारी में स्थिर लगान विधि प्रचलित की गयी, और अन्योंं में ३० वर्ष के अनन्तर बन्दोबस्त करने का निश्चय किया गया।

१८४६ में प्रथम सिक्ख युद्ध के पश्चात् रावि तथा सत्-लज़ के मध्य का एक भाग आंग्ल राज्य ने अपने राज्य में मिला लिया। पञ्जाब का शेष भाग भी १८४६ में सरकार के स्वामित्व में आ गया। दिल्ली तथा कुछ एक अन्य ज़िलों को संयुक्तप्रान्त से पृथक् करके १८५८ में पञ्जाब के साथ जोड़ दिया गया। पञ्जाब में भी सरकार ने लगान के नियत करने में आरम्भ २ में गल्ती की और अधिक लगान नियत कर दिया। इन गल्तियों को सरकार ने पीछे से सुधारा परन्तु स्थिर लगान विधिका प्रयोग न किया। जब तक भारत में स्थिर लगान विधि का प्रचलन तथा ताल्लुके-दारी प्रथा का लोप न होगा तब तक भारत के कष्ट दूर न होंगे। समृद्धि प्राप्त करने के लिये तो 'कृषकभूस्वामित्व विधि' ही प्रचलित करनी चाहिये जिसका उल्लेख आगे चल कर किया जायगा। इस भयंकर लगान वृद्धि के कारण किसान लोग ऋण में पड़ गये हैं और साधारण सी वृष्टि के न होने पर भी उनको दुर्भिक्ष आ कर सताने लगता है। किसानों के ऋण को दूर करने का सब से मुख्य साधन स्थिर लगान विधि या कृषक भूस्वामित्व विधि ही है। इस विधि के अवलम्बन के साथ ही साथ सहकारी बैंङ्क तथा सहोद्योग समितियों का भी प्रचार होना चाहिये। परन्तु जब तक लगान अस्थिर रहेगा

तथा सरकार के हाथ में यह शक्ति रहेगी कि वह जब चाहे मनमाना लगान बढ़ा दिया करे, तब तक लाख यत्न करने पर भी भारत से दुर्भिक्ष न हटेगा। क्योंकि दुर्भिक्ष का मौलिक कारण अधिक लगान है। भारत में लगान वृद्धि के साथ २ दुर्भिक्षों की वृद्धि किस प्रकार हुई है इसका अब अगले परिच्छेद में वर्णन किया जायगा।

तीसरा परिच्छेद

जातीय दारिद्रय तथा दुर्भिक्ष की वृद्धि

(१)

जातीय दरिद्रय तथा दुर्भिक्ष की वृद्धिपर प्राचीन आर्य्यों का विचार

अंग्रेजी राज्य के भारत में आने से भारत दरिद्र देश हो गया है। दुर्भिक्ष तथा रोग दिन पर दिन बढ़ते जाते हैं। परदेशों में भारतीयों का घोर अपमान होता है परन्तु सरकार को इसकी कुछ भी चिन्ता नहीं है। चोरी डाके आदि का प्रकोप रेल तथा सुप्रबन्ध के कारण जितना कम होना था कम हो चुका। दरिद्रता तथा दुर्भिक्ष की वृद्धि के साथ ही साथ चोरी डाका अब पुनः बढ़ रहा है। दुःख की बात है कि सरकार अपराधियों को कठोर दण्ड देकर प्रजा को डराने का यत्न करती है परन्तु अपराध होने के कारणों को दूर नहीं करती है। प्राचीन काल में आर्य्यों का विश्वास था कि जिस राजा के राज्य में चोरी हो वास्तव में वह राजा ही पापी होता है। राज्य में चोरी होने पर अपराधी राजा है न

कि चोर[1]। बिना वृत्ति के जिस विद्वान् को चोरी के काम पर बाधित होना पड़े, उसका पालन करना राजा का कर्तव्य है[2]। जनता के इस विश्वास का यह प्रभाव था कि राजा लोग शासन काम में प्रमाद न करते थे। अश्वपति कैकेय का यह अभिमान कि मेरे राज्य में न चोर हैं और न शराबी, प्रत्येक मनुष्य यज्ञ करता है और पढ़ा लिखा है, सब के पास समान धन है, राज्य में विधवा चोर आदि का नाम निशान भी नहीं है[3] कोई भी गृहस्थ भिख मंगा नहीं है, उस समय के भारतीयों की अच्छी हालत को सूचित करता है। लोगों का विश्वास था कि दुर्भिक्ष का मुख्य कारण राजा का प्रमादी

१. यस्यस्म विषये राज्ञःस्तेनो भवति वैद्वि जः।
राज्ञः एवापराधं तं मन्यन्ते किल्विशं नृपः॥
महा. शान्ति. अ. ७७ श्लो. ४

२. अष्टत्यायो भवेत्स्तेनो वेदवित्स्नातकः द्विजः।
राजन् स राज्ञा भर्त्तव्यः इति वेदविदो विदुः॥
महा. शान्ति. अ. ७६ श्लो १३

३. नमे स्तेनो जन पदे न कदर्यो नमद्यपः।
नाना हिताग्नि नायज्वा मामकान्तरमा विशः॥
महा. शान्ति . अ. ७७ श्लो. १८

नमे राष्ट्रे विधवा ब्रम्हबन्धुर्न कितवः नोत चौरः॥
महा. शान्ति. अ. ७७ श्लो. २६॥

नाब्रह्मचारी भिक्षावान् भिक्षुर्वाऽब्रह्मचर्य्यवान्।
महा. शान्ति. अ. ७७ श्लो २२

होना ही है। बिना राजा के प्रमाद के देश में दुर्भिक्ष नहीं पड़ सकता है[४]। प्रजा सुखी तभी होती है जब कि राजा धर्म्मात्मा हो और समय में वृष्टि हो। जिस राजा के राज्य में ब्राह्मणों की तरह लोग भीख मांगते हों उसका राज्य शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है[५]। राजा के प्रमादी होने पर ही गृहस्थी लोगों का जीवन कष्ट मय होता है और पशु दुर्बल हो जाते हैं[६]।

जब कभी ऋषि आर्य्य राजाओं के पास पहुंचते थे तो उनका पहिला प्रश्न यह होता था कि 'कहीं तुम्हारे राज्य में राज्यकर तो अधिक नहीं है और बनियों व्यापारियों को अपना काम छोड़ कर जंगलों का सहारा लेना तो नहीं पड़ता है? कहीं तुम्हारे राष्ट्र में अधिक मालगुजारी के भार से किसान

---

४. "दुर्भिक्ष माविशेद् राष्ट्रं यदि राजा न पालयेत्।

महा. शान्ति. अ. ६८ श्लो २६।

५. युक्ता यदा जन पदा भिक्षतो ब्राह्मणाः इव।
अभीक्ष्णं भिक्षुरूपेण राजानं घ्नन्ति ता दशा॥

महा. शान्ति. अ. ९१ श्लो. २३

६. राज्ञो भार्याश्च पुत्राश्च बान्धवा, सुहृदस्तथा।
"समेत्यसर्वे शोचन्ति यदा राजा प्रमाद्यति॥

महा. शान्ति. अ. ९१ श्लो. १०

हस्तिनोऽश्वाश्च गाव श्चाप्युष्ट्राश्वतर गर्दभाः।
अधर्म्मभूते नृपतौ सर्वे सीदन्ति जन्तवः॥

महा. शान्ति. अ ९१ श्लो. ११

लोग दुःखित तो नहीं है[७] ?। हे राजन ! इस बात को स्मरण रखो कि जो राजा अधिक मालगुजारी तथा अधिक राज्यकर से प्रजा को तकलीफ देते हैं एक प्रकार से वह अपना ही नाश करते हैं। राष्ट्र गौ के सदृश है। दूध के लोभ से गौ का थन काटने से दूध नहीं मिलता है। गौ को धीरे धीरे दुहने से ही दूध प्राप्त होता है। इसी प्रकार राष्ट्र को अधिक निचोड़ने का यत्न न करना चाहिये। इससे राष्ट्र की वृद्धि नहीं होती है। जो गौ की सेवा करता है उसको दूध मिलता है। राष्ट्र की सेवा का भी यही फल है[८]।

---

७. "कच्चित्ते वणिजो राष्ट्रे नो द्विजन्तिकरार्दिताः ।
क्रीणन्तो बहुना ल्पेन कांतार कृत विश्रमाः ॥
कच्चित् कृषिकरा राष्ट्रं न जहत्यति पीड़िताः ।
येवहन्ति धुरं राज्ञा ते वहन्तीतरान पि ॥

महा शान्ति. अ. ८९ । श्लो २३–२४

८. अर्थमूलोपि हिंसां यो कुरुते स्वय मात्मनः ।
करैरशास्त्र-दृष्टैर्हिमोहात्संपीडयन् प्रजाः ॥

महा. शान्ति पर्व. अ. ७१ श्लो. १५

ऊधश्छिंद्यात्तु योधेन्वः क्षीरार्थीनलभेत्पयः ।
एवं राष्ट्रमयोगेन पीडितं न विवर्धते ॥

शान्ति पर्व. अ. ७१ श्लो. १६

योहिदोग्ध्रीमुपास्ते यः सनित्यं भुंज्जते पयः ।
एवं राष्ट्र मुपाये न भुन्जानो लभते फलम् ॥

शान्ति पर्व. अ. ७१ श्लो. १९

इसी से यह भी स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में कृषक प्रजा को दुर्भिक्ष आदि के कष्ट बहुत ही कम भोगने पड़ते थे। विचित्रता तो यह है कि उस युगमें रेलों का प्रचार न था। वीघटना से यदि उन दिनों में रेलों का प्रचार भी हो जाता तो हम कह सकते हैं कि उस समय दुर्भिक्ष पड़ना भारत में असम्भव हो जाता। यह क्यों ?

यह इसीलिये कि उन दिनों में दुर्भिक्ष का एक मात्र कारण असामयिक वृष्टि ही था। इस वृष्टि के कष्ट को भी दूर करने का प्राचीन राजाओं ने पर्याप्त यत्न किया था। इन सब उचित विधियों के प्रयोग का फल यह हुआ कि चन्द्रगुप्त के काल में दुर्भिक्ष पड़ने की सम्भावना ही सर्वथा हट गयी है। यही कारण है कि विदेशीय यात्रियों ने स्थान २ पर यही लिखा है भारत में दुर्भिक्ष कभी नहीं पड़ा है।

इस अपूर्व घटना को देखकर भारतीय कृषकों तथा के भारतीय जनता के चित्तमें दृढ़ रूप से यह बात गयी कि दुर्भिक्ष का कारण राजा का खराब होनाही है"।

भारत के दुर्भिक्ष का इतिहास भी भारत की परतंत्रता से ही प्रारम्भ होता है। मुसल्मानों के आक्रमण से ही भारत की भूमि पर स्वेच्छाचारी सम्राटों का प्रभुत्व हो गया। उन्होंने भूमिपर लगान लेना प्रारम्भ किया। परन्तु वह लगान बहुत अधिक न था। इससे कृषक प्रजा बहुत कष्ट में

न पड़ी। इस कष्ट के कम होने का एक और भी कारण था कि उन दिनों में भारत कृषि प्रधान के साथ साथ व्यवसाय प्रधान था। भारत के संपूर्ण व्यवसाय प्रफुल्लित दशा में थे। इससे प्रजा के आजीविका के साधन सब ओर विद्यमान थे। यही कारण है कि मुसलमानों के ८०० वर्षों के शासन में भारत में कुल मिला कर अट्ठारह वार दुर्भिक्ष पड़ा। परन्तु वह सब के सब दुर्भिक्ष प्रान्तिक थे। संपूर्ण भारत पर इनमें से एक भी दुर्भिक्ष न पड़ा। दृष्टान्त तौर पर मुसलमानी काल में दुर्भिक्षों की संख्या इस प्रकार थी—

मुसल्मानी काल में दुर्भिक्षों की संख्या।*

११ वीं सदीमें	२ दुर्भिक्ष	दोनों प्रान्तिक
१३ "	१ "	केवल देहली के चारों ओर।
१४ "	३ "	सब प्रान्तिक।
१५ "	२ "	"
१६ "	३ "	"
१७ "	३ "	सार्वत्रिक
१८ (१७४५ तक)	४ "	उत्तर पश्चिमप्रान्त

*Digby Prosperous British India.

इस प्रकार मुसलमानों के राज्य के आठसौ सालों में भारत में १८ दुर्भिक्ष पड़े, जिन में से सम्पूर्ण भारत पर एक भी न पड़ा सब के सब प्रान्तिक थे।

मेगस्थनीज़ ने चन्द्रगुप्त के काल के लोगों की समृद्धि के विषय में लिखते हुए कहा था कि—

"अनाज के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष में जो नदी नालों की बहुतायत से भली-भांति सींचा जाता है, ज्वार आदि भी बहुत पैदा होता है। अनेक प्रकार की दाल चावल और विस्फोटक कहलाने वाला एक पदार्थ तथा बहुत से खाद्योपयोगी पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अतः यह मानाजाता है कि भारतवर्ष में अकाल कभी नहीं पड़ा और खाने की वस्तुओं की साधारणतः महंगी कभी नहीं पड़ी—

डायोडोरस २—३५—४२

भारतवर्ष के बुरे दिन मुसलमानी राज्य से शुरू हुए इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। परन्तु जो बुराई उन्होंने प्रारम्भ की थी उसको अंग्रेजों ने पूरा किया। मुसलमानों ने भारतीयों की भूमि पर अपना स्वत्व स्थापित किया और मालगुजारी सम्बन्धी नियमों को पलटा। उनके समय में मालगुजारी इतनी अधिक न थी कि लोग भूखों मरते। अलाउद्दीन ने माल गुजारी विषयक प्राचीन हिन्दू नियमों के अनुसार $\frac{१}{१०}$ या $\frac{१}{६}$ न

लेकर ½ लेना शुरू किया। एक विद्वान् वकील को उसने इसका कारण इन शब्दों में प्रगट किया कि—

"हे डाक्टर, तुम विद्वान् हो परन्तु तुमको संसार का अनुभव नहीं है। मैं निरक्षर हूं परन्तु मैं संसार को बहुत देख चुका हूं। यह विश्वास रखो कि हिन्दू तब तक आधीन नहीं किये जा सकते जब तक कि वह निर्धन दरिद्र न बना दिये जायं। यही कारण है कि मैंने यह आज्ञा निकाली है कि किसानों के पास साल भर के खाने के लिये अन्न, दूध, घी आदि पर्याप्त होना चाहिये परन्तु उनको संपत्ति तथा धन बटोरने का अवसर न मिलना चाहिये"*

---

* 'Oh, Doctor, thou art a learned man, but thou hest had no experience ; I am an unlettered man, but I have seen a great deal : be assured then that the Hindus will never become submissive and obedient till they are reduced to poverty, I have, therefore, given orders that just sufficient shall be left to them from year to years of corn, milk, and curds but that they shall not be allowed to accumulate hords and property

'The Oxford History of India' by Vinsent A. Smith, 1919 P. 234.

विचारा अलाउद्दीन जो सोचता था, अंग्रेज लोग उससे कहीं आगे बढ़ गये। उसके दिल में 'किसानों को साल भर के लिये अन्न दूध घी देने का तो ख़याल था परन्तु अंग्रेजों ने उस ख्याल को भी दूर छोड़ दिया। उन्होंने अलाउद्दीन के विचार को कार्य रूप में परिणत किया। यही कारण है कि आज विचारे किसानों के पास पेट भर खाने के लिये अन्न तक नहीं हैं। अलाउद्दीन ने $\frac{1}{2}$ मालगुजारी नियत की थी परन्तु प्रबन्ध के शिथिल होने से वह कभी भी इकट्ठी न कर सका। अंग्रेज लोग शासन विज्ञान तथा राजनीति में दक्ष हैं। उन्होंने मालगुजारी $\frac{1}{2}$ नियत की और इससे भी अधिक वसूल की। उन्होंने शनैः शनैः भारत के सारे के सारे कारोबार तथा उद्योग धन्धे को अपने हाथों में कर लिया। आजकल वस्त्रादि व्यवसायों के नष्ट हो जाने से भारतवर्ष एक मात्र कृषिप्रधान देश हो गया है। कृषि में मालगुजारी अधिक है। कृषकों को तो किसी विशेष प्रकार की आमदनी कृषि में नहीं हैं। वह लोग एक प्रकार से चूसे जा रहे हैं। भूख के मारे इधर उधर से धन उधार लेकर खेती करते हैं। यदि तो फसल हो गयी तब तो कुछ समय के लिये अन्न जल का प्रबन्ध हो जाता है। परन्तु जब कभी वर्षा नहीं होती उसी समय भयंकर दुर्भिक्ष उनके सर पर सवार हो जाता है।

यही कारण है कि भारत में आँग्लराज्य के अन्दर भयंकर तौर पर दुर्भिक्ष पड़े हैं और उनकी संख्या भी बहुत अधिक है

१८७९ मे भारत में दुर्भिक्ष के लिये जो कमीशन बैठी उसने कहा था कि "भारत में चार वर्षों के पीछे एक न एक दुर्भिक्ष की संभावना है अतः दुर्भिक्ष फंड स्थापित करना अन्यावश्यक है"। इस कमीशन के बाद राज्य ने दुर्भिक्ष सम्बन्धी बहुत ही धारायें बनायीं। राज्य का इन धाराओं को बनाना इस बात का साफ़ प्रमाण है कि राज्य स्वयं भारत में दुर्भिक्ष की स्थिरता को अनुभव करता है। भारत में दुर्भिक्ष प्रतिवर्ष किस कदर बढ़ रहे हैं यह निम्न लिखित सूची से स्पष्ट हो सकता है।

आंग्लकाल में दुर्भिक्ष की संख्याः—

१८००—१८२५—५ दुर्भिक्ष, इन में मनुष्यों की मृत्यु संख्या करीबन १० लाख थी।

१८२६—१८५०—२ दुर्भिक्ष-कई प्रान्तों के लोगों को बहुत ही अधिक कष्ट हुआ—

१८५० के बाद संपूर्ण भारत आंग्लों के शासन में आगया।

१८५१—१८७५—६ दुर्भिक्ष इन में ५ लाख के करीबन मनुष्य मरे।

१८७६—१६००—१८ दुर्भिक्ष इनमें से ४ दुर्भिक्ष ऐसे भयानक थे, जिनका वर्णन करना असम्भव है। २ करोड़ ६० लाख मनुष्य इन दुर्भिक्षों में मरे।

इन अन्तिम २५ वर्षों की मृत्यु संख्या की औसत जब हम निकालते हैं तो प्रति मिनट मृत्यु संख्या चार निकलती है।

विषय को स्पष्ट करने के लिये उपरिलिखित दुर्भिक्षों में से कुछ एक आवश्यक दुर्भिक्षों का वर्णन किया जायगाः—

(२)

दुर्भिक्ष वृद्धिका इतिहास

१८८० तथा १८६१ में जो भारतीय दुर्भिक्ष की समितियां बैठी उनकी रिपोर्टों से पता लगता है कि १७५० से १६०० तक आँग्ल राज्य में बाईस अति भयंकर दुर्भिक्ष पड़े। यदि साधारण दुर्भिक्षों का ख्याल न भी रक्खा जाय तो भी १७२६ से १६०० तक ८० दुर्भिक्ष भारतवर्ष में पड़े। जिनका ब्यौरा इस प्रकार है।

सन्	१७६९	१७७०	१७८१	१७८३	१७९०	१७९१	१७९९	१८०२	१८०३	१८०४	१८१२	१८२३	१८३२
प्रान्त													
१ बंगाल	...	दु	...	...		...	...	...	...	..	...	...	...
२ बिहार	..	दु		..	...	...	...	...	...	...	...	...	...
३ उड़ीसा	.	...	...	दु	...	...	...	...	...	...	...	...	...
४ अवध	...	...		दु	.	...	..	..	...	.	.	..	...
५ उत्तर पश्चिमीय प्रान्त	..	..		दु	...	...	...	.	दु	...	दु	..	...
६ पंजाब	...	..	.	दु		...	...	...	...	..	...	...	...
७ मध्यप्रान्त	...	...		.	...	..	..	...	...	..	...	...	...
८ राजपूताना	...	...	.	.	...	...	.	..	...	.	दु	...	...
९ सिन्ध	..	...	...		.	...	...	...	..	..	...	.	...
१० गुजरात	...	...		.	...	दु	..	दु	दु	...	.	...	...
११ बम्बई	...	..	...			दु	.	दु	...	...	दु	...	...
१२ बरार	...	..	..	.	..	...		...	...	...	...	...	...
१३ हैदराबाद	...	...	.	..	..	दु	...	दु	.	...	...	...	दु
१४ मद्रास	दु	...	दु	.	दु	..	दु	...	..	दु	..	दु	दु
१५ माइसोर	..	...		...	...	...	...	...		...	...	...	...
१६ बर्मा	...	...	...	...	...	...		..	...	...	...	...	...
१७ मध्य भारत	...	...	.	दु	...	...	...	..	...	..	..	...	..
कुल प्रान्तों पर प्रभाव	१	२	१	४	१	३	१	३	२	१	३	१	२

१८६७	१८५५	१८९०	१८९५	१८९८	१८७६	१८७७	१८८५	१८८९	१८९०	१८९१	१८९७	१९००	विशेष सूचना
													दुर्भिक्ष = दु
...	...	...	दु	...	दु	...	दु	...	...	दु	दु	...	६
...	...	...	दु	...	दु	...	...	दु	...	...	दु	...	५
...	...	...	दु	...	...	...	...	दु	...	...	...	...	२
...	...	...	...	...	...	दु	...	...	दु	...	दु	...	४
दु	...	दु	...	दु	दु	दु	...	...	दु	...	दु	...	१०
...	...	...	...	दु	...	...	...	...	...	...	दु	दु	४
...	...	...	...	दु	...	...	...	...	...	...	दु	दु	३
...	...	...	...	दु	...	...	...	...	...	...	दु	दु	४
...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	दु	१
...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	दु	...	दु	५
...	...	...	...	दु	...	दु	...	...	...	...	दु	दु	७
...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	दु	दु	२
...	दु	...	...	...	...	दु	...	...	...	...	दु	दु	७
...	दु	...	दु	...	...	दु	दु	दु	...	...	दु	...	१३
...	...	...	...	...	...	दु	...	...	...	...	दु	...	१
...	...	...	...	...	...	...	...	...	...	दु	दु	...	२
...	...	...	...	दु	...	...	...	...	...	...	दु	दु	४
१	२	१	४	६	३	६	२	३	२	३	१३	९	८०

दुर्भिक्ष वृद्धिका इतिहास

१७२६-१६०० तक दुर्भिक्षों की संख्या

इन उपरिलिखित दुर्भिक्षों में भिन्न भिन्न दुर्भिक्षों का इतिहास इस प्रकार है ।

(१) १७७० का बंगाल दुर्भिक्षः--सब से पहिले पहिल आँग्ल राज्य बंगाल से शुरू हुआ और यही कारण है कि वहाँ से ही दुर्भिक्षभी प्रारम्भ हुआ। १७७० के दुर्भिक्ष का मुख्य कारण यह था कि ईस्टइंडिया कम्पनी ने बंगाल का करोबार हस्तगत करने का यत्न किया और बुरी तरह से माल गुजारी बढ़ायी। किंवदंती है कि इस दुर्भिक्ष में अनगिनत मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हुए। उस समय बंगाल में जिन्होंने भ्रमण किया था वह बताते हैं कि एक करोड़ से अधिक बंगाली इस दुर्भिक्ष में मृत्यु को प्राप्त हुए ।

(२) १७८२ का मद्रास दुर्भिक्षः—इस दुर्भिक्ष के पड़ने का कारण माइसोर के साथ वारनहेस्टिंग का युद्ध है।

(३) १७८४ का उत्तरीय भारत दुर्भिक्षः— इस दुर्भिक्ष की भयंकरता का भी कारण आंग्लराज्य का कुप्रबन्ध ही कहा जाता है। अवध में आंग्ल कर्मचारी गये और उन्होंने कृषक प्रजा से अपने जेब भरने के लिये बलात् लगान लेना प्रारम्भ किया। इसपर विद्रोह होगया।

विद्रोह को शान्त करने में अति क्रूरता प्रगट की गयी। कृषक जनता इधर उधर भाग गई। कैप्टन एडवर्ड का कथन है कि जब मैं १७७४ में अवध में गया था उस समय अवध की दशा बहुत ही उत्तम थी। वह हरा भरा अति समृद्ध देश था। परन्तु १७८३ में उस प्रान्त पर आंग्लों का प्रभुत्व होते ही वह उजड़ गया तथा जन शून्य होगया। वारनहेस्टिंग ने स्वयम लिखा है "बक्सर से लेकर बिहार प्रान्त के अन्त तक मैंने प्रत्येक गांव में उजाड़ ही उजाड़ के चिन्ह देखे हैं" जांच करने से पता लगा कि १७८८ में बनारस की $\frac{1}{2}$ भूमि कृषि रहित होगई थी।

(४) १७९२ का बाम्बे मद्रास दुर्भिक्षः-लार्ड कार्नवालिस के काल में बम्बई मद्रास में दुर्भिक्ष पड़ा। दुर्भिक्ष के कष्टों को कम करने के कुछ उपाय किये गये। लार्ड कार्नवालिस ने १७९३ में बङ्गाल में "स्थिर लगान की विधि प्रचलित करदी" इस दिन के अनन्तर बङ्गाल में एक भी घातक दुर्भिक्ष नहीं पड़ा।

(५) १८०३ का बाम्बे दुर्भिक्षः-इस दुर्भिक्ष का कारण मरहटों से आंग्लों का युद्ध है। हुलकर की सेनाओं ने तथा पिन्डारियों ने खेतियाँ उजाड़ दी थी।

(६) १८०४ का उत्तरीय भारत दुर्भिक्ष-इसका कारण युद्ध तथा कुशासन है। १८०१ में अवध का कुछ भाग आंग्लों ने नवाब से छीन लिया तथा उन्होंने मालगुजारी एकत्रित करने में बड़ी भयंकर क्रूरता की। उन्होंने लगान सीमा से अधिक लेने का यत्न किया परिणाम इसका यह हुआ कि भयंकर दुर्भिक्ष पड़ गया।

(७) १८०७ का मद्रास दुर्भिक्षः—इस दुर्भिक्ष का मुख्य कारण मालगुजारी की अधिकता थी। मालगुजारी अधिक ले लिये जाने से कृषकों के समीप भविष्य के लिये कुछ भी अनाज न बचा। परिणाम इसका यह हुआ कि जब १८०६ में वृष्टि पर्याप्त रूप में न पड़ी, कृषक जनता फसल के न होने से भूखों मरने लगी। मद्रास नगर के निवासियों ने इस अवसर पर जो उदारता प्रगट की उसपर सर थोमास मुनरो अतिशय मुग्ध हो गये और उन्होंने कहा कि "भारतवर्ष की जनता भी ऐसी ही दानी है जैसी कि अन्य योरुपीय देशों की जनता"

(८) १८१३ का बाम्बे दुर्भिक्षः—इसका कारण भी मालगुजारी बढ़ाना ही था, जिसका अभी उल्लेख किया जा चुका है।

(६) १८२३ का मद्रास दुर्भिक्षः—रैय्यत वारी विधि से मद्रास में पुनः लगान निश्चित किया गया। लगान सदा के लिये स्थिर कर दिया गया। १८२३ में जब मद्रास में

दुर्भिक्ष पड़ा तब राज्य ने अन्य प्रान्तों से अन्न मंगाने का यत्न किया।

(१०) १८३३ का मद्रास दुर्भिक्षः—मद्रास के उत्तरीय प्रान्त इस दुर्भिक्ष से भयंकर तौर पर पीडित हुए। पांच लाख मनुष्यों की आबादी के गन्तूर जिले में से दो लाख मनुष्य भूख से एक दम मर गए। देखनेवाले बताते हैं कि मद्रास की गलियों में लाशों पर लाशें पड़ी हुई थी। कोई किसी को पूंछने के लिये तैय्यार न था।

(११) १८३७ का उत्तरीय भारत दुर्भिक्षः—अवध, आगरा, कानपुर आदि नगरोंमें १८३३ में नये सिरे से लगान निश्चित किया गया। इस कार्य्य में जहां पिछली गलतियों को दूर कर दिया गया वहां लगान इतना बढ़ा दिया गया कि भूमि पर ⅔ लगान हो गया। इससे कृषक प्रजा धन धान्य रहित हो गई और जब १८३७ में वृष्टि ठीक तौर पर न हुई तो भयंकर दुर्भिक्ष पड़ गया। महाशय लार्ड् लारन्स का कथन है कि "I have never in my life seen such utter desolation as that which is now spread over the perganas of Hodad and polwal" "अर्थात मैंने जीवन मे ऐसा सत्यानाश कभी भी नहीं देखा है जैसा कि पाल वाल तथा होदाद के परगने में फैला है"। कानपुर में गलियां मुर्दों से भर गयी थी।

आगरा और फतेहपुर में भी यही अवस्था थी । इस दुर्भिक्ष में ८ लाख मनुष्यों से अधिक मनुष्यों की मृत्यु बतायी जाती है ।

(१२) १८५४ का मद्रास दुर्भिक्षः—यह दुर्भिक्ष उत्तरीय मद्रास तथा हैदराबाद में पड़ा । मृत्यु संख्या का पूर्ण तौर पर पता नहीं चला । इस दुर्भिक्ष के घात के कारण कुछ समय तक मद्रास की जन संख्या न बढ़सकी ।

(१३) १८६० का उत्तरीय भारत दुर्भिक्षः—इस दुर्भिक्ष का कारण यह था कि १८५७ के गदर के कारण स्थान स्थान पर खेती उजड़ गयी थी । १८६० में जब वृष्टि पूरी तौर पर नहीं हुई तो भयंकर दुर्भिक्ष पड़ गया । इस दुर्भिक्ष में मृत्यु संख्या २ लाख से अधिक थी । कर्नल बेयर्ड स्मिथ को जब दुर्भिक्ष के कारणों को पता लगाने के लिये नियत किया गया तो उस ने प्रगट किया कि यह दुर्भिक्ष १८३७ के दुर्भिक्ष की अपेक्षा कम भयंकर हुआ । क्यों कि सहारनपुर के नियमों के अनुसार लगान $\frac{2}{3}$ से घटा कर के $\frac{1}{2}$ ही करदिया गया है । अन्त में उसने अपनी सम्मति प्रगट की कि बङ्गाल के सदृश ही अवध, आगरा आदि जिलों में भी स्थिर लगाने की विधिको ही प्रचलित कर देने से दुर्भिक्ष का भय हट सकता है ।

(१४) १८६६ का उड़ीसा दुर्भिक्षः—इस दुर्भिक्ष में एक लाख पचास हज़ार मनुष्य मरे जबकि कई लाख पुरुष दुर्भिक्ष से भी बचाये गये। इस दुर्भिक्ष का भयंकर प्रभाव उड़ीसा में भी पड़ा क्योंकि वहांपर भी लगान निश्चित न था।

(१५) १८६९ का उत्तरीय भारत दुर्भिक्षः- यहराजपूताने से प्रारम्भ होकर उत्तर पश्चिमीय प्रान्तों में भी फैल गया। इस दुर्भिक्ष में १२ लाख मनुष्य भूख से मरे।

(१६) १८७४ का बंगाल दुर्भिक्षः—१८७४ में बिहार में दुर्भिक्ष पड़ा। इसमें लार्ड नार्थ ब्रुकने बड़े यत्न से मनुष्यों को मृत्यु से बचाया। ८ लाख से अधिक मनुष्यों के प्राण, सहायता तथा कार्य देकर बचाये गये।

(१७) १८७७ का मद्रास दुर्भिक्षः—इस दुर्भिक्ष का कारण अत्यन्त ध्यान देने के योग्य है। १८५६ में राज्य ने अपनी एड्मिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट में यह शब्द लिखे थे कि "रैय्यत वारी विधि से रैय्यत एक प्रकार से जमीनों की स्वामी हो गयी है" इसी प्रकार १८५७ में बोर्ड आव् रैव्न्यू ने यह उद्घोषणा देदी थी कि "मद्रास की रैय्यत बिना अधिक लगान दिये चिरकालतक अपनी भूमियों की स्वामी रह सकती है जबतक कि वह अपनी प्रतिज्ञाओं को न भङ्ग करे। इसी प्रकार १८६२ में मद्रास के राज्य ने ८ फर्वरी नं० २४१ के पत्र में स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि—

"There can be no question that one fundamental principle of the Ryotwari System is that the Government demand on the land is fixed.

अर्थात् " इसमें कुछ भी सन्देह करना वृथा है कि रैयत वारी विधि का मुख्य सिद्धान्त यही है कि राज्य की भूमि से माँग सदा के लिये स्थिर रहेः। परन्तु इन सब वचनों का मद्रास राज्य ने भङ्ग किया और कालान्तर में मद्रास के कुछ एक प्रान्तों का लगान बढ़ा दिया। १८७७ में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। ५० लाख मनुष्य भूख से मरे।

(१८) १८७८ का उत्तरीय भारत दुर्भिक्षः—यह दुर्भिक्ष भी अति भयँकर था। इसका भी वास्तविक कारण लगान वृद्धि ही है। इस दुर्भिक्ष में १२ लाख ५० हजार मनुष्य मरे।

(१९) १८८९ का मद्रास दुर्भिक्ष—इसमें भी बहुत मनुष्य मरे। राज्य ने बहुत प्रकार के कार्य खोल कर तथा अन्य बहुत प्रकार की सहायतायें देकर दुर्भिक्ष पीड़ितों के बचाने का पर्याप्त यत्न किया।

(२०) १८९२ का बहु प्रान्तीय दुर्भिक्ष। यह मद्रास बंगाल, बर्मा तथा अजमेर में विशेष रूप से पड़ा। बङ्गाल में इस दुर्भिक्ष के कारण एक भी मृत्यु न हुई क्योंकि वहां स्थिर

लगान की विधि प्रचलित थी। अन्य स्थानों में पर्य्याप्त मनुष्य मरे परन्तु उनकी मृत्यु संख्या का पूर्ण ज्ञान नहीं है।

(२१) १८९७ का भयंकर दुर्भिक्ष—यह भयंकर दुर्भिक्ष लगभग संपूर्ण भारत में ही पड़ा। भिन्न २ प्रान्तों में निम्न-लिखित मनुष्यों के बचाने का यत्न किया गया।

प्रदेश	सन् तथा महीना	दुर्भिक्ष से संरक्षित मनुष्य
उत्तर पश्चिम प्रान्त तथा अवध	मई १८९७	१०६२०००
मध्य प्रान्त	"	५६६०००
बंगाल	जून	८२००००
मद्रास	जुलाई "	२१५०००
बम्बई	अप्रैल १८९७	४७८०००
पञ्जाब	फरवरी "	५००००

इस दुर्भिक्ष में भारतीय श्रमी तथा शिल्पि बहु संख्या में मरे।

(२२) १९०० का भयंकर दुर्भिक्षः—यह दुर्भिक्ष पञ्जाब, राजपूताना, मध्यप्रान्त तथा भारत में पड़ा। ६० लाख मनुष्यों को दुर्भिक्ष से मरने से बचाने का यत्न किया गया परन्तु फिर भी बहुत ही अधिक मनुष्य मर गये[२]—

---

2 Famines in India by Romesh Datt.
Prosperous British India by Digbi.
Moral. Mat. Progr, of India for 1911-12.

(२३) १८०० से १८२० तक लगातार हर दूसरे तीसरे वर्ष किसी न किसी प्रान्त में दुर्भिक्ष पड़ता ही रहा। गुजरात गढ़वाल तथा पुरी आदि के दुर्भिक्ष भुलाने के योग्य नहीं है। गढ़वाल के दुर्भिक्ष में भारत सरकार ने संतोषप्रद सहानुभूति न प्रगट की। सेवा-समिति तथा आर्य्यसमाज ने इस ओर विशेष यत्न किया।

(२४) पुरी का भयंकर दुर्भिक्षः—

भारत में दुर्भिक्षों के कारण लोगों को जो जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनको जानने का एक मात्र साधन सरकारी रिपोर्टें ही हैं। दौर्भाग्य का विषय है कि उनमें पूरी सचाई से काम नहीं लिया गया है। सरकार दुर्भिक्ष जन्य कष्टों तथा मृत्युओं को छिपाने का यत्न करती है। कदाचित वह यह दिखाना चाहती हो कि आंग्ल राज्य में प्रजा सुखी तथा समृद्ध हुई है। परन्तु भारतीयों का विश्वास दिन पर दिन दृढ़ होता जाता है कि वह अपने पूर्वजों की अपेक्षा सुखी नहीं है। उनको खाने के लिये साधारण से साधारण पुष्टिदायक पदार्थ भी नहीं मिलते हैं जो कि पूर्वजों के लिये एक तुच्छ वस्तु थे। बुड्ढे लोग जिन्होंने कि कम्पनी का जमाना भी देखा था आजकल के जमाने को समृद्धि तथा सुख का जमाना नहीं प्रगट करते हैं।

पुरी का दुर्भिक्ष बहुत से रहस्यों का उद्भेदन करता है।

यही कारण है कि इसपर विस्तृत तौर पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। १६१६ की दिसम्बर में उत्कल संघ सभा (utkol union conference) ने पुरी के दुर्भिक्ष तथा मँहगी जन्य कष्टों के जांच पड़ताल के लिये एक समिति नियत की थी जिसके कुछ एक सरकारी कर्मचारी भी सभ्य थे। सरकार से प्रार्थना की गई थी कि वह अपने प्रतिनिधि को समिति में भेज सकती है। परन्तु सरकार ने सहयोग न दिया। समिनि को पुरी के दुर्भिक्ष के विषयमें जो वातें मालूम पड़ीं वह पत्रों द्वारा प्रकाशित की गयीं। उन्हीं बातों के आधार पर व्यवस्थापक सभा में प्रश्न भी किये गये परन्तु सरकार ने सहानुभूति न प्रगट की। जब यह मामला दिन पर दिन भयंकर रूप धारण करने लगा तो बिहार प्रान्त के लैफ्टिनैंट गवर्नर पुरी के दुर्भिक्ष के निरीक्षण के लिये गये। उनके निरीक्षण के बाद ही सरकार की ओर से दुर्भिक्ष पीडितों को कुछ २ सहायता दी गई जो कि दाल में नमक के बराबर थी। सैकड़ा पीछे केवल १४ व्यक्तियों को ही सरकारी सहायता मिली और वह भी पूर्ण रूप में नहीं। इसके बाद सरकार ने एक काम्यूनिक निकाला और उसमें दुर्भिक्ष की उद्घोषणा न कर भारतीय दुर्भिक्ष समिति को ही टेढ़ी मेढ़ी सुनाई। लाचार हो कर दुर्भिक्ष समिति ने भी अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। पिछले दुर्भिक्षों में भी सरकार की नीति पुरी के दुर्भिक्ष के

सदृश ही होगी। उन दिनों में भारतवर्ष गाढ़ निद्रा में था अतः उस समय के दुर्भिक्षों से लोगों को जो कष्ट मिला होगा उसका ज्ञान हमलोगों को कैसे हो सकता है। पुरी के दुर्भिक्ष का हाल विस्तृत तौर पर मिला है और जोकि इस प्रकार है।

१६१६ में नदी की भयंकर बाढ़ से पुरी जिले की खेतियां नष्ट भ्रष्ट हो गयीं। १६१८ में पहिले ही फसलें अच्छी न हुई थी। लड़ाई के कारण विदेश में अन्न बहुत गया और सरकार ने नोटों की वारिस करदी। इससे सभी खाद्य पदार्थ भयंकर तौर पर मँहगे होगये। १६१६ में पुरी के ऊपर दुर्भिक्ष का तूफान मंडराने लगा। १६१६ की २७ अप्रेल को महात्मा अमरनाथ के सभापतित्व में एक अधिवेशन हुआ। इसमें सरकार से सहायता प्राप्त करके दुर्भिक्ष को दूर करने का प्रस्ताव पास हुआ। इसी समय में स्कूल तथा कालिज के विद्यार्थियों ने अपने आपको सेवा-समिति के रूप में संगठित किया और चन्दा इकट्ठा करना शुरू किया। जिलाधीश के सभापतित्व में पुनः अधिवेशन किया गया और दुर्भिक्ष के कष्टों से लोगों को बचाने के लिये अथक श्रम किया जाने लगा। १६२० की अप्रैल तक १५४२६ रुपया एकत्रित किया गया। जगह जगह पर सहायता पहुंचाई गई, परन्तु दुर्भिक्ष का प्रकोप कम न हुआ।

यही कारण है कि दुर्भिक्ष फंड से धन देने केलिये

सरकार से पुनः प्रार्थना की गयी। परन्तु सरकार ने मामला गोल माल कर दिया और पुरानी नीति की ही उसने उपासना की। दुर्भिक्ष समितिका कथन है कि सरकार के कर्मचारियों ने महानदी की शाखाओं के टूटे गयेबांधों का उद्धार न किया और एक अनुचित स्थान पर बांध लगा दिया। जल प्रवाह का मुख्य कारण भी यही था। इस प्रकार स्पष्ट है कि सरकार के कर्मचारियों की असावधानता से दुर्भिक्ष के प्रकोप ने उग्ररूप धारण किया परन्तु इस पर भी सरकार ने दुःखित लोगों के दुःखों को दूर करने का यत्न न किया और उस जिले में जो लोग भूख तथा अन्न की कमी के कारण मरे उनको भी किसी न किसी बीमारी से मरा हुआ लिख दिया।*

आकस्मिक घटनाओं का सर्वदा के लिये रोक देना बहुत कठिन है। परन्तु उन का शीघ्रता से प्रतीकार किया जा सक्ता है। राज्य जनता के संरक्षण के लिये है, न कि भक्षण के लिये। उचित तो यह है कि जनता तथा राज्य के कर्मचारियों में एक ही प्रकार का खून बहता हो। ऐसे ही राज्य से सहानुभूति तथा प्रेम की आशा की जा सकती है। दुःख तो यह है कि भारत में यही स्वाभाविक नियम काम नहीं कर रहा है। भारत पर वह लोग शासन कर रहे हैं जिन में

*Report of the Non-official Committee on the Famine in puri (orisoa) 1919-1920.

किसी दूसरी भूमि का खून तथा प्रेम बह रहा है। भारत के लोग अपना उद्धार बिना आर्थिक स्वराज्य के नहीं कर सकते हैं। आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करने के बाद अमरीका फ्रान्स तथा स्विट्जलैएड तथा इंग्लैएड आदि देशों के सदृश ही भारत में भी दुर्भिक्ष का प्रकोप सर्वदा के लिये दूर हो जावेगा। पराधीनता, मालगुजारी का बढ़ना तथा राज्य का भूमि पर स्वत्व जब तक रहेगा तब तक दुर्भिक्षों से भारत का पीछा न छूटेगा। आर्थिक स्वराज्य से यही बात दूर हो जायगी अतः भारतीयों को आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये।

———

चौथा परिच्छेद

भूमि पर जातीय स्वत्व

(१)

जमीनों पर किसानों का अधिकार है।

सरकार ने भूमि पर अनंत सीमा तक लगान बढ़ाया है। इतनी लगान वृद्धि से कृषक प्रजा का घात हो जाना स्वाभाविक ही है। क्योंकि भारत में संपूर्ण व्यवसायों का लगभग सर्वनाश हो गया है। विदेशीय सस्ते माल के आने से भारतीय शिल्पी तथा व्यवसायी अपने २ कार्यों में लाभ के न होने से कृषि में भागे। भारत में भूमि इतनी अधिक है कि संपूर्ण जनता की बहुत ही आसानी से पालन पोषण कर सकती है। परन्तु इस कार्य में जो कुछ बाधा है वह यही है कि भारतीय भूमियों पर राज्य ने कब्जा कर लिया है और उनको अपनी आमदनी का साधन समझता है।

किसी भी भूमि पर राज्य का स्वत्व होना न्याय युक्त नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि राज्य का न्याय पूर्वक उदय स्वयं प्रजा से है। प्रजा पूर्व थी राज्य पीछे उत्पन्न हुआ। राजनीतिज्ञ चाणक्य का कथन है कि

"मात्स्य न्यायाभिभूता प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे।" अर्थात् जब प्रजा में शक्ति का सिद्धान्त काम करने लगा और बली दुर्बलों को सताने लगे तब भारतीय प्रजा ने मनु-नामी व्यक्ति को राजा के तौर पर चुना।

जब राजा स्वयं प्रजा से उत्पन्न हुआ है, तब उसका भूमि पर आदि आदि में स्वत्व कैसे हो सकता है? भूमि पर स्वत्व पहिले पहिल उसी का होता है जो कि उस पर पहिले से ही रहता है। दृष्टान्त स्वरूप आंग्ल राज्य को ही ले लीजिये। आंग्ल राज्य को भारत में आये अधिक से अधिक दो सौ वर्ष ही हुए हैं। आंग्लों ने तो भारत की भूमि का निर्माण ही नहीं किया है। हमारे पूर्वजों ने ही पहिले पहिल भारत की भूमि को जंगलों से रहित किया, जहां २ पर दलदल थीं उनको सुखा कर कृषि के योग्य भूमि निकाली। इस दशा में आंग्लों का भारत की भूमि पर स्वत्व किस अधिकार से है? यदि वह कहें कि हमने तो मुसलमानों से भारतीय राज्य पाया है। क्योंकि मुसलमानी राजा भारत की संपूर्ण भूमि को अपनी ही भूमि समझते थे अतः हम भी ऐसा ही समझते हैं। यह उत्तर कुछ भी ठीक नहीं प्रतीत होता है। यदि मुसलमानी राजाओं ने बहुत से अनुचित काम किये हैं तो अनुचित काम का करना अच्छा या न्याय संगत नहीं बन सकता है। न्याय तथा सत्य व्यक्तियों की अपेक्षा नहीं करता

है। यदि किसी ने कुछ बुरा किया है तो उसका अनुकरण करने से कोई बात न्याय संगत नहीं हो सकती है।

यदि किसी अन्य देश मे भूमि का स्वामित्व राज्य के पास हो तो वह भी न्याय या सत्य का परिणाम नहीं कहा जा सकता है। शोक से कहना पड़ता है कि राज्य का जहां प्रजा से उदय हुआ वहां राज्य ने प्रजा का ही घात करना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ प्रारम्भ में कई देशों में देश की शासन पद्धति एक राजात्मक ही थी। राजाओं ने शक्ति का दुरुपयोग कर बहुत से मनुष्यों को इकट्ठा किया और दूसरे राजाओं की प्रजा पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण से समाज में दो भयंकर घटनायें उत्पन्न हो गयीं जो चिरकाल तक जातियों को सताती रहीं। पराजित जाति के स्वतंत्र कृषक जहाँ पराधीन दास के रूप में परिवर्तित किये गये वहां बिजयी सैनिकों ने उनकी भूमियां संभाल संभाल कर बड़े २ भूमिपतियों का रूप धारण कर लिया। महाशय पेन का कथन है कि "जो पहिले पहिल अत्याचार से लिया गया था उसी को पोछे से नियमपूर्वक तथा न्याय संगत कहा जाने लगा और उस लूट तथा अत्याचार के सामान को जायदाद के अधिकारों के द्वारा पुत्र पौत्रों में अनन्तकाल के लिये दिया जाने लगा। जो पहिले पहिल लूट तथा अत्याचार का परिणाम समझा जाता था, उसको

मालगुजारी तथा कर का नाम दे कर मधुर तथा न्याय युक्त बनाने का यत्न किया गया। (१)

सारांश यह है कि दासता तथा राज्य का भूस्वामित्व एक ही बात से उत्पन्न हुए हैं। यदि दास प्रथा को चिरकाल से हटा दिया गया है तो इस भयंकर कुप्रथा को क्यों चिरकाल तक जारी रखा जाय? जब कोई व्यक्ति किसी एक व्यक्ति का खून कर देता है तो राज्य उसको अपराधी ठहरा कर फांसी पर चढ़ा देता है। परन्तु राज्य अपने ही कारण सहस्त्रों प्रजा का घात होने पर भी मौन साधे रहते हैं। फ्रान्स में आक्रान्ति के अनन्तर भूमियां कृषक प्रजा में बांटी गयी और आज रूस भी उसी बात को कर रहा है। यह सब क्यों? वह इसी लिये कि प्रजा का ही भूमि पर स्वत्व है। जिसकी जो संपत्ति छीनली गयी थी वह उसको मिलनी ही चाहिये। बहुत से संपत्ति शास्त्रों का कथन है कि स्थिर लगान विधि से भी कृषकप्रजा के कुछ कुछ कष्ट कम हो सकते हैं। सत्य है। परन्तु उनको उससे उतना सुख तो मिल ही नहीं सकता है,

---

(१) what at first was obtained by violence was considered by others as lawful to be taken anb a second plunderer succeded the other" what at first was plunder, assumed the softer name of revenue; and the power originally usurped, they affected to in hereit."

Rights of Men by Thomas Pain Part I', Chapt. ii.

जितना कि सुख उनको तब प्राप्त हो जबकि वह स्वयं ही भूमि के स्वामी हों तथा राज्य आजकल जो लगान लेती है वह लगान उसको न दे कर अपने जीवन की उन्नति में खर्च करें।

भारत को छोड़ कर संसार के सभी राज्य प्रजा के प्रश्नों पर किसी अन्य ही विधि से विचार करते हैं। भारतीय राज्य की प्रत्येक विषय में यही नीति रहती है कि अमुक स्थान पर प्रजा को इतना लाभ क्यों हो रहा है? उसका कुछ भाग राज्य को क्यों न मिले? यदि बंगाल के भूमिपतियों को भूमि से ७५ प्र० श० लाभ है तो ऐसी कौनसी विधि-निकाली जाय जिससे इस लाभ का भी राज्य भागी हो सके। परन्तु संसार की अन्य जातियों के राज्य किसी अन्य विधि पर काम करते हैं उनको अपनी प्रजा को सुखी देखकर प्रसन्नता होती है। वह चाहते हैं कि उनकी प्रजा अधिक से अधिक समृद्धि हो जाय। वह प्रजा के लिये जितना काम करते हैं उसका कुछ भी भाग उससे करके रूप में नहीं लेते हैं। दृष्टान्त रूप में अन्य योरुपीय देशों की अपेक्षा भारतीयों की आय निम्नलिखित है। (१)

देश	प्रति व्यक्ति की वार्षिक आय १९०० में
स्काटलैण्ड	४५ पाउन्ड
अमेरिका	३९ ,,
फ्रान्स	२७ ,,

(१) "Prosperous British India by William Digby.

देश	प्रति व्यक्ति की वार्षिक आय १९०० में
आस्ट्रेलिया	४० ,,
वैल्जियम्	२८ ,,
जर्मनी	२२ ,,
भारतवर्ष	१ पाउन्ड

परन्तु भारतवासियों पर जो राज्य कर है उसको देखकर हृदय कांप उठता है। स्काटलैण्ड में कुल आय का $\frac{१}{१७}$ भाग करके तौरपर राज्य लेता है परन्तु भारतवर्ष में $\frac{१}{४}$ भाग। भारतीय प्रजा से इतना अधिक कर लेना उसको कष्ट में डाले बिना नहीं रह सकता है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि स्थिर लगान विधि से प्रजा को उतना सुख नहीं मिल सकता है जितना कि भूस्वामित्व विधि से। न्याय यही कहता है कि जो संपत्ति जिसकी है वह उसी को मिलनी चाहिये। शक्ति के सिद्धान्त को छोड़ कर और तो कोई ऐसा सिद्धान्त हो नहीं है जो कि भूमि पर राज्य या जमींदार का स्वामित्व प्रगट कर सके।

भारत में दुर्भिक्ष का मुख्य तथा मौलिक कारण आंग्ल राज्य का भारतीय भूमि पर स्वत्व है। किसी समय में योरुपीय देशों की कृषक प्रजा की दरिद्रता का भी यही कारण था परन्तु जब से उन्होंने इस कारण को हटा दिया है वहां की प्रजा अत्यन्त सुखी हो गई है।

संपूर्ण संपत्तिशास्त्र तथा राजनैतिक पुस्तकें एक ही सूत्र को प्रगट करते हैं कि "स्वत्व से बालू भी सोना बन जाता है"। यही एक मुख्य तथा न्याययुक्त साधन है जिससे भारतीय कृषकों की दरिद्रता तथा निर्धनता दूर हो सकती है। इसी एक साधन से भारतीय कृषकों में स्वतन्त्रता समानता तथा भ्रातृभाव का उदय हो सकता है और वह निर्जीव से सजीव हो सकते हैं और उनकी झोंपड़ियां महलों में परिवर्तित हो सकती हैं। किस प्रकार योरूपीय देशों ने इसी एक विधि से अपनी कृषक जनता को क्षण मात्र में ही सुखी बना दिया इसका वर्णन करने के लिये अब अगला प्रकरण प्रारम्भ कियाजागा।

---

(२)

कृषकों का भूमिपर स्वत्व ही, दुर्भिक्षों को रोकने का एकमात्र उपाय है।

पूर्व प्रकरणों में दिखाया जा चुका है कि प्राचीन काल में भारत का भूस्वामित्व कृषकों का ही था। राजा का उसपर कुछ भी अधिकार न था। । राजा उसी भूमि पर कृषकों से माल लेना था जो कि उसकी अपनी होती थी। परंतु वर्तमान काल में क्या २ परिवर्तन इस विषय में उपस्थित हुए हैं यह पाठकों को पता ही लग चुका है।

किसी विषय का समुचित रीति पर ज्ञान नहीं हो सकता है, यदि कोई अपनी दृष्टि परिमित सीमा तक ही रखे। संसार में अनन्त देश हैं, जिनमें एक ही काम के लिये अनन्त विधि प्रयुक्त हैं। परंतु जिज्ञासु वही है जो कि उनमें से अपने तथा अपने देश के उन्नति के लिये शिक्षा ले।

भारत में कृषि के अवनति के जो कारण थे उनका उल्लेख किया जा चुका है। ससार के अन्य सभ्य देशों ने कृषि में कैसे उन्नति की इस पर अब विचार किया जायगा। विचार करने से पूर्व एक बात लिख देना आवश्यक ही प्रतीत होता है। किसी भी चीज की उन्नति में कुछ एक मौलिक तत्व होते हैं जिनके बिना किसी प्रकार कोई भी उन्नति का होना असम्भव होता है। दृष्टान्त तौर पर बिना दृढ़ नींव के उत्तम गृह नहीं बन सकता है। बालू पर कभी कोई घर बना नहीं है। प्रश्न उठ सकता है कि कृषि की उन्नति में मौलिकतत्व कौनसा है ?

कृषि की उन्नति का मूल-तत्व स्वाधिकार है। जब तक भूमि पर तथा उसकी उपज पर कृषकों का स्वामित्व न हो तब तक कृषि में किसी प्रकार की भी उन्नति का होना सम्भव नहीं कहा जा सकता है। लाभ प्राप्ति की आशा से ही संसार में प्रायः काम होते हैं। किसान दिनभर हल जोतता है तथा बीज बोता है और अपने खेत की उत्पादक शक्ति को

बढ़ाने के लिये यत्न करता है । किस लिये ? इसीलिये कि इस पर जो कुछ मैं उत्पन्न करूंगा वह मेरा ही होगा । स्वाधिकार में बड़ी शक्ति है । स्वाधिकार से बालू भी सोना बन सकता है अन्य वस्तुओं का तो कहना ही क्या ?

योरूपीय देशों में प्रायः मालगुजारी की विधि प्रचलित नहीं है । कृषक प्रजा अपनी २ सरकार को मालगुजारी के तौर पर एक कानीकौड़ी भी नहीं देती है । वस्त्रादिक व्यवसायों के सदृश कृषि भी वहां एक व्यवसाय समझा जाता है । जो अन्य व्यापारी व्यवसायियों पर इनकम टैक्स आदि टैक्स लगते हैं वही किसानों पर भी उनकी अपनी २ आमदनियों के अनुसार लगते हैं । इस बुद्धिमत्ता पूर्ण प्रबन्ध से योरुप की कृषक प्रजा अत्यन्त सुखी है । संसार के संपूर्ण प्रदेश जिस आर्थिक सत्यता को प्रगट करते हैं वह यही है कि कृषक को ही भूस्वामीहोना चाहिये । कृषकों की उन्नति का सब से मुख्य साधन तथा मौलिक तत्व यही है । इससे अतिरिक्त अन्य कोई ऐसी विधि नहीं है जो कि उनकी दशा को उन्नत कर सके ।

कृषि शिक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा आदि तभी कृषकों को अधिक समुन्नत करने में सफल हो सकती हैं जब कि उनमें भूस्वामित्व रूपी मौलिकतत्व विद्यमान हो । यदि यह न हो, और शिक्षा देने का यत्न किया जाय तो परिणाम इसका

यह होगा कि किसान शिक्षा से क्लार्क बनने का यत्न करेंगे नकि अच्छा किसान। इंग्लैंड में ऐसा ही हो चुका है और भारत में भी ऐसा होता हुआ प्रायः देखा गया है। जर्मनी ने आरम्भ से ही इस बात को पूर्ण रूप से समझ लिया था। उसने कृषकों को ही भूस्वामित्व दिया। परिणाम इसका यह हुआ कि उसकी वज्रभूमि भी स्वर्ण में परिवर्तित हो गयी और उसके कृषक शिक्षा से अपनी कृषिको ही उन्नत करनेका यत्न करने लगे। शिक्षा प्राप्त कर जर्मन कृषक क्लार्क बनने के लिये नगर में जाही कैसे सकता है जबकि उसको क्लार्की की अपेक्षा कृषि में ही अधिक लाभ हो।

संसार तो लाभ पर चलता है। यदि किसी को कृषि में अधिक लाभ हो तो वह भला क्लार्क बनना कब पसन्द कर सकता है। यह सब घटनायें वहीं पर उत्पन्न होती हैं जहां पर कि कृषि व्यवसाय भूस्वामित्व के न होने से घाटे का व्यवसाय हो जाता है और कृषक दूसरे व्यवसायों को लाभ का व्यवसाय समझने लगते हैं, और इसीलिये शिक्षा प्राप्त करते ही किसान खेतों को छोड़ कर भागने लगते हैं और अपनी दशा को उन्नत करने के लिये नगरों में नौकरी ढूंढना आरम्भ करते हैं। किसी जाति की उन्नति तथा समृद्धि की आशाजनक यदि कोई घटना हो सकती है तो वह यही है कि उसकी कृषक प्रजा शिक्षा प्राप्त करते ही नगरों में भागने

का यत्न करे। यह क्यों? यह इसीलिये कि यह घटना इस बात को सूचित करती है कि उसकी कृषक प्रजा अपनी दशा को उन्नत करना चाहती है परन्तु कुछ एक दोषों के कारण उसको कृषिव्यवसाय में लाभ नहीं है अतः यह नगरों में शिक्षा द्वारा अधिक धन कमाना चाहती है।

ऐसी घटना जब किसी जाति में उत्पन्न हो उस समय राज्य को बड़ी सावधानी से कृषकों को ही भूस्वामित्व दे देने का यत्न करना चाहिये और ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे कि उनके लिये कृषि का व्यवसाय अत्यन्त लाभ का व्यवसाय हो जाय। जर्मनी ने इसी प्रकार काम किया! फल इसका यह हुआ कि उसकी कृषक प्रजा अपने २ खेतों के सुधारने में ही दत्तचित्त हो गयी। संपूर्ण योरुपीय देशों का एक बार भ्रमण करो, यह सत्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होगा। भूस्वामित्व रूपी धुरे पर ही कृषि का उन्नति रूपी चक्र घूमता है। उस धुरे में बिगाड़ आते ही चक्र का घूमना बन्द हो जाता है। इस सार्वभौम सत्य को अब निम्नलिखित देशों के द्वारा पूर प्रगट करने का यत्न किया जायगा।

(३)

स्विट्ज़लैंड

महाशय सिस्मन्दी का कथन है कि सारे संसार में कृषकों की सुखसंपति को यदि कहीं देखना है तो स्विट्ज़लैंण्ड में जा कर देखो। यही एक देश है जो कि अत्यन्त प्राचीन-काल से अब तक हम को शिक्षा दे रहा है कि एक मात्र भूमि ही लाखों मनुष्यों के लिये पालनपोषण के लिये पर्याप्त है! यदि किसी देश में भूमि का यह गुण प्रत्यक्ष नहीं है उसमें दूषण वहां की सामाजिक तथा राजनैतिक अवस्था का हो सकता है न कि भूमि का। स्विट्ज़लैंण्ड पार्वतीय प्रदेश है। उसकी भूमि भी अति उपजाऊ नहीं है। बर्फ तथा पाले के पड़ जाने से प्रायः वहां पर कृषि नष्ट हो जाती है। यह सब आधि दैविक विघ्नों के होते हुए भी क्यों स्विस् कृषक प्रसन्न चित्त है? कैसे उसमें अपूर्व स्वतंत्रता के भावों का उदय हो गया? क्यों न भारतवर्ष के सदृश वह भी दरिद्र हो गया? क्यों उसके किसानों के मकान सुन्दर, सुडौल, तथा स्वच्छ हैं? अपनी भूमि की उन्नति में क्यों स्विस् कृषक दत्तचित्त हैं?*

इन सब प्रश्नों का एक उत्तर है और वह यह कि वहां

* Historical, Geographical, and Statistical Picture of Switzerland Part I, & Switzerland the South of France, and the Pyenees in 1830 by H.D. Inglis, Vol.I. chapt. 2.

कृषक ही भूमि का स्वामी है न कि राज्य या कोई बड़ा ताल्लुकेदार। स्विस् कृषक अपनी भूमियों से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने का यत्न करता है। उसकी उपज को बढ़ाने का प्रबल प्रयत्न करता है। बन्जर से बन्जर भूमि पर से उसको इतनी आमदनी हो जाती है कि वह अपने निवास स्थान को सुन्दर बनाने में पर्याप्त रुपया व्यय कर सकता है। महाशय सिस्मन्डी बताते हैं कि स्विस् कृषकों के गृह देखने के योग्य हैं। परिवार के प्रत्येक सभ्य के पृथक् २ कमरे हैं। उनमें मखमल के गद्दे तथा एक चारपाई बिछी रहती है। प्रत्येक प्रकार के सामान से कमरे सजे होते हैं। गोशालाओं की स्वच्छता तथा सुन्दरता को देख कर आश्चर्य होता है। अधिक क्या? संसार के संपूर्ण देश अपनी समृद्धि को दिखा दिखा कर कितना ही अभिमान क्यों न करें। स्विट्ज़लैंड को इसकी कुछ भी परवाह नहीं है। उसको यदि किसी बात पर अभिमान है तो अपनी कृषक जनता पर है। कृषक स्वामित्व के लाभों पर सिस्मन्डी ऐसा मुग्ध हुआ कि उसने उसी को सार्वभौम सत्य कह दिया। वह कहता है कि*

* Wherever we find peasant proprietors we also find the comfort, security, confidence in the future, and independence, which assure at once happiness anb virtue.

(Studies in Political Economy, by M. de. Sismondi. Easay III.)

"जहां २ पर हम भूमि का स्वामी कृषकों को ही देखते हैं वहां २ पर हमको सुख, स्वरक्षण तथा आत्मविश्वास कृषकों में दृष्टिगोचर होता है और साथ ही उनमें उस स्वातन्त्र्य को भी पाते हैं जो कि उनमें आनन्द तथा सदाचार का विश्वास दिलाता है"। इसका कारण यह है कि भूस्वामी कृषकों को अपने अनाज के बेचने की कुछ भी चिंता नहीं करनी पड़ती। वह जो उत्पन्न करते हैं वही खाते हैं। जो अंगूर बोते हैं उसी की शराब पीते हैं। न उनको किसी को कुछ भी देना, न किसी से कुछ भी लेना। निश्चिन्त हुए हुए, ग्रामीण गीतों को गाते हुए आनन्द आनन्द से खेतों को बोते हैं तथा अनाज काटते हैं। राज्य या ताल्लुकेदार का उनको भय नहीं है क्योंकि उनको उन्होंने मालगुजारी या लगान तो कोई देना ही नहीं है। सेठ साहूकारों से रुपये उधार लेने की उनको कुछ भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनके पास पहिले ही से पर्य्याप्त संपत्ति है।

ज़मीन ही उनका सेविङ्ग्वैंक है। स्विस कृषक हर समय भूमि खरीदने पर सन्नद्ध रहते हैं। क्योंकि चिरकाल के अनुभव से उनको पता लग गया है कि भूमि किस प्रकार संपत्ति की खान है। प्रत्येक प्रकार के पौदों को बोने का वह यत्न करते हैं। चाहे उनका फल सौ वर्ष बाद ही क्यों

न मिलता हो । उनको विश्वास है कि उनकी भूमि तथा परिश्रम का फल उनके बालबच्चों को ही मिलेगा" ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भूस्वामी कृषक ही सब कृषकों में सुखी हैं। भूमि की संपूर्ण संपत्ति तथा फल का उपभोग वही करते हैं। परिवार के संपूर्ण सभ्य यदि कहीं पर साथ मिलकर काम करते हैं तो भूस्वामी कृषकों के ही गृहों में करते हैं। देश के व्यापार व्यवसाय को सब से अधिक उत्तेजना यदि कोई देते हैं तो वह यही हैं क्योंकि वह पर्याप्त समृद्ध होते हैं।

विचित्रता तो यह है कि योरुप में भ्रमण करते समय खेतों को देखते ही यह पता लग जाता है कि कौन सा खेत भूस्वामी कृषक का है और कौन सा खेत भूमिपति या ताल्लुकेदार का है। जिस खेत में स्वच्छता हो, घास आदि न हो तथा खेती भी लहलहा रही हो, तो समझ लेना चाहिये कि वह खेत ऐसे कृषक का है जिसका कि उसी भूमि पर स्वामित्व भी है।

भूमि के सत्यानाश का प्रारम्भ उसी दिन से हो जाता है जब कि वह किसी राजा ताल्लुकेदार या जिमींदार के स्वत्व में चली जाती है। जैसे व्यापार व्यवसाय में बनिये अनावश्यक हैं उसी प्रकार कृषि में ताल्लुकेदार, जिमींदार तथा राजा अनावश्यक हैं। महाशय इंलिश (Mr. english) ने ज़ूरिच के समीप में भ्रमण करते हुए खेतों को देखकर कहा था कि "यहां के कृषकों को भूमि पर से यदि १०० प्रतिशतक

भी लाभ हो तो मेरी सम्मति में इसके वह योग्य ही हैं, उनको यह मिलना ही चाहिये। क्योंकि खेती के सुधारने तथा उनका उत्पादक शक्ति के बढ़ाने में जो उन्होंने यत्न किया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। उस यत्न को आदर्श यत्न कहा जा सकता है। खेतों का कोई पौदा तथा पत्ती ऐसी नहीं है जो कि उनके परिश्रम के गुण को न गा रही हो"।

आंग्ल राज्य यदि भारत की कृषिको उन्नत करना चाहता है तो उसको चाहिये कि वह भारतीय कृषकों को ही भूस्वामित्व दे दे तथा उनसे मालगुजारी लेना सदा के लिये छोड़ दे। इससे अतिरिक्त कोई दूसरी विधि नहीं है जिससे भारतीय कृषक प्रजा सुखी हो सके। विना इसके किये कृषि शिक्षा आदि के द्वारा कृषकों के सुख को बढ़ाने की आशा करना बालू में से तेल निकालना है।

(२)

आयर्लैंण्ड

जिस देश में भूमि का स्वामित्व कृषकों के पास न हो, वहां स्थिर मालगुजारी की ही एक विधि है जिससे कृषकों को भूस्वामित्व विधि के कुछ कुछ लाभ प्राप्त हो सकते हैं अपनी उत्पत्ति का कुछ भाग (प्रायः $\frac{1}{2}$ भाग) राज्य को कृषकों को देना पड़ता है। इससे स्थिर लगान विधि में

कृषकों को उतनी तो कार्य करने के लिये उत्तेजना नहीं मिलती है जितनी कि भूस्वामित्व विधि में। इसमें सन्देह भी नहीं है कि अस्थिर लगान विधि की अपेक्षा यह विधि उत्तम है। अस्थिर लगान विधि तो पूर्व कालीन दासता का एक प्रकार चिह्न है। भारत तथा स्काटलैंएड ने इस विधि से पर्य्याप्त हानियां उठाई हैं। किसान बिचारे अधमरे हो गये हैं। उनको कोई ऐसे फल की आशा नहीं है जिससे वह अपनी भूमियों पर अधिक परिश्रम करें।

अस्थिर लगान विधि जहां कृषकों तथा कृषि की घातक है वहां स्थिर लगान विधि भी कोई बहुत लाभ प्रद नहीं कही जा सकती है। न्याय यही कहता है कि भूमि उसी की होनी चाहिये जो उस पर अनाज उत्पन्न करे। यदि राज्य या जमींदार का किसी भूमि पर प्रभुत्व है, तो उस प्रभुत्व को कभी भी न्याय संगत नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि ऐसे जमींदार या राज्य बहुत कम होंगे जिन्होंने हजारों एकड़ भूमि मध्यकाल में विक्रय से प्राप्त की हो। प्रायः भूमि का स्वामित्व उनको बलात्कार, युद्ध, तथा अत्याचार से ही प्राप्त हुआ है।

यह आगे चल कर दिखाया जायगा कि भारत में प्राचीन काल में कृषकों का ही भूमि पर प्रभुत्व था। यदि उनका उस भूमि से प्रभुत्व हटा तो मुसलमानों के अत्याचार

से ही हटा। मुसलमानों को हम बुरा समझते हैं, क्योंकि उन्होंने हमारी भूमियों को छीना। आंग्ल राज्य को तो ऐसे बुरे अत्याचारी राजाओं का अनुकरण न करना चाहिये था। अस्थिर लगान की विधि ही ऐसी भयंकर है कि जहां पर भी यह गयी है इसने तबाही ही मचायी है। भारत के सत्यानाश का पूर्व प्रकरणों में वर्णन किया जा चुका है। आयर्लैण्ड की भयंकर अवस्था का परिचय भी अब हम पाठकों को दे देना चाहते हैं।

अस्थिर लगान की उत्पत्ति दो प्रकार से होती है।

(१) स्पर्धा द्वारा,

(२) आंग्ल राज्य विधि द्वारा

आयर्लैण्ड में ताल्लुकेदार भिन्न २ भूमियों को कुछ वर्षों के लिये नीलाम करते हैं। दरिद्र कृषक एक दूसरे से स्पर्धा करते हुए नीलाम में बहुत ही अधिक दाम ताल्लुकेदार को दे देते हैं। महाशय हर्ली का कथन है कि "मैं एक भूमि से अच्छी तरह से परिचित था। वह ५० पाउन्ड से अधिक दाम की न थी परन्तु कुछ वर्षों के लिये भूमिपति ने जब उस को नीलाम किया तो उसको ४५० पाउन्ड मिला"। प्रश्न होसकता है कि जब लाभ होने की आशा ही न हो तो इतने अधिक दाम पर किसान लोग भूमि क्यों लेते हैं? इसका उत्तर अति स्पष्ट है। आयरिश जनता अति दरिद्र

है। यहां के कृषक भारतीय कृषकों के दूसरे अवतार हैं। उनके पास एक कानी कौड़ी तो होती नहीं है। उनके पास कोई ऐसे साधन भी नहीं है जिन से वह अपनी आजीविका प्रबन्ध करसकें। जब भूमियों की बोली बोली जाती है, सब के सब किसान यही यत्न करते हैं कि उनके हाथ में कोई न कोई भूमि किसी प्रकार से आही जाय। इस उद्देश्य से वह भूमियों के लेने में भयंकर स्पर्धा करते हैं और भूमियों का दाम ५० से ४५० पाउन्ड तक चढ़ा देते हैं।

जमींदारों को रुपया, वह उधार लेकर या उसकी उपज से देने का यत्न करते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि उनके पास कुछ भी अनाज या संपत्ति नहीं बचती है। जमीन में आलू आदि बो कर वह अपने परिवार का किसी प्रकार से पालन पोषण करने का यत्न करते हैं। विचित्रता यह है कि आयरिश कृषक परिवार का एक न एक सभ्य सदाही भीख मांगने के लिये रखा हुआ होता है। महाशय रैवन्ज़ का कथन है कि किसान जिस दाम पर भूमिपतियों से भूमियां लेते हैं शायद ही कभी वह दाम उनको वह चुकाते हैं। जमींदार. उनके मकान तथा भोजन पकाने के बर्तनों को भी बेच दें तो भी उनको कुछ मिल नहीं सकता। क्योंकि उनके पास कुछ होता ही नहीं है। यदि उनके पास कुछ हो तब तो उनको मिले। यदि दैवीघटना से किसी

बार उपज अधिक भी हो जाय तब भी उस किसान को कुछ लाभ नहीं है। क्योंकि उस उपज को छीनने के लिये जमींदार उनके सिर पर तैनात रहते हैं। आयरिश किसानों को न तो किसी प्रकार के फल की या संपत्ति की ही आशायें हैं और न उनको किसी का डर ही है। उसके पास जब कुछ है ही नहीं तो उसका कोई बिगाड़ ही क्या सकता है? यदि सरकार उसको कैद करे तो सरकार उसको भोजन दे। उसको और चाहिये ही क्या? भोजन ही उसको चाहिये और यदि वह कैद में उसको मिल जाय यह भी उसके आनन्द की बात है।

आयरिश किसान यदि अपनी भूमि पर परिश्रम करे तो उसको उससे कुछ भी लाभ नहीं है। क्योंकि उसके परिश्रम का लाभ तो उस भूमि का जमींदार ही उठावेगा नकि वह स्वयं। यही कारण है कि उन्होंने यह अपनी नीति ही बनाली है कि जो कमावेंगे खालेंगे। क्योंकि यदि कहीं कुछ बचा लिया तो वह जमींदार छीन ही लेगा।[१]

स्पर्धा द्वारा अस्थिर लगान की उत्पत्ति को स्पष्ट किया जा चुका है उसकी क्या हानियां हैं यह भी दिखाया जा चुका है। आंग्ल राज्य विधि द्वारा किस प्रकार

(१) Evils of State of Irlard, their causes and their Remedy by. Revans, P. 10.

कर भाग जाना पड़ा। पूर्व दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार १९ लाख एकड़ भूमि मद्रास में आंग्ल राज्य ने नीलाम की तथा ४० हज़ार भूमि खाली पड़ी है जिसको कि कोई लेने के लिये तैयार नहीं है।

---

(५)

नार्वे

योरुपीय देशों में नार्वे एक ऐसा देश है जिसमें कृषक भूस्वामित्व विधि पर कृषि अति प्राचीन काल से होती चली आयी है। महाशय लेइंग नार्वे के विषय में अति प्रामाणिक लेखक हैं। आपका कथन है कि नार्वे के पार्वतीय प्रदेशों में जिस परिश्रम से तथा पारस्परिक प्रेम से कृषक जनता खेतों के सींचने के लिये दूर दूर से छोटी २ नहरें बना कर जल लाती है वह अतिशय प्रशंसनीय है। ऐसी नहरों से चालीस चालीस मील तक बराबर सिंचाई का काम किया जाता है। सब से विचित्र बात यह है कि कृषक परस्पर में मिलकर काम करते हैं और ऐसा यत्न करते हैं जिससे जहां तक हो सके सभी किसानों के खेतों को पानी मिल जाय। नदियों पर स्थान २ पर उत्तम उत्तम पुल भी बने हुए हैं। सड़कों में भी किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है। यह सब होते हुए भी पुलों पर पैसा नहीं लिया जाता है। इन सब अच्छाइयों

का एक मात्र कारण यही है कि नार्वे में कृषक ही भूमि का स्वामी है।[१]

आंग्ल संपत्ति शास्त्रज्ञों का विचार है कि विस्तृत कृषि में भी अच्छी उपज हो सकती है यदि उसपर पर्य्याप्त पूंजी खर्च की जाय। परन्तु उनका यह विचार सर्वथा भ्रम मूलक प्रतीत होता है जब कि योरूपीय देशों में एक बार भ्रमण किया जाय। कल्पना के घोड़े तो सभी दौड़ा सकते हैं, बात तो उसकी है जो कि करके दिखला दे। नार्वे की कृषि को देखते ही अनुभव होने लगता है कि उसमें उत्तमता रुपये पर खरीदे मेहनती लोग नहीं कर सकते हैं। यह काम उन्हीं का है जो कि उसको अपना समझकर करते हैं।

कृषि व्यवसाय का अन्य व्यवसायों से जो कुछ भेद है वह यही है कि कृषि में उत्तमता तथा उन्नति तब तक होही नहीं सकती है जब तक कि उसको अपना ही समझ कर न किया जाय।

आंग्ल संपत्ति शास्त्रज्ञों का यह भ्रम है कि अधिक पूंजी लगाने से या कृषि में कलाओं के प्रयोग से भूमि की उत्पादक शक्ति बढ़ सकती है या भूमि में अधिक उत्पन्न किया जा सकता है। खेतों में से बिना पौदों को नुकसान पहुंचाये घास निकालना न कलों के द्वारा और न मज़दूरों के

(१) Journal of Residence in Norway by Laig

द्वारा ही किया जा सकता है। इन सब बातोंका एक हीसरल उपाय है और वह यह कि भूमि का स्वामित्व कृषकों को ही दे दिया जाय। योरुपियन देशों ने इसी उपाय के द्वारा कृषि को उन्नत किया है। भारत में भी कृषि उसी दिन स्वयं ही उन्नत हो जायगी जिस दिन कि भारतीयों की जमीनें राजा जिमींदार या ताल्लुकेदार की मलकीयत न हो कर काश्तकारों की मलकीयत हो जायंगीं।

---

(६)

जर्मनी

कृषक भूस्वामित्व विधि के अनुसार कृषि करने वाले बहुत से जर्मन प्रान्तों में से पैलटिनेट नामी प्रान्त पर ही कुछ कुछ प्रकाश डाला जायगा। महाशय हाविट ने "जर्मनी का ग्रामीण तथा गृह्य जीवन" (Rural and domestic Life of Germony. P. 27)नामक पुस्तक में लिखा है कि "जर्मन कृषकों का हल जोतना तथा खेतों का सफा करना अत्यन्त दर्शनीय है"। भूमि पर स्वत्व कृषक जनता का ही है। वही खेती का काम करते हैं। आवश्यकता के अनुसार अन्यों से भी सहारा ले लेते हैं। भूमि का स्वत्व ही एक ऐसा कारण है जिससे संसार के अन्य कृषकों की अपेक्षा वह अधिक परिश्रमी हैं। अधिक से अधिक कष्ट

तथा श्रम को सहते हुए भी वह कुछ भी दुःखित नहीं होते हैं। क्योंकि वह उस काम को अपना ही काम समझते हैं। जाति की भूमियों को वह अपनी तथा अपने साथियों का ही समझते हैं।(१)

कठोर से कठोर शीत में तथा भयंकर बर्फ के मध्य में जर्मन कृषक अपने खेतों में खादों को डालते है और उनकी नलाई करते हैं। धूप आदि के निकलने पर उन वृक्षों को सुधारते हैं जिन पर कि कम फल आते हैं। समीपवर्ती पर्वतों पर जाकर वह गृह में जलाने के लिये लकड़ियां उठा कर ले आते हैं। यह सब काम भारतीय कृषक क्यों नहीं करते हैं? हमारे कई एक मित्र कहेंगे कि उनमें वेदान्त की लहर से परिश्रम करने की आदत नहीं है या उनको कलाओं द्वारा अमेरिकन कृषकों के सदृश कृषि करनी नहीं आती है। एक महाशय अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि—"यदि भारतवासी धनी होना चाहते हो तो उन्हें उन्नत विधियों से कृषि करनी चाहिये तभी खेतों की उपज तिगुनी चौगुनी हो सकती है जैसा कि योरुप में अब हो गया है। इसी से उनका धन तिगुना चौगुना हो सकता है। किन्तु यदि वे सोये रहेंगे तो प्रति दिन उनकी संपत्ति यश और शक्ति घटती जायगी" (प्रोफेसर बाल कृष्ण लिखित अर्थ शास्त्र उत्पत्ति-

(१) Rural and Domestic Life of Germony by MR. Howit.

२६४) "यहां अशिक्षा और आलस्य के कारण हमारे किसानों को फूस की झोपड़ियां, फटे पुराने वस्त्र, एक बार खाने के लिये भोजन, गन्दे सड़े हुए ग्राम, टूटी हुई चारपाइयां ही नसीब होती हैं ।...... ..अमेरिका और योरुप निवासियों ने १६ वीं शताब्दि में ही उन्नति की है वैसे बीसवीं शताब्दि में हम भी उन्नति कर सकते हैं । बड़े २ जिमींनदारों को हर एक किस्म की कला का प्रयोग करने से बहुत लाभ होगा ।" (वा. कृ. उत्पत्ति. पृ. २४८) "शोक है कि भारत के बड़े २ जिमींदार भी कृषि सम्बन्धी कलाओं का प्रयोग नही करते" (वा. कृ. उत्पत्ति. पृ. २४७)—इस स्थान पर हमारा जो कुछ प्रश्न है वह यही है कि "क्या भारतीय अशिक्षा तथा आलस्य के कारण दरिद्र हैं ? या यह बातें किसी अन्य बात की परिणाम हैं । क्या कलाओं के प्रयोग करते ही भारतीय योरुपीय कृषकों तथा भूमिपतियों के सदृश समृद्ध हो जायेंगे ? योरुपीय कृषकों की उन्नति तथा सुख संपत्ति में क्या कलायें तथा कृषि शिक्षा कारण है या कोई अन्य मौलिक कारण हैं ?

इन प्रश्नों का उत्तर इतना सरल है कि पाठकगण स्वयं ही दे सकते हैं । भारतीय कृषकों का गला कतरना हो तो भारत में कृषि सम्बन्धी कलाओं का भी प्रयोग कर दिया जाय । लाखों कृषकों को दूसरे ही दिन भूखा मरता

पाठकगण देखेंगे जिस दिन कि कृषि सम्बन्धी कलाओं ने भारत में प्रवेश किया।

योरूपीय देशों की कृषि की उन्नति का मुख्य तथा मौलिक कारण कृषकों का भूस्वामित्व विधि पर ही काम करना है। कृषिशिक्षा ने भी जर्मन कृषकों को अपनी भूमि की उन्नति करने में यद्यपि सहायता पहुंचायी है। परन्तु यह सब बातें तभी हुई हैं जबकि भूमि पर जर्मन कृषकों का पहिले से ही स्वत्व था। यदि भारत के सदृश राज्य, वहां पर भी अनंत सीमा तक मालगुजारी बढ़ा देता और हर बार मालगुजारी बढ़ाये जाने का उनको भय भी होता तब यदि कृषि शिक्षा या कलाओं से जर्मन कृषक, कृषि पर उन्नति कर दिखाते तब किसी का मुह हो सकता था कि हमारे कृषकों को बुरा भला कह सकता। आयलैंड तो बहुत शिक्षित देश है, वहां पर भारत की अपेक्षा कृषि शिक्षा भी अधिक है। क्यों न वहां के कृषकों ने भूमि पर उन्नति कर दिखायी ? आयलैंड की कृषि दिन पर दिन क्यों घटती जाती है ? सारांश यह है कि भिन्न २ जातियों के कृषि अवनति में अपने अपने कारण होते हैं। जो आयलैंड की कृषि अवनति के कारण हैं वह भारत की कृषि अवनति के कारण नहीं है और जो भारत के कारण हैं वह आयलैंड के नहीं हैं। अतः

जातीय विकट समस्याओं का विचार करने समय बड़ा गम्भीरता से काम करना चाहिये।

भूमि का स्वामित्व प्राप्त होने से जर्मन कृषकों में जो स्वतन्त्रता तथा आत्म विश्वास के भाव उत्पन्न हो गये हैं उनकी कल्पना तक करना कठिन है। यात्री लोग बताते हैं कि जर्मन कृषक अपनी आंखे ऊंची किये हुए, वीरता तथा स्वतन्त्रता के भावों के साथ पैर उठाते हुए चलते हैं। विदेशियों तथा अपने जातीय भाइयों के साथ बुरा व्यवहार नहीं करते है अपितु उनको मान्य की दृष्टि से देखते हैं। उनकी कर्मण्यता का अनुमान इसीसे किया जा सकता है वह वर्ष में एक दिन भी खाली नहीं बैठते हैं। प्रत्येक प्रकार के शाक फल मूल को अपनी भूमियों पर बोने का वह यत्न करते हैं तथा बाजार में बेचकर प्रर्याप्त लाभ उठाते हैं।

डाक्टर रा का कथन है कि पैलेटिनेट प्रान्त में भूमि पर कृषकों का स्वामित्व होने के कारण ही कृषकों ने कृषि में इतनी उन्नति की है कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता है। जर्मनी का प्रत्येक प्रान्त इसी बात की सचाई का पोषक है। सैक्सनी के विषय में महाशय के (Kay) का कथन है कि "पिछले तीस वर्षों से (जब से कि कृषकों का सैक्सनी में भूमि पर स्वामित्व हो गया है) सैक्सनी के कृषको की अवस्था ही बदल गयी है। उनके वस्त्र चाल ढाल, स्वभाव, तथा रहन

सहन में जो भेद आ गया है वह अत्यन्त आश्चर्यप्रद है। उनके खेत इतने स्वच्छ हैं कि मालूम पड़ता है कि मानो छोटे २ उद्यान हैं।" इतना कह कर महाशय रा बताते हैं कि सैक्सनी में छोटे २ भूस्वामी कृषक इस बात के उत्सुक रहते हैं कि वह किसी न किसी प्रकार से अपनी भूमियों पर अधिक से अधिक उत्पन्न करें। वह अपने बालकों को स्कूल में पढ़ने को भेजते हैं। यह भी इसीलिये कि उनके बालक उनको कृषि कार्य में अच्छी तरह से सहायता पहुंचा सकें। जब कोई पड़ोसी अपने खेत में उन्नति करता है प्रत्येक भूस्वामी कृषक उसका अनुकरण करने में तैयार रहता है।

जर्मनी के द्वारा भी यही प्रगट होता है कि कृषि उन्नति का सब से अधिक कारण कृषकों का भूमि पर स्वत्व होना है। यदि यह न हो तो कृषि उन्नति के अन्य सब के सब साधन

---

* All the little proprietors are eagar to find out how to form so as to produce the greatest results; they deligently seek after improvements; they send their children to the agricultural schools in order to fit them to assist their fathers, and each proprietor soon adopts a new improvement introduced by any of his neighbours.

(The Social Condition and Education of the people in England and Europe. By Joseph Kay Esq. M. A.)

निरर्थक हो जाते हैं। जिस प्रकार बालू पर बना गृह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है उसी प्रकार भूस्वामित्व बिना कृषि क्षीण हो जाती है। इसलिये ताल्लुकेदारों तथा राज्य को लगान या मालगुजारी देना देशका अहित करना है। समाज तथा भूमि का हित इसी में है कि जो जोते बोये उसी का जमीन पर स्वत्व रहे।

(७)

बैल्जियम्

जमीनों पर कृषकों का स्वामित्व होने से कृषि किस प्रकार उन्नत हो जाती है इसका सबसे उत्तम उदहरण बैल्जियम को कहा जा सकता है[१]। बैल्जियम की भूमि संपूर्ण योरुप में सब से कम ऊपजाऊ थी। परन्तु जब से वहां के कृषकों का ही उस भूमि पर स्वत्व हो गया है तबसे उन्हीं ने कठोर परिश्रम सेउस भूमि की उपज बहुत ही अधिक बढ़ा दी है। महाशय मक्यु-लक (Mc ' Cullock,) का कथन है कि " फ्लान्डर्ज तथा हेनाल्ट के पूर्वीय तथा पश्चिमीय प्रान्तों की भूमियां बालूमय हैं। यह होते हुए भी वहां पर बहुत बड़ी राशि में वनस्प-तियां उत्पन्न की जाती हैं. जो कि इस बात को प्रगट करती

(१) Principles of Political Economy J. S Mill Book Chapter VII,85,and Geographicle Dictionary,art,'Belgium;

हैं कि वहां के निवासी कैसे परिश्रमी तथा पुरुषार्थी हैं ''।
परन्तु यह सब क्यों ? क्यों न भारतीय कृषक भी उनके सदृश
सुखी तथा परिश्रमी हो गये ? इसका वही उत्तर है जो कि
अन्य स्थानों में दिया चुका है। बैल्जियम सौभाग्य शील
देश है। वह स्वतन्त्र है, उसकी भूमियों पर उसकी प्रजा
का ही प्रभुत्व है। प्रजा को यह विश्वास है कि भूमि पर जो
वह उत्पन्न करेगी उसी का वह होगा। कोई और व्यक्ति
नहीं है जो कि उसके परिश्रम पर अपना जीवन निर्वाह करने
का यत्न करे। भारत में कृषि उन्नति का यही मौलिक तत्व
लुप्त है। इसके बिना अन्य सब प्रकार के यत्न कृषि उन्नति करने
में निरर्थक हैं। जहां पर उपरिलिखित मौलिकतत्व विद्य-
मान हैं, कृषि को उन्नत करने वाले सब उपाय स्वयं
ही वहां पर फल देने लगते हैं। यदि भारतीय कृषकों में
आलस्य तथा प्रमाद भी हो (जो कि लेखक की सम्मति में नहीं
है) तो भी यह दुर्गुण स्वयं उनमें उत्पन्न नहीं हो गये हैं। वह
उनकी सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थिति के परिणाम
हैं। उनकी भूमियों को चिरकाल से छीन लिया गया है। उनके
पास अपनी एक भी भूमि नहीं है। मालगुजारी तथा लगान
इतना अधिक उनसे लिया जाता है कि उनको अपने परिश्रम
का कुछ भी बदला मिलने की आशा नहीं है। जब किसी देश
की ऐसी अवस्था हो, वहां पर स्वभावतः कृषि का ह्रास हो

जाता है। परन्तु योरूपीय देशों की वह अवस्था नहीं है। वहां के राज्य स्वतन्त्र राज्य हैं। वह अपनी कृषक प्रजा को अपनी ही समझते हैं। कृषकों को समृद्ध होता देख कर वह प्रसन्न होते हैं। उनको यह लोभ नहीं है और नाहीं उनकी वह इच्छा है कि कृषकों को जहां तक हो सके निचोड़ लो और अवसर लगे तो उनके बर्तन वस्त्र आदि को भी बिकवा कर अपने खजाने को भरने का यत्न करो।

बल्जियम में कैम्पाइन नामी प्रदेश एक प्रकार का रेगिस्तान है। परन्तु वहां पर संपूर्ण भूमि कृषकों की ही है। उसको किस कठोर परिश्रम तथा धैर्य से वहां के कृषकों ने उपजाऊ बनाया है, इसको जब पढ़ते हैं तब अत्यन्त अधिक आश्चर्य होता है।

यात्री लोग बताते हैं कि बेल्जियम के कृषक भूमि खरीदने के लिये अत्युत्सुक हैं। कृषकों का पारस्पारिक स्पर्धा से वहां की भूमियों का मूल्य इतना बढ़ गया है कि कुल पूंजी पर दो प्रति शतक से अधिक व्याज नहीं मिलता है। दिन पर दिन वहां से बड़े २ जमींदारों का लोप हो रहा है और छोटे छोटे स्वतन्त्र कृषकों की ही संख्या बढ़ रही है। यह सब घटनायें इसी बात को सूचित करती हैं कृषि उन्नति का सब से उत्तम साधन यही है कि भूमि कृषकों की ही होनी चाहिये न कि राज्य की ताल्लुकेदार या जमींदार की। ताल्लुकेदारों

तथा जमींदारों की संस्था को तो सर्वथा ही लुप्त कर देना चाहिये और जो जमीन जोते बोये जमीन पर उसी का अधिकार होना चाहिये।

(८)

फ्रान्स

आक्रान्ति से पूर्व फ्रान्स की बहुत सी भूमि प्रायः बन्जर खेती रहित पड़ी रहती थी। कृषकों की अवस्था अति शोचनीय थी। दरिद्रता तथा आलस्य ने उनमें घर कर लिया था। आक्रान्ति के अनन्तर जब कृषकों को ही जमीन का मालिक बना दिया गया, वहां की भूमियों की अवस्था सर्वथा ही पलट गयी। जहां पत्थर की चट्टानें थीं और जिन पर कृषि करना असम्भव समझा जाता था वहां पर भी कृषि की जाने लगी। (१)

महाशय आर्थर यंग का कथन है कि "सैव्र (Savre) से अगला फ्रैन्च प्रदेश बञ्जर तथा पत्थरों से भरा हुआ है। वहां पर जब से भूमि कृषकों के मलकीयत में आयी है, वह बञ्जर से अति उपजाऊ बन गयी है। प्रत्येक कृषक के मकान के पास शहतूत, जतून, सेव, नासपाती, आड़ू आदि

(1) Rural Economy in France by m De Tavergni p. 455.

के पेड़ों पर पेड़ लगे हुए हैं। जहां २ बालू थी वहां वहां पर भी अब बगीचे बने हुए दिखाई पड़ते हैं। किसी ने ठीक कहा है कि "The magic of property turns sand into gold" अर्थात् स्वाधिकार का जादू बालू को भी सोने में परिवर्तित कर देता है।

गैन्ज (Gang) नामी फ्रैन्च प्रदेश से आगे बढ़ते ही फ्रान्स का पार्वतीय प्रदेश प्रारम्भ होता है। वहां पर भी भूस्वामित्व कृषकों के ही पास है। जल सिंचन का जो उत्तम प्रबन्ध वहां के कृषकों ने किया है वह अतिशय प्रशंसा के योग्य है। कृषक लोग सैन्ट लारन्स में तो इतना जल, दूर दूर के स्थानों से ले आये हैं जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अपूर्व कर्मण्यता साहस तथा स्वतन्त्रता के भाव वहां के कृषकों में दिन पर दिन बढ़ते जाते हैं। इन भावों के कारण ही कोई ऐसी कठिन बात नहीं है जो कि फ्रैन्च किसान करनेपर तैय्यार न हो जावें। महाशय आर्थर यंग का कथन है कि फ्रैन्च कृषक की कर्मण्यता ने सब कठिनाइयों को दूर कर प्रत्येक चट्टान को हरियावल पहिना दी है। यह क्यों? ऐसा पूछना साधारण ज्ञान का अपमान करना है। स्वसंपत्ति के उपभोग से ऐसा हुआ ही करता है। किसी एक मनुष्य को सदा के लिये चट्टान दे दो, वह उसको एक उद्यान बनादेगा और उसी को नौ वर्षों के पट्टे पर एक

उत्तम बाग दे दे।, वह उसको एक रेगिस्तान में परिवर्तित कर देगा"।*

पाठकों को यह पता लग गया होगा कि योरुपीय देशों ने कला से और कृषि शिक्षा से कृषि में उन्नति की है या भूमि पर एक मात्र स्वाधिकार कृषकों को दे देने से। इतिहास तथा वास्तविक घटनायें जो कुछ प्रगट करती हैं वह सब कुछ पाठकों के सन्मुख रख दिया गया है। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि आंग्ल संपत्ति शास्त्रज्ञों के कल्पनात्मक विचारों को इस ग्रन्थ में स्थान नहीं दिया गया है। और ऐसी बातों को किसी पुस्तक में लिखने की आवश्यकता ही क्या जो कि वास्तविक जगत् में न हों। इस प्रकरण के लिखने का जो कुछ उद्देश्य था, वह यही था कि पाठकों को यह पता लग जाय कि कृषि उन्नति का मौलिक तत्व क्या

---

* "Au activity has been here, that has swept away all difficulties before it and has clothed the very rocks with verdure. I wOuld be a disgrace to common sense to ask the cause, the enjoyment of property must have done it. Give a man the secure possession of black rock, and he will turn it into a garden; give him a nine years lease of a garden, and he will oonvert it into a desert."

(Arther Young's Travels in Fance. Vol. I. P. 88.)

है ? और भारतीय अपने कृषकों को तथा कृषि को कैसे उन्नत कर सकते हैं।

इस संपूर्ण संदर्भ से जो कुछ स्पष्ट है वह यही है कि आंग्ल राज्य की अस्थिर लगान विधि का अन्तिम परिणाम स्पर्धा द्वारा लगान का निश्चय करना है। भारतीय कृषकों की अवस्था आयरिश-किसानों के सदृश हो गयी है। यह अवस्था भविष्यत में और भी बिगड़ जायगी यदि हम सोते पड़े रहेंगे।

हमारा कर्तव्य है कि "कृषि उन्नति का मौलिक तत्व क्या है" ? इसको हम उचित तौर पर समझ लें, फिर उसकी उन्नति के लिये यत्न करना प्रारम्भ करें। कृषि शिक्षा आदि से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता जब तक कि कृषि उन्नति का मौलिक तत्व जमीन में विद्यमान न हो। अब प्रश्न हो सकता है कि मौलिक तत्व कौनसा है जिस पर कृषि की संपूर्ण उन्नतियां तथा कृषकों की सुख संपत्ति एक मात्र निर्भर करती है ? इसका एक शब्द में यही उत्तर है कि "कृषकों का जमीन पर पूर्ण अधिकार तथा लगान या मालगुजारी किसी को भी न देना" ही वह मौलिक तत्व है जिस पर कृषि उन्नति का चक्र घूमता है। इस मौलिक तत्व की प्राप्ति के लिये जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों का सदा के लिये लुप्त होना आवश्यक है। राज्य को भी जमींनों की मलकीयत से अपना हाथ खींच लेना चाहिये।

पांचवां परिच्छेद

भारत में श्रम की दशा

(१)

श्रम की कार्य्य क्षमता का घटना।

भारतीय मेहनती मज़दूरों की कार्य्यक्षमता घटने का इतिहास भारतवर्ष पर इंग्लैण्ड के राज्य के आने से शुरू होता है। आगे चल कर यह दिखाया जायगा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने किस प्रकार भारत की कारीगरी तथा कृषि को नुकसान पहुंचाया। मालगुजारी के बढ़ने से किसान कास्तकार लोग दरिद्र हो गये हैं और एक बार भी फसल के बिगड़ते दुर्भिक्ष के शिकार हो जाते हैं। इससे उनकी कार्य्य क्षमता पर बहुत बुरा असर पड़ा है। इंग्लैण्ड तथा योरुप से कलों का बना सस्ता माल आने से बिचारे सारे के सारे भारतीय कारीगर परेशान हैं। उनको पेट भर खाना नहीं मिलता है। पेट के खातिर एक के बाद दूसरा कारीगरी का काम छोड़ छोड़ कर वह खेती के कामों में लगते जाते हैं। जुलाहे, चमार, तेली शिल्पी, हाथीदांत तथा सीप का काम करने

वाले, लोहार, मल्लाह आदि सभी व्यवसायियों की भयंकर दशा है। इससे उनकी कार्य्यक्षमता का घटना स्वाभाविक ही था। परन्तु इंग्लैण्ड में यह बात अब नहीं है। भारत की तबाही के साथ साथ वहां समृद्धि बढ़ी है जैसे २ भारत में एक २ कारीगर बेकार हुआ है वैसे वैसे वहां के कारीगरों के दिन चमके हैं। वहां लोग थोड़े थे। उनके लिये यह असम्भव था कि भारत जैसे बड़े देश को वह बना माल भी पहुंचाते और खेती भी करते। परिणाम इसका यह हुआ कि वहां के लोग खेती के काम को छोड़ कर व्यवसायिक कामों में चले गये और भारत के कारीगरों का अन्न छीन कर स्वयं खाने लगे। खेती न करने से जो अन्न की कमी का प्रश्न उत्पन्न हुआ वह उन्होंने भारत से अन्न मंगा कर हल कर लिया। इंग्लैण्ड का अनुकरण ही योरुप के अन्य देशों ने किया। सारे योरुप ने भारत के कारीगरों का अन्न दाना पानी छीन कर रुपया कमाना शुरू किया और खेती का काम छोड़ कर कारीगरी का काम करने लगे। अन्न की जब जरूरत हुई तो उन्होंने भारत से अन्न मंगा लिया। भारतवर्ष योरुप जैसे समृद्ध महाराष्ट्र के लिये अन्न देने में असमर्थ था। इससे भारत में अन्न की कीमतें बेतहाशा चढ़ीं। बाजार के खुले होने से और विदेशियों को मनमाना अन्न खरीदने का अधिकार होने से बिचारे गरीब भारतीय

अन्न उत्पन्न करते हुए भी भूखों मरने लगे और विदेशीय लोग उन्हीं के अन्न पर फूलने फलने लगे। इस दरिद्रता, विपत्ति तथा भयंकर बेकारी से भारतीय श्रमियों की कार्य्यक्षमता बहुत ही कम हो गयी। दिन भर काम करने से भी वह अधिक पदार्थ नहीं उत्पन्न कर सकते। कहा जाता है कि एक आंग्ल श्रमी भारतीय श्रमी की अपेक्षा ६ या ७ गुणा अधिक कामकर सकता है। यह ठीक है। आंग्ल श्रमी समृद्ध है। उसको खाना पीना मिलता है। उसको पढ़ाया लिखाया जाता है। भारतीय श्रमी को इनमें से कुछ भी नहीं मिलता है। उसके खाने पीने की जो दशा है वह प्रति वर्ष के दुर्भिक्षों से स्पष्ट है। उसके पढ़ने लिखने का कुछ प्रबन्ध नहीं है। राज्य ने ऐसे कामों में निर्हस्तक्षेप की नीति का अवलम्बन किया है। सरकार करोड़ों रुपया गारन्टी विधि में दे सकती है, अफीम गांजा शराब बेच सकती है परन्तु व्यवसायिक तथा व्यापारीय शिक्षा में वह निर्हस्तक्षेप देवी की उपासक है। जहां शिक्षा का प्रबन्ध है वहां मकानों पर विद्यार्थियों तथा अध्यापकों की अपेक्षा ज़्यादा ख़र्च किया जाता है। इस हालत में भारतीयों की कार्य्य क्षमता का घटना अत्यन्त स्वाभविक है। यदि कहीं कहीं पर यह बात नहीं हुई है तो यह मुसलमानी बादशाहों के समय की शक्ति तथा समृद्धि का ही फल समझना चाहिये। हज़ारों वर्षों से

जिन्होंने संसार के सभ्यों में उच्च सिंहासन पाया हो, हो सकता है कि आंग्लों के १५० वर्षों के राज्य में वह पूरी तरह असभ्य न बन सके हों। पूरी तरह असभ्य बनाने के लिये अभी २०० वर्षों तक आंग्लों का भारत पर और राज्य चाहिये। किसी जमाने में भारत में कितनी कारीगरी थी और भारतीयों की बुद्धि कितनी तेज थी इसका अनुभव ताता के लोहे के कारखाने को देखने से ही मालूम पड़ सकता है।

सर् थोमास हालैण्ड ने मद्रास में यह शब्द कहे थे कि भारत में सब प्रकार का श्रम मिल सकता है। कारीगर लोग सब प्रकार का काम जानते हैं और सब प्रकार का काम कर सकते हैं। ताता के लोहे के कारखाने को देखने से यह मालूम पड़ता है कि भारतीय प्रत्येक प्रकार के व्यावसायिक काम को करने में समर्थ हैं। साकची में जंगली लोग आंग्लश्रमियों के सदृश ही लोहे का प्रत्येक प्रकार का काम करते हैं।

यह सब होते हुए भी भारतीय कारीगर नये २ कारखानों के न खुलने से और खुले हुए कारखानों के सफलतापूर्वक न चलने से भयंकर तकलीफें उठा रहे हैं। वह लोग दिन पर दिन अपना कारीगरी का काम छोड़ कर भूमि माता के पेट में धंसते जाते हैं और वहां से अपना पेट पालने का यत्न कर रहे हैं। १९११ की सैन्सस रिपोर्ट में लिखा है कि

१६०१ में इंग्लैण्ड के अन्दर प्रत्येक सौ मनुष्यों के पीछे ५८ व्यावसायिक कामों में, १४ घरेलू नौकरियों में, १३ व्यापार में और केवल ८ मनुष्य खेती के कामों में लगे थे। परन्तु भारत की दशा विचित्र है। भारत में प्रत्येक सौ मनुष्य पीछे ७१ खेती के कामों में और शेष २६ मनुष्य अन्य कामों में लगे हैं। इन २६ मनुष्यों में भी केवल १६ मनुष्यों को ही कारीगरी के कामे से अन्न दाना पानी मिल रहा है।†

निम्नलिखित सूची से यह स्पष्ट हो सकता है भारत में भिन्न २ लोग किन किन कामों में लगे हुए हैं।

पेशे	पेशोंमेंलगेमनुष्य १०००० पीछे।	पेशे	पेशोंमेंलगेमनुष्य १०००० पीछे।
जमींदार तथा ताल्लुकेदार	५६०६	मछियारे तथा मल्लाह	१३३
		तेली	३७
		नाई	६८
		धोबी	६८
किसान तथा मज़दूर	१३१६	शराब बनाने वाले	२०
साधारण मज़दूर	२८७	भूसा निकालने वाले	६८
अहीर तथा गड़रिये	१६४	चमार	६
जुलाहे	२०७	डलिया बनाने वाले	१०७
लोहार	४४	पुरोहित	६४
बर्त्तन ढालने वाले	६	कुम्हार	६३
दरी बुननेवाले तथा लकड़हारे	६६	भिखमंगे	१२८

† Census Report, 1911.

हुक्का चलाने वाले	४६	काम करने वाले-सिपाही	६४
दायिये	६०	कुंजड़े	५१
सुनार	५७	वर्त्तन बेचने तथा	
बनिये	११६	बनानेवाले	१८
सराफ़ तथा साहूकार	१०६	कुलयोग:-	६०२६
गांव चौधरी तथा अन्य			

यदि यह दुरवस्था पूर्व से ही चली आयी होती और हमारे पूर्वजों की अज्ञता तथा मूर्खता का फल होती तौभी कोई बात थी। परन्तु यह बात नहीं है। आगे चल कर इस बात को दिखाने का यत्न किया जायगा कि किस प्रकार भारतीयों को जबरन् कारीगरी का काम छोड़ना पड़ा और भूमि में धंसना पड़ा। यही घटना बराबर अब तक विद्यमान है। सूची नं० १ के देखने से स्पष्ट हो सकता है किस प्रकार १८९१ से १९०१ तक दो करोड़ दो लाख तिरान्वें हज़ार तीन सौ पच्चासी २०२९३३८५ कारीगर, व्यापारी व्यवसायी, घरेलू नौकर तथा मजदूर काम के न मिलने से खेती के कामों में जा पड़े। 'कृषि तथा व्यवसाय' नामक प्रकरण में यह स्पष्ट तौर पर दिखाया गया है कि किस प्रकार कृषि पेशा देश में अज्ञता, ईर्ष्या, द्वेष तथा असभ्यता को बढ़ाता है और देश की स्वतन्त्रता को पानी में मिला देता है। सरकार ने भी इस बात को मन्जूर कर लिया है कि लोग बेकार हो कर और कारीगरी

का काम छोड़ कर खेती में धंसते जा रहे हैं। इम्पीरियल गजैटियर के तृतीय भाग में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि १० ही वर्षों में भारत के अन्दर किसानों की संख्या दुगुनी हो गयी है † महाशय रिस्ले तथा गेट ने इस दुरवस्था को छिपाना चाहा परन्तु जब वह इस बुरे काम को न कर सका तो उसने यह शब्द कहे कि हम किसी प्रकार भी इस बात को पलट नहीं सकते कि भारत के लोग दिन पर दिन खेती के कामों में जा रहे हैं और वहां से ही पेट पालने का यत्न कर रहे हैं * इस प्रकार स्पष्ट है कि १८९१ से १९०१ तक दो करोड़ के लगभग भारतीय बेकार हुए और खेती करने की ओर झुके। १९०१ से १९११ तक का १० वर्ष का समय भी इन्हीं भयंकर दर्दनाक शोकजनक दृश्यों से परिपूर्ण

(†) " The number of agricultural labourers nearly doubled....................a considerable landless class is developing which involves economic danger......even in normal seasons the ordinary agricultural labourers in some tracts earn a poor and precarioos livelihood." Indian Emp. Vol. III. P. 2.

(*) "It is of value as showing that no deduction can be made from the comparative results of the two numerations in support of the contention that the people of India are becoming more and more dependent on the the soil as a means of livelihood "

Census Report, PP. 238—241 (1901)

है। सूची नं० २ से स्पष्ट है कि इन दस वर्षों में ९६८८०८७ छयान्वे लाख के लगभग भारतीय कारीगर बेकार हुए और कृषि के कामों में चले गये। यह संख्या भी कम मालूम पड़ती है क्योंकि सूची नं० २ के देखने से मालूम पड़ता है कि कुल मिला कर १० वर्षों में २८५३३७०५ दो करोड़ पच्चासी लाख के लगभग लोग खेती के कामों में गये हैं। सूची नं० ३ के देखने से पता लगता है कि १९०१ से १९११ तक १० वर्ष के समय में ही ४३२८० कागज बनानेवाले, ७१७७४ रङ्ग तथा दवा दारू बनानेवाले, २४६६३ खिलौने बनानेवाले, ३७९१० गहने तथा जेवर बनानेवाले, ५२०५४५ सूत कातने वाले, १११८६५० जुलाहे, ३३०४०२ चमार, १९३८५३ कंबल, दुशाले पट्टू बनाने वाले, ९८६६४ हलवाई और १२७०४१ जवाहरी तथा सुनार लोहार आदि कारीगर अपना अपना काम छोड़ कर खेती में जा धंसे। इस दुरवस्था तथा भयंकर विपत्ति का मुख्य कारण महाशय दत्त ने विदेशियों के लिये बाजार को खुला छोड़ देना ही बताया है * योरुपीय देशों ने राज्य की

(*) " This; a large increase in the export cf raw hide and skins) coupled with an increasing import of European made shoes and other leather aricles, has evidently led to a large decline in the leather industry in India. There is aslo a decline in the number of ric grinders and huskers and workers in matals and chemicais in

सूची नं० १

१८९१ से १९०१ तक भारतीयों का भिन्न २ पेशों को छोड़ कर खेती में जाना

पेशा	सन् १८९१	सन् १९०१	आबादी कितनी बढ़ी आबादी कितनी घटी
सरकारी नौकर तथा अन्य नौकरी पेशे में लगे लोग	१२५७६६०१	१०६६२६६९	—१९१३९३२
घरेलु नौकर	११२१९९५१	१०७१७२९४	—५०२६५७
व्यापारी	८६३८४८५	७७२५७३७	—९१२७४८
व्यावसायिक तथा कारीगरी का काम	४७५९४२५१	४५७१९६४५	—१८७४६०९
मेहनती मजदूर	२५४६७९७१	१७९५३२३०	—७५१४७४१
		कुल घटाव	—१२८१८६८४
खेती का काम	१७५३७३४६०	१९५६६६८४३	+२०२९३३८५

Statistics of British India, 1912, Post V, Page 22.

सूची नं० २

१९०१ से १९११ तक भारतीयों का भिन्न २ पेशों को छोड़कर खेती में जाना

पेशा	सन् १९०१	सन् १९११	आबादी कितनी बढ़ी + आबादी कितनी घटी—	प्रति शतक बढ़ाव + प्रति शतक घटाव—
भारत की कुल आबादी	२८५३९६८११७	३०४२३३५३५	+१८८३५४१८	+६·६
राजकीय सेवक तथा अन्य इसी प्रकार के काम	१०४१८५२६	१०१५२८८८	—६५६३८	—·६
साधारण अन्य काम	२६९४४२०५	१६८४७९५८	१.०९६२४७	—१७·४
व्यापार	१७८२४८२२	१७२३०३२९	५९४४९४	—३·३
व्यावसायिक काम	३४२९२८१६	३४२४५९५७	५०३५९	—·७
गमना गमन तथा सामान ले जाना	३७६९३७	४८७७९५८	+११०८६५१	+२९·४
		कुल घटाव	—९६८८०८७	
खेती का काम	१९२१५४४९४०	२२५०७८४४५	+२८५३३५०५	+१४·८

Statistics of British India, 1912. Part V.

सूची नं०

१६०१ से १६११ तक भारतीयों ने भिन्न २ व्यावसायिक कामों को इस प्रकार छोड़ा और खेती के कामों में प्रवेश किया

व्यावसायिक काम	कितने मनुष्यों ने १६०१ से १६११ तक काम को छोड़ा	प्रति शतक का घटाव
कागज का बनाना ...	४३२८०	५५ प्रति शतक
रासायनिक पदार्थ बनाना ...	७१७०४	५६ ,,
खेल खिलौने बनाना .	२४६६३	३५ ,,
गहने तथा जनेऊ बनाना ..	३७६१०	६ ,,
सूत कातने आदि का काम ...	५२०५४५	६१ ,,
कपड़ा बनाना .	१११८६५०	१३ ,,
चमड़े के जूते आदि बनाना ...	३३०४०२	३३·६ ,,
ऊन आदि की चीजों को बनाना	१६३८५३	३·३ ,,
खाने पीने की चीजों को बनाना	६८६६४	२·६ ,,
हीरे पन्ने सोने तथा अन्य धातुओं का काम करना	१२७०४१	६·१ ,,

Moral & Material Progress of India 1901, P. 242-1911 432 vol 1.

सूची नं० ४

भिन्न २ प्रान्तों में १८९१ से १९११ तक लोगों का खेती के कामों में जाना तथा व्यावसामिक व्यापारीय कामों को छोड़ देना (प्रति एक हजार के पीछे)

प्रान्त	१८९१ सन्	१९०१ सन्	१९११ सन्
भारतवर्ष	६४५	६७५	७१६
आसाम	८६३	८५५	८६१
बंगाल	७०७	६३६	७६२
बरार	६६४	७४४	७८७
सी. पी.	६७४	८०६	
बाम्बे	६१६	६०७	६७३
बर्मा	६३५	६७१	७०३
कूर्म	७४७	८२४	८२५
मद्रास तथा कोचीन			
पन्जाब तथा उत्तर	६००	६६१	७०१
पश्चिमी प्रान्त	६०३	५६१	६०१
यू. पी.	६६०	६६१	७३३
बड़ोदा	६००	५२६	६५४
मध्य भारत	४८१	५३०	६३४
हैदराबाद	४७८	५१६	६१६
काश्मीर	६८१	७६५	७६६
माइसोर	६७३	६६३	७३०
राजपूताना	५४०	६०१	६४७

Census Report of India, 1901. P. २४२, 432, Vol. I.

सूची नं० ५

भिन्न २ प्रान्तों में १६०१ से १६११ तक लोगों का भिन्न २ पेशों को करना और एक २ पेशे को छोड़ २ कर खेती के काम पर टूटना (प्रति एक हजार पीछे)

	खेती का काम		व्यावसायिक काम		व्यापारिक काम		नौकरीपेशेका काम	
	१६०१	१६११	१६०१	१६१	१६०१	१६११	१६०१	१६११
उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त	५६६	६६७		११५	२८	६८		२४
पन्जाब ...	×	५८०	१६४	२०५		६५	२१	२५
संयुक्तप्रान्त ...	६५५	७१०	१४६	१२२	८	५४	१३	११
बड़ोदा ...	५२०	६३३	१४२	१२३	३१	७२	२२	३७
मध्य भारत ...	५०३	६०७	१७१	१२३	२१	६०	१३	१५
कोचीन ..	५०८	५०४	३२४	२०६	६	१३६	३२	३३
हैदराबाद ...	४६१	५७१	१७३	१४१	३८	६२	१३	१६
काश्मीर ...	[illegible]५२	७८५	११३	८६	१६	४८	१७	१७
माइसोर ...	६६०	७२५	१०७	८६	१६	४६	१६	१[illegible]
राजपूताना ...	५६४	६२५	१८२	१४८	२५	८६	२१	३७
ट्रावंकोर ...	४७२	५३१	२५६	१७२	२६	६६	२५	२६

सूची नं० ५

भिन्न २ प्रान्तों में १९०१ से १९११ तक लोगों का भिन्न २ पेशों को करना और एक २ पेशे को छोड़ २ कर खेती के काम पर टूटना (प्रति एक हजार पीछे)

	खेती का काम		व्यावसायिक काम		व्यापारिक काम		नौकरीपेशेका काम	
	१९०१	१९११	१९११	१९१२	१९११	१९११	१९०१	१९०१
भारतवर्ष ...	६५२	६९८	१५५	११४	१४	१३	१७	१७
अजमेर मारवाड़ ...	५३४	५३८	१७९	१७०	१५८	१५४	२५	३८
आसाम ..	८४२	८५४	७८	३२	८	४५	१४	१३
बंगाल ...	७१५	७५४	१२३	७७	८	७०	१७	१८
विहार तथा उड़ीसा ...	×	७८३	×	७७	+	५२	+	१०
बाम्बे ..	५८६	६४३	१८२	१२७	२०	९२	१९	२१
वर्मा ...	६६१	६९१	१८६	६८	२२	१३३	२५	२१
सी. पी. तथा बरार ...	७०० / ७३२	७५५	१६२ / १२९	१०२	८+१६	५५	१९+१५	१५
कूर्ग ...	८१८	८१६	९५	६६	२	५८	१०	१२
मद्रास ...	६९०	६८७	१७५	१३४	८	८०	१६	१६

सूची नं० ६

१८७१ से १९११ तक ४० वर्षों में लोगों ने सैकड़ा पीछे किस प्रकार अन्यकामों को छोड़कर के खेती के कामों में प्रवेश किया

प्रान्त	१८७१	१९११	खेती में कितने प्रति शतक लोग अधिक गये
उत्तर पश्चिमीय प्रा	५६	७३ ३/१०	२७ प्रतिशतक
अवध	५०	७२ ३/१०	२३ ,,
पंन्जाव	५५	६०	५ ,,
मध्यप्रान्त	३७ १/२	७८ ७/१०	४१ ,,
बरार	६१	७८ ७/१०	१७ ,,
माइसोर	२०	७३	५३ ,,
कूर्ग	१२ १/२	८२ १/२	७० ,,
ब्रिटिश वर्मा	२७	७०	४३ ,,
वम्बे	२६	६७	४१ ,,

Census Report of India,. 1911, Vol. 1. P. 432.

सूची नं० ७

अंग्रेज़ी राज्य में देशी राज्यों की अपेक्षा लोग ज़्यादा किसान बने हैं।

आंग्ल भारतवर्ष		देशी रियासतों का राज्य	
सन्	खेती में लगेलोग	सन्	खेती में लगेलोग
१८९१	६२ प्रतिशतक	१८९१	५७ प्रतिशतक
१०९१	६८ ,,	१९०१	६० ,,
११११	७३-५ ,,	१९११	

सूची नं० ८

सारे भारतवर्ष में भिन्न २ प्रान्तों में लोगों का भिन्न २ कामों को करना

	आसाम	बंगाल	बाम्बे	बरार	सी पी.	बर्मा	कूर्ग	पन्जाब	मद्रास	हैदराबाद	माइसोर	कुल भारतवर्ष
देश शासन तथा राज्य सम्बन्धी काम	·६७	·९८	३ २५	३	·१४	१·४	२·२	१ ८	२·५	४·७	४·३२	१ ९५
घास चराना	१·२८	·६४	१·३८	१·२	२ ५	६·९	·७२	१ ३	२·	२·५	·४७	१·२७
खेती करना	७ ६९	३६ २	५८ ३	९·८६	·६४	६·४	७२·	५५·७	५८·८	४४·९	६६·६	५९·७९
कपड़ा बुनना	१·३७	२६ ०	५·५	४	६·७	४·९	१ १५	७·६	४·७	६·३	२·९	४ ३९
धात गलाना	·१५	१·१३	१ ६	१·३	·१५	·९१	१ ५९	१·६	१·४	१·५	१·५	१·३३
रंगना तथा दवाई बनाना बेचना	·७४	·१७	·१२	·१३	·११	१५	·०१	·२	·१२	·१७	·९६	·१४
चमड़े का काम करना	·११	·४८	१ ३	·८२	१ ४	·३६	·२२	२·७	१ ४	१ ४	·४९	११·४
व्यापारका काम करना	८२	१ ५८	१ ८	·१८	१·१	१·७३	·६७	१ ८	·९७	१·५३	३·२६	१ ६३

सहायता प्राप्त कर नयी २ कलें खोलीं और उनसे सस्ता माल बना कर भारतीय कारीगरों को तबाह कर दिया और उनके अन्न पानी पर स्वयं निर्वाह करना शुरू किया।

सूची नं० ४ के देखने से भिन्न २ प्रान्तों की दुरवस्था जानी जा सकती है। १८६१ में भारत में हजार पोछे ६४५ मनुष्य खेती का काम करते थे परन्तु १६११ में यही संख्या हजार पीछे ७१६ जा पहुंची। यह भयंकर परिवर्तन भिन्न २ प्रान्तों में किस प्रकार हुआ, सूची नं० ४ यही दिखाता है और किन २ लोगों ने १६०१ से १६११ तक भिन्न २ प्रान्तों में अपनी कारीगरी का काम छोड़ा यह सूची नं० ५ से पता लगता है। सूची नं० ६ में हमने पिछले ४० वर्षों की शोक जनक स्थिति को दिखाने का यत्न किया है। सरकार प्रति वर्ष बधाई दिया करती है भारत दिन पर दिन अमीर हो रहा है परन्तु यहां कुछ उल्टा ही मामला है। १८७१ से १६११ तक ४* वर्षों के समय में सैकड़ा पीछे ५६ से ७३$\frac{१}{१०}$ उत्तर पश्चिमी प्रांत में, ५० से ७३$\frac{३}{१०}$ अवध में, ५५ से ६० पन्जाब में,

consequence of the introduction of rice mills worked by machinery and the importation of larger qnantities of metal manufacture and chemicals from foreign countries.

Prices Enquiry, Vol. I, P. 153.

३७ $\frac{१}{२}$ से ७८ $\frac{७}{१०}$ मध्यप्रान्त में, ६१ से ७८ $\frac{७}{१०}$ बरार में, २० से ७३ माइसोर में, १२ $\frac{१}{२}$ से ८२ $\frac{१}{२}$ कूर्ग में, २७ से ७० ब्रिटिश-बर्मा में, और २६ से ६७ बाम्बे में लोग शिल्पी व्यवसायी से किसान हो गये। इस प्रकार २० से ४१ तथा ४१ से ५३ तथा ७० प्रति शतक लोग भिन्न २ प्रान्तों में ४० वर्षों के बीच में भूमि पर जा टूटे और वहां से ही अपना निर्वाह करने लगे। सबसे विचित्र तथा अद्भुत बात तो यह है आंग्ल प्रजा की अपेक्षा देशी राज्यों की प्रजा ज़्यादा समृद्ध है। वहां अभी उतने लोग किसान नहीं बने हैं जितने कि आंग्ल राज्य में। सूची नं० ६ से यह सर्वथा स्पष्ट है। इम्पीरियल गजैटियर में भी सरकार ने इस बात को सफा शब्दों में मान लिया है कि देशी रियासतों की अपेक्षा आंग्ल राज्य में लोग ज़्यादा किसान बने हैं*। सूची नं० ८ में भिन्न २ प्रान्तों की वर्त्तमान स्थिति को दिखाया गया है। भारत के लोग किस प्रकार कारोबार तथा उद्योग धन्धे को छोड़कर भूमि माता की शरण में गये है इस बात को सूची नं० ८ दिखाता है।

* The census ıeturns show that in British Provinces the proporition of the total population directly engagd in agriculture was 62 per cents. In 1891 and 68 per cent in 1901, the corresponding figures for Native States in those years being 37 to 60 percent.

Vol. III. P. I.

सारांश यह है कि भारतीयों की कार्य क्षमता यदि कम हो गयी है और आंग्लों की कार्य्य क्षमता यदि बढ़ गयी है तो इसका मुख्य कारण यही है कि हम भारतीय पराधीन हैं और आंग्ल स्वाधीन हैं। आंग्लों ने भारत को धन कमाने का स्थान बनाया है और एक व्यापारीय उपनिवेश का रूप दिया है। भारतीयों को अपने आय-व्यय के पास करने में कुछ भी अधिकार नहीं है। देश को समृद्ध करने में और कृषक से व्यवसायी बनाने में भारतीयों को अवसर नहीं दिया जाता है। संसार की सभी सभ्य जातियों को आर्थिक स्वाराज्य प्राप्त है। आय व्यय तथा बजट का पास करना या न करना उन्हीं के हाथ में है। परन्तु भारतीयों को इसी मामले में अधिकार शून्य किया गया है। मान्टैग्यू चैम्स-फोर्ड रिपोर्ट ने भी इसी स्थान पर मौन साधी है। प्रति वर्ष सरकार भारत की समृद्धि को दिखाने का यत्न करती है परन्तु हमको तो वह समृद्धि कहीं ढूढ़े भी नहीं मिलती है। प्रत्येक गली तथा प्रत्येक सड़क भिखमंगों तथा अवारा लोगों से भरा है। कारीगरी तथा उद्योगधन्धा दिन पर दिन लुप्त हो रहा है। दरिद्रता के कारण लोगों में विश्वास तथा व्यापारीय व्यावसायिक साख घट रहा है। सीधे मार्ग से समृद्ध होने का अवसर न पाकर वे लोग झूठे बैंक तथा झूठो कंपनियों के द्वारा ही रुपया कमा रहे हैं। प्राचीन काल की अपरिमित शक्ति लोगों में ज्यों की त्यों

विद्यमान है, परन्तु अब वह ईमान्दारी का मार्ग छोड़ कर बेईमानी की ओर झुक रही है। इसमें कसूर किसका है? सरकार तो यही कह देगी कि भारतीय बेईमान हैं और बहुत से लोग हां में हां भी मिला देंगे। परन्तु प्रश्न तो यह है कि इन दो सौ वर्ष के सभ्य राज्य में भारतीय ईमान्दार से बेईमान क्यों हो गये? कहीं ऐसा तो नहीं हो गया कि नदी रूपी लोगों की अपरिमित शक्ति ने आगे से रोकी जाकर के ईमान्दारी रूपी बांध को तोड़ दिया हो? उत्साही कर्मण्य लोग यदि व्यापार व्यवसाय के द्वारा सीधे तौर पर धन न कमाने पावें तो उनका बेईमानी करना स्वाभाविक ही है। संसार का इतिहास इसी बात का साक्षी है।*

(२)

भारतीय किसान

पूर्व प्रकरण में दिखाया जा चुका है कि विदेशियों की घातक कृपा से भारत व्यवसायी से कृषक देश बन गया है। स्वाधीन से पराधीन हुआ है और महाशय लिस्ट के सिद्धान्त के अनुसार सभ्य से असभ्य बना है। आज कल भारतवर्ष एक ग्रामीण देश है। ग्रामों की ही इसमें भरमार है। सैकड़ा

* List, the Naional System of Political Economy.

पीछे केवल ६'५ आदमी ही शहरों में रहते हैं। भारत की सपत्ति पर इंग्लैण्ड फला फूला है। मान्चेस्टर तथा पैस्ले की कलें तो अपना जन्म भी न लेती यदि भारत की कारीगरी तथा जुलाहों को तबाह न किया जाता। आजकल इंग्लैण्ड में ७८०१ प्रतिशतक लोग शहरों में रहते हैं। जर्मनी के पास बहुत जहाज़ न थे जिससे वह दूसरों का अन्न दाना पानी उठा लेने में समर्थ हो सकता। ज़मीन पर वह चारों ओर से दुश्मन राष्ट्रों से घिरा था अतः उसको अपनी जान बचाने के लिये स्थल सेना की ज़रूरत थी। अतः उसने व्यवसाय के सदृश कृषि को भी उन्नत किया। यही कारण है कि उसमें सैकड़ा पीछे ७५'२ आदमी शहरों में रहते थे। भारतीय ग्रामीण प्रजा में हर दश हज़ार पीछे आधे से अधिक ज़मीदार तथा कास्तकार हैं और केवल $\frac{१}{५}$ भाग किसानी मजदूरों का और $\frac{१}{३३}$ भाग साधारण मज़दूरों का है। सरकार का ख्याल है कि १०० कास्तकारों के पिछे २५ मज़दूर भारत में काम करते हैं और कास्तकारों को सहायता पहुंचाते हैं। परन्तु भिन्न २ प्रान्तों में मज़दूरों की संख्या भिन्न भिन्न है। १०० कास्तकारों के पीछे आसाम में २, पन्जाब में १०, बंगाल में १२, संयुक्तप्रान्त में १६, वर्मा में २७, बिहार उड़ीसा में ३३, मद्रास में ४०, बाम्बे में ४१ और मध्यप्रान्त तथा बरार में ५८ मज़दूर काम करते हैं।

मालगुज़ारी की अधिकता, कीमतों का चढ़ना, वृष्टि का न होना, कर्जे में चिन्तित रहना आदि सैकड़ों भयंकर तूफान को सहते हुए भी जिस धैर्य साहस तथा उत्साह से भारतीय किसान खेती करते हैं उसको देख कर आश्चर्य होता है। पूंजी के न होने से और कर्ज तथा दरिद्रता में ही जीवन काटने से खेती को उन्नत करना उनके लिये कठिन हो गया है। यह सब होते हुए भी और २०० वर्ष के आंग्ल राज्य में मालगुजारी कर्ज तथा दुर्भिक्ष की भयंकर चोटों को सहते हुए भी भारतीय किसान चतुर से चतुर आंग्ल किसानों को खेती के काम में पछाड़ सकता है। यदि आंग्ल तथा भारतीय किसान एक सदृश दारिद्र्य में रखे जावें और कर्ज दारिद्र्य मालगुजारी तथा दुर्भिक्ष की चोटों को एक साथ ही सहें तो एक क्षण में ही पता लग सकता है किस में धैर्य तथा वीरता है, साहस तथा उत्साह है, और किस में खेती करने का अच्छा ज्ञान है। एक बार भारतीय किसानों की विपत्ति तथा उनकी वर्त्तमान स्थिति पर गंभीर तौर पर विचार करो संपूर्ण रहस्य अपने आप से पता लग जांयगे। भारत की पुरानी सभ्यता तथा आत्मावलम्बन यदि कहीं पर आंग्ल राज्य की सभ्यता में छिपा है तो एक मात्र गांवों में ही। भयंकर दरिद्रता तथा दुर्भिक्ष की भयंकर चोटों से दुःखित हुए हुए भी भारतीय किसान जमीन पर हल जोतते हैं और बाज़

प्रशंसा करना इसी बात का साक्षी है। सरकार ने इग्लैंड की राजकीय कृषि सभा (Royal Agricultural Soeiety of England) के प्रसिद्ध रसायणज्ञ डाक्टर वोल्कर (Dr. Voelcker) को १८८९ में जमीन की उत्पादक शक्ति को बढ़ाने के नये तरीके पता लगाने के लिये भारत में भेजा। उसने जो कुछ लिखा वह यह है कि "इग्लैन्ड में तथा कभी कभी भारत में भी यह बात कही जाती है कि भारत में खेती के तरीके पुराने ढंग के और और असभ्य लोगों के खेती के तरीके से मिलते हैं परन्तु हमारे विचार में भारतीय किसान आंग्ल किसान के सदृश ही हैं। दरिद्रता तथा पूंजी की कमी के कारण उसको खेती को उन्नत करने का अवसर नहीं। संसार में कदाचित् ही कोई देश होगा जहां कि किसान लोग ऐसे उत्साही, कर्मण्य, मेहनती सावधान तथा धैर्यवान हों जैसा कि भारत में" *आंग्ल सम्राट् ने भी एक वक्तृता में यही शब्द

---

* डाक्टर वोल्कर के शब्द यह है।

On one point there can be no question, *viz.*, that the ideas generaly entertaincd in England, and often given expression to even in India, that Indian agriculture is as a whole, primitive and backward and that little has been done to try and remedy it are altogether erreneous ......At his best the Indian ryot or cultivotor is quite as good as, and in some respects the superior of the avearge British farmer, whilst at his worst, it can only

कहे थे कि भारतीय किसान देश प्रथा के अनुसार खेती का काम करते हैं और बड़े उत्साही, कर्मण्य तथा धैर्य्य वाले हैं।

यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि भारतीय ग्राम अभी तक बहुत कुछ स्वावलम्बी हैं। सरकार ने पुरानी पंचायतों को निःशक्त कर दिया है इससे ग्राम के प्रबन्ध में और ग्रामीणों को आपस के झगड़ों के निपटाने में बहुत ही तकलीफ़ उठानी पड़ती है। रुपयों में लगान के लिये जाने से ताल्लुकेदारों तथा जमींदारों ने ग्रामों में रहना छोड़ कर शहरों में रहना शुरू किया है। रेलों ने इस प्रवृत्ति को और भी अधिक बढ़ाया है। इससे ग्रामीय संगठन छिन्न भिन्न हो रहा है। ग्रामों का स्वावलम्बन परावलम्बन की ओर बड़ी तेजी के साथ झुक रहा है। कारीगरों की कारीगरी तथा चतुरता दिन पर दिन घट रही है। विदेशीय माल ने शहरों

---

be said that this state brought about largely by an absence of facilities for improvement which is probably uneqnalled in any other country that the ryot will struggle on potiently and uncomplainingly in the face of difficulties in a way that no one else could certaine it is that I, at last, have never seen a more perfact picture of careful cultivation combined with hard labour, perseverance and fertility of resource than I have seen in many of the halting places in my tour." "Indian Economics" by V. G. Kale. (1911) P. 68.

पर प्रभुत्व प्राप्त कर ग्रामों पर भी प्रभुत्व प्राप्त करना शुरू किया है। पुराने समय में प्रत्येक ग्राम में तेली, चमार, जुलाहे, गड़रिये, अहीर, कुम्हार, लोहार, बढ़ई, बनिये, सराफ़ आदि इकट्ठे मिल कर और एक दूसरे को भाई भाई समझ कर रहते थे। अभी तक बहुत से ग्रामों में यही भ्रातृभाव देखा जा सकता है। परन्तु अब हालत पलट रही है। सारी की सारी व्यवसायिक जातें अपना अपना कारबार छोड़ कर खेती में धँसती जाती है। 'श्रम की कार्य क्षमता का घटना' नामक प्रकरण में इस हृदयबिदारक दृश्य के कारणों पर विस्तृत तौर पर प्रकाश डाला जा चुका है। इस आर्थिक परिवर्तन से भारतीय ग्रामों का स्वावलम्बन नष्ट हो रहा है। बेचारे ग्रामीण शहरी लोगों की तरह आंग्ल तथा योरुपीय पूंजीपतियों और कारखानदारों का शिकार हो रहे हैं। जुलाहे, चमार, लोहार, बढ़ई आदि किसानों का काम करते जाते हैं। यन्त्र तथा मशीन के आटे ने और विदेशीय सूत ने ग्रामीण औरतों के अन्नदाना पानी का खून कर दिया है। मनिहारों, चूड़ी बनाने वालों, धात गलाने वालों तथा बर्तन बनाने वालों की किस्मत भी अब फिर रही है। अधिक क्या। विदेश से आये हुए जनेउओं ने बिचारे गरीब ब्राह्मणों के मुंह से अन्न छीना है। बहुत से गांवों में किसान लोग खेती करते हैं और परिवार के गुजारे

के लिये दूसरों के घरों में नौकरी भी करते हैं। सारांश यह है कि ग्रामों का स्वावलम्बन बड़ी तेजी के साथ ढीला हो रहा है। इससे ग्रामीणों को नागरिकों की अपेक्षा अधिक कष्ट उठाना पड़ेगा। विदेशीय माल दरिद्र ग्रामीणों को नागरिकों की अपेक्षा अधिक मंहगा मिलेगा। सब से बड़ी बात यह है कि सरकार ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति को छोड़ कर के सापेक्षिक व्यापार की नीति का अवलम्बन किया है। हम आगे चल कर यह दिखावेंगे कि इससे भारतीयों पर एक प्रकार का राज्य कर लगेगा और वह भी इसलिये कि इंग्लैण्ड के बालक व्यवसाय फलें तथा फूलें। इस राज्य कर से गरीब किसान बहुत तकलीफ उठावेंगे।

छठा परिच्छेद

भारत में पूंजी की दशा

(१)

पूंजी की कमी

संपत्ति की उत्पत्ति में पूंजी का एक महत्व पूर्ण स्थान है। यदि एक आदमी खुर्पे से एक दिन में एक गट्ठा घास काट सकता हो तो वही आदमी एक दिन में कल से सौ गट्ठा घास काट सकता है। उत्पत्ति के साधन का नाम ही पूंजी है। पूंजी की उत्तमता पर ही उत्पत्ति की अधिकता का आधार है। पूंजी की उत्तमता स्वयं लोगों के ज्ञान तथा धन पर आश्रित है। गरीब लोग कल आदि उत्तम पूंजी को नहीं खरीद सकते हैं अतः दिनभर मेहनत करके बहुत कम उत्पन्न करते हैं। भारत में व्यावसायिक कामों की ओर से जनता को भागना पड़ा है। क्योंकि इंग्लैण्ड तथा योरुप इन कामों को स्वयं ही करना चाहते हैं। वह लोग कल का माल भारत भेजते हैं और बहुत सस्ता बेचते हैं। भारतीय कारीगर वैसा माल और उतना सस्ता हाथ से नहीं बना सकते हैं। अतः उन कामों का करना धीरे धीरे छोड़ते जाते हैं और पेट भरने

के लिये दिन पर दिन भूमि पर टूटते हैं और खेतों को ही अपनी आजीविका का साधन बना रहे हैं। भूमियों पर सरकारी मालगुजारी बहुत ज्यादा है अतः उनको वहां से भी पेट भर खाना नहीं मिलता है और एक फसल के गड़बड़ाते ही उनको दुर्भिक्ष का शिकार होना पड़ता है।

भारत में पूंजी की अनुत्तमत्ता का सबसे मुख्य कारण धन की कमी है। किसी जमाने में भारत सोने की चिड़िया थी परन्तु अब वह दरिद्र है। इस दरिद्रता का भी अपना इतिहास है।

आज से डेढ़ सौ वर्ष पहिले भारत में ईस्ट इन्डिया कंपनी का राज्य था। कंपनी ने बंगाल के अन्तरीय व्यापार को शुरू शुरू में अपने हाथ में किया। बिना किसी प्रकार की चुंगी दिये कंपनी के नौकर घी, बांस, तेल, नमक आदि देश के अन्तरीय व्यापार के पदार्थ बेचने लगे। भारतीय बनियों को इन्हीं पदार्थों के बेचने में चुंगी देनी पड़ती थी। मीर कासिम ने कंपनी के नौकरों को रोकना चाहा, परन्तु वह न रुके। इस पर युद्ध हुआ और बंगाल आंग्ल कंपनी के हाथ में पूरी तरह से आ गया। कंपनी ने बंगाल के जिमींदारों पर बहुत बुरी तरह से लगान बढ़ाया। इससे बंगाल का बहुत सा भाग उजड़ गया। लोग इधर उधर भूखों मरने लगे। जुलाहों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार हुआ। उनको कुली का रूप दे करके उनसे अपनी

कोठियों के लिये कंपनी के लोग कपड़ा बनवाते थे और उनको न पूरा मेहनताना देते थे न दूसरों के लिये कपड़ा ही बनाने देते थे। इससे तकलीफ़ में आकर के बहुत से जुलाहों ने अपने अंगूठे काट डाले। धीरे धीरे मान्चैस्टर तथा पैस्ले के मिलों के कपड़ों को भारत में बेचने का यत्न किया गया।*

बंगाल की आमदनी से भारत के अन्य प्रान्तों को जीता गया और इंग्लैण्ड में कारखानों को खड़ा किया गया। बंगाल के सदृश ही मद्रास तथा बाम्बे उजड़े और ढाका के सदृश ही मद्रास में हज़ारों कारीगर भूखों मरने लगे। वहां भी लगान बढ़ा और दरिद्रता ने अपना अड्डा जमाया। इस प्रकार भारत से जो धन इंग्लैण्ड पहुंचा उसके विषय में महाशय मान्टगोमरी मार्टिन का कथन है कि "भारत से प्रति वर्ष इंग्लैण्ड में १८३८ तक जो धन गया वह आठ अरब चालीस करोड़ पाउन्ड या ८४ अरब रुपये के बराबर था"।* इसी प्रकार

* India Under Early British Rule by Ramesh Dutt.

* महाशय मान्टगोमरी मार्टिन के शब्द है।

This annual drain of £3,000,000 on British India, amounted in thirty years, at 12 per cent (the usual Indian rate) compound interest to the enarmous sum of £723,997,917 sterling; or at a low rate, as £ 2,000,000 for fiifty years, to £ 8,400,000,000 sterling! So constant

१८३८ से अब तक प्रति वर्ष व्यावसायिक पदार्थों के द्वारा भारत का धन विदेश में जारहा है। जो काम पहिले कंपनी ने लाठी के जोर पर किया था वही काम अब स्वतन्त्र व्यापार के नाम पर होरहा है और इससे भी ज़्यादा भयंकर काम अब सापेक्षिक (Imperial preferance) द्वारा होगा। सापेक्षिक करके द्वारा भारत के लोग अप्रत्यक्ष रूप से राज्य कर देंगे और इंग्लैएड के बालक व्यवसाय उस राज्य करके बल पर फूलेंगे तथा फलेंगे।

• सारांश यह है भारत में पूंजी की कमी स्वभाविक नहीं है अपितु कृत्रिम है। स्वाभाविक होती तो पढ़ा करके दूर की जा सकती परन्तु कृत्रिम का उपाय कठिन है। संसार के सभी देशों में आय व्यय पर जनता का प्रभुत्व है। इसी प्रभुत्व की भारत में जरूरत है। इस प्रभुत्व को प्राप्त किये बिना दुर्भिक्ष, प्लेग, हैजे का दूर होना कुछ कुछ कठिन मालूम पड़ता है।

धनकी कमीसे देश दिन पर दिन असभ्य हो जाता है।

---

and accumulating a drain even on England would soon impoverish her; how savere than must be its effects on India, when the wagre of a labourer is from two pences to three pences a day?

Montogomery Mertin's Eastern India, London, 1838 Introduction to Vol. i and iii.

देशकी उत्कृष्ट पूंजी निकृष्ट पूंजी का रूप धारण कर लेती है। उत्पत्ति के साधन खराब होजाते हैं। ज़्यादा मेहनत से कम उत्पन्न होने लगता है।

भारत कृषि प्रधान देश बनाया गया है। व्यापार व्यवसाय नौ संचालन रेलवे निर्माण आदि कार्य्यों पर विदेशियों का प्रभुत्व है। वही इन महान् कार्य्यों से रुपया कमाते हैं। खानोंका खोदना चाय काफी को बेचना, जूट से कपड़ा बनाना इत्यादि अनेक साधनों से वह लोग भारत के धन को विदेशमें लेजाते हैं। विदेशी चक्कू, कागज, बूट, पैन्सिल, रङ्ग, लोहे के सामान, खेल खिलौने, चूड़ियां, घड़ी, कंवल, दवाइयां, शराब आदि आदि हजारों मोहरियां हैं, जिन के द्वारा भारत का धन बह कर के इंग्लैण्ड तथा योरुप में पहुंचता है।*

प्रश्न उत्पन्न होता है कि भारत अपना बचा बचाया धन अब कहां लगावे ? व्यवसायिक पदार्थों में धन लगाना कठिन है क्यों कि सरकार की इच्छा है कि भारत के लोग किसान बन जावें। कृषि में भारत का धन लगे। क्यों कि वहांसे सरकार को माल गुजारी के द्वारा भारत को बची बचायी पूंजी को बटोरने का अच्छा मौका है।

---

*R. C. Dutt, India Under Early British Rule. Victorian Age.

बहुत से लोगों का विचार है कि भारत को अपनी संपत्ति कलों के खरीदने में लगानी चाहिये। कलों के द्वारा भारत को खेती करना चाहिये। क्योंकि कलों से खेती करके अमेरिका अमीर बना है, बहुत संभव है कि ऐसा करने से भारत भी अमीर बन जावे। परन्तु इस विचार से हम सहमत नहीं हैं। कृषि में कल प्रयोग से भारत तबाह हो जायगा। करोड़ों किसान बेकार हो कर भूखों मरने लगेंगे और घर बार रहित होकर भीख मांगना शुरू करेंगे। जो यह काम न करेंगे वह चोरी तथा डाका मारेंगे।

विदेश में भारतका धन जाने से और सरकारी लगान के अधिक होने से आज कल कुन्बी लोगों की वैयक्तिक संपत्ति २०० रुपये से अधिक नहीं है। इसमें १२४) के पशु २०) का हल आदि, १५) का झोपड़ा कपड़ा लत्ता आदि, और ३२) का अन्य सामान है। इस पूंजीके सहारे जो पदार्थ उत्पन्न होता है, वह कुन्बी के परिवार को मुश्किल से पाल सकता है। राज्य कर, मालगुजारी तथा साहूकार का ब्याज तो उसको कर्ज के धन से ही चुकाना पड़ता है * १८८० में जो दुर्भिक्ष समिति (Famine Commission) बैठी थी, उसने यह अन्तिम निर्णय किया था कि भारत में $\frac{1}{3}$ किसान कर्जदार हैं इसी

*Report of the Deccan Commission 1875.

प्रकार की भयंकर दशा दक्खिनी रैयत सभा (Deccen Riots Commission) ने देखी थी। *

(२)

पूंजी की कमी का भयंकर प्रभाव

विचारे भारतीय किसान दरिद्र निर्धन तथा दुःखी हैं। दुर्भिक्ष का भय और कर्जे की चिन्ता उनके जीवन को दुःखमय बना रही है। धन न होने से वह पशुओं को खाना देने में और भूमि की उत्पादक शक्ति को बढ़ाने में असमर्थ हैं। इससे पशुओं की संख्या और भूमि की उत्पादकशक्ति दिन पर दिन कम हो रही है।

I. भारत में पशुओं की कमी।

जर्मनी में पशुओं की संख्या बहुत ज़्यादा है परन्तु भारत में यह बात नहीं है। यद्यपि भारत में अहिंसा का ज़्यादा प्रचार है† । भारत तथा अन्य देशों में पशुओं की संख्या १९१३ में इस प्रकार थी।† †

---

* Life and Labour in the Deccan Village by Dr. H. H. Menu.

† भारतवर्ष तथा जर्मनी में १९१४ में पशुओं की संख्या इस प्रकार थी।

†† Atlas of Commercial Geography, 1913, P.13.

देश.	पशु.	आबादी.
भारतवर्ष	११३७९०००	३१५००००००
संयुक्त प्रान्त अमेरिका	६९०८०००	१०७००००००
योरूपीय रूस	५०५८८०००	१७४००००००
अर्जन्टाइन	२९१२४०००	७००००००
जर्मनी	२०६९१०००	६६००००००
आस्ट्रिया हंग्री	१६८९४०००	५००००००००
फ्रान्स	१४२९८०००	४०००००००
ग्रेट ब्रिटन	११८२६०००	४५००००००

इस प्रकार प्रति मनुष्य भारत तथा अन्य देशों में पशुओं की संख्या इस प्रकार हुई।

देश	प्रति मनुष्य पशुओं की संख्या।
अर्जन्टाइन	४००
संयुक्त प्रान्त अमेरिका	६५
फ्रान्स	३५
आस्ट्रिया हंग्री	३४
जर्मनी	३१
ग्रेट ब्रिटन	२६
रूस	२३
भारतवर्ष	३

भारत में पशुओं की नस्ल दिन पर दिन खराब हो रही है।

अन्न दाना पानी न मिलने से गाय, भैंस, भेड़, बकरियां कमजोर हो रहे हैं। पिछले दुर्भिक्षों में भारत के करोड़ों पशु मर गये।

पशुओं के सदृश ही धन के न लगने से भूमि की उत्पादक शक्ति दिन पर दिन कम हो रही है। अब एक बीघे में उतना अनाज उत्पन्न नहीं होता है जितना पहिले उत्पन्न होता था। गरीब किसानों के पास धन नहीं है। मालगुजारी बहुत ही अधिक है। कर्ज से मालगुजारी तथा घर का खर्चा निपटता है। भूमि तथा पशुओं पर धन कहां से लगाया जावे ?

	भारतवर्ष	जर्मनी
भेड़ें	२३०००००० (१९१४ में)	२४९९०००० (१८७३ में)
घोड़े	१७००००० (१९१४ में)	३३५,०००० (१९१४ में)

जर्मनी की आबादी भारतवर्ष से ५ गुणा कम है और उसमें पशु भारत से अधिक हैं। जर्मनी के सदृश यदि भारतवर्ष होता तो भारत में पशु इस समय कम से कम ६ या ७ गुणा होने चाहिये थे। जर्मनी व्यवसाय व्यापार प्रधान देश है परन्तु भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। इसपर यह हालत है। यह होना ही है। क्योंकि भारत का सारा धन तो योरुप में चला गया। भारत में अब बचा ही क्या है ?। लोग किसी तरीके से जीवन गुजार रहे हैं।—(V. G. Kale : Indian Economics. p.p. 93-94.) Modern Germany J. E. Barker p. 494-498.

II. भारत में भूमि की उत्पादक शक्ति का घटना

भारत का धन योरुप में चले जाने से गरीब किसानों पर मालगुजारी के अधिक होने से और उनका कर्जा ले करके अपना खर्च चलाने से भूमि पर खाद डालना और उसको उन्नत करना उनके लिये असम्भव हो गया है। महाशय गोखले के शब्द हैं कि भूमि की उत्पादक शक्ति दिन पर दिन कम हो रही है। भूमि पर रद्दी तथा घटिया दर्जे का अनाज उत्पन्न किया जा रहा है। प्रति एकड़ उत्पत्ति जो कि पहिले ही संसार में सब से कम है घट रही है।* इसी प्रकार यू. पी के कृषि अध्यक्ष का कथन है कि भूमि की उत्पादक शक्ति पहिले की अपेक्षा बहुत घट गयी है** बाम्बे के कृषि अध्यक्ष

---

* महाशय गोखले के यह शब्द है।

"The exhaustion of the soil is proceeding fast, the cropping is becoming more and more inferior, the crop-yield per acre, already the lowest in the world, is declining still further."

* यू० पी० कृषि अध्यक्ष के शब्द हैं।

"A poll of agriculturists would give a vast majority in favour of the view that Fertility has decreased. Thus it is probably true for the greates part of the provinces, that the land is less productive now than it was at some particular period, or periods, in the past." Director of Agriculture, U. P.

का अपने प्रांत के विषय में भी यही विचार हैं† । आसाम के कृषिविभाग के कर्मचारी वी० सी० बोस की सम्मति है कि गोबर खेतों में नहीं डाला जाता है और खराब से खराब भूमियों पर कृषि के होने से अच्छी भूमियों की उत्पादक शक्ति बहुत कम हो गयी है‡‡ १८७५ की दक्खिन रैयत कमीशन में भी इसी प्रकार की बात सुनायी दी थी* पंजाब की दुर्भिक्ष समिति की १८७८ में जो रिपोर्ट निकली उसमें भिन्न २ लोगों ने इस प्रकार अपने विचार प्रगट किये थे **।

---

† बाम्बे कृषि अध्यक्ष के शब्द हैं ।

In the present day practically all good land has been taken up and regularly cultivated and much land that is really unfit for cultivation is also cultivated. This latter class of land produces very poor crops and, of necessity, brings down the average out turn per acre. Director of Agriculture, Bombay.

‡‡ आसाम के कृषि अध्यक्ष के शब्द हैं ।

'The supply of cattle-dung, practically the only manure used in the province, has been greatly reduced, the average outturn of land per acre is less now than it used to be. Mr. B. C. Bose of the Assam Agriculture Department.

Report of the Deccan Ryat Commission, 1815.

** Extracts from the Punjab Famine Commission Report, 1878.9 Vol. I P. O. 299—312 on the Deterioration of the Soil.

(क) मुलतान तथा डेरा जात विभाग के सैट्ल मेन्ट कमिश्नर जे० वी० लायल की सम्मति है कि पन्जाब में लोगों का यह आम विश्वास है कि भूमि की उत्पादक शक्ति कम हो गयी है। भगवान् की कृपा भूमि पर से उठ गयी है। मांझा में भी प्रति एकड़ उत्पत्ति घट गयी है।

(ख) अमृतसर के राजासर साहिबदयाल के० सी० एस० आई० का कथन है कि ''गुरुदास पुर के जिमींदार कहते हैं कि नहर के पानी से भूमि की उपजाऊ शक्ति कम हो गयी है। परन्तु वास्तव में बात यह है कि जमीन पर लगातार फसल काटी जाती है और उचित आराम नहीं दिया जाता है।

(ग) गुरुदास पुर के ज्यूडीसियल कमिश्नर मुहम्मद हैयत ख़ांन सी० एस० आई० कहते हैं कि भूमि को बारंबार जोता जाता है अतः उसकी उपजाऊ शक्ति घट गयी है।

(घ) जेहलम के आनरेरी सैट्लमेन्ट कमिश्नर मिर्ज़ा बेग का विचार है कि आंग्लराज्य से पूर्व भूमि की जो उपजाऊ शक्ति गुजरात हजारा तथा जेहलम ज़िले में थी वह अब नहीं है।

इसी प्रकार की सम्मति मेजर ई० जी० हेस्टिंग तथा कर्नल स्लीमन की है। प्रश्न जो कुछ उत्पन्न होता है वह है कि किसान तथा जिमींदार भूमि को कई बार क्यों जोतते हैं? आंग्ल राज्य से पूर्व वह ऐसा क्यों न करते थे? इसका

मुख्य कारण यह है कि विदेश में जाने से अन्न की मंहगी और सरकारी मालगुजारी ज्यादा है। वह कर्ज़दार हो गये हैं। कर्ज़ को चुकता करने के लिये उनको कई बार जमीन जोतना बोना पड़ता है। रुपयों में मालगुजारी देने से दुर्भिक्ष समय का भार एक मात्र उन्हीं पर पड़ता है। सरकार इसका भार बहुत कम अपने सिर पर लेती है। कर्ज़ के कारण जिमींदारों को अपनी भूमियां बेंचनी पड़ती हैं। भमि के खरीदारों की ज़मीनों पर वह ममता नहीं होती है जो कि ममता उनको होनी चाहिये। इससे जमीन की उपजाऊ शक्ति का घटना स्वाभाविक ही है।

आनरेवल महाशय मिर्ज़ा अब्दुल हुसेन के० बी० ने बड़ी मेहनत से यह पता लगाया है* कि।

भमि की प्रति एकड़ उत्पत्ति

पदार्थ	अकबर के समय में भारत में	आजकल अंग्रेज़ों के समय में भारत में	योरुपीय देशों में आजकल
चावल	१३३८ पाउन्डज़	८०० पाउन्डज	२५०० (इटली)
गेहूं	११५५ ,,	६६० ,,	१५०० ,,
रुई	२२३ ,,	५२ ,,	४०० (ईजिप्ट)
			३०० (अमेरिका)

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में भूमि की उपजाऊ शक्ति

*Indian Review of June, 1911 P. 400.

नीकित घट गयी है। अकबर के समय में भूमि के प्रति एकड़ पर १३३८ पाउन्ड चावल, ११५६ पाउन्ड गेहूं और २२३ पाउन्ड रुई उत्पन्न होती थी अब केवल ८०० पा० चावल, ६६० पाउन्ड गेहूं और ५२ पाउन्ड रुई उत्पन्न होती है। संसार के अन्य देशों की यह हालत नहीं है वह लोग भारत के धनपर समृद्ध हुए हैं। समृद्धि के कारण भूमि पर वह लोग अच्छी तरह धन लगाते हैं और उस पर अधिक उत्पन्न करते हैं। उनको मालगुजारी नहीं देनी पड़ती है। भूमि की उपज पर एकमात्र उन्हीं का स्वत्व रहता है। राज्य उनको हर तरीके से सहायता पहुंचाता है। संसार के भिन्न २ देशों में भूमि से प्रतिएकड़ निम्न लिखित गेहूं उत्पन्न होती है।

	देश	प्रति एकड़ उत्पत्ति (गेहूं की) बुशलों में
१	डैन्मार्क	४४·६०
२	वैल्जियम	३६·४३
३	हालैण्ड	३५·५३
४	ग्रेटब्रिटन तथा आयर्लैंण्ड	३२·४१
५	स्विट् जर्लैंण्ड	३१·८१
६	जर्मनी	३०·६३
७	स्वीडन	३०·६३
८	न्यूजीलैण्ड	२६·८८
९	भारतवर्ष	११·४४

इसी प्रकार रुई जौ तथा मक्का, बाजरे की उत्पत्ति की हालत है।

देश	प्रति एकड़ जौकी की उत्पत्ति	प्रति एकड़ मक्का बाजरे की उत्पत्ति	प्रति एकड़ रुई की उत्पत्ति
	बुशलों में	बुशलों में	बुशलों में
बैल्जियम	५१		
नीदर्लैंण्डज़	४७		
जर्मनी	३४	१६	
ग्रेट्ब्रिटन	३३		
फ्रान्स	२३	३०	
आस्ट्रिया	२३	१८	
हंग्री	२२	१६	
भारतवर्ष	१३	१६	८८
अमेरिका		२५	२३३

इस प्रकार स्पष्ट हो गया होगा कि देश की गरीबी का पूंजी पर कैसा बुरा प्रभाव पड़ता है। उत्कृष्ट पूंजी निकृष्ट पूंजी का रूप धारण कर लेती है। पशु कमजोर तथा संख्या में कम हो जाते हैं। भूमिकी उत्पादक शक्ति घट जाती है। परन्तु एक ही चीज़ लगातार बढ़ती है और वह सरकारी मालगुजारी है। यह क्यों ? इसका मुख्य कारण यह है कि सरकार

योरुपीय ढंग का खर्चा करती है। देश में कारीगरी तथा उद्योग धन्धे का नाश हो चुका है। इस हालत में सरकारी खर्चों का सारा का सारा भार भूमि पर ही पड़ना ठहरा। इससे भूमि का तथा किसानों का नाश होना स्वाभाविक ही हैं।

III. कारीगरों का कारीगरी छोड़ करके कृषि में घुसनाः—

भारतीय किसानों की दुरवस्था पर प्रकाश डाला जा चुका है। किसानों के सदृश ही जुलाहे, तेली, चमार, कुमार आदि कारीगरों की हालत है। इनके पास भी रुपया पैसा कुछ भी नहीं है। इससे यह लोग अपने काम के उन्नत औज़ारों को खरीदने में असमर्थ हैं। विदेश से चूड़ियां आने लगी हैं इससे चूड़ी बनाने वाले निकम्मे हो गये हैं। मिट्टी के तथा चीनी के खिलौने बाहर से आने लगे हैं। विचारे भारतीय कुम्भारों की रोजी विदेशियों के मुंह में चली गयी है। मल्लाहों की दुरवस्था तो अब अपने अन्तिम हद तक जा पहुंची है। यह सब के सब लोग भूख के मारे काम ढूंढते ढूंढते प्रति वर्ष किसान बनते जाते हैं। निम्नलिखित सूची से यह बात स्पष्ट हो सकती है।*

* Statistics of British India, 1912. Pass V. P. 22.

कार्य्य	१८९१ में मनुष्य की संख्या	१९०१ में मनुष्य की संख्या	किसमें कितने मनुष्य बढ़े और किसमें कितने मनुष्य घटे हैं
सरकारी नौकर तथा अन्य ऐसी ही नौकरी पेशे में लगे लोग	१२५७६६०१	१०६६२६९९	१९१३९३२
घरेलू नौकर	११२१९९५१	१०७१७२९४	०७६५७५
व्यापार	८६३८४८५	७७२५७३७	९१२७४८
व्यावसायिक तथा कारीगरी का काम	४७५९४२५१	४५७१९६४५	१८७५६०६
मेहनती मज़दूर	२५४६७९७१	१७९५३२३०	७५१४७४१
कुल घटाव	...	...	१२८१८६८४
कृषक	१७५३७३४६०	१९५६६६८४३	२०२९३३८५

उपरिलिखित सूची से स्पष्ट है कि किस प्रकार मेहनती कारीगर, व्यापारी तथा व्यवसायी विदेशीय लोगों की चीज़ों से धक्का खाकर खेती पर टूटते जाते हैं। परन्तु भारतीय सरकार को इसकी कुछ भी परवाह नहीं है। वह तो भारत को कृषि प्रधान देश ही समझती है। जितने लोग खेती में घुसें उतना ही सरकार को पसन्द है। गरीबी देश में दिन पर दिन बढ़ रही है। लोग भूखों मर रहे हैं। रुपयों के न होने से हल आदि उत्पत्ति के साधनों में किसी प्रकार

की भी उन्नति नहीं हो रही है। भूमि की उत्पादक शक्ति बड़ी तेजी के साथ घट रही है।

पूंजी की अधिकता का प्रभाव यह होता है लोग कुएं, तालाब तथा नहरों के द्वारा खेती को सींचते हैं। भारत में २२५००००००० एकड़ उपजाऊ भूमि में केवल ४५०००००० एकड़ भूमि ही उपरिलिखित साधनों से सींची जाती है। १९१३-१९१४ में ४६८३६००० एकड़ भूमि जल से सींची गयी थी। इनमें से राजकीय नहरों से १८२७१०००, वैयक्तिक नहरों से ६३८४०००, तालाबों से १३८६७०० और कुओं से ६२१९००० एकड़ भूमि सींची गयी थी। भिन्न २ प्रान्तों में कुलभूमि में से निम्नलिखित प्रति शतक भूमि पानी के द्वारा सींची जाती थी।*

प्रान्त	कुल उपजाऊ भूमि में निम्नलिखित प्रति शतक भूमि पानी से सींची जाती थी।	
सिन्ध	८०	प्रतिशतक
पन्जाब	४७	"
उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त	३७	"
संयुक्त प्रान्त	३५	"
अजमेर मेवाड़	२९	"
मद्रास	२९	"

*Agricultural Statistics of India., 1913—1914.

बिहार तथा उड़ीसा	१६	,,
बंगाल	६	,,
बर्मा	८	,,
आसाम	६	,,
बाम्बे	४	,,
मध्य प्रान्त तथा बिहार	४	,,
कूर्ग	३	,,
मणिपुर	३	,,

संपत्तिशास्त्रज्ञों के विचार में भारत के अन्दर सिंचाई का प्रवन्ध और भी अधिक होना चाहिये। क्योंकि किसानों की गरीबी से कच्चे कुएं आदि का बनना बहुत कुछ रुक गया है। सरकार ही इस काम को कर सकती है। गरीब कास्तकारों में अब ताकत नहीं है कि वह कुएं बना सकें। मालगुजारी की अधिकता से बचने का एक ही तरीका है कि किसान लोग बारिस की आशा में खेती न करें और नहरों द्वारा खेतों को सींचने का यत्न करें। क्योंकि एक फसल के बिगड़ते ही सरकारी मालगुजारी यमदण्ड का रूप धारण कर लेती है। नहरों द्वारा खेतों के सींचने से फसलों के बिगड़ने का खतरा कम हो जाता है। परंतु सरकार तो नहरों के स्थान पर दिन पर दिन रेलों को ज्यादा बना रही है और उसी पर देश का बहुत सा धन खर्च कर रही है। इसका

रहस्य क्या है ? इसपर आगे चल करके प्रकाश डाला जावेगा।—

(३)

भारत में उत्कृष्ट पूंजी की ओर जन प्रवृत्ति

जिन जिन कामों में लाभ अधिक है और खर्चा कम है, उन उन कामों में भारतीय लोग अपना धन लगा रहे हैं। भूसा निकाल कर दाना निकालना, गन्ने का रस निकालना तेल निकालना तथा आटा पीसना आदि कामों में कलों का प्रयोग दिन पर दिन बढ़ रहा है। दक्खिन में लोहे का हल भी चलने लगा है। इससे कुछ कुछ बेकारी बढ़ी है। आटा पीसने वाली औरतों की रोज़ी कलमालिकों ने खाली है।

मद्रास तथा गोदावरीकृष्णा के डेल्टे में रुई को दबाना, तेल को निकालना, कुओं से पानी को निकालना, नदियों से जल को ऊपर चढ़ाने आदि के कार्यों में संचालकशक्ति का प्रयोग दिन पर दिन बढ़ रहा है। भाफ के इन्जन तथा बिजली से लोगों ने काम लेना शुरू किया है।*

‡V. G. Kale Indian economics P. 94 (1918.)

*Indian economics (1918) by V. G. Kale P. 94.

Agriculture in India by Meri Jones Meckenna Eensus Report, 1911, Page 427.

भारत में उत्कृष्ट पूंजी की ओर जन प्रवृत्ति

बहुतों का विचार है कि योरूपीय ढंग के लोहे के हलों से खेती करने से भारतीय भूमियों की उत्पादकशक्ति बड़ी सुगमता से बढ़ सकती है। भारतीय भूमियों पर बहुमात्रा में कलों के द्वारा अन्न उत्पन्न करने से भारतीय किसान समृद्ध हो सकते हैं। परन्तु लेखक का विचार इन सब कल्पनाओं के अनुकूल नहीं है। कलों द्वारा भारतीय भूमि पर कृषि करना कृषकों को भयंकर कष्ट में डालना होवेगा। बिचारे किसान इधर उधर बेकार फिरने लगेंगे और भूखों मर जावेंगे। इंग्लैण्ड में ऊनके व्यापार के चमकने पर यही घटना उपस्थित हो चुकी है। चौदहवीं सदी से पूर्व हंस नगरों के व्यापार से इंग्लैण्ड में ऊन की उत्पत्ति को महत्त्व मिला। अन्न की उत्पत्ति की अपेक्षा ऊन की उत्पत्ति में ताल्लुकेदारों तथा पूंजी-पतियों को अधिक लाभ था। देखते देखते ही उन पाषाण हृदयों ने किसानों को अपनी ज़मीनों पर से बाहर निकाल दिया और दया दाक्षिण्य तथा स्नेह को 'संपत्ति रूपी तृष्णा' पर बलि चढ़ा करके नन्हे नन्हे प्यारे ग्रामीण बच्चों को भिख-मंगा बना दिया।** इस घटना के बाद आंग्ल ताल्लुकेदारों को रुपया कमाने का एक नया रास्ता सूझा। उन्होंने भीख मांगने वाले किसानों को दास बना करके कारखानों को

---

* *Capital by Karl Marx (1891) P P 740—746.

खोलना चाहा । ऐसे खूनी कारखानों के जोर पर संपत्ति को बटोरने की धुन उनके सिर में समायी। उनकी पाशविक प्रकृति के अनुसार ही इंग्लैण्ड में पाशविक राज्यनियम बने । हैनरी अष्टम ने १५३० में उद्घोषणा की कि "बिना लाइसैन्स के कोई भी बेकार मनुष्य भीख नहीं मांग सकता है। जो बिना सरकारी आज्ञा के भीख मांगेगा उसको कोड़ों तथा वेतों से इस हद्तक पीटा जावेगा कि उसके शरीर से खून की नदियां बह निकलेंगी* " एडवर्ड छठे ने १५४७ में ऐसा ही एक कानून बनाया " बेकार फिरते मनुष्यों को जबरन् दास बना दिया जावे । मालिक लोग दासों से घृणित से घृणित काम वेतों के सहारे ले सकते हैं । जो दास एक पक्ष तक मालिक के घर से अनुपस्थित रहे उसके माथे पर ' स ' अक्षर का छाप डाल दिया जावे और जो तीन बार वही बात करे तो मालिक उसको मरवा सकता है† " इन दासों के सहारे इग्लैंड के ताल्लुकेदारों तथा पूंजीपतियों ने व्यवसायपति पुतलीघर मालिक का रूप धारण किया । स्थान स्थान पर ऊन तथा अन्य पदार्थों के कार-

*Capital by Karl Marax (1891) P. 759 chapter XXVIII.

†Capital by Karl Marx (1891) P. 759 chapter XXVIII.

खाने खोले गये। संसार के व्यापार व्यवसाय को हथिया करके संपत्ति प्राप्त करने का घृणित उद्देश्य आंग्ल अमीरों के आंखों के सामने नाचने लगा। एलिजावेथ ने भी उन ताल्लुकेदारों का सहयोग दिया और १५४७ में यह क़ानून बनाया कि किसी भी कारण से जो काम न करे उसको दास बना दिया जावे। चौदह वर्ष से अधिक उमर के बालकों को सरकारी आज्ञा से भीख मांगना चाहिये। जो इस नियम का उल्लंघन करेगा उसको मृत्यु दंड मिलेगा या दास बनना पड़ेगा।** जेम्ज़ प्रथम ने भी इसी क़ानून को दुहराया और विचारे दुःखियों पर अत्याचार तथा बेरहमी का बाजार गरम किया*।

रुपये कमाने का भूत इंग्लैण्ड के सदृश ही सारे योरुप पर सवार था। फ्रान्स के राजा लूईस १६ वें ने यह क़ानून बनाया कि १६ से ६० की उमर के बीच में प्रत्येक मनुष्य को काम करना पड़ेगा और जो ऐसा न करेगा उसको क़तल करवा दिया जावेगा। नीदर्लैण्ड के राजा चार्ल्स पंजम ने भी १५३७

**Capital by Karl Marx (1891) P. 760 chapter XXVIII.

*Capital by Karl Marx (1891) P. 760 chapter XXVIII.

की अक्टूबर में ऐसा ही खूनी क़ानून बनाया ‡‡ इन सब क़ानूनों के जोर पर बेकार मनुष्यों को एक एक मकान में एकत्रित करके नये नये व्यवसायों को खोला गया और श्रम विभाग के अनुसार कम खर्च पर ज्यादा पदार्थ उत्पन्न किया गया। मेहनती मज़दूर लोग अधिक मज़दूरी मांगते थे तो राजकीय क़ानूनों के सहारे उनको दबाया जाता था। राज्य ने उनकी मज़दूरी नियत की और उनको अधिक मज़दूरी देना अपराध ठहराया। मेहनती मज़दूरों तथा करीगरों ने दल बना बना करके और आपस में मिल करके मज़दूरी बढ़ाने का यत्न किया तो उनके सम्मिलन को नाजायज़ ठहराया गया। इससे श्रमियों को हालत बहुत ही खराब हो गयी।

उनकी कार्यक्षमता घट गयी। अधिक मज़दूरी देना तथा लेना भी पाप बन गया। अधिक मज़दूरी देने वाले को १० दिन की और लेने वाले को २१ दिन की कैद मिलने लगी १३६० के क़ानून से यह दण्ड और भी सख्त कर दिया गया। १४वीं सदी से १८२५ तक योरूपीय राज्यों ने श्रमसमतियों तथा श्रम संघों को राज्य विरुद्ध ठहराया हुआ था। १६ वीं सदी में आंग्ल मेहनती मज़दूरों की हालत बहुत ही शोकजनक हो गई। चीज़े मंहगी हो गयीं; अन्न दाना पानी मिलना

‡‡Capital by Karl Marx (1891) P. 761 chapter XXVIII.

कठिन हो गया परन्तु मज़दूरी ज्यों की त्यों पूर्ववत् बनी रही। जेम्ज़ प्रथम के जमाने में सारे के सारे कारीगरों को मज़दूरों मेहनतियों का रूप दिया गया और उनकी स्वतन्त्रता को पद दलित किया गया* इसी ढंग के अत्याचार फ्रान्स में मेहनती मज़दूरों के साथ राज्य ने किये। १८४८ तक धनाढ्य ताल्लुकेदारों का राज्य में प्रभाव पूर्ववत् बना रहा और गरीब मेहनतियों मज़दूरों को अपने उठने का कोई भी रास्ता मालूम न पड़ा। वह लोग दुःख समुद्र में दिन पर दिन डूबते चले गये परन्तु राज्य ताल्लुकेदारों तथा पुतलीघर मालिकों के गुलाम हो करके उनकी कुछ भी सुध न ले सके।

भारतीय भूमियों पर भाफ, बिजली या मोटर से चलने वाले हल आदि कलों से यदि खेती की जावे तो क्या इंग्लैण्ड या योरुप के सदृश विचारे किसानों को यहां पर भी भिख-मंगा न बनना पड़ेगा? उन देशों में तो राज्यों ने एशियाटिक प्रदेशों को हथिया करके ताल्लुकेदारों, पूंजीपतियों तथा व्यवसायपतियों को कल कारखाने पुतलीघर खोलने में पूरी सहायता पहुंचायी और कुछ सदियों के बाद बेकार किसानों तथा भिखमंगों को पुतलीघरों में नया से नया काम दे दिया। वहां जो अधिक पदार्थ उत्पन्न हुआ उसको भारत

*Capital by Karl Marx P. P. 762—768 (1891)

आदि देशों में फेंक करके भारत के सारे के सारे कारीगरों को बेकार कर दिया। बेचारे बेकार कारीगर आजकल भूमि पर खेती करके किसी तरीके से अपनी आजीविका चला रहे हैं। भूमि पर कलों के प्रयोग से यदि उनसे खेती आदि के काम को छुड़ा दिया गया तो वह बेचारे भूखों मर जावेंगे और उनकी कोई सुध भी न लेवेगा। भारतीय सरकार तो देश के व्यवसाय व्यापार को सहायता पहुंचाना अपना कर्तव्य ही नहीं समझती है। इस हालत में उन बेकार किसानों की जो दुर्गति होवेगी उसको सोच करके दिल कांपने लगता है।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि खेती में कलों का प्रयोग सभी घने आबाद देशों को नापसन्द है। यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि अमेरिका में आबादी भूमि की अपेक्षा बहुत कम है। ज़मीन खाली पड़ी है परन्तु उसको जोतने बोने वाला आदमी ढूंढ़े नहीं मिलता है। इस बिकट समस्या को अमेरिकन लोगों ने कलों के द्वारा हल किया है। वहां पर भी कलों का दोष अब प्रत्यक्ष दिखाई देता है। जिन प्रदेशों में कलों द्वारा कृषि होतो है वहां प्रति एकड़ उत्पत्ति बहुत कम है। दृष्टान्त तौर पर अमेरिका के निम्नलिखित प्रान्तों को ही लीजिये।*

* The American Census of 1900, Vol. P. 29.

अमेरिकन प्रान्त	खेतों की आकृति	प्रति एकड़ भूमि का मूल्य	प्रति एकड़ अनाज की उत्पत्ति
	एकड़ों मे	डालर्ज़ में	बुशलों में
(१) कंसास	६३·७	५·०३	१०·२
(२) साउथ डकोटा	८५·७	५·२६	१०·५
(३) नार्थ डकोटा	१३४·५	७·१२	१३.५
(४) कैलिफोर्निया	२१२·६	७·५२	१३·६
(५) मिन्ने सोटा	५२·०	७·७१	१४·५
(६) न्यूहैम्पशायर	१·७	१२·६५	१४·६
(७) कनक्टिकट	१·८	१५·४७	२२·०
(८) रोड्आईलैण्ड	१·६	१६·१३	२०·७
(९) मेन	२·०	१६·११	१७·५
(१०) मैसाचस	२·०	१६·६५	१८·४
(११) वर्मान्ट	२·०	१६·१६	१६·३

उपरि लिखित पाचों अमेरिकन रियास्तों में कलों द्वारा बहुमात्रा में खेती की जाती है और एक एक खेत का आकार भी बहुत बड़ा है परन्तु न्यूहैम्पशायर से वर्मान्ट तक ६ ओं अमेरिकन रियास्तों में खेत छोटे २ आकार के हैं और उनमें खेती हाथों से अल्पमात्र में की जाती है। परिणाम इसका यह है कि उपरि लिखित रियास्तों में प्रति एकड़ उत्पत्ति निचली रियास्तों की अपेक्षा कम है । यद्यपि उनकी भूमि

निचले प्रान्तों की अपेक्षा अधिक उत्पादक है । इन्हीं बातों को देख करके महाशय जीड़ ने लिखा है।* कि कलों द्वारा कृषि करने से कृषकों की संख्या कम होती है और प्रति एकड़ उत्पत्ति भी घट जाती है ।

सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि कृषि में कलों के द्वारा बहुमात्रा में उत्पन्न करने से पशुओं की संख्या भी कम हो जाती है । जर्मनी में अधिक संख्या में घरेलू पशुओं को पालने वाले छोटे २ किसान ही थे । बड़े २ ज़िमींदार इस

* महाशय जीड् के शब्द हैं कि—

The essential fact that should never be lost sight of is that although large farming in value some economy in general expenses and particularly an economy in laber, it has, on the other hand, the great two fold disadvantage of diminishing the number of producers, and, quite as often of reducing the quantity of products when compared to the surface cultivated.

Principles of Political Economy by Gide.

Translated by C. William A Veditz.

PP 171—172.

मामले में उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे*। दृष्टान्त स्वरूप जर्मनी में १९०७ में भूमि की आकृति के अनुसार पशुओं की संख्या निम्नलिखित प्रकार थी* अल्प मात्रा में खेती

जर्मनी में पशु तथा भूमि विभाग

एकड़	अश्व	गौ बैलादि	सुअर	भेड़ बकरियां
५ एकड़ से कम ज़मीन वाले कृषक के पास	७१३६९	१३१५५७२	४३८३२४४	४१५७५०
५ १२ $\frac{१}{२}$,,	२४१६३६	३१५५३२३	३१०७००८	३५९९४३
१२ $\frac{१}{२}$-५० ,,	१३२३२९०	७८७३०९२	६३३४२३८	१४४७५३५
५०-२५० ,,	१२०२१७६	५३०५८७१	३६५५१५६	२३२६२६८
२५० एकड़ से अधिक जमीनवाले जमींदार के पास	६५२५३६	२३२७२९१	१३८६२७२	४३७११०३
कुलयोग	३४९१००७	१९९७७१४९	१८४६५९१७	७९२१५९९

उपरि लिखित सूची से स्पष्ट है कि ५० एकड़ से कम ज़मीन वाले ज़मींदारों के पास सम्पूर्ण अश्वों के $\frac{१}{२}$ अश्व, $\frac{२}{३}$ गौ बैल, $\frac{३}{४}$ सुअर आदि विद्यमान थे। साथ ही ऊपर की सूची इस बात की भी सूचक है कि बहुत छोटे खेत वाले कृषकों की उत्पत्ति भी सन्तोष प्रद नहीं होती है। जाति के लिये अधिक से अधिक पशु तथा अन्न उत्पन्न करने वाले १२ $\frac{१}{२}$ से ५० एकड़ भूमि के मालिक छोटे छोटे किसान ही हैं। सारांश यह है कि कृषि में बड़ी मात्रा की उत्पत्ति तथा कलों का प्रयोग किसी विशेष वास्तविक लाभ को देनेवाला

(५३७ पृष्ठ की टिप्पणी)

करने से भूमि की उत्पादक शक्ति क्यों बढ़ती है? इसका मुख्य कारण यह है कि छोटे २ किसानों को अपने परिवार के

अभी तक सिद्ध नहीं हुआ है। जर्मनी में एकड़ों के अनुसार खेतों की संख्या निम्नलिखित है।

खेतों का क्षेत्रफल	खेत	क्षेत्रफल हैक्टरज़ में १ हैक्टर = २½ एकड़	प्रति शतक
५ एकड़ से कम भूमि वाले खेत	३३७८५०६	१७३११३१७	५.४
५--१२½ ,,	१००६२७७	३३०४८७२	१०.४
१२½--५० ,,	१०६५५३६	१०४२१५६५	३२.७
५०--१२५ ,,	२२५६६१	६८२११३०१	२१.४
१२५--२५० ,,	३६४६४	२५००८०५	७.६
२५०--१२५० ,,	२००६८	४५०३१५६	१४.२
१२५० से अधिक ,,	३४६८	२५५१८५४	८
कुल योग	७३६०८२	३१८३४८७३	१००

सारांश यह है कि आजकल बड़े २ जमींदार तथा बहुत छोटे २ कृषक जाति को सर्वथा अभीष्ट नहीं हैं। ५ से ५० एकड़ भूमि के मालिक कृषकों ने ही अन्न उत्पन्न करने में बड़ी सफलता दिखाई है। ५ एकड़ से कम भूमि के

(५३८ पृष्ठ की टिप्पणी)

पोषण के लिये बड़ी मितव्ययता से काम लेना पड़ता है। बड़े बड़े ज़िमीदारों को इस बात की परवाह नहीं होती है। कलों द्वारा बहुत से अनाज का नुकसान होता है। इधर उधर अनाज बिखेर दिया जाता है। फसल की रक्षा भी बड़े खेतों में ठीक ढंग पर नहीं होती है। नलाई आदि का काम उत्तम विधि पर नहीं होता है। छोटे छोटे खेतों में यही सब बातें कृषक लोग बड़ी सावधानी से करते हैं। घास उखाड़ते हैं, भूमि को नरम करते हैं, और कीट पतंगों तथा पक्षियों से खेतों को पूर्ण तौर पर बचाते हैं। बड़े खेतों में नौकरों के द्वारा भी यही काम करवाये जा सकते हैं परन्तु नौकर नौकर ही होते हैं। वह खेतों को अपना न समझ करके उनको सुधारने के बदले और खराब कर देते हैं। बहुत संभव है कि नौकरों के द्वारा बड़े खेतों में नलाई आदि का काम करवाने से कलों द्वारा खेती करना घाटे का व्यवसाय हो जावे। इन सब ऊँच नींच को सोच करके संपत्तिशास्त्रज्ञों ने कृषि में कलों के प्रयोग से हानि ही प्रगट किया है।

मालिक कृषकों से योरुपीय देशों की उत्पादक शक्ति को नुकसान पहुंचा है। हो सकता है, भारत के लिये एसे ही छोटे कृषक अधिक उत्पादक हों। क्योंकि भारत की उत्पत्ति का तरीका तथा अन्न का बीज योरुपीय देशों से सर्वथा भिन्न है। देखे :—

Modern Germany by J. E. Barker PP. 414—418.

कृषि के सिवाय अन्य कामों में कलका प्रयोग किसी हद तक अभीष्ट ही है। यह भी अभीष्ट न होता यदि संसार के अन्य देश कलों के द्वारा व्यवसायिक काम न करते होते। इसका मुख्य कारण यह है कि कलों से बेकारी बढ़ती है। यदि हम कल का प्रयोग न करेंगे तो योरूपीय देश कलों के सहारे हमारे सारे के सारे काम धन्धे का खून कर देवेंगे। इसी विचार से आत्म संरक्षण के लिये हमको कलों के प्रयोग को व्यवसायिक कामों में दिन पर बढ़ाते जाना चाहिये। सौभाग्य की बात है कि भारत के रुई के कारखानों ने बड़ी सफलता से काम करना शुरू किया है। भारतीयों का २५ करोड़ के लगभग धन एक मात्र रुई के कारखानों में ही लगा है। जूट के कारखानों में सबका सब रुपया विदेशियों का ही है। यह लगभग १२ करोड़ है। ऊन, रेशम, कागज़, शक्कर के कारखानों में भी प्रायः योरूपीय लोगो का ही धन लगा है। प्रायः शब्द इसी लिए लिखा कि इन कार्य्यों में कुछ भारतीयों का भी धन लगा है। कोयला, लोहा तथा कच्ची धातें यहां खोदी जाती हैं और विदेश में भेज दी जाती हैं। वहां से उनके पदार्थ बन करके भारत में आते हैं और भारत का धन विदेश में खींचे लिये जा रहे हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि राज्य की ओर से इन कामों के करने के लिये लोगों को उत्साहित नहीं किया जाता है। बड़े बड़े ठेके के काम प्रायः आंग्ल

कंपनियों को मिलते हैं। वह लोहे आदि का जरूरी सामान भारतीय कारखानों से नहीं मँगाती है। ताता का लोहे का कारखाना बहुतसा लोहे का सामान सरकार तथा अन्य आंग्ल ठेकेदारों को दे सकता था परन्तु ले कौन? युद्ध से पहिले उससे बहुत कम लोहे का सामान आंग्ल ठेकेदार तथा सरकार लेती थी। यह लोग इंलैण्ड के लोहे के कारखानों को ही बढ़ाने की फिक्र में थे। युद्ध के कारण ताता के लोहे के कारखानों को बड़ी भारी सहायता पहुंची और उसकी नींव पक्की हो गयी।

आजकल सब ओर धड़ाधड़ बैंक खुल रहे हैं। लोग रुपया लगाने के लिये तैयार हैं। पीपल्स बैंक के टूट जाने पर सब को पूरा रुपया मिलना इस बात का प्रमाण है कि भारतीय भी व्यापार व्यवसाय तथा बैंक के काम को बड़ी सफलता से कर सकते हैं। जो कुछ कठिनता है वह यही है कि सरकार की ओर से पूरी सहायता नहीं मिलती है। इसी से लोगों को व्यापारीय व्यवसायिक कामों में रुपया लगाते समय हिचकना पड़ता है। यदि राज्य रेलों के सदृश ही कपड़े, लोहे, ऊन, चमड़े आदि के कामों में लोगों को लाभ की गाइरैन्टी देवे तो भारतवर्ष कुछ ही वर्षों में एक बड़ा भारी व्यापारी व्यवसायी देश बन सकता है।

बहुत लोगों को यह भय है कि भारतीयों में धन को

दबाने की बहुत बुरी आदत है। इसी बुरी आदत का यह परिणाम है ५०० से ८०० करोड़ रुपये की संपत्ति अनुत्पादक कामों में लगी हुई है। गहने आदि बनाने से कुछ भी लाभ नहीं है। प्रति व्यक्ति २५) के लग भग संपत्ति ऐसी ही हालत में फंसी पड़ी है। परन्तु इसका उत्तर यह है कि मनुष्य धन को धन के खातिर ही नहीं कमाता है। धन कमाने का एक उद्देश्य सौन्दर्य की वृद्धि भी है। संसार के देशों ने भोग विलास के सामान मोती, हीरा, सोना, चांदी के बर्तनों में जो धन फँसाया है उसका कुछ भी अंश भारतीयों ने गहनों में नहीं लगाया है। गहने बनाना बहुत ही कम हो जावे यदि भारतीय सरकार अपनी उदासीनता को छोड़ देवे और लोगों को व्यापार व्यवसाय के कामों में पूर्ण लाभ की आशा दिलावे।

भारतीय सरकार की यह चिरकाल से नीति है कि अपने कूट उद्देश्यों तथा कूट नीतियों को छिपाने के खातिर कोई न कोई कल्पित दोष भारतीयों पर मढ़ देती है। विचारे भारतीय उन दोषों का उत्तर देने में ही अपना समय नष्ट कर रहे हैं और एक इंच भी आगे बढ़ने में असमर्थ हैं। इसी प्रकार का कल्पित दोष ग्रामीण साहूकारों पर मढ़ा जाता है। सरकार का कथन है कि गरीब किसान इसलिये कर्ज़दार हैं कि उनको अधिक ब्याज पर ग्रामीण साहूकारों से रुपया उधार

मिलता है। इस स्थान पर हमारा प्रश्न यह है कि किसानों को उधार लेने की ज़रूरत क्यों पड़ी? यदि सरकारी मालगुजारी यमदण्ड का रूप न धारण कर लेती तो वह बिचारे ऐसा क्यों करते? वह क्यों कर्ज़ पर धन लेते? और ग्रामीण साहूकारों को अपनी ख़ूंखार प्रकृति के प्रगट करने का अवसर ही क्यों मिलता? यदि राज्य सहानुभूति से काम करती और मालगुजारी सदा के लिये स्थिर कर देती तो यह दुर्घटना क्यों दिखाई देती? क्यों किसानों को दुर्भिक्ष तथा कर्ज का शिकार होना पड़ता?

सातवां परिच्छेद

भारत में व्यवसायों की उन्नति तथा ह्रास।

(१)

प्राचीन काल में वस्त्र व्यवसाय

(क)

वस्त्र व्यवसाय का इतिहास

अत्यन्त प्राचीन काल से ही आर्य वस्त्र निर्माण के कार्य में चतुर थे। भिन्न २ वस्त्रों का वर्णन वेदों में मिलता है। उस वर्णन के पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि उस समय इस व्यवसाय में पर्य्याप्त उन्नति हो चुकी थी।* वेदों में भिन्न २ प्रकार के वस्त्रों के लिये निम्नलिखित शब्द आते हैं।

(१) शुक्रवासा = सफेद कपड़ा

(२) वस्त्र = साधारण वस्त्र

(३) रंजयिता = रंगरेज

(४) दुर्वासः = बुरे कपड़े

---

* Wilson's Rigveda II. P. 307, 2, 8, 9, 12.

" III. P. 369, 122, 230, 277, 474, 675.

" I. P. 271

(५) उष्णीषः = पगड़ी
(६) द्रापि = ओवरकोट
(७) तर्प = रेशम का अंगरखा
(८) सामूल = ऊन का कोट
(९) नीवि = पहिनने की धोती
(१०) परिधान = „
(११) पांडव = सफेद लोई
(१२) समुल्प = रङ्गीन वस्त्र
(१३) सुवसन = बारीक वस्त्र
(१४) ऊर्णा = ऊन का वस्त्र
(१५) रज्जु, संन्नहन = रस्से
(१६) तंतु = बारीक धागे[1]

वैदिक काल के अनन्तर तान्त्रिक काल तक भारत में वस्त्र का व्यवसाय दिन पर दिन प्रफुल्लित होता गया। पाणिनी ने रेशमी वस्त्र का उल्लेख किया है (२) रामायण में तो वाल्मीकि ने बहुत प्रकार से वस्त्रों का वर्णन किया है जो कि सीता को दहेज में मिले थे (३)। जिस समय राम और

---

(१) 'वैदिक सभ्यता के एक अंश का निरीक्षण' सातवलेकर लिखित-
(२) कोशाट्ठञ् । ४ । ३ । ४२ । कोश संभूतं कौशे वस्त्रम्
(३) अथ राजा विदेहानां ददौ कन्या धनं बहु
गवां शत सहस्राणि बहूनि मिथिलेश्वरः ॥३॥

सीता अयोध्या में पहुंचे थे, उस समय सीता रेशमी साड़ी पहिने हुई थी (१)। महाभारत ने इसी विषय में बहुत कुछ विस्तृत वर्णन दिया है। महाभारत के अनुसार

देश	निर्मित वस्त्र
(१) कम्बोज़ (हिन्दू कुश)	कंबल
(२) गुजरात	रंगीन ऊनी वस्त्र तथा रेशमी कपड़े
(३) सीथिया, तुष्कर, कंक	सन् तथा जूट के वस्त्र
(४) मिदिनापुर, गन्जम,	हाथियों के ऊपर के वस्त्र
(५) कर्नाटक, माइसोर	मलमल[२]

कम्बलानांश्च मुख्यानां क्षौमान् को यम्बराणि च।
हस्त्यश्व रथ पादातं दिव्य रूपं स्वलं कृतम् ॥४॥
रामायण बालकाण्ड सर्ग। ७४।

(१) कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी च सुमध्यमा
वधू प्रति ग्रहे युक्ता पाचात्या राजयोषितः ॥ ८ ॥
ततः सीतां श्री मतिमां ऊर्मिलाञ्च यशस्विनीं।
कुशध्वज सुते चैव परिगृह्यानुगृह्य च ॥ ९ ॥
ततः प्रवेशयामासुर्नृ पवेश्म स्वलंकृताः
मङ्गला लभनीयैश्च शोभितः क्षौमवाससः ॥ ११ ॥
उपनिन्युश्चता एता देवता यतनान्यपि।
अभिवाद्याभि वाद्यांस्तांस्तत्र पूज्यान् गुरूंस्तथा ॥ १० ॥
रामायण बा० सर्ग। ७४।

Gorresio's Ramayan I, P. 297.

(२) Wilson, in Gournal, R As. Soc. VII 140.

महाभारत के अनन्तर बुद्ध की उत्पत्ति पर्यन्त भारतीय व्यवसाय दिन पर दिन उन्नत्ति करते गये। बौद्ध जातकों के पठन से मालूम पड़ता है कि उन दिनों में न्यून से न्यून २५ पेशे थे जिनमें आर्य जनता कार्य करती थी। इन पेशों में वस्त्र बुनने का भी एक पेशा था। इस पेशे का संघ बना हुआ था जो कि समयान्तर में जुलाहे की जात में परिवर्तित हो गया।

संघ के अधिपति सेठों का राजदर्बार में बड़ा भारी मान होता था। यह लोग करोड़ों रुपयों की संपत्ति के स्वामी होते थे। मौर्य काल में भारतवर्ष कृषि प्रधान होने के साथ साथ व्यवसाय प्रधान देश था। भारत से यूनान में हाथीदांत, नील, टीन, शक्कर, रेशमी वस्त्र और तरह तरह के मसाले जाते थे। परन्तु उपरि लिखित पदार्थों के अतिरिक्त मलमल, छींट, लट्ठा, औषधियां, सुगन्धित पदार्थ, लाख, फौलाद, लाल, हीरे, नीलम, रत्न, मोती, पन्ने आदि २ बहुत से पदार्थ विशेषतः रोम में जाते थे। रोम के समस्त नर नारी ऐसे शौक से इन वस्त्रों को पहिनते थे और इन वस्त्रों की वहां मांग इतनी थी कि इनकी सोने के बराबर वहां पर क़ीमत हो गयी। प्लिनी कहता है कि भारत को रुपया भेजते २ रोम दरिद्र हो गया है। चालीस लाख पाउन्ड का सामान भारत से रोम में जाता था। इस सामान को वहां आने से रोकने के लिये राजा ने

क़ानून बनाया था तथा भारत के सामान का बहिष्कार कर दिया था।*

सम्राट् चन्द्रगुप्त का भारतीय व्यापार व्यवसाय के संरक्षण में बहुत ही अधिक ध्यान था। इसका एक कारण यह भी था कि राज्य को इसी के द्वारा अधिकतर आमदनी होती थी। व्यापार सुगम तौर पर हो सके इसके लिये समुद्र के तट पर स्थान स्थान में उत्तम २ बन्दरगाहें बनायी गयी थीं। सामुद्रिक डाकू जहाजों को लूट न सकें इसलिये एक प्रबल सामुद्रिक सेना मौर्यसम्राट् ने रखी हुई थी। उस समय भारत की वास्तविक दशा क्या थी यह राजदूत मैगस्थानीज के कथन से ही जानी जासकती है। वह कहता है कि भारतवासी शिल्प में बहुत ही चतुर हैं। उनके कपड़ों पर सुनहरी काम होता है और उनमें रत्न जड़े रहते हैं। वह प्रायः फूलदार मलमल के वस्त्र पहिनते हैं। उनके पीछे नौकर लोग छाता लगा कर चलते हैं क्योंकि वह लोग सुन्दरता पर बहुत ही ध्यान रखते हैं और अपनी सुन्दरता बढ़ाने के लिये सब प्रकार के उपाय करते हैं"

यूनानियों के साथ भारतीयों का वस्त्र व्यापार किस सीमा तक बढ़ा हुआ था इसका अनुमान उनकी भाषा के सिन्डन शब्द से ही किया जा सकता है। यूनानी भाषा में

* राईसडेविड की बुद्धिस्ट इन्डिया।

सिन्डन शब्द जुलाहे के लिये आता है जिसका निर्देश सिन्ध प्रदेश से है। पैरिप्लस ने अपनी प्रमाणिक पुस्तक में लिखा है की भारतीय सूती तथा रेशमी वस्त्र यूनान में बहुमात्रा में बिकने को जाते थे। मुसलमानी काल तक भारतीय व्यव-सायों की वृद्धि दिन पर दिन होती ही रही। इसका कारण यह था कि मुसल्मानों ने भारत का विजय करके भारत को ही अपना निवास स्थान बना लिया था। इससे भारत की स्वतन्त्रता को विशेष आघात न पहुंचा। मुसल्मानी काल के अन्त तक भारत को परतन्त्र कहना सर्वथा भ्रम जाल में फँसना होगा। स्वतन्त्रता का सम्बन्ध किसी दल के साथ या धर्म के साथ नहीं है। भारत में बीसों धर्म हैं तथा बीसों जातियां हैं, किसी न किसी का प्रभुत्व तो यहां पर होना ही है। परन्तु इस अवस्था में भारत को परतन्त्र कहना सर्वथा भूल करना होगा। आज भी आष्ट्रिया हंग्री में बहुत सी जातियों का निवास है और राजकार्य में भिन्न २ रियास्तों में किसी एक न एक जाति का ही प्रभुत्व है; परन्तु इससे आस्ट्रिया हंग्री परतन्त्र तो कहा ही नहीं जा सकता है। सारांश यह है कि मुसलमानी काल के अन्त तक राजनैतिक दृष्टि से भारतवर्ष परतन्त्र न था। जहां पहिले वहां हिन्दुओं राजपूतों, शकों आदि का राज्य था वहां उनके साथ साथ मुसल्मानों का भी राज्य आ गया।

आंग्लों से पूर्व पूर्व तक भारत की व्यवसायिक उन्नति अपरिमित थी। सूरत, कालीकट,मुसलीपट्टन आदि २ प्रसिद्ध बन्दरगाहों द्वारा भारत के वस्त्र योरुप में बिकने को जाया करते थे। जब तक गुडहोप के मार्ग का ज्ञान योरुपियन लोगों को न हुआ था तब तक वीनस ही भारतीय पदार्थों को योरुपियन राष्ट्रों में पहुंचाता था। परसियन खाड़ी द्वारा बसरा, बलप्पा, अदन, मिश्र आदियों से भारतीय पदार्थ गुजरते हुए वीनस में पहुंचते थे। वहां से ही इंग्लैण्ड में भारतीय व्यवसायिक पदार्थ बिकने को जाते थे। (१)

(ख)

आंग्ल काल में वस्त्र व्यवसाय

१६वीं सदी से भारतीय व्यापार से इंग्लैण्ड ने स्वयं भी लाभ उठाने का यत्न किया। कहा जाता है कि सबसे पहिले पहिल १८५३ में केवल तीन आंग्ल व्यापारी अनन्तश्रम के बाद भारत पहुंचे थे। उनमें से एक तो मर गया और दूसरा मुग़ल सम्राट् के नीचे नौकर हो गया और अवशिष्ट इधर उधर सैर करता हुआ मुलका जा पहुंचा।

भारत वर्ष से योरुपियन जातियों को व्यापार करने से

(1) India's Economics by R. Palit, pages 112—124.

कितना लाभ था इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि भारत से गयी हुई काली मिर्च प्रति पाउन्ड तीन शिलिङ्ग के भाव से इंग्लैण्ड में बिकती थी। विचित्रता तो यह है कि उन दिनों में शिलिङ्ग की क्रयशक्ति भी वर्तमान काल की अपेक्षा बहुत ही अधिक थी। डच व्यापारियों ने काली मिर्चों का एकाधिकार कर लिया और इनका दाम ३ शिलिङ्ग से ८ शिलिङ्ग प्रति पाउन्ड तक चढ़ा दिया। आंग्ल जनता को इससे बहुत कष्ट मिला क्योंकि वह काली मिर्चों को बड़े स्वाद से खाती थी।

प्रजा के अन्दर अनन्त विक्षोभ को देख करके १५९९ की २२ सितम्बर को लार्ड मेयर तथा अल्डरमैन ने लन्डन के कुछ एक व्यापारियों को एकत्रित किया और ३०००० तीस हज़ार पाउन्ड एकत्रित करके भारत से सीधे काली मिर्च खरीद कर लाने का विचार किया। १६ वीं सदी के अंत में भारत तथा बोर्नियो के गरम मसालों ने आंग्लों का ध्यान आकर्षित किया। इस व्यापार का लाभ इसी से जाना जा सकता है कि इसके लिये योरुपियन जातियां लड़ी मरती थीं। १६०० की ३१ दिसम्बर को एलिजाबेथ ने ईस्ट इन्डिया कम्पनी को भारत से व्यापार करने का प्रमाण पत्र दिया। भारत से जो गरम मसाले १२ लाख पाउन्ड को खरीदे जाते थे उनसे योरुपियन व्यापारियों को ६ लाख पाउन्ड का वार्षिक लाभ

होता था। भारत में मालाबार तथा मलूकस में ही गरम मसाले बहुतायत से उत्पन्न होते हैं। यहीं से संपूर्ण योरुप में यह जाते थे। शनैः शनैः ईस्ट इन्डिया कम्पनी का व्यापार चमका परन्तु इंग्लैण्ड में इससे बहुत प्रसन्नता न मनायी गयी। प्रजा की ओर से १६१५ में ही यह आवाजें उठने लगीं कि ईस्ट इन्डिया कम्पनी इंग्लैण्ड के लिये अत्यन्त हानिकारक है चूंकि देश के धन को यह भारत में ले जाती है। महाशय मनु ने कम्पनी के १६१४ के लाभों तथा व्यापारीय पदार्थों की सूची दी है जिसके देखने से पाठकों को बहुत ही अधिक लोभ पहुंच सकता है।

१६१४ में इंग्लैंड में जाने वाले भारतीय पदार्थों का ब्योरा

पदार्थ	पाउन्डज में भार	मार्गव्यय तथा क्रयमूल्य	इंग्लैंड में विक्रय मूल्य
काली मिर्च	२५०००	२६०४२ पाउ०	२०८३३३ पाउ०
लौंग	१५००	५६२६ "	४५००० "
जायफल	१५००००	२५०० "	१८७५० "
जाविश्री	५०६००	१६६६ "	१५००० "
नील	२०००००	११६६७ "	५००० "
रेशम	१०७१४०	३७४८८ "	१०७१४० "
छींट के वस्त्र	५००००थान	१७५०० "	५०००० "

आंग्ल काल में वस्त्र व्यवसाय

उपरि लिखित ब्योरे से पाठकों पर स्पष्ट हो गया होगा कि १६१४ में भारतवर्ष इंग्लैंड में कपड़े बना करके भेजता था। इस व्यापार का जो लाभ था वह इसीसे प्रगट है कि ५०००० पचास हज़ार थानों का व्यय जहां १७५०० था वहां उनका विक्रय मूल्य ५०००० पाउन्ड्ज़ था अर्थात व्यय की अपेक्षा तीन गुणा आमदनी थी। मध्यकाल में डाकू जहाज़ों की आमदनी भी पर्याप्त होती थी। माल से भरे भराये जहाज़ को जिस डाकू जहाज़ ने सफलता से छीन लिया वह माला-माल हो जाता था। इन भयंकर डाकू जहाज़ों से बचने के लिये ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने राज्य से यह आज्ञा ले ली कि वह अपने जहाज़ों का बेड़ा बना लेवे तथा उन पर बारूद आदि युद्ध की सामिग्री रक्खे।

कंपनी के लाभों की वृद्धि से आंग्ल प्रजा को कुछ भी लाभ न था। रेशम तथा वस्त्रों के भारत से इंग्लैंड में जाने से आँग्ल शिल्पी भयंकर तौर पर आहत हुए थे। उनकी आजीविका के साधन नष्ट हो रहे थे। आँग्ल प्रजा ने कंपनी के इस व्यापार के विरुद्ध आवाज़ उठायी। १७०८ से १७६५ तक भारत से इंग्लैंड में जो सामान गया उसका ब्योरा इस प्रकार है।

इंग्लैंड के निर्यात

सन्	व्यापारिक पदार्थ	सुवर्ण	कुलयोग (पाउ०)
१७०८ से १७३३	३०६४७४४	१२१८६१४७	१५२५३८६१
१७३४ से १७६५	८४३४७६६	१६०७१४९६	२४५१६२६५
	भारत के आयात		पाउन्डज़
१७०८ से १७३३	...	...	३५५७१७०६
१७३४ से १७६५	...	...	६४४५२३७७

पूरे एक सदी के व्यापार के अनन्तर इंग्लैंड को भारतवर्ष में २८६०००००० पाउन्डज़ भेजने पड़े। इस भयानक आर्थिक क्षति से इंग्लैण्ड की जनता सावधान हो गयी। पार्लियामेन्ट में कम्पनी के कार्यों पर विरोध प्रगट किया जाने लगा। आंग्ल प्रजा साधारण से साधारण दूषणों को बड़ा २ बना करके कम्पनी के कर्मचारियों को बदनाम करने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि कम्पनी के डाइरैक्टरों को अपनी व्यापारिक नीति बदलनी पड़ी। जहां प्रथम वह भारत के बने हुए वस्त्रों को इंग्लैंड में बेचते थे वहां अब उन्होंने आंग्ल वस्त्रों को भारत में बेचने का यत्न करना प्रारम्भ किया। इसी दिन से भारत का प्राचीन वैभव नष्ट होने लगा और भारतीय कारीगरों पर तबाही आनी आरम्भ हो गयी।

१७६६ में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने भारत में आंग्ल कर्मचारियों को लिखा कि बङ्गाल में कच्चा रेशम तथा रुई उत्पन्न करवाने का यत्न करो और भारतीय कारीगरों को वस्त्र-निर्माण में किसी प्रकार की भी उत्साहना न दो।[1] यही नहीं संपूर्ण जुलाहों को अपनी ही फैक्टरी में काम करवाओ और जो काम न करे उसको भयंकर दंड देओ। डाइरेक्टरों की इस नीति का भारत के लिये अति भयंकर फल हुआ। भारतीय वस्त्र व्यवसाय का अधः पतन प्रारम्भ हुआ और आंग्ल व्यवसायों की उन्नति होनी प्रारम्भ हो गयी। किस प्रकार आंग्ल वस्त्र भारत में १७६६ के अनन्तर दिन पर दिन अधिक राशि में बिकने आये उसका ब्योरा निम्नलिखित है।[2]

भारत में आये हुए आंग्ल वस्त्र

सन्	पाउन्डज़
१७६४	१५६
१७६५	७१७
१७६६	११२
१७६७	८५०१
१७६८	४४३६

1 General Letter dated 17th March, 1769.

2 Return to an order of the House of Commons, dated 4th May 1813.

भारत में आये हुए आंग्ल वस्त्र

सन्	पाउन्डज़
१७६६	७३१७
१८००	१६३७५
१८०१	२१२००
१८०२	१६१६१
१८०३	२७८७६
१८०४	५६३६
१८०५	३१६४३
१८०६	४८५२५
१८०७	४६५४६
१८०८	६६८४१
१८०६	११८४०८
१८१०	७४६६५
१८११	११४६४६
१८१२	१०७३०६
१८१३	१०८८२४

उपरिलिखित अत्यन्त आवश्यक सूची से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि किस प्रकार डाइरैक्टरों की नीति से आंग्ल वस्त्र दिन पर दिन भारत में अधिक मात्रा में आने लगे। परिणाम इसका यह हुआ कि भारतीय कारीगर

अपने २ पेशों को छोड़ करके खेती के काम पर प्रस्तुत हुए। भारत सहस्रों वर्षों से समृद्ध होता हुआ क्षण में ही डाइरेक्टरों की कृपा से दरिद्रता के भयंकर निधि में जा पड़ा।

डाइरेक्टरों का उपरिलिखित आंग्ल व्यावसायिक वृद्धि से भी सन्तोष न हुआ। उनको यह सहन न था कि भारत में एक भी वस्त्र बन सके। जो कुछ वह चाहते थे वह यह था कि भारतवसी तो कृषि किया करें और इंग्लैण्ड संपूर्ण भारत के लिये वस्त्र बनाया करे।

१८१३ में कम्पनी का प्रमाणपत्र बदला जाना था अतः उस समय एक सभा बैठी जिसमें भारत के विषय में वारनहेस्टिंग, मुनरो, मल्काम आदि २ प्रसिद्ध पुरुषों से सम्मतियां पूछी गयीं। भारतीय दृष्टि से उन सम्मतियों का बहुत ही अधिक महत्व है।

सभा में वारनहेस्टिंग से पूछा गया कि तुम यह बताओ कि योरुपियन व्यावसायिक पदार्थों की भारत में कितनी मांग है? इस पर उसने उत्तर दिया कि "भारतीय दरिद्र प्रजा को विलायती माल की ज़रूरत नहीं है उनको जो कुछ चाहिये वह अपनी भूमि से ही प्राप्त हो जाता है।" जब इसी प्रकार का प्रश्न मुनरो से पूछा गया तो उसने उत्तर दिया कि "भारतीय कारीगर नकल करने में बहुत चतुर हैं। विदेशीय माल जैसा माल वह शीघ्र ही तैयार कर सकते हैं। भारतीय जनता कृषि

तथा व्यावसायिक चातुर्य में भोग विलास के पदार्थों को मांग के अनुसार उत्पन्न करने में योरुप की अपेक्षा बहुत ही अधिक बढ़ी हुई है। भारतीय वस्त्रों के सन्मुख आंग्ल वस्त्र नहीं ठहर सकते हैं। भारतीय वस्त्रों की उत्तमता इसी से समझलो कि मैं उनके सन्मुख उपहार में दिये हुए भी विदेशी शाल को प्रयोग में लाने के लिये तैय्यार नहीं हूं।

"I have never seen an European shawl tnat I would use, even if it were given to me as a present."

आज इंग्लैंड भारत के लिए स्वतन्त्र व्यापार की नीति का पक्षपाती है, और व्यापार व्यवसाय में इसी का उद्घोषण करता है। परन्तु प्राचीन काल में उसकी यह अवस्था न थी। भारतीय वस्त्रों को इंग्लैंड में जाने से रोकने के लिये उसने स्वतन्त्रता की नीति का अवलम्बन न किया था। यदि वह ऐसा न करता तो उसकी समृद्धि कभी की लुप्त हो जाती और आज भारत वर्ष आर्थिक दशा में इंग्लैण्ड का स्थान लेलेता और इंग्लैंड भारत का स्थान ले लेता। महाशय जोन्ह रैंकिंग ने उन तटकरों की सूची इस प्रकार दी है जो कि भारतीय पदार्थों को इंग्लैण्ड में जाने से रोकने के लिये लगाये गये थे।[१]

(१) Minutes of Evidence, on the affairs of the East India Company (1813). p.p. 124, 127, 131, 123, 172, 296, 463, 469.

	भारतीय पदार्थ योरुप में बेचने के लिए इंग्लैंड में लाये गये ।	भारतीय पदार्थ इंग्लैण्ड में बेचने के लिये लाये गये ।	
पदार्थ	तटकर	तटकर	सन्
	पा० शि० पें०	पा० शि० पें०	
छींट	३ ६ ० प्र०	६८ ६ ८ प्र०	१८१३ सन् से पूर्व २ तक
मलमल	१० ० ० ,,	२७ ६ ८ ,,	
रंगीन वस्त्र	३ ६ ८ ,,	इस पदार्थ का बेंचना करना सर्वथा निबन्द	
छींट	×	७८ ६ ८	१८१३ सन् मे
मलमल	×	३१ ६ ८	
रंगीन वस्त्र	×	बेंचना सर्वथा बंद	

इन तटकरों तथा व्यापारीय बाधाओं के करने में इंग्लैण्ड ने बड़ी ही बुद्धिमत्ता की। यदि वह ऐसा न करता तो वह भी निःशक्त हुआ हुआ कभी से संसार की महा शक्तियों में से नाम कटा चुकता। महाशय आदमस्मिथ तो शायद् इंग्लैण्ड के उपरिलिखित कार्य को मूर्खता का ही कार्य समझें। क्योंकि उनके विचार में तो 'जहां से सस्तामाल मिले वहीं से ख़रीद लेना चाहिये' यही बुद्धिमत्ता का काम है। क्योंकि वह जातीय समृद्धि के करने में 'मूल्य सिद्धान्त' के पक्षपाती हैं

परन्तु हमारा विचार उनसे सर्वथा भिन्न है। हमारी सम्मति में जातियों को उत्पादक शक्ति ही प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये। उत्पादक शक्ति में ही जातीय समृद्धि का बीज है न कि सस्ता पदार्थ ख़रीदने में। इंग्लैण्ड ने भारत के सामान को अपने देश में न आने दिया और इस प्रकार अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य किया। परन्तु इससे भारत का सर्व नाश हो गया। हन्री सेन्ट टुकरने कहा है कि "इस बाधित व्यापार की नीति से इंग्लैण्ड ने भारतवर्ष को व्यवसाय प्रधान से कृषि प्रधान देश बना दिया है।" इसी प्रकार की अन्य महाशयों की भी सम्मतियां हैं। दृष्टान्त तौर पर एच एच विल्सन का कथन है कि "भारतवष के बने हुए वस्त्र इंग्लैण्ड में ५० से ६० प्रति शतक लाभ पर बेचे जाते थे। इसीलिये आंग्ल पार्लियामन्ट को भारतीय वस्त्रों पर ७० से ८० तक तट कर लगाना पड़ा था। यदि यह तट कर न लगा होता तो पैस्ले और मैन्चयस्टर की मिलें कभी की बन्द हो चुकी होतीं और वाष्प के सहारे भी उनका चलना कभी का रुक गया होता। इन मिलों का समुत्थान भारतीय व्यवसाय के विनाश के अनन्तर ही हुआ है। शोक की बात है कि आंग्ल माल को भारत में आने से रोकने के लिये भारतीयों को वह सामुद्रिक कर रूपी शक्ति नहीं दी गयी।

बंगाली जुलाहों को अन्य बहुत से तरीकों से ऐसे कष्ट दिये गये जिससे उन्होंने अपने २ काम को छोड़ करके कृषि को ही अपनी आजीविका का सुखमय साधन बनाया। आंग्ल कंपनी के डाइरैक्टर्ज़ प्रत्येक आंग्ल कोठी के पास पदार्थों की सूची भेज देते थे जोकि उनको आवश्यक होते थे। आंग्ल कोठियां जुलाहों को पेशगी दाम दे करके निश्चित समय पर वस्त्र लेने के लिये कहती थीं। कोठियों की ओर से एक हरकारा उनसे शीघ्र काम लेने के लिये रखा हुआ था। जिस दिन वह हरकारा किसी जुलाहे के पास जाता था। उस जुलाहे पर १ आना जुर्माना हो जाता था। प्रत्येक जुलाहे के काम में क्या त्रुटि है क्या नहीं है इसका निर्णय वह स्वयं ही करते थे। महाशय काक्स का कथन है कि जिस आंग्ल कोठी के वह सभापति थे उसके आधीन १५०० जुलाहे काम करते थे। जुलाहों के लिये यह नियम बना हुआ था कि "आंग्ल कोठी के अन्दर काम करने वाले जुलाहे किसी दूसरे का काम नहीं कर सकते हैं। यदि वह समय पर काम करके न लावें तो व्यवसायी उन पर हरकारा रख सकता है। यदि वह अपना वस्त्र किसी दूसरे के पास बेच देवें तो दीवानी अदालत उन पर लगेगी। यदि कोई भी जुलाहा एक से अधिक करघा वा श्रमी अपने पास रखेगा तो उस पर उसके निश्चित मूल्य पर ३५-) का

दण्ड होवेगा कोई भी ज़िमींदार जुलाहों के मामले में हस्त-क्षेप नहीं कर सकता है।" इस प्रकार के कठोर नियमों तथा कठोर व्यवहारों से जुलाहों ने अपना २ काम छोड़ करके भागना प्रारम्भ किया और इस प्रकार भारत का हजारों वर्षों से प्रफुल्लित वस्त्र का व्यवसाय भारत से सदा के लिये उठ गया। विचित्रता की बात है कि बंगाल की भूमियों का लगान बंगाल में ही न खर्च कर आंग्ल व्यवसायों की उन्नति में खर्च किया जाता था। इस प्रकार यह कुल धन १३२२८७७ पाउन्ड था जो कि प्रति वर्ष आंग्ल व्यवसायों की समुन्नति में उन दिनों में लगना था। ऐसी विचित्र अवस्थाओं के होते हुए यदि भारत में वस्त्र व्यवसाय का अधः पतन हो जावे तथा आंग्ल वस्त्र व्यवसाय का समुत्थान होवे तो इस पर आश्चर्य करना वृथा है।

बहुत से नवीन पठित संपत्तिशास्त्रज्ञ भारत में वस्त्र व्यवसायों के लोप का कारण भारतीयों के आलस्य तथा अकमर्ण्यता को प्रगट करते हैं। परन्तु यह कहां तक भ्रम-मूलक है उसका ज्ञान पाठकों को हो ही गया होगा। भारतीय वस्त्रव्यवसाय के अधः पतन का राजनैतिक कारण है। आज-कल आंग्ल राज्य अपने आपको अवाधित व्यापार(Free trade) की नीति का पक्ष पोषक प्रगट करता है। यह नीति इंग्लैण्ड के लिये तो कुछ सीमा तक उत्तम है परन्तु भारत के

लिये यह नीति अत्यंत हानिकरक है। इसका कारण यह है कि भारत वस्त्र-व्यवसाय में अब बहुत ही पीछे है और इंग्लैण्ड इसी व्यवसाय में बहुत उन्नत है। इस अवस्था में भारत तथा इंग्लैण्ड की वस्त्र व्यवसाय में स्पर्धा भारत के लिये अत्यन्त हानिकर है।

(२)

नौ व्यवसाय का इतिहास

चन्द्रगुप्त मौर्य से पूर्व भारत में नौ व्यवसाय की क्या अवस्था थी इसके प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलते हैं। संस्कृत के भिन्न भिन्न ग्रन्थों में भिन्न २ प्रकार की सामुद्रिक यात्राओं का वर्णन मिलता है। उसी से प्राचीन नौ व्यवसाय के विषय में कुछ जाना जा सकता है। ऋग्वेद में कई स्थानों पर समुद्र यात्रा विषयक मन्त्र आते हैं[1] रामायण में भी ऐसे बहुत से

(१) वेदा यो वीनां पद मन्तरिक्षेण पततां वेदनातः समुद्रियः (१-२५-७)
उवासोषा उच्छाउच्चनु देवी जीरा रथानाम्।
ये अस्या आचरणेषु दधिरे समुद्रे न भुवस्यवः (१-४८-३)
तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः
पति दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधिरोह तेजसा। (१-५६-२)
आ यद्रुहाव वरुणश्चनावं प्रयत् समुद्रमीरयावमध्यम्।
अधिपदपांशुभिश्चराव प्रप्रेंख ईंखयाक है शुकम्॥
वशिष्ठं ह वरुणोना व्याधा दृष्टिं चकार स्वपाम होभिः।
स्तोतारं विप्रं सुदिनत्वे अन्हां यान्नु द्यावस्ततन्याद्रुषासः॥ (७-८८-३,४)

श्लोक हैं जो कि प्रगट करते हैं कि उस समय भारतीय सामुद्रिक यात्रा में पर्य्याप्त अधिक चतुर थे। किष्किन्धा कान्ड में लिखा है कि सुग्रीव ने सीता के अन्वेषण के लिये बन्दरों को भेजा था। कुछ एक श्लोकों में चीन, जावा आदि के नाम रामायण में आये हैं। इन सब श्लोकों से जो कुछ पता लगता है वह यही है कि रामायण के काल में भी भारत में समुद्र यात्रा का पर्य्याप्त प्रचार था।[१] अयोध्याकाण्ड में एक श्लोक आता है जिससे प्रतीत होता है कि उस समय नौ सेना भी थी और नौ युद्ध भी होते थे।[२] महाभारत के काल में भी भारत व्यावसायिक दृष्टि से सोया पड़ा न था। उसने उस समय जो उन्नति की थी वह अत्यद्भुत तथा आश्चर्य कर है।

तुग्रोह भुज्यु मश्विनो दमेध रयिं न काश्चिन्ममृवां अवाहा।
तमहथुर्नौभि रात्मन्वती मिरन्तरिक्ष प्रुद्भिरयोदकाभिः (१-११६-३)

(१) समुद्र मवगढ़ांश्च पर्वतान् पत्तनानिच।
(किष्किन्धा काण्ड ४०-२५)
भूमिञ्च कोषकाराणां भूमिं च रजताकराम्
(किष्किन्धा काण्ड ४०-२३)
यत्नवन्तो यवद्वीपम् सप्तराज्योपशोभितम्।
सुवर्णं रूप्यक द्वीपं सुवर्णं कर मण्डितम्।
ततो रक्त जलं भीम लोहितं नाम सागरम्।

(२) नावां शतानां पञ्चानां कैवर्त्तानां शतं शतम्
सन्नद्धानां तथा• यूनान्तिष्ठन्वित्यभ्यचोदयत्॥
(अयोध्याकाण्डम् ८४-७४)

अर्जुन तथा नकुल के दिग्विजय का वर्णन करते हुए महाभारत ने ऐसे बहुत से देशों का वर्णन किया है जिन पर बिना सामुद्रिक पोतों के जाना संभव नहीं कहा जा सकता है। सभा पर्व में एक श्लोक है जिसमें आता है कि सहदेव तथा पांचों पाण्डवों ने बहुत से म्लेच्छों का विजय किया।[१] द्रोण पर्व में लिखा है कि नाव के टूट जाने पर यात्री लोग किसी द्वीप के प्राप्त कर लेने पर ही सुरक्षित हो सकते हैं।[२] इसी पर्व में नौका के भयंकर वात द्वारा टूट जाने का भी वर्णन है।[३] कर्ण पर्व में भी अगाध समुद्र में डूबती हुई नौका के यात्रियों की घबड़ाहट का उल्लेख किया हुआ है।[४] शान्तिपर्व में सामुद्रिक व्यापार से अनन्त लाभ की प्राप्ति को प्रकाशित

---

१ सागरद्वीप वासांश्च नृपतीन् म्लेच्छ योजिनान्
निषादान् पुरुषादांश्च कर्णप्रावारणानपि।
द्वीपं ताम्राह्वय ञ्चैदं वशे कृत्वा महामतिः
सभापर्व।

२ भिन्न नौका यथा राजन् द्वीपमासाद्यनिर्वृताः
भवन्ति पुरुष व्याघ्र नाविकाः कालपर्य्यये॥

३ विष्वगिवाहता रुग्णा नौरिवासीन्महार्णवे॥

४ निमज्जत स्तानथ कर्ण सागरे।
विपन्ननावो वणिजोयथार्णवात्॥
उद्दधुरे नौभिरिवार्णवाद्रथै
सुकल्पितैः द्रौपदीजाः स्वमातुलान्॥

किया है।[1] आदि पर्व में पाण्डवों का यंत्रों से सुसज्जित अत्यन्त दृढ़ नौका पर भाग जाने का वर्णन है।[2]

रामायण महाभारत के अतिरिक्त स्मृतियों तथा सूत्र ग्रन्थों में सामुद्रिक व्यापार का स्थान २ पर उल्लेख है। मनुस्मृति में समुद्र व्यापारियों के लिये नियम तथा व्याज की रेट निश्चित की गयी है।[3] नौ यात्रा में किस अवस्था में क्या किराया होना चाहिये इसका भी मनुस्मृति में विस्तृत तौर पर वर्णन है।[4] याज्ञवक्ल्य संहिता में लिखा है कि भारतवर्षी

---

१ वणिक यथा समुद्रा द्वै यथार्थम् लभतेधनम्
तथा मर्त्यार्णवे जन्तो कर्म विज्ञानतो गतिः ॥

२ ततः प्रवासितो विद्वान् विदुरेण नरस्तदा
पार्थानां दर्शयामास मनो मारुत गामिनीम्
सर्वं वातसहां नावं यन्त्र युक्तांपताकिनीम्
शिवे भागीरथे तीरे नरै विंश्रम्भिभिःकृताम् ।

आदिपर्व—

३ समुद्रयान कुशला देश कालार्थदर्शिनः
स्थापयन्ति, तुयां वृद्धिं सातत्राधिगमं प्रति ।

४ दीर्घाध्वनि यथा देशं यथा कालं तरी भवेत्
नदी तीरेषु तद्विद्यात् समुद्रेनास्ति लक्षणम् ॥
यन्नावि किंचिद्दाशानां विशीर्य्येतापराधतः ॥
तद्दाशैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोंशतः ॥
एस नौयापिना मुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ।
दासापराधतस्तोये दैविकेनास्ति निग्रहः ॥

(मनु-८-४०६-९)

धनोपार्जन की आशा से समुद्रयात्रा किया करते थे।[१] वृहत्संहिता में मल्लाहों की जात का वर्णन मिलता है। उसमें लिखा है इनके स्वास्थ पर चन्द्र का बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है।[२] समुद्र यात्री क्यों बीमार पड़ते हैं।[३] इसका भी वृहत्संहिता में उल्लेख है। यह सब घटनायें एक ही बात को सूचित करती है कि प्राचीन काल में भारत नौ व्यवसाय तथा नौ व्यापार में अतिशय उन्नत था। पौराणिक कालतक नौ व्यवसाय में उन्नति होती ही चली गयी। लोग बराबर सामुद्रिक यात्रा करते ही रहे।

वृक्षायुर्वेद में लकड़ियों के बहुत से भेद बताये हुए हैं। मनुष्यों के सदृश लकड़ियां भी ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र जाति में विभक्त की गई हैं[४] महाराजा भोज की सम्मति में क्षत्रिय जाति की लकड़ी की बनाई हुई नौका

१ ये समुद्रगा वृद्धयाधनं गृहीत्वा अधिक लाभार्थ प्राण—
धन विनाश शङ्कास्थानं समुद्रं गच्छति ते विशं शतकं
मासि मासि दद्युः (याज्ञवल्क सहिता)

२ उन्नत मीषच्छृगं नौ संस्थाने विशालता प्रोक्ता
नाविक पीड़ा तस्मिन् भवति शिवं सर्वं लोकस्य ॥ (वृ० ४-८)

३ चित्रास्थे प्रमदाजन लेखक चित्रज्ञ चित्रभाण्डानि।
स्वातौ मगधचर दूत सुत पोलप्लवनहाधरः (वृ० १०-१०)

४ लघुयत् कोमलं काष्ठं सुघटं ब्रम्ह जातितत्
दृढाङ्गं लघुयत् काष्ठ मघटं क्षत्रजातितत्
कोमलं गुरुयत् काष्ठं वैश्य जाति तदुच्यते
दृढाङ्गं गुरु यत्काष्ठं शूद्र जाति तदुच्यते।

उत्तम होती है और समुद्र में व्यापार के कार्य के योग्य होती है[२] भोज लिखता है कि सामुद्रिक नौकाओं में लोह का प्रयोग करना उचित नहीं है क्योंकि इससे उनको समुद्र गत चुम्बक लोहे के पहाड़ खीच लेंगे।[३]

महाराजा भोज के ही सदृश युक्ति कल्पतरु में भिन्न २ प्रकार के सामुद्रिक पोतों की लम्बाई चौड़ाई दी हुई है जो कि इस प्रकार है।—

	नाम	लम्बाई क्यूबिट्स में	चौड़ाई क्यूबिट्स में	ऊंचाई क्यूबिट्स में
(१)	क्षुद्रा	१६	४	४
(२)	मध्यमा	२४	१२	८
(३)	भीमा	४०	२०	२०
(४)	चपला	४८	२४	२४
(५)	पटला	६४	३२	३२
(६)	भया	७२	३६	३६

(२) क्षत्रिय जाति काष्ठैर्घटिता भोजमते सुखसंपदं नौका
(३) नसिन्धुगाश्चार्हति लौहबन्धं तल्लोह कान्तै ह्रियते हिलौहम्
विपद्यते तेन जलेषुनौका गुणेनेवान्धं निजगाद भोजः—

राजहस्त मितायामा तत्पाद परिणाहिनी।
तावदेवोन्नता नौका क्षुद्रे तिगदिताबुधैः॥
अतः सार्धं मिता यामा तदर्धं परिणाहिनी।
त्रिभागेणोत्थिता नौका मध्यमेति प्रचक्षते॥
क्षुद्राथ मध्यमा भीमा चपला पटलाभया।
दीर्घा • पत्रपुटाचैव गर्भरामन्थरा तथा॥

	नाम	लम्बाई	चौड़ाई	पच्चाई
	दीर्घा	८८	४४	४४
	पत्र पुटा	९६	४८	४८
	गर्भरा	११२	५६	५६
	मन्थरा	१२०	६०	६०
उत्तम	तरणी	४८	६	४ ४/५
	लोला	६४	८	६ २/५
	गत्वरा	८०	१०	८
	गामिनी	९६	१२	९ २/५
	तरि	११२	१४	११ १/५
	जङ्घाला	१२८	१६	१२ ४/५
	प्लाविनी	१४४	१८	१४ २/५
	धारिणी	१६०	२०	१६
	वेगिनी	१७६	२२	१७ ३/४
अति उत्तम	ऊर्ध्वा	३२	१६	१६
	अनूर्ध्वा	४८	२४	२४
	स्वर्णमुखी	६४	३२	३२
	गर्भिणी	८०	४०	४०
	मन्थरा	९६	४८	४८

युक्ति कल्पतरु में "किस २ प्रकार की नौका में कौन २ सी धातु का प्रयोग होना चाहिये" इसपर विस्तारपूर्वक लिखा है। परन्तु हमारा जो कुछ इस प्रकरणके लिखने का तात्पर्य है वह यही है कि संपत्ति-शास्त्र के विद्यार्थियों को यह पूर्ण तौर पर पता लग जावे कि प्राचीन काल से ही भारतवर्ष नौ-व्यवसाय-प्रधान देश था। पूर्व लिखित प्रमाणों के अतिरिक्तअन्यभी बहुत से प्रमाण हैं जिनसे यही सिद्ध होता है कि सहस्रों वर्षों से भारत में नौ व्यवसाय दिन पर दिन उन्नति ही करता चला गया। इसी को दिखाने के लिये अब द्वितीय उपप्रकरण प्रारम्भ किया जावेगाः—

मौर्य-काल से मुसलमानी काल तक नौ व्यवसाय

I. मौर्य काल।

मौर्य-काल से ही हमें एक नियमितरूपेण भारत का इतिहास मिलता है अतएव सामुद्रिक व्यापार और आवागमन की साक्षियां भी यहीं से मिलनी प्रारम्भ होती हैं। एरियन, कर्टियस मेगस्थनीज़ आदि अनेक ग्रीक लेखकों के लेखों की साक्षियां हमारा पक्ष पुष्ट करती हैं। इन्हीं की साक्षियों के आधार पर कहा जा सकता है कि तात्कालिक भारत में पोत निर्माण की कला या कौशल एक हरा भरा उद्योग था—शायद इसको सामुद्रीय व्यापार ने उत्साह दिया होगा। सिंकदर ने

भारत में बनी नौकाओं के द्वारा सिंध नदी का पुल तैयार किया था। तक्षशिला नरेश अम्भी महाराज के साम्राज्य में सिकन्दर ने ऐसी नौकाएं तैयार कराई थीं जो कि टुकड़ों में विभक्त हो सकती थीं। महासेनानी नियार्कस ने फारस की खाड़ी में जाते समय भारतीय नौकाओं का संग्रह किया था। इस संग्रह में, एरियन के अनुसार ८०० कर्टियस और डायोडोरस के अनुसार १००० और ठोलेमी की अधिक विश्वसनीय गणना के अनुसार २००० नौकायें थीं।

महाशय विन्सेन्ट स्मिथ लिखते हैं कि आईनई अकबरी के अनुसार मुगल साम्राज्य के दिनों में पञ्जाब के ४०,००० पोत सिन्ध नदी के व्यापार में लगे हुये थे। यही व्यापार था जिससे सिकन्दर बहुत बड़ा जहाजी बेड़ा तैय्यार कर सका। वीर सिकन्दर की सेना में १२४०००० मनुष्य थे जो कि जहाजी बेड़े से धीरे धीरे क्रमशः स्वदेश में पहुंचे। इसी प्रकार डाक्टर राबर्टसन का मत है कि प्रथम इस बात पर विश्वास नहीं होता कि सिकन्दर ने इतना बड़ा बेड़ा तय्यार किया होगा पर जब हम यह देखते हैं कि भारत का पञ्जाब प्रान्त व्यापार योग्य नदियों से पूर्ण था और तात्कालिक पोतों से उन नदियों की पीठ घिरी रहती थी तब उपरोक्त बात विश्वसनीय प्रतीत होने लगती है। यदि हम सेमिरेमस की चढ़ाई पर विश्वास करें तो उसको रोकने के निमित्त

सिन्ध नदी पर ४००० से कम पोत एकत्रित न किये गये होंगे महमूद ग़ज़नी के भारताक्रमण को रोकने के लिये भी ४००० पोत एकत्रित हुये थे। आईन ई अकबरी से पता लगता है कि उस समय भी सिन्ध-तट निवासी जातियों के पास कम से कम ४०००० से कम पोत नहीं थे।"

एरियन ने तात्कालिक पोत निर्माणविद्या के विषय में बहुत कुछ लिखा है। प्लिनी ने भी उसी की बात को पुष्ट किया है।

महाराज चन्द्रगुप्त की साम्राज्य सम्बन्धी ६ परिषदों में से एक परिषद् नौ।सेना की थी जिसका प्रबन्ध विभाग बहुत प्रसिद्ध है। इस परिषद् का वर्णन स्ट्राबो आदि विदेशी लेखकों ने किया है।

कौटिल्यअर्थ शास्त्र में भी इसका अपूर्व वर्णन मिलता है इस परिषद् का अध्यक्ष नावाध्यक्ष कहाता था जो कि अद्यकालीन Port Commissioner के समानाधिकारी प्रतीत होता है।

II अन्ध्र और कुशान वंश–

भारत में मौर्य वंश के अंतिम राजा के बाद अनेक राजनैतिक परिवर्तन हुए, परन्तु सामुद्रिक मार्ग द्वारा व्यापार बढ़ता ही गया। ईसवी सन के शुरू होने पर भारत के उत्तरीय भाग में कुशान वंश और दक्षिण में अन्ध्र वंश प्रधान थे। इन्हीं दिनों में रोम के साथ भारत का व्यापार बढ़ा और भारत की

नौ शक्ति पूर्वापेक्षा बहुत ही अधिक बढ़ गई। रोमन मुद्राएं तथा रोमन ग्रंथ इस बात को विशेष रूप से पुष्ट करते हैं।

दक्षिणीय भारत के प्रसिद्ध इतिहास लेखक म० आर० सी० बैल का मत है कि "अन्ध्र काल" (२२० ईस्वी पूर्व से २५० पश्चात् तक) में भारत की समृद्धि बढ़ी। जहाज़ों के द्वारा पश्चिमीय एशिया, ग्रीस, रोम, मिश्र, चीन और पूर्व के साथ व्यापार होता था। दक्षिणीय भारत से रोम में प्रायः राजदूत आया जाया करते थे। सीरिया की प्रसिद्ध लड़ाई में भारत के हाथी मौजूद थे।" प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्लिनी का कथन है कि "भारत में रोमन मुद्राओं की बड़ी २ राशियां प्रति वर्ष आती थी। पेरिप्लस नामी लेखक ऊपरोक्त कथन का समर्थन करता हुआ कहता है कि रोम की मुद्रायें भारत में विशेषतः दक्षिणीय भारत में बहुतायत से पाई जाती थीं।" इसी समय के विषय में भाण्डार कर भी कहते हैं कि "इस प्राचीन समय में भारतीय व्यापार अच्छी हरी भरी दशा में रहा होगा।"

आन्ध्रों के सदृश ही कुशान साम्राज्य में भारत की समृद्धि बढ़ी। कुशान वंशीय महाराज कनिष्क का साम्राज्य हेड्रियन साम्राज्य से मिला हुआ था। रेशम, रत्न, मसाले आदि के बदले में रोम से भारत में धन आता था। उत्तरीय भारत की अपेक्षा दक्षिण में रोमन सिक्के आज तक भी

अधिक राशि में पाये जाते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि उत्तरीय भारत के कुशान वंशीय महाराज रोमन मुद्राओं को पिघला कर अपनी मुद्राओं में परिवर्तित कर लेते थे। इसके सिवाय अन्ध्र मुद्राओं की साक्षी अधिक महत्व की है। पूर्वी किनारे में मिले हुये अन्ध्र सिक्कों पर बृहदाकार के दो मस्तूल वाले जहाज़ की प्रतिमा पायी जाती है—इससे स्पष्ट है कि उस समय अवश्य ही सामुद्रिक व्यापार समृद्ध होगा।

III गुप्त वंश के समय से हर्षवर्धन तक

गुप्तवंश के समुत्थान के समय भारत के अन्तर्जातीय जीवन में परिवर्तन होता है। बौद्धमत के स्थान में पौराणिक मत की प्रबलता होती है। इसपर भी व्यापार में कुछ भी विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। निस्संदेह रोम ने भारत के सामान को बहिष्कृत करने का यत्न किया; साथही पौराणिकों के साम्प्रदायिक विश्वास "समुद्र पार न जाने" ने भी सामुद्रिक व्यापार को बहुत बड़ा धक्का लगाया परन्तु इसका सर्वथा लोप न हुआ। विन्सेन्ट स्मिथ का कथन है कि इस समय बङ्गाल की खाड़ी और अरब सागर व्यापारीय जहाज़ों से घिरे रहते थे—चोलराज्य के पोत समूह समुद्रीय व्यापार करते हुए गङ्गा और ईरावदी में भी जाते थे। साथही मलाया द्वीप समूह में पहुंचने के निमित्त हिन्द महासागर

को भी पार करते थे।" कलिङ्ग का पूर्वीय राज्य इस समय एक समृद्ध और वैभवशाली राज्य था। इस राज्य के कई एक शिला लेखों से विदित होता है कि पोतविद्या का जानना तात्कालिक राजाओं की शिक्षा का एक प्रधान अङ्ग था। उन दिनों में चिल्का झील पर एक अच्छा बन्दरगाह था जहां पर भिन्न २ देशों के पोतों के झुण्ड के झुण्ड आकर ठहरते थे। सर० ए० पी० फेयर कहते हैं कि पेगू में हिन्दु चिन्हों से अङ्कित मुद्राओं से मालूम होता कि इस समय (३०० ई० के निकट) भारत का विदेशीय राष्ट्रों देशों के साथ व्यापार अति समृद्ध था। सर वाल्टर पेलियर का कथन है कि "भारत के पूर्वीय ओर के निवासियों का व्यापार बङ्गाल की खाड़ी के पार रहने वालों के साथ अवश्य ही चढ़ बढ़ कर होगा।

जावा उपनिवेश का बसाना सबसे बढ़चढ़ कर महत्व का और तात्कालिक इतिहास को देदीप्यमान करने वाला कार्य है। चीनी यात्री फ़ाहीन ने स्वदेश लौटते हुये जावा को हिन्दुओं के उपनिवेश के रूप में देखा था। यह यात्री ब्राम्हण व्यापारियों के पोत में बैठ कर ही स्वदेश को लौटा था। डा० भाण्डारकर का कथन है कि भारतियों के द्वारा इस उपनिवेश के बसाने में दो शिला लेखों की साक्षी है। इसी सम्बन्ध में एक कथा भारतेतिहास में सुनी जाती है। उस कथा का सारांश इस प्रकार है कि "गुजरात नरेश अपने ५००० साथियों सहित

छः बड़े और सौ छोटे पोतों में बैठकर जावा की ओर ६०३ ईस्वी में रवाना हुआ।" यह कथा तात्कलिक सामुद्रीय शक्ति की साक्षी है। उस समय बंगाली वीर सेनाओं से सुरक्षित पोतों को चलाते थे, और विदेशी यात्रियों को उनके देशों में पहुंचाते थे। अद्भुत बात तो यह है कि जापानी मन्दिरों को धार्मिक प्राचीन पुस्तकों की लिपी ११ वीं शताब्दी की बङ्गला भाषा है। चित्रकारों और चित्र परीक्षकों का कथन है कि जावा के मन्दिरों में अन्य भारतीय देशों के चित्रों के साथ २ बङ्गाली चित्र भी पाये जाते हैं। उन चित्रों में कई एक चित्र भारतीय पोतों के भी मिलते हैं—जिन से बिलकुल साफ़ है कि धार्मिक' व्यापारिक और उपनिवेश बसाने की प्रबल अभिलाषाओं की पूर्ति के लिये भारतीयों ने लङ्का, जावा, सुमात्रा, चीन और जापान में प्रवेश करने के लिये किस प्रकार के जहाज़ बनाये थे। बङ्गाल की पौराणिक गाथाओं में अनेक वर्णन ऐसे मिलते हैं जिनसे उनके पोत निर्माण काल को अवश्य ही समुद्रीय व्यापार का प्रसिद्ध और समृद्ध काल मानना पड़ता है। हर्ष के राज्यकाल में सामुद्रिक कार्यों का क्षेत्र जावा और सुमात्रा के छोटे २ उपनिवेशों के आगे चीन और जापान तक बढ़ जाता है। इस समय चीन और जापान भी पारस्परिक व्यापार और समागम की माला में पिरोये गये। चीन के इतिहास से सिद्ध होता है कि चीन लङ्का

के साथ समागम निरंतर कई वर्षों तक समुद्र द्वारा रहा है, जिन लोगों ने चीन में बुद्ध के धर्म का प्रचार किया और चीनी भाषा में बौद्ध-धर्म पुस्तकों का अनुवाद किया वह सब प्रायः जल मार्ग द्वारा ही यहां से गये थे। चीनी यात्री ह्यूनसाङ्ग (६३० के निकट) कहता है कि गुजरातियों की आजीविका के साधनों में से एक साधन समुद्रीय व्यापार था। फारिस में हजारों हिन्दू लोग बसे हुये थे।

चीनी यात्री 'आई शुइङ्ग' जो ६७३ में भारत में आया था चीन और भारत के सामुद्रिक समागम के विषय की साक्षियां देता है। उसने ७ वीं शताब्दी में भारत में आने वाले ६० चीनी यात्रियों का भारत-वृत्तान्त लिखा है-इससे मालूम होता है कि सुवर्ण भूमि भारत का चीन से निरंतर समुद्रीय समागम था और भारत से चीन तक के किनारे के समस्त द्वीपों में भारत के उपनिवेश और बन्दर थे। इन्हीं स्थानों में पूर्वीय सागरों में पोत चलाने वाले ठहरते थे।

जापान की प्राचीन गाथाओं में अनेक भारतीय भिक्षुओं का वर्णन है जिन्होंने जापान को धर्म-शिक्षा, संस्कृत और औद्योगिक शिक्षा का पाठ पढ़ाया। जापान की राजकीय इतिहासों की साक्षियां दिखाती हैं कि भारत से ही वहां पर रुई का ज्ञान और रुई के बीज पहुंचे। दो विचारे अभागे भारतीय समुद्र मार्ग भूल जाने के कारण समुद्रीय लहरों में बहते हुए वहां

पहुंचे। १० वीं और ११ वीं शताब्दियों के चोल महाराजाओं के समय भारत में नौ व्यवसाय विशेष उन्नति पर पहुंच गया। प्रथम महाराजा राजराज के पास एक महती नौसेना थी जिसके द्वारा उसने अनेक सामुद्रिक विजय की। तीसरे राजा के शासन काल के १३वें वर्ष के शिला लेखों से पता लगता है कि उसकी नौ सेना भारत में सब से बड़ी सेना थी। उसने संपूर्ण लङ्का और भारत महासागर के असंख्य द्वीप (लगभग १२०००) जीते जो संभवतः लंका द्वीप समूह और माल द्वीप समूह होंगे। इस प्रकार साफ़ है कि चोल नरेशों की नौशक्ति बहुत बढ़ी हुई थी और इसका प्रभाव बङ्गाल की खाड़ी के पार के द्वीपों तक फैला हुआ था। चीन भी इसके प्रभाव से वंचित न रह सका था। चीन दरबार में चोल राजाओं के दो राजदूतों के जाने का वर्णन मिलता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय नौ व्यवसाय मौर्य काल से मुगलों के आक्रमण तक विशेष उन्नति पर था।

मुसलमानी काल में नौ व्यवसाय की उन्नति

भारत के नौका व्यापार तथा व्यवसाय की मुसलमानों के राज्य में क्या अवस्था हुई उस पर अब कुछ शब्द लिखे जावेंगे।

अरब लोगों के भारत पर आक्रमण का एक मुख्य कारण

तथा ऊमान के व्यापारियोंका केन्द्र हो गया। चीनी जहाज भड़ोच में ठहरते हुये दीवाल जाया करते थे। १३वीं सदी में गयासुद्दीन वल्वन से बङ्गाल के शासक तुग्रिलखान ने अपने आपको स्वतन्त्र कर लिया था। इसपर वल्वन ने एक अपूर्व बड़ी सामुद्रिक सेना एकत्रित की और बङ्गाल के शासक पर आक्रमण कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि वल्वन के हाथ में संपूर्ण बंगाल आगया। इसी सदी में मार्को पोलो तथा डमास्कस निवासी अबुलफदा ने भारत की यात्रा की।

मार्कोपोलो के वर्णन से पता लगता है कि उसके समय में मालाबार तट मोतियों के निकालने वाली नौकाओं से भरा रहता था और गुजरात का सामुद्रिक तट डाकू जहाज़ों का अड्डा था। सकोतरा में यह डाकू अपने २ लूट का सामान बेचते थे।

कम्बे में से नील तथा सूती वस्त्र विदेश में जाते थे। मार्को-पोलो लिखता है कि अदन में सैकड़ों भारतीय जहाज़ प्रत्येक समय विद्यमान रहते थे। भारतीय नौ व्यवसाय के विषय में उसका कथन है कि "हिन्दुस्तानी कारीगर टिम्बर लकड़ी की सामुद्रिक नौकाएं बनाते हैं। इनकी बड़ाई का इसी से अनु-मान कर लेना चाहिये कि इनपर ६ हजार काली मिर्च, लौंग आदि की बोरियां रखी जा सकती थीं और इनको ३०० मनुष्य केवल चलाने ही वाले होते थे। इनके साथ बहुत सी छोटी

छोटी अन्य नौकायें बंधी रहती थी जो कि मछली आदि पकड़ने का कार्य भी समय समय पर करती रहती थीं।

१४वीं सदी में भिक्षु ओदोरिक की भारतीय सागर से यात्रा का वर्णन हमको मिलता है। जिस भारतीय जहाज में वह बैठा था उसमें ६०० यात्री और बैठे थे। इतने बड़े जहाज का संचालन इसी बात को सूचित करता है कि उस समय भारतवासी इस कार्य में कितने उन्नत हो चुके थे। सोमनाथ तथा चीन के बीच में राजपूती जहाजों का प्रायः आवागमन था। मुहम्मद तुग़लकने ईबनूबतूता को चीन में राजदूत के तौर पर भेजा था। इस प्रसिद्ध यात्री ने भी मालावार के विषय में उन्हीं बातों का उल्लेख किया है जो कि मार्को पोलो ने प्रगट की थीं। मालावार तथा अरब के बीच में घोड़ों का व्यापार होता था। अब्रूबक्र के काल में १०००० घोड़े प्रति वर्ष भारत में आते थे। मार्को पोलो का इसी विषय में शब्द है कि देश का बहुत सा धन इसी व्यापार में खर्च होता था।

उत्तरीय भारत में १३५३ तथा १३६० सन् में लखनौती के विरुद्ध दो भयंकर सामुद्रिक आक्रमण सुल्तान फीरोजशाह तुगलक ने किये। इसी प्रकार १३७२ में ताता के विरुद्ध सम्राट् फीरोजशाह ने आक्रमण किया। सिन्ध नदी को पार करने के लिये ५००० पांच हजार नौकाएं एकत्रित की गयीं। इन नौकाओं के द्वारा ९० हजार अश्वारोही तथा ४८० हाथी सिन्ध

नदी के पार किये गये। यह सब घटनायें एक ही बात को प्रगट करती हैं कि भारत में नौ व्यवसाय अपूर्व अत्यद्भुत उन्नति को प्राप्त कर चुका था।[१]

१३८८ में तैमूर ने दोही दिन में सिन्ध नदी का नौका वाला पुल बनाया और अपनी बड़ी भारी सेना के साथ भारत पर आक्रमण किया। तैमूर को भिन्न २ नदियों पर बहुत से सामुद्रिक युद्ध करने पड़े जो कि मुसलमानी काल के इतिहास को पढ़ने वालों को पता ही है।

पन्द्रवीं सदी में भारत के नौ व्यवसाय ने कितनी उन्नति कर ली थी इसका अब्दुलरजाक[२] ने विस्तृत तौरपर वर्णन किया है, उसकी सम्मति में कालीकट बन्दरगाह संसार में नौ व्यवसाय का केन्द्र था, उसके शब्द हैं कि "कालीकट से सामुद्रिक पोत लगातार मक्का को जाते हैं। डाकू जहाज़ों का यह साहस नहीं है कि वह कालीकट के जहाज़ों पर लूटमार मचा सकें। कालीकट के नगर से व्यापार करने में बहुत ही अधिक सुरक्षण है। विदेशीय जातियां निर्भयता से अपने २ पदार्थों को इस नगर में भेज देती हैं। नगराध्यक्ष का प्रबंध अतिशय उत्तम है, वह अत्यंत अधिक सावधानी से उनके पदार्थों को विकवा देता

(१) Tasikh-i-Fisayshahi, in Elliot, Vol. III. pp. 293.

(२) India in the Fifteenth Century (Hakluyt. Society's Publication) i. 14. i, 19.

है। विकने के अनन्तर $\frac{1}{4}$ कर के तौर पर ले लेता है। यदि कोई भूला भटका जहाज नगर में आ पहुंचे तो उसको लूटा नह जाता है। जिस स्थान पर वह जाना चाहता है उस स्थान का उसको मार्ग बता दिया जाता है। परन्तु संसार के अन्य देशों तथा नगरों में यह बात नहीं है। वह लोग भूले भटके जहाज को लूट लेते हैं और लूटने में कारण यह बताते हैं कि परमात्मा ने ही उनके पास वह जहाज़ लूटने के लिये भेजा है।"

१५ वीं सदी के आरम्भ आरम्भ में निकोलो काली (Nicalo cali) ने भारत की यात्रा की थी। उसका भारतीय व्यापारियों के विषय में कथन है कि वह अति समृद्ध होते हैं। उसके शब्द हैं की

"They are very rich, so much so that some will carry on their business in Forty of their own ships, each of which is valued at 15000 gold pieces."

(India is the Fifteenth century.)

अर्थात् भारतीय व्यापारी बहुत ही धनाढ्य हैं। उनमें से बहुत से व्यापारी अपना व्यापारीय कार्य अपने ४० चालीस २ जहाज़ों द्वारा करते हैं। जिनमें से प्रत्येक जहाज़ का मूल्य १५००० मोहरों के बराबर होता है"।

गुजरात के सम्राट् मुहम्मद की (१४५९–१५११) नौशक्ति

इतिहास प्रसिद्ध है। इसने सामुद्रिक डाकुओं को पकड़ने का बड़ा भारी यत्न किया था। कालीकट के विषय में पूर्व भी उल्लेख किया जा चुका है। १६ वीं सदी में इस नगर ने नौव्यवसाय में और भी अधिक उन्नति करली थी। महाशय वर्थेमा Varthema ने इस नगर के विषय में लिखा है कि "इस नगर के शिल्पियों ने नौका निर्माण में बड़ी भारी उन्नति की है। इनके भिन्न २ प्रसिद्ध जहाज़ों के नाम निम्न-लिखित हैं।

(१) सम्भूची

(२) कपिल

(३) पारू

(४) छुतुरी

(५) फस्ता

इस प्रकार पाठकों को पता लग गया होगा कि पठानी काल में भारत ने नौ व्यवसाय में कितनी उन्नति की थी। अब मैं यह दिखाने का प्रयत्न करूंगा कि मुग़ल काल में भी नौ व्यवसाय दिन पर दिन समुन्नत होता ही चला गया था।

सम्राट अकबर ने अपनी वीरता तथा चतुरता से संपूर्ण भारत को वश में किया और चिरकाल से लुप्त राजनैतिक राजत्व को पुनः भारत में जन्म दिया। अकबर से पूर्व २ तक नौ व्यवसाय का कोई निश्चय इतिहास हमको नहीं मिलता

है। भिन्न २ यात्रियों के कथनों से ही नौ व्यवसाय की उन्नति को हमने दिखाने का यत्न किया था। १५२८ में बाबर ने कन्नौज के निकट एक अति प्रसिद्ध नाविक युद्ध किया था। उसके अनन्तर अकबर तक कोई नौ युद्ध संबंधी घटना का हमको ज्ञान नहीं है ।

आईन ई अकबरी के पढ़ने से पता लगता है कि अकबर ने ढाका को भारत की नाविकशक्ति का स्थान नियत किया था। वहीं पर संपूर्ण लड़ाकू पोत रहते थे और समय समय पर समुद्र में दूर दूर तक डाकू जहाजों का पीछा करने के लिए जाते थे। अकबर के नौ विभाग के मुख्य रूप से चार कार्य थे।

(१) नौकाओं की संख्या तथा उनके निर्माण का निरीक्षण करना-

(२) नौकाओं के चलाने वाले योग्य योग्य व्यक्तियों का प्रबन्ध करना जिनके नाम निम्नलिखित हैं।

(क) नखोदा : नौ सेनापति

(ख) मालिम : नौका को मार्ग दिखाने वाला

(ग) टंडेल : मल्लाहों का मुखिया

(घ) नखोदा खशेव : नौ यात्रियों के भोजन सामग्री का प्रबन्ध करने वाला।

(ङ) शिहंग : नौका के भिन्न २ भागों को देखने

वाला। यदि उनमें कोई विकार होगया हो तो उसका प्रबन्ध यही करता था।

(च) भंडारीः नौका पर लादी गई भोजन सामग्री का देने वाला

(छ) करानी : नौका के आय व्यय लेखक

(ज) सुकंगीक : कर्णधार

(झ) पन्जरी : भिन्न २ घटनाओं को प्रगट करने वाला।

(ञ) गुभ्री : जहाज से पानी निकालने वाला

(ट) तोप तथा बन्दूक चलाने वाले

(ठ) खर्वाह=मल्लाह

(३) नदियों का निरीक्षण करना। भिन्न २ स्थानों पर कर आदि का नियत करना।

(४) तटकर लगाना। अकबर के काल में $२\frac{१}{२}$ प्रति शतक से अधिक तटकर न था। नदियों में चलने वाली नौकाओं पर एक रुपये से दो आने तक कर था। जो जैसी नौका होती थी उस पर वैसा ही कर लिया जाता था।

१५८२ में राजा टोडरमल ने बंगाल के आय व्यय का प्रबन्ध किया था। उसने कुछ एक परगनों को राजकीय पोतों के निर्माण के लिये ही नियत कर दिया था। नौ सेना के प्रबन्ध में २६२८२ रूपये प्रति मास साम्राज्य के खर्च होते थे।

इसीमें यदि पुरानी नौकाओं के सुधारने आदि का व्यय भी यदि शामिल कर लिया जावे तो यह व्यय ८४३४५२ रुपये तक पहुंच जाता है। साम्राट् ने नीवट को उत्तम भूमियां नोका निर्माण करने वाले शिल्पियों को दे दी थो। यही नहीं कुछ एक परगनों को नौशिल्पियों के निर्वाह के लिये सम्राट अकबर ने लगान से मुक्त कर दिया था। यह स्थल पाठकों को ध्यान से पढ़ना चाहिये। क्योंकि इसी स्थान पर व्यवसायों के समुत्थान का रहस्य छिपा हुआ है। शोक को बात है कि मुसलमानी सम्राटों को आंग्ल इतिहासज्ञ बदनाम करते हैं। न्याय की दृष्टि से देखा जावे तो भारत की उन्नति में मुसलमानी सम्राटों का बड़ा भारी भाग है। उनके काल में प्रत्येक प्रकार के भारतीय व्यवसाय हुए। शिल्प तथा चित्रणकला ने नवीन जीवन प्राप्त किया। भारत सोने की चिड़िया पूर्ववत ही बना रहा।

राजनीति शास्त्र को उचित तौर पर समझने वाले लोग समझ बैठते हैं कि भारतवर्ष मुसलमानी काल में परतन्त्र था। परन्तु उनका यह समझना सर्वथा भ्रममूलक है। भारत का वैयक्तिक स्वातन्त्रय तो चन्द्रगुप्त के काल ही में बहुत कुछ नष्ट हो गया था परन्तु वैयक्तिक स्वातन्त्रय का खोना और परतन्त्र हो जाना भिन्न वस्तु है। मुसलमानो सम्राट भारत में ही रहते थे। यदि यह कुछ रुपया जबर्दस्ती किसी व्यक्ति से

छीनते थे तो वह रुपया किसी अन्य देश में तो जाता ही न था। वह रुपया भारत ही में खर्च होता था और भारत के व्यवसायों को समुन्नत करने में भाग लेता था। वास्तविक तौरपर भारतवर्ष यदि कभी परतन्त्र हुआ है तो आंग्ल काल में ही परतन्त्र हुआ है। परिणाम इसका यह हुआ है कि अब भारत में किसी प्रकार का भी व्यवसाय दृष्टिगोचर नहीं होता है। अस्तु इस प्रकरण को यहीं पर छोड़ कर के अब मैं पुनः उसी प्रकरण को प्रारंभ करता हूं।

अकबर के काल में ही योरुपियन जातियों की शरारत प्रारंभ होती है। सार्वभौम संपत्तिशास्त्र में पूंजी की उत्पति प्रकरण में इस विषय पर कुछ इशारा किया भी जा चुका है। योरुपियन जातियां मध्यकाल में दास व्यापार करती थीं। रुपया प्राप्त करने में यदि किसी प्रकार का पाप कर्म उनको करना पड़े तो वह उसको करनेसे कभी भी न चूकती थी। अकबर के राज्य काल में ही योरुपियन जातियों ने डाकुओं का घृणित काम करना प्रारंभ किया। एक परशियन लेखक लिखता है कि "फिरङ्गी लोग हिन्दू तथा मुसलमान को

(१) They carried off the Hindus and Moslems...... .... under the decks of their ship......and sold them to the each, English and French merchants at the ports of the Deccan. Sometimes they brought the Captives for sale at a high price to Tomluk and the port of Balasore.

History of Indian Shipping. p. 212.

(अकेला देख करके) जबर्दस्ती पकड़ लेते थे और उनको अपने जहाजों में ले जाते थे। दक्षिण में आंग्ल, फ्रेञ्च तथा डच व्यापारियों के हाथ में उनका विक्रय किया जाता था। कभी कभी उन लोगों को तामलूक तथा बालासोर बन्दरगाहों में अधिक दाम पर भी बेचा जाता था।" इन डाकुओं से बङ्गाली जनता को बचाने के लिये ढ़ाका पर अवस्थित नौ सेना दिनों दिन यत्न करती रहती थी।

बंगाल के अतिरिक्त सिंध प्रदेश में भी नौ-निर्माण का पर्य्याप्त प्रबन्ध था। अबुलफजल का कथन है कि ४० हजार नौकायें हर समय उस प्रदेश में सन्नद्ध रहती थी। वह किराये पर चलती थीं। सिंध में लाहौरी बन्दर इस व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध था।

अकबर के पास नौ सेना थी इसका प्रबल प्रमाण उसके नौ युद्ध ही हैं। समय समय पर उसने इस प्रकार नौ युद्ध किये।

(१) १५८० में राजा टोडरमल एक हजार नौकाओं के साथ गुजरात में 'लगान' का निर्णय करने के लिये गया।

(२) १५९० में खानई खाना का मिर्जा जैनी बेग के साथ नौ युद्ध होता है जिसमें जैनी बेग हारता है।

(३) १५९४ में अकबर ने बङ्गाल विहार में अत्यंत प्रसिद्ध नौ युद्ध किये।

(४) १५८९ से १६०४ तक राजा मानसिंह बंगाल के शासक थे उनके काल में कुछ एक नौ युद्ध बंगाल में हुए हैं जिनका वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

श्रीपुर के राजा केदारराय ने १६०२ में मुगलों से सन्द्वीप को छीन लिया। यह अराकान के राजा को सहन न हुआ। इस पर उसने १५० लड़ाकू जहाजों को सन्द्वीप के विजय के लिए भेजा। परंतु केदारराय के सम्मुख उन जहाज़ों की कुछ भी न चली। राजा मानसिंह ने भी केदारराय को दबाना चाहा परन्तु प्रथम यत्न में वह भी निष्फल हुआ। १६०४ में मानसिंह ने केदारराय को पराजित करने के लिये बड़ा भारी यत्न किया और बड़ी भारी नौ सेना तैय्यार की। इस युद्ध में केदारराय पकड़ा गया और कुछ ही दिनों में घाव के कारण मर गया।

(५) रामचन्द्रराय के अधिपतित्व में बक्र नामी राष्ट्र ने भी नौशक्ति प्राप्त की। यह प्रतापादित्य नामी जैसोर के राजा से पराजित हो करके भाग गया। रामचन्द्रराय के उत्तराधिकारी कीर्तिनारायण ने नौशक्ति को प्राप्त करके फिरंगियों को अपने समुद्र से सदा के लिये बाहर कर दिया।

अकबर के काल में निम्नलिखित स्थान नौ व्यवसाय के लिए बंगाल में प्रसिद्ध थे।

(१) सन्द्वीप
(२) दूधाली
(३) जहाज घाट
(४) चाकसी
(५) टंडा
(६) वक्क
(७) श्रीपुर
(८) सोनारगेयान
(९) सनूगेयान
(१०) धार

धार नगर प्राचीन काल से नौ व्यवसाय का केन्द्र था। यहां के व्यापारी अत्यन्त अधिक साहसी थे। महाशय हन्टर ने तीन व्यापारियों का वर्णन किया है जिन्होंने भारत से नौकाओं पर चढ़ करके फारस की खाड़ी से होते हुये रूस तक लगातार यात्रा की और रेशम का माल वहां पर पहुंच करके बेचा धार नगर की जन संख्या २ लाख थी। इस नगर का व्यापार इस सीमातक बढ़ा हुआ था कि नगर की गलियों में मालों से भरी हुई गाड़ियां हर समय खड़ी रहती थी। बाज़ारों में भीड़ ऐसी रहती थी वहां चलना तक कठिन हो जाता था प्रत्येक वर्ष ५० जहाज रेशमी तथा सूती वस्त्रों से लद करके इस नगर से बाहर जाते थे। यह सम्पूर्ण

वर्णन डिवर्टास नामी विदेशी यात्री ने किया है। बंगला की पुस्तकों में भी इस नगर के विषय में स्थान २ पर वर्णन मिलता है। इस प्रकार पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि अकबर के काल में भारत का नौ व्यवसाय कितना समुन्नत था। अब हम अत्याचारी सम्राट् औरंगजेब के समय पर भी कुछ शब्द लिख देना आवश्यक समझते हैं। आश्चर्य से कहना पड़ता है कि औरंगजेब अत्याचारी चाहे कितना ही क्यों न होवे परन्तु नौव्यवसाय को उसने भी समुन्नति दी। इससे इस देश को जो लाभ पहुंचा होगा उसका पाठकगण स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं।

अकबर की मृत्यु के अनन्तर १६०५ में बंगाल के शासक इस्लामखान ने बंगाल की राजधानी राजमहल के स्थान पर ढाका को बना दिया। इस्मालखान ने कई एक सामुद्रिक युद्ध किये जिनका संक्षेपतः वर्णन कर देना आवश्यक ही प्रतीत होता है।

(१) इस्लामखान ने अराकान के राजा को बड़ी भारी शिकस्त दी। इसकी सेना में १००० पुर्तगाली तथा अन्य सामुद्रिक डाकू भी थे।

(२) १५६६ में कूच विहार के शासक लक्ष्मीनारायण के विरुद्ध एक बड़ी भारी सेना के साथ आक्रमण किया गया।

सेना में ४००० घोड़े २ लाख पदाति, ७०० हाथी और १ हजार जहाज थे।

(३) १६०० में वा कुचहेजा के राजा पारोकट के साथ युद्ध करने के लिए शाही सामुद्रिक सेना भेजी गई। इसमें पारीकट पकड़ा गया।

(४) पारीकट के भाई बलदेव ने कोची तथा असामी जातिकी सेनाओं को एकत्रित करके शाही सामुद्रिक सेना को परास्त किया और १६३८ में ढ़ाका पर भी आक्रमण किया परन्तु वहां इसलाम खां की नौ सेना द्वारा परास्त हुआ।

इसलाम खां के अनन्तर बंगाल के अन्य शासक भी नौ व्यवसाय की समुन्नति में दत्तचित्त रहे। बहुत से जिलों की आय नौ शिल्पियों के भरण भोषण में ही खर्च होती थी। औरंगजेब के राज्य में १६६० में मीर जुमला बंगाल का शासक बनकर आया। इसने बंगाल की नौ शक्ति बहुत अधिक बढ़ा दी। १६६२ में मीर जुमला ने अपना नौ सेना के साथ आसाम के विजय करने का यत्न किया। आसाम में शत्रुओं से भयंकर युद्ध हुआ। बड़ी कठिनता से उसने विजय प्राप्त की। शाही नौ सेना में ३२३ बड़े २ सामुद्रिक पोत थे जिनके नाम तथा संख्या इस प्रकार है।

नाम	संख्या
कोशाः	१५६
जल्बाः	४८

नाम	संख्या
ग्राब्ज	१०
परिन्दाः	७
वज्राः	४
पतिलाः	५०
साल्वज़	२
पातिल्ज़	१
भार्जे	१
वालम्ज	२
भाटगिरी	१०
महलगिरि	५
पाल्वराइ	२४
	———
	१२३

औरंगजेब के काल में सामुद्रिक पोतों का निर्माण निम्न लिखित नगरों में बहुत ही अधिक था।

(१) हुग्ली
(२) बालेश्वर
(३) मूरंग
(४) चिल्मारी
(५) जैसोर
(६) कारीबारी

इत्यादि

सामुद्रिक सेनापति ईवन्हुसेन ने अराकानियों के साथ भयंकर युद्ध किया जिसमें अरकानियों के १३५ जहाज शाही सेना के हाथ लगे।

नाम	संख्या
खलु	२
घ्राव	९
जंगी	२२
कुसा	१२
जल्वा	६८
बालम	२२
	१३५

बंगाल के अतिरिक्त भारत के अन्य प्रदेशों में भी नौ व्यवसाय अति प्रफुल्लित दशा में था। मद्रास में मुस्लिपत्तम् नौ निर्माण तथा सामुद्रिक का व्यापार का केन्द्र था। महाशय क्रिस्टोफर हाटन का कथन है कि इस नगर में २० जहाज हर समय तैयार रहते हैं जो कि अराकान, पेगू, तानासरी, केडा, मलकवा, मोका, पर्सिया, तथा माल्दीव आदि प्रदेशों के यात्रियों को किराये पर ले जाते हैं। मुस्लिपत्तम के सदृश ही गोलकुन्डा भी नौ व्यवसाय के लिये अतिशय प्रसिद्ध था। नर्सीपुर में भग्न नौकाओं को सुधारा जाता था। महाशय

मारिस का गोदावरी प्रान्त के विषय में कथन है कि यह स्थान दो सौ वर्षों से नौ निर्माण तथा भग्न नौकाओं के सुधार के लिये प्रसिद्ध है। बालासोर के विषय में पूर्व भी बहुत कुछ लिखा जा चुका है। मासापुर तथा मादापाल्लम् भी नौ व्यवसाय के केन्द्र थे। मादापाल्लम् में आंग्ल व्यापारी प्रतिवर्ष अपने जहाज बनवाया करते थे। महाशय बाडरी ने भिन्न जहाजों के नाम दिये हैं जो कि औरंगजेब के काल में बनाये जाते थे। उनके नाम निम्नलिखित हैं।

(१) मासूला
(२) काटा भारन
(३) पटेला
(४) औल्लूका
(५) वदूगारू
(६) वजू
(७) पर्गुः
(८) बूरा

आंग्लकाल में नौ व्यवसाय का लोप

औरंगजेब की मृत्यु के अनन्तर आंग्लों की शक्ति भारत में धीरे २ बढ़ने लगी। आरम्भ आरम्भ में आंग्ल कंपनी ने भारतीय नौ व्यवसाय को पर्याप्त तौर पर उत्तेजित किया। औरंगजेब के अनन्तर ढाई सौ वर्षों तक भारत के पास बहु

संख्या में सामुद्रिक पोत थे और भारतवर्ष एक प्रबल नौ शक्ति था। भारत के सामुद्रिक पोतों ने जो २ काम किये हैं उनका इतिहास बहुत कुछ मिलता है। हानरेबल लीसस्टर स्टैन्होप ने १८२७ में कहा था कि—

"बाम्बे के युद्ध पोतों ने सामुद्रिक युद्ध में समान शक्ति पोतों के साथ युद्ध करते हुए अपना भण्डा कभी भी नीचा नहीं किया है।" १६१३ में पुर्तगाल तथा सामुद्री डाकुओं से व्यापार को सुरक्षित करने के उद्देश्य से सूरत में भारतीय नौ सेना थी। १६६८ में आंग्ल कंपनी के डाइरैक्टरों ने महाशय पट (Mr. W. Peit) को बम्बई में सामुद्रिक पोतों के निर्माण के लिये नियुक्त किया था। इसी प्रकार १७३५ में सूरत में भी नौका निर्माण का कार्य नियमपूर्वक प्रारम्भ किया गया। परन्तु अन्त में इस कार्य को बम्बई में ही स्थापित किया गया और सूरत से हटा लिया गया। महाशय लौजीनासरन्जी नामी एक पारसी ने नौका निर्माण में अत्यन्त चतुरता प्राप्त की और अपने दो पुत्र फेरूजी मन्सक् जी तथा जम्सन्जी वोमन्जी को भी इसी कार्य में लगाया। इस पारसी परिवार ने सामुद्रिक पोतों के निर्माण में वह कौशल प्रगट किया कि जिसका वर्णन करना कठिन है। १८०२ में आंग्ल नौ सेना के लिये नौकाओं के निर्माण की इनको आंग्ल राज्य की ओर से आज्ञा मिली। राज्य की आज्ञा

पाते ही इन्होंने ऐसे तीन सामुद्रिक पोत बनाये जिनके कारण सारे इंग्लैण्ड में इनकी प्रसिद्धि फैल गयी। १७३६ से १८३७ तक १०० वर्षों के बीच में निम्नलिखित पारसी बाम्बे नौ व्यवसाय के मुखिया के तौर पर काम करते रहे।—

सन्	नाम
१७३६ से १७७४ तक	लौजीनासरन्जी
१७७४ से १७८३ तक	मन्सक् जी तथा बोमन्जी
१८६३ से १८०५ तक	फे्म्जी तथा जम्सन्जी
१८०५ से १८११ तक	जम्सन्जी तथा रुतन्जी
१८११ से १८२१ तक	जम्सन्जी तथा नौरोजी
१८२१ से १८३७ तक	नौरोजी तथा कर्सन्जी

इन पारसी महाशयों ने बाम्बे के नौ व्यवसाय को अत्यद्भुत उन्नति दी। १७७५ में बाम्बे नौ व्यवसाय को देख करके एक आंग्ल यात्री ने कहा था कि यह नौ व्यवसाय संपूर्ण प्रकार की सामिग्री से परिपूर्ण है तथा संपूर्ण कार्यक्रम अत्यन्त नियमपूर्वक होता है। इसके सदृश उत्तम आकृति तथा उपयोगी स्थायी नोकाओं के बनाने वाला कोई भी नौ व्यवसाय योरूप में नहीं है। इसी प्रकार १८११ में लफ्टिनन्ट कर्नल ए बालकर ने कहा था कि—बाम्बे में प्रत्येक प्रकार की शक्ति की नौकायें बनायी जाती हैं भारत में नौ निर्माण का मुख्य स्थान बाम्बे है।" बाम्बे को मालाबार तथा गुजरात के जंगलों से काष्ठ के प्राप्त करने में बहुत ही अधिक आसानी रहती थी।

वाल्कर का कथन है कि आंग्ल सामुद्रिक पोतों में से प्रत्येक पोत प्रति बारहवें वर्ष नाकामयाब हो जाता है। परन्तु (भारतनिर्मित) टीक काष्ठ के सामुद्रिक पोत ५० वर्षों तक खराब नहीं होते हैं। बाम्बे के बनाये हुए बहुत से जहाज १४ तथा १५ वर्षों तक काम करने के अनन्तर पुनः आंग्ल युद्ध पोतों में शामिल कर लिये गये और युद्ध के लिये पर्य्याप्त मज़-बूत समझे गये। परन्तु योरुपियन एक भी जहाज ६ यात्राओं के अनन्तर ७वीं यात्रा कभी भी सुरक्षता से नहीं कर सकता है[१] बाम्बे के पोतों में एक और विशेषता थी। योरुपियन पोतों की अपेक्षा वह सस्ते भी थे। इन पोतों का उपरिलिखित सब गुणों के साथ योरुपियन पोतों की अपेक्षा मूल्य $\frac{1}{4}$ कम था। ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने बंगाल में भी सामुद्रिक पोतों के निर्माण का काम प्रारम्भ किया। सिल्हट, चिटगांव

---

(१) It is calculated that every ship in the Navy of Great Britain is removed every twelve years. It is well known that teek-wood built ships lost fifty years and upwords. Many ships Bombay-built after moving Fourteen or Fifteen years have been brought into the Navy and were considered as strong and ever.... .....No Europe-built ship is capable of going more than six voyages with safety." (Considerations on the Affairs of India. Written in the year 1511. 445 VI. p. 316.)

तथा ढ़ाका नामी जिलों में पहिले पहिल इस उत्तम कार्य को करवाने का यत्न किया गया है। भिन्न २ वर्षों में बंगाल में जितनी नौकाओं का निर्माण किया गया उसका ब्योरा इस प्रकार है[२]।

सन्	सामुद्रिक पोतों की संख्या	सामुद्रिक पोतों का भारवाहनत्व टन्ज़ में
१७८१-से १८०० तक	३५	१७०२०
१८०१	१६	१००७६
१८१३	२१	१०३७६
१८०१ से १८२१ तक	२३७	१०५६६३

इन उपरिलिखित जहाज़ों के निर्माण में दो करोड़ से अधिक रुपयों का व्यय हुआ था। इस व्यवसाय से कितने भारतीय शिल्पियों की आजीविका चलती होगी इसका पाठकगण स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं। १७८१ से १८३९ तक एक मात्र हुगली जिले में २७६ बड़े २ सामुद्रिक पोत बनाये गये थे। जिनमें से १८०१, १८१३, तथा १८७६ के वर्षों में ८ हजार से १० हजार टन्ज़ तक के जहाज़ बनाये गये।

१८४० के अनन्तर भारतीय नौ व्यवसाय का अधःपतन होता है। इस अधःपतन का कारण अति स्पष्ट है। महाशय

(२ Papers Relating to ship building in India, by John Phipps, Introduction.)

टेलर ने अपने हिन्दुस्थान के इतिहास में लिखा है कि "हिन्दुस्थानी जहाज़ जब लन्दन के नगर में पहुंचे थे, उसी समय आंग्ल कारीगरों में हल चल मच गयी। उन्होंने भारतीय जहाज़ों को देखते ही अपने सत्यानाश को ताड़ लिया। उन्होंने कहना प्रारम्भ किया कि अब भारतीय जहाज़ों के कारण आंग्ल नौ व्यवसायियों को भूखा मरना पड़ेगा"। इसी प्रकार १८१३ में इंग्लैण्ड के अन्दर इस प्रश्न ने भयंकर रूप धारण किया और आंग्लराज्य ने यह निश्चित नीति बनाली कि आगे से भारतीय नौव्यवसाय को किसी प्रकार की भी उत्तेजना न दी जावेगी और आंग्ल नौकाओं का ही विशेषतः प्रयोग किया जावेगा। परिणाम इसका यह हुआ कि भारतीय नौ व्यवसाय हज़ारों वर्षों से उन्नत होता हुआ आंग्ल काल में सदा के लिये नष्ट हो गया। महाशय सालिवन्ज़ ने कुछ भारतीय जहाजों के नाम तथा चित्र दिये है जिनको देखकर के चित्त भर आता है और यह सोच कर आश्चर्य होता है कि "हम क्या थे और अब क्या हो गये"। सालिवन्ज ने जिन संसार प्रसिद्ध भारतीय पोतों का वर्णन तथा चित्र दिये हैं उनके नाम यह हैं।

(१) पिनक या पक

(२) बैंगल्ज़

(३) ग्रैव

(४) पट्टुआ

(५) डोनी

(६) ब्रिक इत्यादि २

भारत में जहाज़ों की संख्या की न्यूनता दिन पर दिन इस प्रकार हुई है।

सन्	जहाज़ों की संख्या
१८५७	३४२८६
१८६६	२३०२
१९००	१६७६
१९०१	१०४९

इसी प्रकार भारत में नौ व्यापार में कितना भाग भारतीयों का है और कितना भाग विदेशियों का है इसका व्योरा इस प्रकार है।

	१९०१–०२	१९११–१२
	टन्ज़	टन्ज़
आंग्ल जहाज	३९८८०००	५११७०००
ब्रिटिश इन्डियन जहाज (भारतीयों द्वारा न बनाये गये)	१२८९०००	१४७०००
जर्मन जहाज	२७००००	४७२०००
आस्ट्रोहंग्रियन जहाज	१६४०१०	२१३०००
जापानी ,,	२९०००	१२१०००

इटैलियन	,,	६००००	८३००१
डच	,,	८०००	८२०००
फ्रैंच	,,	१४६०००	५८०००
भारतीय	,,	२००३०००	१८६८००६
नार्वीजियन	,,	७८०००	१३४०००

(Moral. Mate. Progr. 1911-12)

इस प्रकार आंग्ल राज्य की नीति से आंग्ल व्यवसायियों की स्पर्धा से भारत का नौव्यवसाय सदा के लिये लुप्त सा हो गया है। दो हजार वर्षों से अधिक वर्षों तक भारत नौशक्ति तथा स्वतन्त्र था। आंग्लकाल में परतंत्रता के साथ ही साथ उसका चिरकाल से परिपालित तथा परिपोषित यह व्यवसाय भी नष्ट हो गया। हम लोगों के लिये यह कितनी शोक की बात है पाठकगण यह स्वयं ही समझ सकते हैं।

भारत का संसार के संपूर्ण देशों के साथ व्यापार है। भारतीय पोतों के न होने से भारतीयों को विदेशीय राष्ट्रों के जहाज़ों पर अपना सामान भेजना पड़ता है। इस प्रकार से सामान भेजने से २५ करोड़ रुपयों की भारतीयों को वार्षिक क्षति उठानी पड़ती है और यह रुपया विदेशियों के नौ व्यवसाय की समुन्नति में लगता है। इसी रुपये पर विदेशीय नौका बनाने वाले कारीगर अपनी आजीविका करते हैं और

विचारे भारतीय कारीगर भूखे मरते हैं। तीस करोड़ जनता में केवल १४३२१ मनुष्य ही ऐसे हैं जो कि नौ व्यवसाय द्वारा किसी प्रकार से अपनी आजीविका करते हैं। स्वतंत्र जातियां राजकीय सहायता प्राप्त करके किस प्रकार से नौ व्यवसाय में उन्नति कर सकती है इसका 'जर्मनी' बहुत उत्तम दृष्टान्त है। भारत ने राज्य की सहायता तथा सहानुभूति न प्राप्त करके किस प्रकार अपने नौ व्यवसाय को खो दिया यह दिखाया जा चुका है अब इस बात के दिखाने का यत्न किया जावेगा कि जर्मनी ने राज्य की सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त करके नौ व्यवसाय में कितनी उन्नति की।

महायुद्ध से पूर्व जर्मन सरकार की नौ व्यापार व्यवसाय की नीति।

जर्मनी बाधित व्यापार वाला देश है। स्वतंत्र व्यापार को वह जातिसमृद्धि के लिये हानिकर समझता है। स्वतंत्र व्यापार के पक्षपातियों का माथा ठनक उठता है जबकि वह जर्मनी के नौ व्यवसाय की ओर दृष्टि डालते हैं। बाधित व्यापार की नीति ने जर्मनी के व्यापार व्यवसाय को चमकाया; उसका नौ-शक्ति होना भी इसी नीति का परिणाम कहा जा सकता है। जर्मनी की भौगोलिक तथा भौगर्भिक

अवस्था इंग्लैण्ड के सदृश उत्तम नहीं है। नौ व्यवसाय के समुत्थान के लिये कोयला तथा लोहा अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। जर्मनी में यह दोनों ही पदार्थ समुद्र से बहुत दूर हैं। गणना-विभाग की रिपोर्ट से ज्ञात हुआ है कि समुद्रतट से ४०० मील दूरी पर जर्मनी के 'व्यवसायी' नगर अवस्थित हैं। महाशय वार्नर का कथन है कि रूस तथा आष्ट्रिया को छोड़ करके संसार की संपूर्ण शक्तियों में जर्मनी नौ व्यवसाय सम्बन्धी उत्तम तथा उपयुक्त अवस्थाओं से रहित है। यह होते हुए भी संसार में नौ शक्ति होने का जर्मनी बड़ा प्रयत्न कर रहा है और उसमें बहुत कुछ सफल भी हो गया है।

१८७८ में जर्मन राष्ट्र ने लोहा तथा कोयले आदि की खानों की मामलात में तहकीकात की। उससे उसको पता लगा कि लोहे कोयले को व्यवसायिक नगरों तक पहुंचाने में ही व्यवसाय-पतियों का २० से ३० प्रतिशतक व्यय, हो जाता है। यही व्यय इग्लैण्ड में ८ से १० प्रतिशतक तक होता है। इंग्लैण्ड की प्राकृतिक अवस्था जर्मनी की अपेक्षा सैकड़ों गुणा अच्छी है। परन्तु जर्मनी ने संपूर्ण कठिनाइओं को अत्यन्त अधिक परिश्रम से झेल डाला। डार्टमन्डएम्जकनाल के निर्माण में जर्मनी का ४० लाख पाउन्ड खर्चा हुआ। इसके निर्माण का एक उद्देश्य यह था कि इसके द्वारा वेस्ट फेलिया के खानों का लोहा कोयला सहज से ही नौ व्यवसायी नगरों तक पहुंच जावेगा।

मध्यकाल में जर्मनी भारत के सदृश ही नौ व्यवसायी देश था। १८३६ में प्रुशिया में नौ निर्माण विधि को सिखाने वाला एक विद्यालय खोला गया। भिन्न २ समय में और भी इसी प्रकार के यत्न किये गये। उसका परिणाम यह है कि आज कल जर्मनी में नौ व्यवसाय बहुत ही अधिक प्रफुल्लित दशा में है। १६वीं तथा १७वीं सदी में जर्मनी का नौ व्यवसाय बुरी अवस्था में हो गया था। इसका कारण यह था कि जर्मनी में लोहा तथा कोयला नौ व्यवसायी नगरों से बहुत दूर था। परन्तु इंग्लैण्ड में यह बात न थी। इंग्लैण्ड अपनी इसी प्राकृतिक अवस्था की उत्तमता से नौ व्यवसायी देश हो गया और संपूर्ण संसार में नौ-विक्रेता का काम करने लगा। १८७० में जर्मनी ने अपना होश संभाला। मध्यकाल में जिस नौ व्यवसाय में वह प्रफुल्लित था उसी के पुनरुद्धार में पुनः उसने यत्न किया। जर्मन राज्य ने लड़ाकू जहाज़ बहुत अधिक रुपया व्यय करके अपने ही देश में बनवाने का यत्न किया और इंग्लैण्ड से सस्ते जहाज़ों का काम करना धीरे धीरे छोड़ दिया।

विदेशी सस्ते पदार्थों का क्रय करना पाप है। ऐसा करने से जातीय जीवन नष्ट होता है और जातीय समृद्धि पर पानी फिर जाता है। करोड़ों व्यक्तियों का बेकारी के कारण घात होता है। इस अवस्था में विदेशीय सस्ते से सस्ते पदार्थ का क्रय करना एकदम से छोड़ देना चाहिये। १८७२ में बान

स्टाश्क (Von stosch) जर्मनी की नौ सेना का मुख्य सेनापति बना। यह बहुत ही अधिक दूरदर्शी तथा देशभक्त था। इसने अपनी यह नीति बना ली कि विदेशीय लड़ाकू जहाज़ खरीदने ही नहीं हैं। स्वदेशीय नौ व्यवसायों को इसने उत्तेजना दी और उन्हीं से जहाज खरीदने का उनको वचन दिया।

विस्मार्क ने १८७९ में जब बाधित व्यापार की नीति का अवलम्बन किया तब उसने देखा कि इंग्लैण्ड तथा हालैण्ड के सस्ते जहाज़ों के स्वदेश में बिकने के कारण जर्मनी नौ व्यवसायियों की दशा अतिशय शोकजनक है। विस्मार्क ने जर्मन कम्पनियों की रेलों को खरीद करके उनको राष्ट्रीय रेलें बना दिया और उनके द्वारा बहुत ही कमरेट् पर लोहा तथा कोयला अपने नौ व्यवसायी नगरों में पहुंचाना प्रारम्भ किया। इससे जर्मनी में नौ व्यवसाय पुनः प्रफुल्लित दशा में होगया। १८८२ में जर्मनी में सामुद्रिक नौकायें उत्तम बनने लगीं। १८८४ में विस्मार्क ने राजकीय सहायताओं के द्वारा नौ व्यवसायियों को उत्तेजना देनी प्रारम्भ की। इसका परिणाम बहुत ही उत्तम हुआ। जर्मनी ने इस व्यवसाय में भी प्रसिद्धि प्राप्त करनी आरम्भ की। वल्कन कम्पनी के नवीन सामुद्रिक जहाज़ों ने संसार को चकित कर दिया और जर्मनी को नौ व्यवसायी राष्ट्रों में एक उच्च स्थिति दी। १८७९ के अनन्तर

जर्मनी में जिस कदर जहाज़ों के बनाने की वृद्धि हुई उसका ब्योरा इस प्रकार है।

जर्मनी में		जहाज़ों को वृद्धि
१८८०	२३६८६	टन्ज़ के जहाज बने
१८८५	२४५५४	,,
१८९०	१००५९७	,,
१८९५	१२२७१२	,,
१९००	२३५१७१	,,
१९०९	३२६३१८	,,

ऊपरिलिखित ब्योरे से स्पष्ट है कि जर्मनी में १८८५ से १९०० तक १५ पन्द्रह वर्षों के अन्तर में दश गुणा नौव्यवसाय में उन्नति हुई है। इससे ३० वर्ष पूर्व वहां नौ निर्माण का व्यवसाय अत्यन्त अधोगति पर था। कइयों का विचार है कि जर्मन नौव्यवसाय की उन्नति का मुख्य कारण जर्मन व्यवसा- इयों की कर्मण्यता तथा साहस है। अर्थात् प्रत्येक प्रकार की मांग को पूरा करने के लिये वह तैय्यार रहते हैं। परन्तु लेखक की इस विचार से सहानुभूति नहीं है। क्योंकि जर्मनी में नौव्यवसाय की समुन्नति के कुछ भिन्न ही मौलिक कारण है।

पूर्व प्रकरण में लिखा जा चुका है कि कृषि की उन्नति में मौलिक तत्व जिस प्रकार कृषकों का भूस्वामित्व है उसी

प्रकार व्यवसायों की उन्नति में मौलिकतत्व 'लाभ' है। जर्मनी में नौव्यवसाय की समुन्नति का मौलिकतत्व भी 'लाभ' ही है। जब तक जर्मन राज्य ने नौव्यवसाइयों को सहायता न दी थी तब तक उनको उस व्यवसाय में कुछ भी लाभ न था। राज्य की सहायता पाकर के वहां का नौव्यवसाय-समुन्नत हुआ तथा बालकावस्था से युवावस्था तक पहुंचा। जब किसी देश का कोई भी व्यवसाय युवावस्था को पहुंच जाता है, तब उसको राष्ट्रीय सहायता की बहुत कम आवश्यकता रहती है। क्रमागत वृद्धिनियम के अनुसार उन व्यवसायों में पदार्थों के उत्पन्न करने में पूर्वापेक्षा व्यय बहुत ही कम हो जाता है। १८७० के अनन्तर जर्मनी की नौव्यवसाय में जिस प्रकार पूंजी दिन पर दिन अधिक लगती गयी उसका व्योरा इस प्रकार है।—

नौव्यवसाय में पूंजी की वृद्धि

सन्	पूंजी (मार्क्स में)
१८७०	४८०००००
१८८०	१५३००००००
१८९०	३६१००००००
१९००	६६०००००००
१९१०	१०५८९०००००

अभी लिखा जा चुका है कि व्यावसायिक उन्नति का मौलिकतत्व 'लाभ' है। अतः यह देखना आवश्यक ही प्रतीत

होता है जर्मन पूंजीपतियों को नौव्यवसाय में क्या लाभ मिल रहा है।

जर्मन नौव्यवसाय में लाभ

सन्	पूंजी में (मार्क्स) लाभ	प्रतिशतक लाभ
१८८०	४५००००	७·६४
१८८२	१०३५०५६	६·६३
१८८४	१२६६१००	१२·१५
१८८६	१४५८००	१·१५
१८८८	८५८१५०	६·५७
१८९०	१७५७५००	८·१५
१८९२	१८३११००	६·०८
१८९४	१५१४९००	४-९८
१८९६	१९१४५००	५-५५
१८९८	२९५८०८०	७·८९
१९००	४५०३५००	१०·०५

उपरिलिखित ब्योरे से स्पष्ट है कि जर्मन नौव्यवसायियों को बहुत ही अधिक लाभ है और वह लाभ दिन पर दिन बढ़ता जाता है। इस व्यवसाय के समुत्थान से जर्मन श्रमियों को जो लाभ पहुंचा वह भी भुलाया नहीं जा सकता। १८८० में केवल ४२५० श्रमी ही इस व्यवसाय से अपनी जीविका करते थे परन्तु १९१० में २२१५० श्रमी इसी व्यव-

साय पर निर्भर करने लगे। महाशय बार्कर की सम्मति है कि "जर्मन राज्य की सहायता तथा सहानुभूति से जर्मन नौव्यवसाय समुन्नति को प्राप्त हो गया है और अब उसको राज्य की सहायता की कुछ भी अपेक्षा नहीं रही है[१]।" जर्मनी में, विदेशियों से मुकाबला करने के उद्देश्य से बहुत से व्यवसायों ने परस्पर मिलकर के कर्टेल का रूप धारण किया है। १६०३ में लोहे के व्यवसाय के ही ४४ भिन्न २ प्रकार के संघटन थे। जर्मनी के नौव्यवसायियों ने इन्हीं संघटनों से लोहा खरीदना प्रारम्भ किया। आश्चर्य की बात है कि यह लौहीय संघटन लोह के एकाधिकारी होते हुये भी सस्ते दामों पर ही नौव्यवसायियों को लोहा देते रहे। परिणाम इसका यह हुआ कि जर्मनी के नौव्यवसाय में आंग्ल लोहे का प्रयोग सर्वथा ही बन्द हो गया। निम्नलिखित सूची से पाठकों पर यह पूर्ण तौर पर स्पष्ट हो सकता है।

(१) "By wise, far seeing, determined, and appropriate action of the State,......has the German ship-building shipping industry been artificially established, fostered, and developed until it has grown from a weak and artificial industry into a powerful, healthy, and natural industry, which is now able to maintain itself in free competition without State supports against all comers." (Morden Germany, by J. Ellis Barker.) p. 614. fourth edition.

सन्	स्वदेशीय लोहा (टन्ज़)	विदेशीय लोहा- (टन्ज़)
१८६६	७१६४८	२६६२८
१६००	७०८०६	२१७३४
१६०२	६८७७६	६४२८
१६७३	६२५२१	१६६१

उपरिलिखित ब्योरे से पाठकों को ज्ञात ही हो गया होगा कि किस प्रकार जर्मन नौ व्यवसाय ने विदेशीय लोहे का प्रयोग करना छोड़ दिया। इसके बिना कभी कोई जाति उन्नत भी नहीं हो सकती। स्वदेशीय वस्तुओं का प्रयोग जातीय शक्ति के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

जर्मन साम्राज्य के बनने के अनन्तर जर्मन व्यापारी जहाजों का भी भारवाहनत्व अतिशय बढ़ गया। दृष्टान्त के तौर पर।

सन्	भारवाहनत्व की वृद्धि (टन्ज़ में)	
१८७१	८१६६४	"
१८८१	२१५६५८	"
१८६१	७२३६५२	"
१६०१	१३४७८७५	"
१६१०	२३४६५५७	"

इस उपरिलिखित संदर्भ का सार यह है कि "जर्मनी में नौ व्यवसाय की उन्नति का मुख्य कारण राज्य की सहायता

है। राज्य की सहायता प्राप्त करने पर ही वहां का नौ व्यव-साय समुन्नत हो गया और लाभ पर चलने लग गया। अब इसको राज्य की सहायता की कुछ भी आवश्यकता नहीं है।" भारत के नौ व्यवसाय के अधः पतन का मुख्य कारण पिछले प्रकरणों में दिखाया ही जा चुका है। भारत में राज्य की कुछ भी सहायता नौ व्यवसाय के समुत्थान में नहीं है। परन्तु जब तक यह न होवे तब तक कोई भी व्यवसाय बालकावस्था से युवास्था तक नहीं पहुंच सकता, नौ व्यवसाय का तो कहना ही क्या है? यदि हम भी नौ व्यव-साय में उन्नति करना चाहें तो हमको पहिले अपने आय व्यय के प्रबन्ध में स्वतंत्रता प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये। इसी को दूसरे शब्दों में योँ भी कह सकते हैं कि हमको स्वराज्य (Home Rule) प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये। स्वराज्य तथा स्वतंत्रता का व्यवसायिक-उन्नति में जो भाग है उसका विस्तृत तौर पर वर्णन किया जा चुका है।

---

(४)

भारत में शिल्प व्यवसाय

I शिल्प में धार्मिक भाव

भारतीय तथा योरूपीय शिल्प में बड़ा भेद है। शिल्प की पूर्णता यथावस्थित वस्तु के दिखा देने में ही समझी जाती।

है। योरूपीय शिल्पी प्रकृति को शिल्प का आदर्श समझते हैं। प्रकृति से ही प्रत्येक प्रकार का ज्ञान वह शिल्प में प्राप्त करते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य को शिल्प द्वारा प्रगट करना ही उनका मुख्य उद्देश्य होता है। इसी उद्देश्य को प्राप्त करने में वह शिल्पी के चातुर्य का अनुमान करते हैं।

भारतीय शिल्प का आदर्श योरूपीय शिल्प से कुछ विभिन्न है। भारतीय विचारक प्रकृति को गौण समझते हैं। उनके लिये प्राकृतिक घटनायें क्षणिक तथा वास्तविकता से शून्य हैं। इस दशा में वह अपने शिल्प का आदर्श उस अनन्त शक्ति के ऐश्वर्य को यथानुरूप प्रगट करने में ही समझते हैं। परिणाम इसका विचित्र है। योरूपीय शिल्प में कल्पना शक्ति जहां गौण है वहां भारतीय शिल्प में यही मुख्य है। योरूपीय शिल्प जो कुछ संसार में होता है उसी को प्रगट करता है परन्तु भारतीय शिल्प सांसारिक तुच्छ सौन्दर्य का परित्याग कर किसी अपूर्व स्वर्गीय सौन्दर्य को दिखाने में यत्न करता है।

यूनानी शिल्पी प्राकृतिक वस्तुओं में से सुन्दर वस्तु को चुनते थे और उसे ईश्वरीय सौन्दर्य का भाग समझते हुए उसी का शिल्प में अनुकरण करते थे। भारतीय शिल्पी अनुकरण में सौन्दर्य नहीं समझते हैं। उनके लिये वाह्य शरीर सौन्दर्य का दर्शक नहीं। सौन्दर्य का वास्तविक स्वरूप किसी

अन्य बात में है। इसी को दूसरे शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि भारतीय शिल्पी शिल्प में भोग विलास के स्थान पर धार्मिक भाव को मुख्य रखते हैं। वाह्य शरीर को दिखलाने के स्थान पर अन्तरीय विचारों को प्रगट करने में ही उनका मुख्य उद्देश्य रहता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय शिल्प में आध्यात्मिक भाव मुख्य है और योरूपीय शिल्प में प्राकृतिक भाव मुख्य है। ऐसे विस्तृत विभेद के होते हुए भारतीय तथा योरूपीय शिल्प की तुलना किसी प्रकार भी शक्य नहीं है।

बुद्ध ने जनता को जीवन के उन्नत करने की शिक्षा दी। पृथ्वी पर ही कैसे स्वर्गीय जीवन व्यतीत किया जा सकता है इसका उसने संपूर्ण भारतीयों को उपदेश दिया। वह स्वयं भिक्षु था। आश्चर्य की बात है कि प्राचीन शिल्प में बुद्ध को एक योगी का रूप दिया हुआ है। जावा के वोरों वुदूर में ध्यानावस्थित बुद्ध की मूर्ति अत्यन्त प्रशंसनीय है।

योगी स्वरूप में बुद्ध की मूर्तियां स्थान २ पर खोजने से मिली हैं। योरूपीय विचारक भारतीय शिल्प को देख कर भ्रम में पड़ जाते हैं। वह समझते हैं कि भारतीय शिल्पी भी उनके ही सदृश प्राकृतिक सौन्दर्य को दिखाने का यत्न करते थे परन्तु दिखा नहीं सके। अतः भारतीय योरूपीयों की अपेक्षा शिल्प में बहुत पीछे हैं। इस प्रकार का विचार करने

वाले योरूपीय विचारक बड़े भारी भ्रम में हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य को दिखाना तो भारतीय शिल्पों के लिये चुटकी का खेल था। जिस कठिन मार्ग पर उन्होंने पग धरा और उसमें सफलता प्राप्त की उसका योरूपीय विचारक अनुमान भी नहीं कर सके। बाह्य शरीर को शिल्प में प्रगट करना सहज काम है। परन्तु किसी मनुष्य के मानसिक वृत्तियों का शिल्प में दिखाना अत्यन्त कठिन है। भारतीय शिल्पियों ने इसी कठिन कार्य में पग धरा और उसमें पूर्णता प्राप्त की।

तिब्बतन शिल्प में पद्मपाणि तथा नैपाली शिल्प में वज्रपाणि की मूर्तियां आलेख्य कला की पूर्णता को प्रगट करती हैं। नैपाली बोधिसत्व तथा मैत्रेय की मूर्ति भी देखने के योग्य है। परन्तु इन सब मूर्तियों में एक ही भाव को दिखाने का यत्न किया गया है। प्रत्येक मूर्ति में दैवीय भावों को सूचित किया गया है। पुरुषों की मूर्तियों के सदृश स्त्रियों की मूर्तियों में भी दैवीय भावों का लोप नहीं किया गया है। स्त्रियों में शक्ति दिखाने का यत्न किया गया है। अनन्त दया शक्ति को दिखाने के लिये तारा की मूर्ति, बुद्धिशक्ति को प्रगट करने वाली सरस्वती तथा प्रज्ञा-परिमिता की मूर्ति भारतीय शिल्प में स्थान स्थान पर दिखाई देंगी। परन्तु यदि हम भारतीय शिल्प में किसी साधारण मनुष्य या स्त्री की मूर्ति को देखना चाहें तो शायद ही कोई मिले। भारतीय

भारत में शिल्प व्यवसाय

शिल्प ने कब पूर्णता प्राप्त की इसका जानना अति दुष्कर है। महाशय हैवल ने ताण्डव नृत्य करते हुए शिव का चित्र दिया है। यह चित्र अत्यंत अद्भुत है। शिव के एक २ अंग को अपूर्व चातुर्य से शिल्पि ने बनाया है। भारतीय शिल्पियों ने अपने शिल्प चातुर्य को पांच प्रकार के कार्यों में प्रगट किया है जो कि इस प्रकार है।

(१) लाट् वा पत्थर के स्तम्भः—इन पर शिला लेख खुदे हुए हैं।

(२) स्तूपः—यह किसी पवित्र घटना को प्रगट करने के लिये बनाये गये थे। इनमें से कइयों में बुद्ध के मृत शरीर का कुछ भाग भी गड़ा हुआ था।

(३) जंगलेः—इन पर बहुत ही उत्तम नकाशी का काम किया होता था। यह स्तूपों के घेरने के लिये बनाये जाते थे।

(४) चैत्य अर्थात मन्दिर।

(५) विहार।

अशोक की बनाई हुई लाटें ही भारत में सब से प्राचीन लाटें समझी जाती हैं। दिल्ली तथा अलाहाबाद की लाटें ऐतिहासिक दृष्टि से अति प्रसिद्ध हैं। सारनाथ का धर्म चक्र परिवर्तन को प्रगट करने वाला स्तम्भ देखने के योग्य है। इसके ऊपर चार सिंह की मूर्तियां शिल्पियों के अत्यद्भुत चातुर्य को प्रगट करती हैं। सांची तथा भिलसा के स्तूप अति

प्रसिद्ध हैं। सांची के छोटे से प्रदेश में ही लगभग ६० स्तूप हैं। स्तूपों के चारों ओर जंगले होते हैं इसका वर्णन पूर्व किया जा चुका है। इन जंगलों पर बहुत उत्तम कारीगरी की गई है। इन जंगलों से भारतवर्ष से पत्थर के काम की जो अवस्था प्रगट होती है उसके विषय में हम डाक्टर फर्ग्युसन साहब की सम्मति उद्धत करते हैं।

"जब हम लोग हिंदुओं के पत्थर के काम को पहिले पहिल बुद्ध गया और भरहुत के जंगलों में २०० से लेकर २५० ई पू तक देखते हैं तो हम उसे पूर्णतया भारत का पाते हैं जिसमें कि विदेशियों के प्रभाव का कोई चिन्ह नहीं है। परंतु उनमें से वह भाव प्रगट होते हैं और उनकी कथा इस स्पष्टरूप से विदित होती है जिसकी समानता कम से कम भारतवर्ष में कभी नहीं हुई। उसमें कुछ जन्तु यथा हाथी, हरन और बंदर ऐसे बनाये हुए हैं जैसे कि संसार के किसी देश में बने हुये नहीं मिलते हैं। मनुष्यों की मूर्तियां भी यद्यपि हम लोगों की आज कल की सुन्दरता से बहुत भिन्न हैं परंतु बड़ी स्वाभाविक हैं और जहां पर कई मूर्तियों का समूह है वहां पर उनका भाव अद्भुत सरलता के साथ प्रगट किया गया है। रैल्फ के सच्चे और कार्योपयोगी शिल्प की भांति कदाचित् इससे बढ़ कर और कोई शिल्प नहीं है"।

जंगलों का वर्णन कर देने के अनन्तर अब कुछ शब्द बौद्ध मन्दिरों पर लिखे जांयगें। बौद्ध मन्दिरों की विशेषता यह है कि वह गृहों के सदृश नहीं बनाये गये। बड़ी २ चट्टानों को काट करके ही उनका निर्माण किया गया। ऐसे २० या तीस मन्दिर मिलते हैं। इनकी सुन्दरता अन्दर होती है। बाहर तो एक मात्र मुंह ही मुंह दिखाई देता है। ऐसे बहुत से मन्दिर बम्बई प्रान्त में ही मिले हैं। इसका कारण यह है कि वहां पर्वत बहुत से हैं और वह पर्वत ऐसे हैं जिनके कि मन्दिर बनाना सहज है। निम्नलिखित स्थानों में प्रसिद्ध २ पार्वतीय मन्दिर मिलते हैं।

स्थान	गुफाओं की संख्या
बम्बई	६
विहार	१ सतपर्णि गुफा
गया	बहुत सी गुफायें। लोमश ऋषि की गुफा अति प्रसिद्ध है।
पश्चिमी घाट	६। इनमें भज की गुफा अति प्रसिद्ध है।
वेदसोर	बहुत सी छोटी बड़ी गुफाये हैं।
नासिक	१ गुफा।
पूना बम्बई के बीच में	कार्ली की गुफा
अजन्ता	४ मन्दिर

एलोरा	विश्वकर्मा की गुफा
सालसट का टापू	कन्हेरी की गुफा
उदयगिरि तथा	खण्डगिरि—गणेश गुफा, राजा रानीगुफा

यह सब ऊपरिलिखित अद्भुत शिल्प के काम स्वयं ही नहीं हो गये। इनको भारतीय शिल्पियों ने ही बनाया था। उनकी आजीविका, तथा उनके परिवार का भरण पोषण इसी काय पर निर्भर था। उनके संघ बने हुए थे जो कि समयांतर में जात के रूप में परिवर्तित हो गये। प्रस्तर शिल्पियों का कार्य वंशज होने से शिल्प ने बहुत उन्नति प्राप्त की। डाक्टर फर्ग्युसन पार्वतीय मंदिरों के अंदर के भाग के विषय में कहते हैं कि "भीतर के भाग का हम पूरी तरह से विचार कर सकते हैं और वह निस्सन्देह ऐसा गम्भीर और उत्तम है जैसा कि कहीं भी होना संभव है। और उसके प्रकाश का ढंग बहुत ही पूर्ण है। एक पूरा प्रकाश ऊपर के एक छेद से आकर ठीक वेदी पर पड़ता है। मन्दिर का शेष भाग अन्धकार में रहता है। यह अन्धकार तीनो मार्गों को और तीनों दालानों को जुदा करने वाले मोटे २ घने ८ खम्भों से और भी अधिक हो जाता है।"

बौद्ध मन्दिरों के वर्णन कर देने के अनन्तर अब हम बौद्ध विहारों का संक्षेप से कुछ वर्णन कर देना आवश्यक सम-

मझते हैं। बौद्धविहारों में (पटना के दक्षिण) सबसे प्रथम नालन्द का प्रसिद्ध विहार है। यह समय समय पर बनता रहा। एक राजा ने नालन्दा के सब विहारों को घेर कर एक ऊंची दीवार उठवाई थी जो कि १६०० फीट लम्बी और ४०० फीट् चौड़ी थी। इस घेरे के बाहर स्तूप और गुम्बज़ बनवाये गये थे।

कदाचित् भारतवर्ष में सबसे अधिक मनोरंजक विहार अजंता के १६ वें और १७ वें विहार हैं। वे बौद्ध विहारों के बड़े सुन्दर नमूने हैं और बड़े ही काम के हैं क्योंकि उनमें अब तक भी चित्र ऐसी स्पष्टता के साथ वर्तमान है कि जैसे और किसी विहार में नहीं पाये जाते।

नं० १६ का विहार ६५ फीट् लम्बा और उतना ही चौड़ा है उसमें २० खम्भे हैं। दोनों ओर सन्यासियों के रहने के लिये १६ कोठरियां, बीच में एक बड़ा दालान, आगे की ओर एक बरामदा और पीछे की ओर देवस्थान है। उसकी दीवारें चित्रों से भरी हुई हैं। इनमें बुद्ध के जीवन या मुनियों की कथाओं के दृश्य है। छत तथा खम्भे में बेल बूटों आदि के काम हैं और इन सब बातों से उसकी एक अद्भुत शोभा हो जाती है। उन चित्रों के जो नमूने प्रकाशित हुए हैं उनको देखने से चित्रकारी किसी प्रकार भी हलकी नहीं जान पड़ती। मूर्तियां स्वाभाविक और सुन्दर हैं। मनुष्यों

के मुख मनोहर और भाव से परिपूर्ण हैं और उन विचारों को प्रगट करते हैं जिनके लिये वे बनाये गये हैं। स्त्रियों की मूर्तियां लचकीली, हलकी और उत्तम हैं। और उनमें वह मधुरता और शोभा है जिससे कि वह विशेषता भारतवर्ष की जान पड़ती हैं। सजावट शुद्ध और निर्दोष है तथा अद्भुत शोभा देने वाली है। यह आशा की जाती है कि इस अद्भुत चित्रकारी का एक पूर्ण संग्रह शीघ्र ही कर दिया जायगा। परन्तु इस कार्य में एक भय यह है कि अजन्टा की चित्रकारी की नकल लेने के लिये उनके रंग को चटकीला करने के जो उपाय किये गये हैं उनसे तथा वृटिश यात्रियों की नाशकारी प्रकृति के कारण वे अमूल्य भण्डार कुछ कुछ नष्ट हो गये हैं।

मुसलमानों से पूर्व पूर्व तक भारत में शिल्प की किस प्रकार उन्नति होती रही इसका तिब्बतन लामा तारानाथ ने (यह १६०८ में भारत में यात्रा करने लिये आया था) बहुत उत्तम तौर पर वर्णन किया है। वह कहता है कि "प्राचीनकाल में कुछ एक योग्य मनुष्यों ने अपनी अपूर्व शक्ति से शिल्प के कार्य को प्रारम्भ किया। विनय अगामा में लिखा है कि इन्होंने इस चातुर्य से भित्तिका चित्रण किया था कि देखने वालों को भ्रम हो जाता था कि यह चित्र हैं या वास्तविक घटना हैं। उन योग्य व्यक्तियों की मृत्यु के अनन्तर समय २ पर अन्य

योग्य व्यक्ति उत्पन्न हुए जिन्होंने शिल्पकला को पर्य्याप्त उन्नति दी। इनके अनन्तर कुछ एक शिल्पी ऐसे चतुर उत्पन्न हुए कि उनको मनुष्य शरीर में देवता कहा जा सकता है। उन्होंने ही मगध के संसार प्रसिद्ध ८ चैत्यों का निर्माण किया।" इतना लिख करके तारानाथ ने अशोक के समय के शिल्प के ऊपर कुछ शब्द लिखे हैं जो की यह हैं।

"अशोक के काल में यक्ष लोगों ने शिल्प का कार्य किया। गया में वज्रसेन नामी स्थान इन्हीं लोगों ने बनाया था। नागार्जुन के काल में (१५० सन्) नाग नामी शिल्पी जाति ने बहुत से शिल्प के अद्भुत काम किये। इस प्रकार नाग तथा यक्षों ने भारतीय शिल्प को पूर्णता दी। इन जातियों के अधःपतन के समय में यह प्रतीत होता था कि भारत से शिल्प सदा के लिये नष्ट हो गया।"

"परन्तु कुछ काल तक शिल्प के अधःपतित दशा में होते हुए भी पुनः बहुत से चतुरशिल्पी इधर उधर उत्पन्न हुए जिनको किसी संप्रदाय का बताना कठिन है। गुप्तों के जमाने में शिल्प तथा चित्रण कला ने पुनः पूर्णता प्राप्त की और राजा हर्षवर्धन के काल में श्री रंगधर नामी चतुर मारवाड़ी शिल्पी ने शिल्पकला को पूर्णता दी और एक संप्रदाय को जन्म दिया जो कि "प्राचीन पश्चिमी संप्रदाय" के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हो गया। मगध के शिल्पियों की "मध्य देशीय संप्र-

दाय" का कहा जाता था।" देवभाल, श्रीमन्त तथा शर्मापाल के काल में बंगाल में वारेन्द्र नामी चतुर शिल्पी ने शिल्प के नवीन संप्रदाय को जन्म दिया। वारेन्द्र का पुत्र वीतपाल भी अत्यन्त अधिक चतुर शिल्पी था। उसने भी शिल्प के एक नवीन संप्रदाय को जन्म दिया। वारेन्द्र के चित्रणकला संप्रदायियों को जहां पूर्वीय संप्रदाय कहा जाता है वहां वीतपाल के चित्रणकला संप्रदायियों को मध्य देशीय संप्रदाय के नाम से पुकारा जाता है। नैपाल का शिल्प पूर्वीय संप्रदाय से ही अधिकतर मिलता था।"

राजा देवपाल ६वीं सदी में हुआ था। इस प्रकार पाठकों को पता लग गया होगा कि भारत में ६वीं सदी में शिल्प ने किस प्रकार उन्नति की। काश्मीरी शिल्प के विषय में तारानाथ का कथन है कि "आरम्भ २ में काश्मीरी शिल्प मध्य देशीय शिल्प से ही मिलता था। परन्तु कुछ वर्षों के बाद शिल्पी हासुर्याने शिल्प में उन्नति की और शिल्प के काश्मीरी संप्रदाय का प्रवर्तक हुआ।

शिल्प की इन सब उन्नतियों का एकमात्र कारण जनता का अपने शिल्प में प्रेम तथा शिल्प की मांग को कहा जा सकता है। भारतवर्ष के प्राचीन राजा विद्या के अतिशय प्रेमी होते थे। वह इस प्रकार के कार्यों में पूर्ण भाग लेते थे। भारत के प्रसिद्ध २४ महाविद्यालयों का आगे चल करके उल्लेख

किया जावेगा। यहां पर कुछ शब्द हम नालन्दा के महाविद्यालय के विषय में कह देते हैं। महाशय फर्ग्युसन का कथन है कि नालंदा भारत में विद्या का केन्द्र था। यहीं से संपूर्ण प्रकार के नवीन २ आविष्कार निकाले जाते थे।" दूर दूर देश के विद्यार्थी इस स्थान में पढ़ने के लिये आते थे।

नालन्दा में वैद्यक, ज्योतिष, चित्रणकला, शिल्पकला, दर्शन तथा साहित्य आदि के भिन्न २ कालिज थे। धर्म तथा दर्शन के ही १०० से ऊपर प्रोफेसर थे अन्य विषयों का तो कहना ही क्या है। ह्वन्सांग तो नालन्दा के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया और वह इस स्थान को चिरकाल तक स्मरण करता रहा। नालन्दा को बनवाने में बहुत से भारतीय राजाओं का रुपया खर्च हुआ। इस प्रकार के महाविद्यालयों ने ही भारत में भिन्न २ विद्याओं को उन्नति दी। आजकल के कालिज़ तो भारत का किसी अंश तक सत्यानाश कर रहे हैं। आंग्ल राज्य की असहायता से जहां भारतीय शिल्प को धक्का पहुंचा वहां इन कालिज़ों ने तो उसके जड़ पर ही कुल्हाड़ा मार दिया।

आर्थिक दृष्टि से मुग़लकाल भारत के लिये वैसा ही उत्तम था जैसा कि पौराणिक काल या बौद्धकाल। मुसलमान लोग भारत में बस गये थे। भारत को ही उन्होंने अपनी मातृभूमि बना लिया था। भारतीय शिल्प तथा व्यवसाय से उनको

प्रेम था। उसकी उन्नति में करोड़ों रुपये वह खर्च करते थे। परिणाम इसका यह था कि भारत के व्यवसायी लोग अपने २ देशों में खुशी से काम करते थे। क्योंकि उनको उसमें पर्याप्त लाभ था।

परन्तु भारत की अब दशा बिलकुल विचित्र है। आंग्ल जनता भारतीय शिल्प के रहस्य को बिना समझे ही कालिजों में शिक्षा देने के काम को अपने हाथ में ले बैठी। इससे शिक्षा देश के लिये अत्यन्त हानिकारक हो गयी। अस्तु जो कुछ भी हो इस प्रकरण को यहीं पर छोड़ करके अब मैं यह सविस्तार दिखाने का यत्न करूंगा कि आंग्लकाल में भारतीय शिल्पकला का ह्रास कैसे हुआ।

II आंग्लकाल में शिल्प व्यवसाय का ह्रास।

भारतीय शिल्पी औरंगजेब के काल तक दिन पर दिन भिन्न २ प्रकार के कार्यों को करते हुए अपनी आजीविका करते रहे। उन्होंने मूर्तियां बनाना छोड़ करके गृह-निर्माण में किस प्रकार चतुरता प्राप्त की इसका उल्लेख 'चित्रण कला' के परिच्छेद में किया जायगा। औरंगजेब के अनन्तर भारतवर्ष किसी एक सम्राट के हाथ में न रहा। स्वेच्छाचारित्व, लूट मार ही सर्वत्र दिखाई देने लगी। सोने, चांदी, पीतल की सुन्दर २ मूर्तियां लूट का सामान बन गयीं। भारत में आंग्लों का राज्य आने पर कुछ २ शांति हुई। पिछले विक्षोभ के समय

में भारतीय शिल्पी इधर उधर बिखर गये और अपना काम छोड़ करके किसी प्रकार से अपना भरण पोषण करते रहे। आंग्ल राज्य उन शिल्पियों को यदि एकत्रित करता तो भारत का बहुत कुछ उपकार हो सकता था परंतु ऐसा न हुआ। आंग्ल राज्य का भारत में व्यापारिक उद्देश्य है। आंग्ल अपने आपको भारतीयों से बहुत उत्तम तथा सभ्य समझते हैं। इस दशा में वह भारतीय शिल्प का कब पुनरुद्धार करने लगे। औरंगजेब ने भारतीय शिल्प को इतना धक्का नहीं पहुंचाया जितना कि आंग्लों ने।

भारत के बड़े २ धनाढ्यों ने भी यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार आंग्लों का ही अनुकरण करना प्रारम्भ किया। वह अपने पुराने उत्तम शिल्प को छोड़ कर विलायती निकृष्ट शिल्प पर जा टूटे। विलायती ढंग पर मकान तथा चित्र आदि बनवाने लगे। इससे भारतीय शिल्प सर्वदा के लिए नष्टभ्रष्ट हो गया। शिल्प तथा व्यवसाय उन लताओं के सदृश हैं जो कि किसी न किसी वृक्ष के सहारे पर रहती हैं। सहारे के नष्ट होते ही शिल्प तथा व्यवसाय अधमरे हो जाते हैं। आंग्लराज्य ने भारतीय रुपयों से जो गृह बनवाये भी, वह भी प्राचीन भारतीय शिल्प के अनुसार नहीं। अपितु उसमें भी इंग्लिश शिल्प को ही मुख्यता दी। परिणाम इन सब कुरीतियों का जो हुआ वह हम लोगों के सन्मुख है।

आंग्ल राज्य के सदृश ही भारतीय महाविद्यालयों ने भी यहां के शिल्प पर जड़ से कुल्हाड़ा मारा । यह महाविद्यालय आंग्लों के राजकीय आफिसों के लिये क्लर्क उत्पन्न करने के लिये खोले गये थे, परन्तु इन्होंने शनै २ विदेशीय सभ्यता के धर्मोदेशक का भी पद ग्रहण कर लिया । यह बालकों को ऐसी बेहूदी शिक्षा देते हैं जिसका वर्णन करना कठिन है । उस शिक्षा को शिक्षा ही न कहना चाहिये जोकि जातीय शिल्प तथा साहित्य के प्रति बालकों में द्वेष तथा घृणा के भाव उत्पन्न करे । आंग्ल राज्य में भारतीय शिल्पी अपने २ व्यवसाय में आमदनी न देखते हुए कृषि तथा क्लार्की के कार्य में प्रविष्ट हो गये । अभी तक भारत को यदि किसी ने बचाया हुआ है तो वह देशीय रियास्ते ही हैं । इन्हींमें जातीय शिल्प तथा साहित्य का अभी तक मान्य है । राजपूताना तथा माइसोर में भारती शिल्पियों की अवस्था उन्नत है । वहां पर उनके कार्यों की माँग है ।

सरकारी शिल्प विद्यालयों से भारतीय शिल्प की उन्नति होने की आशा करना आकाश में फूल उत्पन्न होने की आशा करना है । सारे दिन में कुछ समय कागज़ों पर लकीरें खींचने से कहीं शिल्प का जन्म नहीं हुआ । शिल्प की उन्नति का मौलिक तत्व 'लाभ' है । यदि सरकार भारतीय शिल्पका ही प्रत्येक राजकीय शिल्प के कार्य में प्रयोग करे, तो बिना किसी

प्रकार की शिक्षा दिये ही भारतीय शिल्प पुनः समुन्नत हो सकता है।

शिल्प की उन्नति के लिये सरकार की सहानुभूति तथा सहायता की आवश्यकता है। प्राचीन नैपाली तिब्बती तथा मध्यदेशीय शिल्प का उदय राजकीय पाठशालाओं से न हुआ था। इनके उदय के लिये तो राजकीय सहायता ही पर्याप्त है। मुगलों को धन्यवाद है जोकि विदेशीय होते हुए भी भारत की समृद्धि के इच्छुक थे और जिन्होंने कि भारत के प्रत्येक व्यवसाय को जीवन दिया।

योरूपीय देशों में शिल्प को गौण विषय नहीं समझा जाता। अच्छे २ विद्वान इसका अनुशीलन करते हैं और इनकी उन्नति में तन मन धन देने को सन्निद्ध रहते हैं। स्थान २ पर राज्यों की ओर से योरुपीय देशों में अद्भुतालय बनाये गये हैं जिनमें उत्तम शिल्प के नमूने रखे गये हैं। भारतीय शिल्प का फरांसीसी जनता बहुत रुचि से अध्ययन करती है। जर्मनी भी इस विषय में सोया नहीं पड़ा है। सम्राट की सहायता से बहुत जर्मन भारतीय शिल्प के अनुशीलन में दत्तचित्त हैं। संसार में बर्लिन ही एक ऐसा नगर है जहां पर भारतीय शिल्प तथा चित्रण कला को नियमपूर्वक पढ़ाया जाता है। हैर्लम तथा लीडन में जावा के भारतीय शिल्पियों के कारीगरी के नमूने पड़े हैं। परन्तु शोक से कहना

पड़ता है कि भारत भूमि ही अपने पुत्रों के शिल्प मन्दिरों से रहित है। महाशय हैवल ने कलकत्ता शिल्प शाला में कुछ एक उत्तम २ शिल्प के नमूनों को रख करके हमको बहुत ही अधिक कृतार्थ किया है।

(४)

भारत में चित्रकला की दशा

I.—प्राचीन काल में चित्रकला

नौ व्यवसाय, शिल्प व्यवसाय तथा वस्त्र व्यवसाय आदि के सदृश ही चित्रण व्यवसाय का भी आंग्ल काल में अधःपतन हुआ। कारीगरी की उन्नति का राज्य की कृपाओं पर बड़ा भारी आधार है। शिल्पियों को उच्च से उच्च राज्यमान्य यदि दिया जाय तो प्रायः प्रत्येक व्यक्ति शिल्पी बनने का यत्न करता है। परिणाम इसका यह होता है कि पारस्परिक स्पर्धा के बल पर शिल्प सदृश कठिन से कठिन व्यवसाय भी अत्यन्त उन्नति को प्राप्त कर लेते हैं।

प्राचीन काल में राजा शिल्पियों का संरक्षण करते थे। उनको उच्च से उच्च पदों द्वारा सुशोभित करते थे। रुपयों पैसों के द्वारा भी उनको अलंकृत करते थे। इस अवस्था में शिल्पकला की उन्नति स्वाभाविक ही थी। ऐसे ही कारणों से

भारत में चित्रकला की दशा

चित्रणकला भी भारत में अपनी उन्नति के शिखर तक पहुंची थी।

चित्रों का चिरकाल तक सुरक्षित रहना कठिन होता है। अति प्राचीन काल में भारतीयों ने जो जो चित्र भित्तियों पर चित्रण किये थे उन्हीं के कुछ नमूने अभी तक अवशिष्ट मिले हैं। वर्षा, आंधी, तूफान, आदि के कारण बहुत सारे भित्ति चित्रणों का सर्वनाश भी हो गया है।

चित्रणकला की शिक्षा के मुख्य २ महाविद्यालय भारतवर्ष में—पेशावर के निकट तक्षशिला, बंगाल में नलिन्दा, कृष्ण नदी के तट पर श्री ध्यानकर आदि थे। इन महाविद्यालयों में ही प्रत्येक प्रकार की विदेशी से विदेशी चित्रणकला को भारतीयता का रूप दिया जाता था। इन महाविद्यालयों के प्रभाव तथा शिक्षा ने ही अजन्ता, इलोरा तथा एलिफन्टा के संसार प्रसिद्ध भित्ति चित्रण को जन्म दिया था।

प्राचीन काल में राजा महाराजा सेट्ठि महासेट्ठि लोग ऐसे ऐसे गृह बनवाते थे जिनको चित्रगृह के नाम से पुकारा जाता था। रामायण में भी इसी प्रकार के चित्रगृहों का स्थान स्थान पर वर्णन मिलता है।[1] इस विषय का सविस्तर

---

(१) शिबिका विविधाकाराः सकपिर्मारुतात्मजः
लता गृहाणि चित्राणि चित्रशाला गृहाणि च।
क्रीडागृहाणि चान्यानि दारु पर्वतकानि च॥
सुन्दरकाण्ड सर्ग ६ श्लोक-३६-३७.

वर्णन यदि किसी कवि ने किया है तो वह भवभूति है। उत्तर रामचरित के प्रथम अंक का आधार ही भित्ति चित्रण पर है महाकवि कालिदास ने शकुन्तला के चित्र कला चातुर्य को जहां प्रगट किया है वहां मालविकाग्नि मित्र नामी नाटक में भी उसका विशेष तौर पर उल्लेख किया है। नागार्जुन नामी नाटक के पढ़ने से प्रतीत होता है कि राजकुमार तक भित्ति चित्रणकला का पूर्ण रूप से अध्ययन करते थे।

इस प्रकार के चित्रों का दर्शन यदि किसी पाठक को करना हो तो अजन्ता, इलोरा आदि स्थानों की एक बार अवश्य-मेव यात्रा करे। अजन्ता का सबसे उत्तम चित्र वहीं है जिसमें प्रगट किया गया है कि किस प्रकार पुलिकेशी द्वितीय के राज्य दर्बार में परशिया से दूत आये हुए थे। यह चित्र एक धार्मिक उत्सव का है। इस चित्र की सुन्दरता पर महाशय विन्सेन्ट-स्मिथ ऐसे मुग्ध हुए कि उनको उसका उद्भव रोम तथा यूनान से दिखाई देने लगा।

प्राचीन काल से पौराणिक काल तक के भित्तिचित्रण में धार्मिक भाव की प्रबलता है। यही कारण है कि जिस समय बौद्ध भिक्षु जावा, चीन, तिब्बत आदि में गये उस समय भित्ति चित्रणों में जो धार्मिक आदर्श था उसको भी साथ ही साथ लेते चले गये। अजन्ता गुफा के चित्रण की सुन्दरता पर महाशय ग्रिफिथ्स अत्यन्त मुग्ध हो गये थे

उनकी सम्मति में वह चित्र शिल्पी के अत्यन्त अद्भुत चातुर्य को प्रगट करता है।"[१] इस चातुर्य के साथ साथ चित्रों के रंग इतने स्थिर हैं कि हजारों वर्ष गुजर गये परन्तु उनमें किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं आया। वर्तमान काल में सैकड़ों रसायण शास्त्रज्ञों ने पूर्ण बल लगाकर के परिश्रम किया परन्तु इतने स्थिर रंगों को बनाने में अबतक समर्थ न हो सके।

महाशय ग्रिफिथ्स के शब्द निम्नलिखित हैं।

" The artists who painted them were gaints in execution. Even on the vertical sides of the walls some of the lines which were drawn with one sweap of the brush struck me as being very wonderful ; but when I saw long, delicates carves drawn without faltering, with equal precision, upon the horizontal surface of a ceiling, where the difficulty of execution is increased a thousand fold it appeared to me nothing less than miraculous. One of the students, when hoisted up on the scaffolding, tracing his first pancel on the ceiling, naturally remarked that some of the work looked like child's work little thinking that what seemed to him, up there, rough and meaningless, had been laid in with a canning hand, so that when seen at its right distance every touch fell into its proper place."

Indian Antiquary. Vol. III. 1874, p. 26.

II मुग़ल काल में चित्रण व्यवसाय

बौद्ध काल में चित्रण शिल्पियों का संघ (Guid) था जो कि कालान्तर में जात के रूप में परिवर्तित हो गया। पौराणिक काल तक आर्य राजाओं के प्रेम तथा अनुग्रह से चित्रण शिल्पियों की दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होती रही। मुसलमानों के आगमन पर चित्रों का पुराना धार्मिक भाव बदल गया। इसका कारण यह था कि मुसलमानी राजाओं ने चित्रों को ही मूर्ति पूजा का आधार समझ लिया था। इतना होते हुए भी उन्होंने चित्रण व्यवसाय को अति प्रफुल्लित किया और जहां उसमें धार्मिक भाव को प्रधानता थी वहां उसको हटा करके उसमें प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रधानता देदी।

यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार शिल्पियों ने तथा चित्र व्यवसायियों ने भी उसी कार्य में अभ्यास करना आरम्भ किया जो कि मुसलमानों को पसन्द था। परिणाम इसका यह हुआ कि सम्राट शाहजहां के काल में शिल्प व्यवसाय ने नवीन रूप में भी पूर्णता प्राप्त की और संसार प्रसिद्ध ताजमहल को जन्म दिया। शोक से कहना पड़ता है कि आंग्लों ने भारतीय शिल्प तथा चित्रण व्यवसाय का जो अपमान किया वह भारतीय जनता सहस्रों वर्षों तक नहीं भूलेगी।

आश्चर्य से कहना पड़ता है कि मुग़ल लोग बहुत ही असभ्य थे परंतु उनको शिल्प तथा चित्रण कला से अत्यन्त

प्रेम था। तैमूर लंग ने जब भिन्न २ स्थानों पर लूट मचाई तो उस लूट में अनन्त शिल्पियों तथा चित्रण व्यवसायियों को पकड़वा २ करके वह अपने देश में ले गया। बाबर ने जब भारत का विजय किया था, वह अपने साथ उन पुराने शिल्पियों को भी भारत में लेता आया था जिनके पितृ पिता महों को तैमूरलंग पकड़ करके ले गया था। सारांश यह है कि मुगलों में शिल्प तथा चित्रण कला के लिये आरम्भ से ही प्रेम था। जब उनका भारत में राज्य आया तो उन्होंने इस व्यवसाय के समुत्थान में पर्याप्त यत्न किया।

अकबर जहांगीर तथा शाहजहां ने भारतीय शिल्प तथा चित्रण कला को जो पूर्णता दी और उसका जो आदर किया, वह भारतीय जनता कभी भी नहीं भूल सकती है। इन सम्राटों के सन्मुख सब शिल्पी एक सदृश थे, चाहे वह हिंदू हों और चाहे वह मुसलमान हों। मुगलकाल [में भित्ति चित्रण लगभग नष्ट प्राय हो चुका था, भारत में यदि कहीं उसके चिह्न देखे जा सकते हैं तो वह एकमात्र फतेहपूर सीकरी है। मुगलकाल के बहुत से चित्र चीनाकागज तथा भारतीय कागज पर बने हुए अब तक मिलते हैं। प्राचीन काल में इन चित्रों को पुस्तकों के रूप में रखा जाता था, नकि दीवालों पर टांगा जाता था।

सुल्तान मुहम्मद तुगलक के एक खुरासानी शापुर नामी

दरबारी ने 'संगीतगोष्ठी' का एक चित्र खींचा है यह अत्यन्त अद्भुत है। कलकत्ता चित्रशाला में यह चित्र पाठकगण देख सकते हैं। इसमें जिस सुन्दरता से प्रत्येक वस्तु चित्रित की गई है उसका लेखनी वर्णन करने में असमर्थ है। इस चित्र को देखते ही मालूम पड़ने लगता है कि किस प्रकार भारतीयों के प्राचीन चित्रण भाव को मुसलमानों ने भी अवलम्बन कर लिया था। अजन्ता के चित्रण के साथ शापुर के चित्रण का बड़ा घनिष्ट सम्बंध है। इसका अनुभव वही लोग कर सकते है जिन्होंने चित्रणकला का कुछ अभ्यास किया हो। इसी प्रकार वाणवतसिंह के चित्र का सौन्दर्य भी अत्यन्त प्राकृतिक है। यह चित्र भी कलकत्ता चित्रशाला में ही देखा जा सकता है।

अबुलफजल ने आइनई अकबरी में लिखा है कि "एक दिन सम्राट अपनी मित्रमण्डली में बैठे हुये थे। उन्होंने कहा कि मैं ऐसे व्यक्तियों से घृणा करता हूं जो कि चित्रणकला को घृणा की दृष्टि से देखते हैं।" अकबर को बचपन से ही चित्रणकला में बहुत ही अधिक रुचि थी। राज्य पर आते ही उसने इस व्यवसाय को अति उत्साह दिया। अबुलफजल का कथन है कि संपूर्ण चित्र व्यवसाइयों के उत्तम २ कार्य प्रति सप्ताह सम्राट् के सन्मुख दर्गाह द्वारा रखे जाते थे। सम्राट् जो जैसा

करता था उसको वैसा इनाम देते थे तथा उनकी मासिक भृति भी बढ़ाया करते थे।

चित्रण व्यवसाय के पदार्थों की कीमतों को स्वयं सम्राट् नियत करते थे तथा जहां तक होता था इस व्यवसाय को पूर्ण सहायता पहुंचाने का यत्न करते थे। अच्छे २ चित्रकारों को सम्राट् ऊंचे से ऊंचा मान देते थे तथा उनको राज्य दर्बारी बनाते थे। अकबर के राज दर्बार में निम्नलिखित ४ चित्रकार थे जिनका सम्राट बहुत मान करते थे।

(१) ताब्रिज़ के मीर सैय्यद अली

(२) ख़ाज़ा अब्दुक़माद

(३) दस्स्यन्थ ।

यह एक नीच वंश में उत्पन्न हुआ था। सम्राट् ने उसकी चित्रणकला की ओर प्रवृति देख करके उसको ख़ाज़ा अब्दुकमाद का शिष्य बनाया। कुछ ही समय में वह सब चित्रकारों से बढ़ गया था। इसके बनाये हुए चित्र अति प्रसिद्ध हैं। इसने अपना आत्मघात कर लिया।

(४) बसवानः—कई एक चित्र समालोचकों की संमति है कि यह दस्यन्थ की अपेक्षा भी चित्रकला में अधिक चतुर था।

इन चार प्रसिद्ध चित्रकारों के साथ साथ १३ और चित्रकार थे जिनके नाम अकबर के काल में अति प्रसिद्ध थे।

(१) केशु (२) जल (३) मुकुन्द (४) मुश्किन (५)

फर्रुख (६) कालमक (७) मधु (८) जगन (६) महेश (१०) क्षेमकरण (११) तारा (१२) सन्नुल्लाह (१३) हरिवंश (१४) राम।

चित्र व्यवसाय की आमदनी का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि महाराज जयपुर के पास रज्मनामा नाम की चित्रों की एक पुस्तक है जिसको कि अकबर ने ४०००० पाउन्ड में खरीदा था।

जहांगीर ने चित्रणकला की उन्नति में जो यत्न किया वह पाठकों की कल्पना में भी नहीं आ सकता है। जहांगीर उत्तम उत्तम चित्रकारों को अपना मित्र समझता था और उन पर अनन्त सीमा तक कृपा करता था। जहांगीर के १३ वर्ष के विषय में इतिहास का कथन है कि

"अब्दुईहसन ने जहांगीर के दर्बार का एक चित्र खींचा इसपर सम्राट् ने उसको बहुत ही अधिक द्रव्य पारितोषक में दिया। मन्सूर को चित्रकला में उन्नति के लिये नादिर—ई असली की उपाधि दी गई।"

चित्रकला में जहांगीर स्वयं भी अत्यन्त योग्य था। उसके अपने शब्द हैं कि "मैं चित्र को देखते ही बता सकता हूं कि चित्रकारमृत है या जीवित है। यदि एक ही पुस्तक में बहुत से चित्रकारों के चित्र हों तो मैं यह बता सकता हूं कि कौन् सा चित्र किस चित्रकार का बनाया हुआ है। यदि एक

ही चित्र कई चित्रकारों ने मिलकर बनाया हो तो मैं यह बता सकता हूं उसमें कौन सा अंग किसका बनाया हुआ है।

इस कथन में यद्यपि अत्युक्ति मालूम होती है, परन्तु इससे इतना तो अवश्य ही स्पष्ट है कि जहांगीर की चित्रकला में बड़ी रुचि थी। सरथॉमासरो जहांगीर के चित्रकारों के चित्रों से ऐसा चकित हो गया था कि उसकी भारतीयों के प्रति सम्मति बहुत ही उच्च हो गयी थी। जहांगीर अपने चित्रकारों को बहुत ही अधिक वेतन देता था।

अधिक वेतन प्राप्ति की लोलुपता से सैकड़ों मनुष्य अपना दिन रात चित्र कला के अध्ययन में ही काटते थे। विषय को न बढ़ाते हुए दो दो तीन शब्द कह करके अब इस प्रकरण को समाप्त किया जायगा।

जहांगीर के काल में ही भारतीय चित्रों में पुनः प्राचीन भाव प्रवेश करता है। जो चीज़ जैसी है उसको उसी रूप में खींचना चित्रकार की चतुरता को प्रगट करता है। मनुष्य का वही चित्र उत्तम चित्र कहा जा सकता है जिसमें उसके विचार, शोक, प्रसन्नता आदि के चिन्ह यथानुरूप झलकें। आश्चर्य से कहना पड़ता है कि जहांगीर के काल में चित्र-कला ने भारत में पूर्णता प्राप्त की। और इस पूर्णता का इसी से अनुमान किया जा सकता है कि प्रसिद्ध योरुयिपन चित्र-कार रेम ब्रैन्ड (Rembrandt) ने भारतीय चित्रों का पूर्ण

तौर पर अनुकरण किया और इन चित्रों को देख कर के ही उसको प्रत्येक भारतीय वस्तु से प्रेम हो गया।

III आंग्ल काल में चित्रण व्यवसाय का अधःपतन

भारतीय चित्र कला का विकास पिछले पृष्ठों में दिखाया जा चुका है। आरम्भ २ में भारतीय चित्रों में धार्मिकभाव तथा प्राकृतिक सौन्दर्य की प्रधानता थी। मुसलमानी आक्रमण तथा मुसलमानों के राज्य ने चित्रों में से धार्मिक भाव को जुदा कर दिया और उसका प्रकृति के साथ विशेष घनिष्ट सम्बन्ध कर दिया। जहांगीर के प्रसिद्ध २ चित्रकार मन्सूर आदियों ने तुर्की मुर्गा, वाणहतसिंह, आदि के जो चित्र बनाये हैं वह कौशल की दृष्टि से एक हैं। प्राचीन भारतीय चित्रकारों को सैकड़ों कवियों के काव्यों को पढ़कर चित्र बनाने पड़ते थे। कविता तथा चित्रकला का पारस्परिक क्या सम्बन्ध है इसी से पाठकगण समझ सकते हैं। वास्तविक घटना को कवि लोग जहां कविता द्वारा प्रगट करते हैं, नर्तक गण जहां हावभाव द्वारा सूचित करते हैं वहीं चित्रकार लोग चित्र द्वारा दिखाते हैं।

मुग़लकाल के अन्तिम दिनों तक भारतीय चित्र व्यवसाय प्रफुल्लित दशा में रहा। और इसका सब से बड़ा प्रमाण यही है कि आदि २ में भारत के आंग्ल शासकों ने भी मुगलों के सदृश ही अपने यहां भारतीय चित्रकारों को

नौकर रखा था। परन्तु आंग्ल शासन की भारत में ज्यों २ वृद्धि होती गयी त्यों २ आंग्लों ने भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखना प्रारम्भ किया।

भारतीयों की शिक्षा का एकाधिकार तो आँग्लों ने अपने हाथ में ही लिया हुआ है। जो उनकी सम्मति होती है वही स्कूलों तथा कालेजों में ब्रह्मवाक्य के तौरपर गूंजा करती है। आंग्लों ने भारतीय चित्र व्यवसाय के विषय में भी सारे शिक्षित पुरुषों के मन में यही बैठा दिया कि भारत में चित्रकला का ज्ञान ही न था।

इस अवस्था में भारतीय नव-शिक्षितों को किस साधन से समझाया जावे कि भारत में चित्रकला का ज्ञान प्राचीन पुरुषों को बहुत ही अधिक था। किसी जाति के लिये सब से भयंकर तथा घातक बात यदि कोई हो सकती है तो यही है कि उसकी अपने पूर्वजों के प्रति घृणित दृष्टि हो। शोक से कहना पड़ता है कि हम अपने पूर्वजों की अपेक्षा हज़ारवां भाग भी योग्य नहीं हैं। परन्तु छोटे मुंह बढ़ी बातों के अनुसार उनकी बुरी बुरी समालोचनायें करने पर हर समय सन्नद्ध रहते हैं। इसमें दोष किसका है ? दोष आंग्ल शिक्षा का है।

भारतवर्ष में संपूर्ण सभ्य जातियों के नियमों के विरुद्ध आंग्ल राज्य ने शिक्षा को अपने हाथों में किया हुआ है। किसी अन्य जातीय विद्यालय के पढ़ायें हुए विद्यार्थियों को

सरकार अपने यहां पद देने को ही तैय्यार नहीं है। इस दशा में भारतीय जनता का आंग्ल कालेजों में शिक्षा के लिये भेजना स्वाभाविक ही है। परन्तु वहां बालकों को विपरीत शिक्षा दी जाती है। शिवाजी को डाकू तो द्रौपदी को व्यभिचारिणी पढ़ाया जाता है।

अस्तु जो कुछ भी हो। यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि आदि २ में आंग्लों की भारतीयों के प्रति ऐसी कुदृष्टि न थी जैसी कि अब हो गयी है। प्राचीन आंग्ल शासकों के समय में एक बंगाली ने 'बड़ा साहिब और मेम साहिब' का चित्र खींचा था जो कि महाशय अवनींद्रनाथटगोर ने कलकत्ता चित्रशाला में पहुंचा दिया है। बंगाली चित्रकार का पूर्वज गुलाबलाल १६१६ में नवाब मुहम्मदशाह के राज्य दर्बार में नौकर था। इसके चित्र को देखने से अतीव आनन्द आता है और उसने जो एक ही चित्र में उस समय के आंग्लों की अवस्था को प्रगट कर दिया है उससे अत्यन्त अधिक आश्चर्य होता है। इसी के वंश का एक चित्रकार १७८२ में बंगाल के नवाब नाजिम के यहां नौकर था। महाशय ई० बी० हैवल ने उपरिवर्णित बंगाली चित्रकार के वंश के एक आदमी को आजकल कलकत्ता चित्रशाला में नौकरी दी है। इन्होंने भारतीय चित्रकला की उन्नति के लिये वर्तमान

काल में जो अनथक परिश्रम किया है उसके लिये वह संपूर्ण भारतीयों के धन्यवाद पात्र हैं।

मुगल दर्बार के चित्रकारों के वंशजों की आंग्ल शासन में जो अधोगति हुई है उसको देखकर आंखों में आंसू आ-जाते हैं। चित्त घबड़ा ने लगता है तथा संपूर्ण आशाएं निराशाओं में परिवर्त्तित होने लगती हैं। दिल्ली तथा आगरा में जाकर आंख उठा करके देखो तो क्या मिलेगा कि उन्हीं प्राचीन मन्सूर आदि प्रसिद्ध चित्रकारों के वंशजों को भारतीय नव शिक्षित युवक तुच्छ शिल्पीं की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि वह विचारे इस नवीन सभ्यता के युग में हांथी दांत पर चित्रकारी का काम करके अपनी आजीविका करते हैं। भारतीय नव शिक्षितों को हम क्या कह सकते हैं? क्योंकि उनको तो जैसी शिक्षा दी गई है वह उसी को प्रगट करते हैं। इसमें यदि किसी को बुरा कहा जा सकता है तो शिक्षक को ही बुरा कहा जा सकता है।

अब प्रश्न यही उठता है कि वह हाथीदांत आदि का काम क्यों करते हैं? इसका उत्तर यही है कि क्योंकि राज्य की उनको कुछ भी सहायता नहीं है। राज्य जिनको पद देता भी है उनको योग्यता की दृष्टि से नहीं देता है अपितु, अपने कालिजों की डिग्री को देखकर ही। सब से शोक की तो बात

यह है कि राज्य भारतीय शिल्प तथा चित्र व्यवसायियों को घृणा की दृष्टि से देखता है।

मुग़लसम्राट् आर्थिक दृष्टि से भारत के अति उत्तम सम्राट् थे। उन्होंने कभी भी भारतीय कलाकौशल पर घृणा न प्रगट की। वह सत्य तथा विद्या के प्रेमी थे। अकबर की बुद्धिमत्ता से भारत में चित्र व्यवसाय का पुनरुज्जीवन हुआ और शाहजहां की सहृदयता से गृह-निर्माण ने ताजमहल के अन्दर आ कर पूर्णता प्राप्त की। चित्रकला में जहांगीर ने जो उन्नति की थी उसके लिए भारतवर्षी उसको सदा स्मरण करते रहेंगे।

महाशय ई. वी. हैवल का कथन है आंग्ल महाविद्यालयों ने प्राचीन चित्रण व्यवसाय को बहुत ही अधिक उपेक्षा की दृष्टि से देखा है।[१] आंग्ल शासकों ने भी इस ओर कुछ भी

---

(१) महाशय ई. वी. हैवल के शब्द हैं कि—

"Our Universities have always stood, in the eyes of India, as reprentative of the best light and leading of the west; yet the disabilities and injuries which they, as exponents of all learning, recognised by the State, inflict upon Indian art and industry are probably without-parallel in the History of civilisation; for not only do they refuse to allow art its legitimate place in the mental and moral eguipment of Indian youth—the average

ध्यान नहीं दिया है। अकबर, जहांगीर तथा शाहजहां के काल में बड़े २ चित्रकारों के साथ सम्राट् मित्र के सदृश व्यवहार करते थे। हिन्दू राजाओं के समय में राजपूताने में भी शिल्पियों तथा चित्रकारों का पर्य्याप्त मान्य था। उनको उच्च २ राज्य-पद दिये जाते थे। कलकत्ता के राजकीय पुस्तकालय में एक हस्तलिखित परशियन पुस्तक है जिसमें ताजमहल बनाने वाले भिन्न २ शिल्पियों के वेतन को दिया हुआ है। जो कि निम्न लिखित है।

	वेतन (मासिक)
प्रथम श्रेणी के शिल्पी	१००० रुपया
द्वितीय श्रेणी के "	८०० "

Indian graduate, with all his remarkable assimilative powers, is often less diveloped artistically than pasific Islander—but, by practically excluding all Indian artist of the old herdeitory professions from the honours and emoluments of State employment, they lower the status of Indian art and give a wholly unjustible preference to the art imported from Europe, which comes with the prestige of a presumed, higher order of civilisation. And after of fifty years behined them, Indian universities have lately resolved to shut their doors still more decidedly upon Indian art."

("Iudian Sculptures and painting" by E. G. Havel, p. 242-243.)

तृतीय श्रेणी के ,,	४०० ,,
चतुर्थ श्रेणी के ,,	२०० ,,

शाहजहां के काल में मुद्रा की क्रय शक्ति वर्तमान काल की अपेक्षा $१\frac{१}{२}$ गुणा थी। इस प्रकार उस समय के शिल्पियों की वास्तविक भृति यह थी।

	मासिक वेतन
प्रथम श्रेणी के शिल्पी	१५०० रुपया
द्वितीय ,,	१२०० ,,
तृतीय ,,	६०० ,,
चतुर्थ ,,	३०० ,,

परन्तु आज कल हमारे देश के शिल्पियों तथा चित्रकारों की क्या दशा है। उनकी तीस से साठ रुपये तक भृति ही बहुत अधिक समझी जाती है। राज्य की ओर से यदि उनको कभी कुछ प्रदर्शिनी के समय दिया भी जाता है तो वह एक चार या पांच रुपये का तमगा होता है जिसके प्राप्त करने में भी उनको पर्य्याप्त कठिनता तथा धन व्यय करना पड़ता है।

सारांश यह है कि व्यवसायों का राज्य की सहानुभूति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। आंग्ल राज्य की सहानुभूति इङ्गलैंड के साथ है। परिणाम इसका यह है कि भारत के अन्य व्यवसायों के सदृश ही चित्रण व्यवसाय भी अधःपतन को प्राप्त हुआ है। इससे सहस्रों प्राचीन चित्रकारों की

सन्ततियों का इधर उधर आजीविका के लिए भटकना स्वाभाविक ही है। इस कार्य में उन्नति देना हम लोगों का परम कर्तव्य है। बंगाल में अवनीन्द्रनाथ टगोर आदि महाशयों ने भारतीय चित्रकला के पुनुरुज्जीवन का जो प्रयत्न किया है उसके लिये हम लोगों की ओर से उनको सहस्रों धन्यवाद है। कोई दिन था जब कि हमारे प्रान्त में रविशंकर वर्मा ने चित्रकला में अपूर्व पाण्डित्य को प्रगट किया था। सरस्वती पत्रिका ने हिन्दी साहित्य में इस प्रकार के भारतीय चित्रों का पर्य्याप्त प्रचार किया है।

---

(५)

आंग्ल काल में अन्य व्यवसाय

संपत्तिशास्त्र में स्पर्धा के प्रकरण में स्पर्धाजन्य हानियों का वर्णन किया जा चुका है? प्राचीन व्यवसायों के सन्मुख नवीन व्यवसायों का स्पर्धा करना ऐसा ही है जैसा कि किसी युवा पुरुष के साथ किसी एक वर्ष के बालक का लड़ाई करना।

स्पर्धा को व्यवसायिक युद्ध कहा जाता है। जिस प्रकार निःशक्त का सबल के साथ युद्ध में प्रवृत्त होना अनुचित है उसी प्रकार नवीन व्यवसायों का पुरातन व्यवसायों के साथ स्पर्धा में प्रवृत्त होना कभी भी उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है।

भारतीय व्यवसायों के सत्यानाश के अनन्तर आंग्ल व्यवसायों ने अपना सिर ऊपर उठाया और राज्य से रक्षा प्राप्त करते हुए युवा अवस्था तक पहुंच गये। इसके अनन्तर आंग्ल राज्य ने निर्हस्ताक्षेप की नीति का अवलम्बन किया। उसने अन्य देशों को भी यही उपदेश किया परन्तु अन्य जातियों ने इसकी भयंकर हानियों को देख करके तटकर के द्वारा अपने बालक व्यवसायों को स्वरक्षित करना प्रारम्भ किया और व्याधित व्यापार की नीति के पक्षपाती हो गये।

परन्तु भारत का भाग्य इंग्लैण्ड के साथ जुड़ गया है। अतः वह चिरकाल से अन्य सभ्य जातियों के कामों के अनुकरण करने में असमर्थ है। जो आंग्ल राज्य की नीति है उसी के अनुसार भारत को चलना पड़ता है। परन्तु ऐसा होना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता जब कि इंग्लैण्ड तथा भारत का स्वार्थ एक न हो।

भारत के व्यवसाय बालक अवस्था में हैं परन्तु इंग्लैण्ड के व्यवसाय युवावस्था को पहुंचचुके हैं। बालकों तथा युवाओं का परिपोषण एक ही विधि के द्वारा कैसे हो सकता है? कौन ऐसा बुद्धिमान पुरुष है जो कि बालकों तथा युवाओं के स्पर्धा रूपी युद्ध को उपयुक्त ठहरावे?

परंतु भारतीय व्यवसायों को बिना उचित ध्यान दिये

देखो लेखक का संपत्तिशास्त्र।

योरुपियन व्यवसायों के साथ जुआ दिया गया। परिणाम इसका यह हुआ कि सर्वदा के लिये भारतवर्षी व्यवसाय रहित हुए निर्धनी हो गये।

भारत का कृषि प्रधान बनाया जाना

आज कल हमको अपनी अनाज भेज करके वस्त्रादि खरीदने पड़ते हैं। सबसे अधिक किसी जाति के लिये कोई हानिकर बात हो सकती है तो यही है। जिस विधि से होसके इसको शीघ्र ही बन्द करना चाहिये। विदेशीय जातियां हम लोगों से ही रुई आदि खरीद करके ले जाती हैं और उसके वस्त्र बना करके हम ही को दे जाती हैं। इस कार्य के बदले में हमको उन जातियों को लाखों रुपये का भोजन देना पड़ता है।और हम स्वयं काम रहित हुए हुए भूखों मरते हैं। इसको एक उस मनुष्य से उपमा दी जा सकती है जो कि स्वयं तो कार्य न करे और दूसरे से अपना कार्य करवा करके अपना भोजन उसको देदेवे और स्वयं भूखों मरे। यदि यह बात कोई जाति जान बूझ कर करे तब भी कोई बात हो। शोक से कहना पड़ता है कि यह संपूर्ण बातें हमको वाधित हो कर करनी पड़ती हैं। हम स्वयं कार्य करना चाहते हैं। परन्तु कुछ एक ऐसी घटनायें हैं जिनके कारण हम वैसा नहीं कर सकते हैं।

विषय के स्पष्ट करने के लिये और स्वदेश की भयंकर दशा को पाठकों पर प्रगट करने के लिये यहां पर एक सूची दे दी जाती है जिसमें यह दिखाया गया है कि हम कैसा और कितना पदार्थ विदेश से मंगाते हैं। और उसके बदले में विदेश में क्या भेजते हैं।

I

विदेश में भेजे गये पदार्थ	सन् १९०४-५ रु०	सन् १९०९-१० रु०	सन् १९१३-१४ रु०
(१) चावल	१९४७३९८९८	१८०१३१३८६	२६४१६८५७४
(२) गेहूं	१७९०६०६९२	१२७०९०८८४	१३१३५१९३३
(३) चमड़ा	९९०५९७२०	१३६१९९०७२	१५९४८६५६७
(४) लाख	२९८२३०१७	२७७१६७१८	१९६५८००१
(५) खाद	४३७७८४१	९०८२८१६	९४४८०५३
(६) कच्ची धात	४८७०७९५	१२१२९८२५	२४२१०७८८
(७) रुई	१७४३८१७४२	३१४३३८७६४	४१०४३२४१३
(८) जूट (कच्ची)	११९६५६४६२	१५०८८३०९७	३०८२९३९४०
(९) रेशम कच्चा)	५११८७०४	५२५६९०९	२५७७२६३
(१०) ऊन (कच्चा)	२१५०६६९४	३१४५७६१५	३०००२३५०
(११) लकड़ी	६०४६६०२	५४३५६०४	७८७६५१६

(Statistical Abstract for British India Vol I (1916). P. 131.)

II

विदेश से भारत में आये हुए पदार्थ	१९०४—५	१९०९—१०	१९१३—१४
(१) रेशमी तथा ऊनी वस्त्र	३०५५१५९५	२७६५४३५७	३२२३५४०५
(२) पुस्तकें तथा कागज	९६३४७१९	१३०६०६४५	१८६२६३२५
(३) गृह निर्माण तथा पुल आदियों के बनाने का सामान	२७७६२७६	४४४२१७४	७७९६५९५
(४) रासायनिक पदार्थ	४७८६९९९	६३०८०५०	७५७९०६५
(५) रुई के वस्त्र तथा सूत	३५५९७६६१९	३६२८७९४५९	५९७५१४३५०
(६) अंग्रेजी दवाइयां	६७५४०८८	१०६६१९७६	१२३२८१५५
(७) चमड़े तथा वस्त्रों के रंगने का सामान	४७५५२१	७६७९४३	५९६५६५
(८) मट्टी तथा चीनी आदि के वर्त्तन	१८०४६६३	२५१३०३३	३६७६४२५
(९) शीशे का सामान	१५७१५४१	३६७६४२५	२६२०४८५

उपरिलिखित सूची से स्पष्ट है कि कितने अधिक रुपयों के कृषिजन्य पदार्थ हम विदेश में भेजते हैं और एक मात्र इंग्लैण्ड से ही कितने रुपयों के व्यवसायिक पदार्थ

(Statistical Abstract for British India Vol I. (1916). P. 137)

मंगाते हैं। किसी भी जाति की ऐसी अवस्था का होना उसकी समृद्धि के लिये अत्यन्त हानिकर होता है।

भारत में सब कुछ विद्यमान है। भूमि अनन्त संपत्ति का आगार है, खानें तथा खेत अनन्त उत्पादक हैं, नदियां अतिशय व्यापार योग्य हैं। परन्तु यह सब का सब होते हुए भी भारत क्यों दरिद्र है? अत्यन्त समृद्ध होते हुए भी भारत क्यों दरिद्रता में आकर फंस गया। इसका एक ही उत्तर है और वह यह कि भारत का उस संचालक तथा उत्पादकशक्ति से प्रभुत्व हट गया है जिसके बल पर ही जातियां समृद्ध हुआ करती हैं।

भारतवर्ष में आजकल निम्नलिखित संख्या कारखानों की है और उनमें निम्नलिखित श्रमी काम करते हैं।

कारखाने	(संख्या कारखानों की)	श्रमियों की संख्या
वाष्पीय शक्ति से संचालित	४५६६	१८०३६६२
हस्त संचालित	२५४४	३०१८३२
चाय के कारखाने	१००२	७०३५८५
कहवा	४८२	५७६२३
नील	१२१	३०७६५
कोयले	३५३	१४२८७७
सोने	१२	२८५६२
कपास	११२७	३०८११०

आंग्ल काल में अन्य व्यवसाय

सन	२२३	२२२३१९
चमड़े	१२२	९३९९
तेल	२०८	९७४५
मह्वोका तेल	९	१०८५८
आटे और चावल के कारखाने	४०३	४२३७४
बूटों के कारखाने	२३	५१६३
छापेखाने	३४१	४१५९८
रेल्वे वर्क शाप	११८	९८७२३
गैस वर्क्स	१४	४६८०

(वा. कृ. उत्पत्ति. ४३३ पृष्ट)

भारत जैसे महा प्रदेश के लिये व्यवसायों की उपरिलिखित संख्या अति न्यून है। इनमें कुछ व्यवसाय राष्ट्र के हैं और कुछ वैयक्तिक हैं। १९०८ में राष्ट्राय तथा वैयक्तिक व्यवसायों का अनुपात निम्नलिखित था।

	संख्या	श्रमी
राष्ट्रीय व्यवसाय	११७	७२०००
वैयक्तिक व्यवसाय या कम्पनियों के व्यवसाय हस्त संचालित	२४७३	७८९६००
वैयक्तिक या कम्पनियों के व्यवसाय	५२२	८६२००

(Economics of British India by J. Sarkar. M. A. third Edition P. 168).

उपरिलिखित ब्योरे से स्पष्ट है कि १६०८ में भारत में ३१०० कारखाने थे और जिनमें लगभग ६½ लाख मनुष्य काम करते थे। इन व्यवसायों के स्वामित्व पर जब हम गम्भीरता से विचार करना प्रारम्भ करते हैं तो एक बड़ा भारी रहस्य सन्मुख उपस्थित होता है। संपूर्ण लाभप्रद कारखाने अंग्रेज़ों के ही हाथ में हैं। भारतीयों के जो कारखाने हैं वह विशेषतः रुई, वर्फ़ तथा छापेखाने ही हैं। निम्नलिखित ब्योरे से इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है।

प्रधान २ कलागृहों का स्वामित्व

भिन्न २ प्रदेशमें भिन्न २ पदार्थों के के व्यवसाय	भारतीयों के स्वत्व में	योरुपीय लोगों के स्वत्व में
(१) अजमेर मारवाड़–कपास	२	७
(२) आसाम–चाय	६०	५४६
(३) वर्मा–चावल के कारखाने	१०५	४७
(४) बंगाल—		
चाय के खेत	३६	२०४
सन् के कारखाने	०	५०
सन् के दबानेवाले कारखाने	५२	५७
कलागृह	७	३०
कोयले की खाने	४६	६०

(५) बिहार तथा उड़ीसा—		
नील के खेत	१४	१०५
कोयले की खानें	११०	८६
लाख के कारखाने	४६	२
(६) बम्बई—रेल्वे वर्कशाप	०	१३
कलागृह	२	९
छापेखाने	४४	१७
रुई के कारखाने	३९६	७९
(७) मध्य प्रदेश—मांगल की खानें	२४	१६
(८) मद्रास—कहवे के खेत	१[illegible]	८६
चावल के कारखाने	८०	[illegible]
रेल्वे वर्कशाप	०	२३
छापेखाने	३६	१५
(९) पंजाब—रुई के कारखाने	३२	०
ईंटों के भट्टे	८६	०
रेल्वे वर्कशाप	०	१९
छापेखाने	२२	६
चाय के कारखाने	३३	८
(१०) माइसोर—कहवा के खेत	१०६	१३६
सोने की खानें	०	६

(वा. कृ. उत्पत्ति, ४५१-४५४ पृष्ठ)

(११ट्रांवकोर)–चाय के खेत	१	३६
रब्बड	०	१०

उपरलिखित ब्योरा पाठकों के सन्मुख आ गया होगा। हमारी कैसी शोकप्रद दशा है यह भी पाठकों को पता ही लग गया होगा। हम ने स्वदेशीय व्यवसाय खोये, राजकीय उच्चपद खोये, अब हम दिन पर दिन अपनी भूमि की उपज भी खोते जाते हैं। चाय, काफी, नील आदि की उपज पर योरुपियन का एक मात्र एकाधिकार है। इससे १० करोड़ रुपयों की वार्षिक क्षति भारतीयों को उठानी पड़ती है। यह रुपया योरुपियन्ज के ही जेबों में जाता है। इतना ही होता तब भी कोई बात थी। योरुपियन्ज भारतीय कृषकों के साथ कुलियों के सदृश व्यवहार करते हैं। विहार में ऐसे ही अत्याचार थे जिन्होंने महात्मा गांधी को अपनी ओर आकर्षित किया। आज कल हमारी जाति प्रतिदिन ग्वालों, गड़रियों, किसानों के रूप में परिवर्तित होती जाती है। अन्य जातियों की यह अवस्था नहीं है। निम्नलिखित ब्योरे से यह अति स्पष्ट हो सकता है।

	इंग्लैण्ड	सं० प्रा० अमेरिका	जर्मनी	भारत
पेशा	१६०१	१६००	१६००	१६०१
कृषि	८	३५.१	२८.७	७१
व्यवसाय	५८.	२४.४	४२७	१२

व्यापार	१३	१६·४	१३·४	७
घर की सेर	१४	१६·२	४	१·८

जर्मनी इंग्लैण्ड आदि देशों में जनता विशेषतः व्यवसायों में लगी हुई है परन्तु संसार में एकमात्र भारत ही खेत हारे के काम के लिये रह गया है। इस कार्य में भी सैकड़ों प्रकार की पीड़ायें और यातनायें हैं जिनका वर्णन करना कठिन है। जंगलात के महकमें का अत्याचार दरिद्र कृषकों के लिये असह्य है। चरागाहों का कोई उत्तम प्रबन्ध नहीं है। पशुओं की बीमारी के इलाज के लिए किसी उच्च राज्याधिकारी का कोई विशेष ध्यान नहीं है। दरिद्रता इस भयंकर सीमा तक बढ़ चुकी है कि पशुओं को पेट भर भोजन देना दूर रहा किसानों को अपना पेट भर भोजन नहीं मिलता है। यही कारण है कि भारत जैसे महा प्रदेश में पशुओं की जितनी संख्या होनी चाहिये थी उसका आज बीसवांगुना भी नहीं है। १८६० का वर्ष भारत में दुर्भिक्ष का वर्ष न था। उस वर्ष में आंग्ल भारत के १४ करोड़ निवासियों (बंगाल छोड़ करके) के पास केवल ६०७५००६५ पशु थे जब कि चालीस लाख आस्ट्रेलिया निवासियों के पास ११३२५०८३१ पशु थे। यदि भारत में भी आस्ट्रेलिया के सदृश ही पशु होते तो २६२८०००००० होने चाहिये थे अर्थात् पूर्वापेक्षा २० गुणा। परन्तु प्राचीन काल में भारत की यह दशा न थी। भारत के

संपूर्ण व्यवसाय भारतीयों के ही हाथ में थे, शिल्पि, व्यवसायियों का संरक्षण राज्य अपना संरक्षण समझते थे और प्रजा के सुख में अपना सुख और प्रजा के दुःख में अपना दुःख गिनते थे। उच्च उच्च राज्यपदों पर भारतीय जनता ही विद्यमान थी। राष्ट्र का एक भी ऐसा काम न था जिसको कि भारतीय सफलता पूर्वक न कर सकें।

राज्य प्रत्येक व्यक्ति को राजकीय छोटे २ पदों को देकर के उनमें योग्यताओं के बढ़ाने का यत्न करते थे और उन्हीं को किसी समय में साम्राज्य का महा मन्त्री तक बना देते थे। ऐसे व्यक्तियों से साम्राज्य की जो समृद्धि तथा सुख संपत्ति बढ़ी वह अब हम लोगों के लिये स्वप्न समान है। उन दिनों में पशुओं जंगलों तथा चरागाहों का प्रबन्ध प्रजा के सुख के लिये राज्य ने अपने हाथों में लिया हुआ था। परन्तु अब यह दशा नहीं है।

महाशय डिग्बी ने मुक्ति फौज़ के विषय में एक अतिरुचिकर दृष्टान्त दिया है। वह कहते हैं कि गुजरात में मुक्ति फौज़ को भूमि की आवश्यक्ता थी। संपूर्ण स्थानों को देखने के अनन्तर उसको एक स्थान पसन्द आया जिसमें ५६० एकड़ भूमि थी और जो कि चिरकाल से चरागाह के तौर पर ग्राम निवासी प्रयुक्त करते आये थे। जो कुछ भी हो। ग्रामनिवासियों के बहुत प्रार्थना करने पर भी उन पर तथा उनके

पशुओं पर बहुत कम दया प्रकट की गयी और मुक्ति फौज़ को ही भूमि दिलवाने का अन्ततक यत्न किया गया।

हमारी दशा भयंकर विपत्तियों से घिरी हुई है, परन्तु हम सब ओर से सर्वथा अरक्षित हैं। हमको वस्तुओं की जरूरत है परन्तु हम कहां से और कैसे प्राप्त करें! हमारे एक मित्र भारतीय किसानों को अज्ञ प्रकट करते हैं चूंकि वह गोबर को जलाते हैं और उसको खेती के काम में नहीं लाते हैं (वा० कृ० उत्पत्ति पृ० २१०)। परन्तु भारतीय किसानों को उनकी नजरों से ही देखना उचित है। उनकी विपत्तियों तथा यातनाओं को पूर्ण तौर पर समझना चाहिये तब उनपर कुछ भी आक्षेप करना चाहिये। भारतीय किसान खाद के विषय में बहुत जानते हैं, उनको गोबर के लाभ भी बहुत ज्ञात हैं। परन्तु यह सब बातें वह क्यों नहीं करते हैं, क्यों वह गोबर को खाद के तौरपर न प्रयुक्त करके जलाते हैं? उसका कारण है। और वह कारण जहां उनके दरिद्रय से सम्बद्ध है। राजनैनिक भी है।

प्राचीन काल में जंगलात का महकमा था, चरागाहों का प्रबन्ध भी राज्य के हाथ में था, परन्तु यह सब प्रजा के कष्टों का कम करने के लिये ही था। राज्य प्रजा को दुरवस्थित अवस्था में न देखना चाहता था। कठोर से कठोर नियम प्रयुक्त थे परन्तु उनकी गति पशु रक्षा तथा कृषकों

के सुख की ओर ही थी। उनके द्वारा राज्य को अपनी आमदनी का विशेष ध्यान था। परन्तु अब वह अवस्था नहीं है। भारत दरिद्र हो गया है, उसके संपूर्ण वैभव स्रोत शुष्क होगये हैं। अब उसके वह कामधेनु स्वरूप व्यवसाय लुप्त हो चुके हैं। राज्य, भारतीय दरिद्र साम्राज्य का प्रबन्ध करे भी ता कैसे करे, इतने बड़े देश का प्रबन्ध करने के लिए रुपया लावे भी तो कहां से लावे।

परिणाम इसका यह होता है कि किसानोंपरही कष्ट के पर्वत आ टूटते हैं। जंगलात का महकमा कामधेनु स्वरूप हो जाता है और राज्य वहां से अधिक से अधिक आमदनी प्राप्त करने का यत्न करता है। चरागाहों के प्राप्त करने में जहां बहुत सी कठिनाइयें उत्पन्न होगयी हैं वहां कृषकों के पास इतना धन नहीं है कि वह ज़ंगलों से सूखी लकड़ी प्राप्त कर सकें। इस विचित्र अवस्था में भारतीय किसान गोबर न जलावें तो क्या जलावें?

१८९८ में राज्य को जंगलात के महकमें से आमदनी १२३९९१२ पाउन्ड्ज़ थी। इसके प्राप्त करने में प्रति पाउन्ड पर १० शिलिङ्ग का राज्य को व्यय करना पड़ता था। यह व्यय इस बात को प्रगट करता है कि जंगलों को किस प्रकार राज्य प्रबन्ध में लाया गया तथा भारतियों को

उनसे लाभ उठाने के प्राचीन अधिकारों से किस प्रकार रहित कर दिया गया।

खानों में तो जंगलों की अपेक्षा भी दशा शोक जनक है। जंगलों की आमदनी स्वदेश के ही काम में खर्च की जाती है चाहे वह कैसे साधनों से क्यों न प्राप्त की जावे परन्तु खानों से प्राप्त आमदनी जहाज़ों पर लद कर के विदेश में ही चली जाती है।

लोहा, सोना, मिट्टी का तेल आदि की खानों का खुदवाना प्रायः योरुपियन लोगों के ही हाथ में है। १६०८ में सोने की खानों के खुदवाने में विदेशियों की ४.८८ करोड़ पूंजी लगी हुई थी और उससे २.१७ मिलियन (१ मि० १००००००) पाउन्ड की उत्पत्ति थी। इसी प्रकार कोयले की खानों में ६¾ करोड़ रुपया लगा हुआ था तथा उस पर ५ करोड़ रुपयों की उत्पत्ति थी। मिट्टी के तेल की खानों के खुदवाने में भी लग भग १ करोड़ रुपये की उत्पत्ति हो ही जाती थी। इस अनन्त रुपयों का विदेश में चला जाना भारत के लिये कितना हानिकर होगा? जब कि वह पूर्व से ही पर्य्याप्त दरिद्र हो? भारत का जिन २ व्यवसायों में प्रवेश है वहां पर भी उनके संरक्षण में उनको अनन्त झमेलों को झेलना पड़ता है। १८६८ में भारत में रुई के कारखाने १७६ थे और जिनमें १५६०५६

पुरुष काम करते थे परन्तु १९०८ में इनकी संख्या और भी बढ़ गयी तथा उनमें श्रमियों का संख्या १५६०५६ के स्थान पर २३६००० हो गई है। यह एक ही व्यवसाय है जिसमें भारतियों का रुपया लगा हुआ है और जिससे कितना भारतियों को सुख पहुंचा है इसको अनुमान बम्बई तथा हैदराबाद में पारसियों को देखने से ही पता लग सकता है। परन्तु इसी एक व्यवसाय पर भारतियों का सुखान्त नाटक समाप्त हो जाता है। इसके अनन्तर जिधर दृष्टि डालें उधर ही भयंकर दुःख दिखाई देने लगता है और ऐसा प्रतीत होता है कि मानों एक प्रबल नदी के स्वरूप में भारत की अनन्त धन राशि वेग से बहती हुई योरुपियन महाद्वीप में जा गिरती है।

१९०८ में जूट की मिलों में १५ करोड़ रुपया लगा हुआ था और जिसमें २·९५ के लगभग श्रमी काम करते थे परन्तु इनकी आमदनी योरुप में ही जाती थी और अब भी जाती है क्योंकि इनके स्वामी एकमात्र विदेशी ही हैं। इसी प्रकार कागज़, चावल, ऊन, चाय, काफी, शक्कर, नील, तथा लकड़ी आदि के कारखानों का तीन चैाथाई विदेशीयों के ही हाथ में है।* १८९८ में २२००० मील लम्बी भारत में रेल्वे लाइन थी और इसमें पच्चीस करोड़ पाउन्ड

* १८९८ में मिश्रित पूंजी के व्यवसाय

	संख्या	पूंजी
(१) बैंक	४०५	४४११३५८
(२) बीमा कंपनी	१०५	१४६०६३
(३) नौका व्यवसाय	६	१२२७३००
(४) रेल्वेज़ तथा ट्राम्बे	१६	१६७०१२०
(५) अन्य कं०	१५	११३१८६
(६) चाय	१३५	३२१२३१०
(७) व्यापारीय कं०	२५२	३०६०८८५
(८) कोल की खानें	३४	१२७४८६२
(९) स्वर्ण की खानें	१२	५००८४२
(१०) अन्य खान संबंधी कं०	१७	२४८२७८
(११) रुई की मिलें	६६	५५२६६३४
(१२) जूट की मिलें	२०	२५७१०६३
(१३) सन् ऊन रेशम आदि की मिलें	११३	६६२७३०३
(१४) रुई के दबाने वाली मिलें	११६	१६०७२८१
(१५) अन्य कं०	४६	२६७०६६५
	१४१७	३५५०६४४६ पाउन्ड

इन व्यवसायों की कुल पूजी में से बड़ी कठिनता से १०००००० पाउन्डज़ भारतीयों की कही जा सकती है। शेष संपूर्ण पूंजी विदेशियों की और वही इससे लाभ उठाते हैं। सारांश यह है कि संपूर्ण व्यवसायों में $\frac{3}{4}$ पूंजी विदेशियों की है और $\frac{1}{4}$ पूजी स्वदेशी भाइयों की है। १६०८ में भी इस विषय में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। इस परिच्छेद के अन्त में उस समय का ब्योरा भी स्पष्ट रूप से दे दिया गया है पाठकगण स्वयं ही देख सकते हैं कि भारत की कैसी दुरवस्था है।

*(Sospesous Indiacin Pby Digby P. 169.)

से अधिक पूंजी लगी हुई थी। १६०८ में इसमें और भी अधिक वृद्धि हो गयी है। जहां पहले २२००० मील लम्बी रेल्वे लाइन थी वहां १६१८ में ३१५०० मील लम्बी हो गई और उस पर कुल पूंजी ४३० करोड़ रुपये या २६ करोड़ पाउन्ड पूंजी लगायी गयी। इस पर ३३ करोड़ यात्रियों का वार्षिक आवागमन है।

रेल्वेज़ की संपूर्ण पूंजी विदेशियों की है। गाइरेन्टी के रीति के अवमम्बन से भारत को ही घाटा पूरा करना पड़ता है। रेल के सदृश ही नहरों पर लगी हुई पूंजी भी विदेशियों की ही है। उसका लाभ भी उन्हीं को मिलता है, १८४८ में यह पूंजी ३ करोड़ पच्चास लाख पाउन्ड थी। नहरों के साथ ही नौ व्यवसाय का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। प्राचीन काल में भारत में नौव्यवसाय कितना समुन्नत था और किस प्रकार लाखों जीवों का पालन पोषण उसी एक मात्र व्यवसाय पर निर्भर करता था और किस प्रकार उस व्यवसाय के सहारे ही भारतवर्ष संसार में नौशक्ति था यह पाठकों को पता ही है। परन्तु भारत की वह प्राचीन सुखावस्था अब नहीं रही है। जिधर देखें उधर ही भयंकर विपत्तियें तथा दुरवस्था नज़र आती है। १८६८ में ६११५६४६ टन के जहाज़ भारत में बने थे जिनमें से १३३०३३ टन जहाज़ भारतियों के थे। अवशिष्ट जहाजों पर विदेशियों का

ही स्वामित्व था। अधिक दूर क्या जाना। ४० वर्ष पूर्व ही इस विषय में भारत की दशा कुछ और थी। उस समय भारतीय जल में चलनेवाली $\frac{3}{4}$ नौकायें भारतीयों की ही था। परन्तु अब इस विषय में भी हमारी अत्यन्त शोकजनक अवस्था हो गई है।

(क)

एक मात्र विदेशियों के स्वामित्व में (१६०८)

व्यवसाय	पूंजी	श्रमी	उत्पत्ति (वार्षिक)
(१) रेल्वेज़	४३० करोड़	५.१५ लाख	३१५०० मील—३३ करोड़ यात्री जाते हैं
(२) ट्राम्वे आदि	$३\frac{१}{४}$,,	...	...
(३) जूट के कारखाने	१५ ,,	१.६२ लाख	...
(४) स्वर्ण की खाने	४.८८ ,,	...	२.१७ मिलियन पावन्ड
(५) ऊन के कारखाने	$४४\frac{१}{२}$ लाख	३५११	४४ लाख रु० की उत्पत्ति
(६) कागज के कारखाने	५३.८ लाख	४६५६	७५ ,,
(७) शराब के कारखानें	२५ लाख	१६५८	$५\frac{१}{४}$ मिलियन शराब के गैलन

(ख)

प्रायः विदेशियों के स्वामित्व में (१९०८)

व्यवसाय	पूंजी	श्रमी	वार्षिक उत्पत्ति
(१) कोल की खानें	६$\frac{३}{४}$ करोड़	१.२९लाख	५ करोड़ रुपयों की
(२) पैट्रोलियम को शुद्ध करनेवाले कारखाने	+	६६६१	१ करोड़ रुपयों की
(३) चाय के कारखाने	२४ करोड़	५ लाखसेऊ०	२४७$\frac{१}{२}$ मिलियनपा०
(४) विदेशीय किनियम बैंक	३८ करोड़		...
(५) प्रैज़ीडेन्सीतथा मिश्रित पंजी वाले १३ बैंक	९$\frac{२}{३}$ करोड़		...
(६) चावल के तुस निकालने वाले कारखाने	१.९४ ,,	२१४००	...
(७) लकड़ी के कारखाने	८२ लाख	८८००	...
(८) आटा पीसने के ,,	५८ ,,	२८२१	...
(९) शक्कर के ,,	१.२५ करोड़	५८६५	...
(१०) लोहे, पीतल के ,,	...	२६०००	...
(११) नील के ,,	...	४२१२४	...

(ग)

एक मात्र भारतीयों के स्वामित्व में (१९०८)

व्यवसाय	पूंजी	श्रमी	वार्षिक उत्पत्ति
(१) रुई के कारखाने	२०$\frac{१}{२}$ करोड़ + ?	२३६०००	...
(२) बर्फ के कारखाने	१६ लाख	...	...
(३) रुईको दवानेवाले कार०	...	८२०००	...
(४) जूट को ,,	...	२७०००	...
(५) छापाखाने	...	७६५००	...

(६)

भारतवर्ष में भृतिका ह्रास

पूर्व प्रकरणों में दिखाये गये व्यवसायिक अधः पतन का प्रभाव श्रमियों की भृति पर विशेष रूप से पड़ा है। संपत्ति-शास्त्र के वास्तविक तथा मौलिक भृति के प्रकरण में दिखाया जा चुका है कि श्रमियों की भृति को एकमात्र रुपयों से मापना ठीक नहीं है वास्तविक भृति वृद्धि को जानने के लिये खाद्य तथा भोग्य पदार्थों की कीमत वृद्धि को भी अवश्य देखना चाहिये। यदि किसी देश में कीमतों की अपेक्षया भृति वृद्धि अधिक हो तो उसदेश में भृति वृद्धि कही जा सकती है। अन्यथा नहीं।

(Economics of British India by J. Sarkar M. A. third Edition P. 170-171)

मुसलमानी काल में श्रमियों की वास्तविक भृति क्या थी ? इसको जानने के लिए उस समय के खाद्य पदार्थों की कीमत तथा श्रमियों की भृति को जानना अत्यंत आवश्यक है।

अलाउद्दीन के काल में खाद्य पदार्थों की कीमतें

(१४ वीं शताब्दी)

पदार्थ	प्रति मन का भाव
गेहूं	३५· ४७५ पैसे मन
जौ	१८· १७५ पैसे मन
चावल	२०· ८ ,,
दाल	२३· १ ,,
चना	२३· १ ,,
मोठ	१४· ३ ,,
शुद्ध शक्कर	२८०· ५ ,,
कच्ची शक्कर	६२· ७ ,,
घी	७४· २५ ,,
तेल	६२· ७ ,,
नमक	६· ०७५ ,,

ऊपर लिखे ब्योरे से स्पष्ट है कि अलाउद्दीन के काल में खाद्य पदार्थ अत्यन्त सस्ते थे। ७४ पैसों में एक मन घी और ३५ पैसों में एक मन गेहूं मिलता था। विचित्रता तो यह है कि अकबर के काल में भी खाद्य पदार्थों की कीमतें इसी प्रकार थीं। आजकल खाद्य पदार्थ जितने महंगे हो गये हैं यह भी पाठकों से छिपा हुआ नहीं है। विषय के स्पष्ट करने

आंग्ल काल में अन्य व्यवसाय

के लिये हम अकबर तथा आंग्ल राज्य में खाद्य पदार्थों की कीमतों की तुलना कर देना आवश्यक समझते हैं।

अकबर का राज्य		आंग्ल राज्य		
खाद्य पदार्थ	आनों में प्रति मन का भाव	थोक की कीमत १८९४ में	फुटकर कीमत १८९३ में	३०० वर्षों में पदार्थों की कीमतों में प्रति शतक वृद्धि
गेहूं	१०·५ आना मन	रु. आना	रु. आना	४६६·६
आटा	१६· ,,	३·१९३	३—१	४६९·२
जौ	७· ,,	...	३—१३	६२८·५
चावल	७·५७ ,,	२.६८७	२—१२	९२४·७
दाल	१४·२५ ,,	५.०५७	४—६	४७७·१
चना	१४·७० ,,	...	४—४	२९९·३
मोठ	१०·५ ,,	२.१०४	२—१२	६८५·७
ज्वार	९· ,,	...	४—८	४००·
शुद्ध शक्कर	९८· ,,	२.१६१	२—४	१६५·९
कच्ची शक्कर	४९· ,,	...	१२—०	१३०·६
घी	१०५· ,,	४.५३९	४—०	८८१·६
तेल	८०· ,,	४८.८९१	५४—	३६५·७
		...	१६—०	५५६·७३

देखो—संपत्ति-शास्त्र, पं॰ प्राणनाथ विद्यालंकार लिखित (जब्बलपुर—राष्ट्रीय हिन्दी मंदिर द्वारा प्रकाशित होने वाला)।

अकबर के समय में जहां खाद्यपदार्थ सस्ते थे वहां श्रमियों की भृति बहुत ही थोड़ी थी। उन दिनों में पैसों के सदृश दाम नामी सिक्का चलता था। आईनई अकबरी में लिखा है कि साधारण साधारण मजदूर को एक दिन में २ दाम भृति अवश्य मिलती थी। इस दो दाम में अकबर के समय का मजदूर भिन्न २ खाद्यपदार्थों की जो राशि खरीद सकता था वह १९१३ के ४ आना भृति कमाने वाले मजदूर को नहीं नसीब थी। भोजन छादन के विचार से अकबर तथा अंग्रेज़ी राज्य के मेहनती मजदूरों की वास्तविक भृति की तुलना इस प्रकार की जा सकती है।

अकबर के जमाने से अंग्रेजी जमाने की तुलना

खाद्य पदार्थ	अकबर के समय में साधारण श्रमी की खाद्य पदार्थों मे भृति	आंग्लकाल में साधारणश्रमी की खाद्य पदार्थों में भृति	लार्ड हार्डिन्ज के समय में
गेहूं	$9\frac{1}{4}$ पाउन्डज़ (८२ पाउन्डज़ १ मन लगभग $\frac{1}{2}$ सेर १ पांउडज़)	$6\frac{1}{2}$ पाउन्डज़	(८२ पाउन्डज़ १ मन लगभग $\frac{1}{2}$ सेर १ पां०)
जौ	$12\frac{3}{8}$,,	९ ,,	
चावल	$12\frac{3}{8}$,,	५ ,,	
दूर्द	७ ,,	४ ,,	

चना	७	पांउडज़	७	पांउडज़
मोठ	६ १/४	,,	४	,,
ज्वार	११ १/२	,,	५ १/२	,,
कच्ची शक्कर	२	,,	४	,,
घी	१ ६/१०५	,,	३/८	,,
तेल	१ ३१/८०	,,	१ १/४	,,
नमक	७	,,	८	,,
दूध	४ १/२	,,	४	,,

यदि उपरि लिखित वास्तविक भृति की मध्यमा निकाली जावे तो पता लगेगा कि अकबर के समय में आंग्लकाल की अपेक्षया भारतीय जनता अधिक समृद्ध थी। मध्यमा के द्वारा पता लगता है कि अकबर के समय में साधारण श्रमी को ६ पाउन्डज़ खाद्य पदार्थों के मिलते थे और लार्ड हार्डिंग के समय में केवल ४ १०/१७ पाउन्डज़ ही मिलते थे। इस प्रकार आंग्लकाल की अपेक्षया अकबर के जमाने में भारत के लोग दुगने से कुछ ही कम अधिक समृद्ध थे।*

भृति की वर्त्तमान-अवस्था

अकबर के जमाने में भारतीय श्रमियों की क्या भृति थी ?

---

*The Wealth of India, November, 1913 Vol. II. no II. "Article, Variation of Prices in India from 1300 to 1912."

इसपर प्रकाश डाला जा चुका है। अब यह दिखाने का यत्न किया जावेगा कि वर्त्तमान काल में श्रमियों की भृति बढ़ रही है या घट रही है। १८७१ से १९०१ तक भारत में पदार्थों की कीमतें इस प्रकार चढ़ी हैं।**

भारत में कीमतों की वृद्धि।

सन्	कीमतों का चढ़ाव
१८७१—५	१००
१८७६—८०	१२५
१८८१—५	९५
१८८६—९०	१२१
१८९१—५	१३५
१८९६—१९	१६५
१८९१—३	१३९

कीमत वृद्धि ३९ प्रति शतक वृद्धि

पदार्थों की कीमतों के बढ़ने के साथ साथ भारत में भृति भी बढ़ी है जिसका ब्योरा इस प्रकार है।

† Imp. Gaz. of India, Vol III. P 458.

१८७३ से १९०३ तक भारत में भृति की वृद्धि †

प्रान्त	कृषि के मजूरों की भृति वृद्धि	साईसों की भृति वृद्धि	बढ़ई लोहार तथा मकान बनाने वाले आदि कारीगरों की भृति वृद्धि	भृति की मध्यमा
	प्रति शतक	प्रति शतक	प्रति शतक	प्रति शतक
बंगाल	३९३· प्र श	३२·७ प्र श	४७·६ प्र श	३९·६ प्र श
आगरा	२२·७	१५·०	१·६	१२·१ ,,
अवध	२·०	९·२	४·२	४·६ ,,
बम्बई	११·६	१·९	३·३	२·०४ ,,
पंजाब	४८·४	२२·५	५५·१	४०·६ ,,
मद्रास	९·८	११·९	१५·५	१२·४ ,,
मध्यप्रांत	१२·५	६·४	१२·४	१०·२ ,,
वर्मा	८·५	५·६	६·	३·३ ,,
कुल भारतवर्ष	२०·६ प्र श	९·५ प्र श	१९·४ प्र श	१६·५ प्र श

ऊपरिलिखित कीमतों तथा भृतियों की सूची से स्पष्ट है कि भारत में पदार्थों की कीमतें ३९ प्र० श० बढ़ी हैं और भृति केवल १६-५ प्र० श० बढ़ी है। सारांश यह है कि भारत में दिन पर दिन जनता की वास्तविक भृति कम हो रही है अवध की दशा तो बहुत ही दुःखजनक है। अवध की कीमतें

† Imp. Gaz. of India. Vol,. III. PP. 472 47

जहां २८ प्र० श० चढ़ी है वहां श्रमियों की मौलिक भृति ४·६ प्र० श० घटी हैं। केवल पंजाब तथा बंगाल में ही भारतीय श्रमियों की दशा मध्यम है। ऐसा क्यों है? इसका कारण यह है कि भारत में मालगुजारी सरकार ने बहुत ही अधिक बढ़ा दी है और संपूर्ण व्यापार व्यवसाय का एकाधिकार विदेशियों के पास चला गया है।

तृतीयखंड

विनिमय तथा राष्ट्रीय आयव्यय

पहिला परिच्छेद

भारत सरकार की व्यापारीय नीति।

(१)

विनिमय का विकास

प्राचीन पुरुषों के जीवन में यह एक विशेषता थी कि वह अपनी जरूरत का सामान स्वयं ही उत्पन्न करते थे। व्यापार तथा विनिमय उनमें पूर्वावस्था में ही विद्यमान थे। व्यवसायों के साथ शनैः शनैः व्यापार का विकास हुआ और क्रमशः विनिमय के साधन दिन पर दिन उन्नत होते गये। कुछ समय तक वस्तु विनिमय (Barter) के द्वारा काम किया गया। परंतु जब समाज की आकृति विशाल हो गई और धातु की उत्पत्ति तथा परिशोधन के तरीकों का ज्ञान भी बढ़ा तो मुद्रा ने वस्तु विनिमय में प्राधान्य प्राप्त किया।

अन्य राष्ट्रीय कार्य्यों तथा व्यवसायों के विकास के सदृश ही भारत में मुद्रा का विकास अति प्राचीन है। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय तक भारत में मंहगी बहुत ही कम थी। यही कारण है कि उस समय उत्तम मुद्रा थोक के क्रय विक्रय में ही

चलता था। फुटकर क्रय विक्रय मे गोरखपुरी पैसा ही चलता था। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में रुपये का मन भर अनाज मिलता था। स्वाभाविक था कि ऐसी सस्ती में फुटकर क्रय विक्रय कौड़ियों तथा पैसों से हो। गांवों में तो अब तक यही दशा है। किसान लोहार तथा बढ़ई एक दूसरे की जरूरतों को वस्तु विनिमय के द्वारा ही पूरी कर लेते हैं और किसी ढंग की कठिनाई अनुभव नहीं करते। शुरू शुरू में अंग्रेजी राज्य को मालगुजारी भी अनाज में ही दी जाती थी।

गांव के लोग आजकल अपनी बहुत सी जरूरतों को शहरों से ही पूरा करते हैं। जो गांव शहर से बहुत दूर हैं उनमें मेले तथा भ्रमणीय बाजार लगते हैं। बड़े बड़े कस्बों में अबतक तरकारी शाक भाजी फल आदि का बाजार कभी एक मुहल्ले में और कभी दूसरे मुहल्ले में लगता है और इस प्रकार सप्ताह में लगभग सारे कस्बे में चक्कर लगा लेता है। कस्बों से जो छोटे गांव हैं और जिनकी आबादी एक हजार के पास है उनमें दूसरे तीसरे दिन मेला तथा बाजार लगता है। समीपवर्ती गांवों के लोग इन्हीं भ्रमणीय बाजारों से अपनी आवश्यकता के पदार्थ खरीदते हैं।

रेलों के बन जाने से दूर दूर देश के पदार्थों का प्राप्त करना सुगम हो गया है। प्राचीन काल में जो चीजें बहुमूल्य समझी जाती थीं वह भी आजकल सुगमता से प्राप्त की जा सकती हैं।

गरम मसाले, कपूर, चंदन आदि मध्यकाल में बहुत ही मंहगे थे। आजकल यह पूर्वापेक्षया बहुत ही सस्ते हैं। दुर्भिक्ष तथा दरिद्रता की घनता तथा राष्ट्रीय भेद को दूर करने में भी रेलों ने बड़ा भारी भाग लिया है। एक ही स्थान पर भयंकर उग्ररूप में दुर्भिक्ष का पड़ना पूर्वापेक्षया कम है। यही बात श्रम विभाग तथा व्यावसायिक विकास से दरिद्रता के दूर करने में हुई है। रेलों के निकलने से पूर्व भारत समृद्ध था परंतु साथ ही दुर्भिक्ष आदि आकास्मिक विपत्ति से अपने आपको बचाने में असमर्थ था। प्राचीन राजा यही कोशिश करते थे कि जहां तक हो सके दरिद्रता तथा दुर्भिक्ष कभी देश को सताने ही न पावें। उसमें वह बहुत कुछ सफल हुए जैसा कि पूर्व परिच्छेदों में स्पष्ट किया जाचुका है। योरुप की अन्न संबन्धी मंहगी के संपूर्ण देश पर छा जाने से भारत के कष्ट बहुत ही अधिक बढ़ गये हैं। योरुप में अनाज के जाने से अनाज बहुत ही मंहगा हो गया है। इसी मंहगी से चरागाह खेत में परिवर्तित किये गये हैं। परिणाम इसका यह है कि भारत की पशु संपत्ति बहुत ही कम हो गई है और बचे बचाये पशु भी दिन पर दिन दुर्बल होते जाते हैं। घी दूध की कमी से लोगों का स्वास्थ नष्ट हो रहा है और वह बीमारी का मुकाबला करने में दिन पर दिन असमर्थ होते जाते हैं। १८३४ से १९१३-१४ तक भारत का अन्न आदि कच्चा द्रव्य भारत से

सायिक माल कितनी अधिक मात्रा में आया इसका ज्ञान निम्नलिखित ब्योरे से स्पष्ट हो सकता है।

भारत के आयात तथा निर्यात

सन्	(करोड़ रुपयों में) आयात	(करोड़ रुपयों में) निर्यात
१८३५–१८४०	७·३२	११·३२
१८४०–१८४५	१०·४५	१४·२५
१८४५–१८५०	१२·२१	१६·९९
१८५०–१८५५	१५·८५	२०·०२
१८५५–१८६०	२६·८५	२५·८५
१८६०–१८६५	४१·०६	४३·१७
१८६५–१८७०	४९·३१	५७·६६
१८७०–१८७५	४१·३०	५७·८४
१८७५–१८८०	४८·२२	६३·१३
१८८०–१८८५	६१·८१	८०·४१
१८८५–१८९०	७५·१३	९०·२८
१८९०–१८९५	८८·७०	१२८·६७
१८९५–१९००	८८·५६	११३·९३
१९००–१९०५	११०·६९	१३५·५९
१९०५	१४३·९२	१७५·२६

सन्	(करोड़ रुपयों में) आयात	(करोड़ रुपयों में) निर्यात
१९०६	१४३·७६	१७७·३०
१९०७	१६१·८७	१८२·७४
१९०८	१७८·९३	१८२·९३
१९०९	१५१·५३	१५९·४९
१९१०	१६०·१७	१९४·३६
१९११	१७३·४७	११७·०८
१९१२	१९७·५२	२३८·३६
१९१३	२२८·४६	२५६·८५
१९१४	२३४·७४	२३९·०४

उपरिलिखित आयात निर्यात की विशेषता यह है कि आजकल भारत से विदेश में वही पदार्थ जाते हैं जो कि खाने या व्यवसायिक पदार्थ बनाने के काम में आते हैं। भारत अंग्रेजों की नीति से व्यायसायिक पदार्थों के संबंध में स्वावलंबी देश नहीं रहा है। विदेशी व्यावसायिक माल से भारत के बाजार पटे पड़े हैं। यहां पर ही बस नहीं। भारत जितने पदार्थ विदेश से मंगाता है उससे अधिक पदार्थ विदेश में भेजता है। इस आधिक्य का फल भारत को नहीं मिलता है अपितु होम चार्जिज़ के रूप में इंग्लैण्ड में ही रहता है। होम चार्जिज में भारत में काम करने वाले अंग्रेज व्यापारी व्यय-

आमदनी ही प्रायः संमिलित है। होम चार्जिज़ का धन निकाल लेने के बाद भी यदि आधिकर का कुछ फल भारत को प्राप्त होना ही हो तो सोने चांदी के रूप में भारत को प्राप्त हो जाता है।

प्राचीनकाल में अपनी व्यापारीक तथा व्यावसायिक नीति से इंग्लैण्ड ने भारत को जो नुकसान पहुंचाया उसपर प्रकाश डाला जा चुका है। आजकल इंग्लैण्ड पुनः एक नई व्यापारीय नीति के अवलंबन करने के लिये प्रवृत्त है। भारत को इस नीति के कारण क्या क्या नुकसान पहुंचेंगे अब इसी पर प्रकाश डाला जायगा।

---

(२)

व्यापारीय नीति।

पूर्वप्रकरणों में यह स्पष्ट रूप से दिखाया जा चुका है कि सरकार की नीति से भारत एक मात्र कृषि प्रधान देश बन गया है। विदेशी व्यावासायिक माल के आगमन से उसकी दरिद्रता दिन पर दिन उग्र रूप धारण कर रहा है। स्वाभाविक है कि यह प्रश्न उठे कि इस प्रकार विदेशी माल का स्वतंत्र रूप से निरंतर आगमन कहां तक भारत के लिए हितकर हो

सकता है? क्या विदेशियों के लिए भारत का बाजार अस्वरक्षित छोड़ देना ही भारत के लिये हित कर है या उसमें किसी ढंग की बाधा की जरूरत है।

महाशय आडमस्मिथ से लेकर नवीन समय के अर्थशास्त्रज्ञों के विचारों का यदि अध्ययन तथा निचोड़ निकाला जाय तो स्पष्ट हो सकता है कि लड़ाई से पूर्व तक इंगलैण्ड के लोग साधारणतया स्वतंत्र व्यापार के ही पक्ष में थे। इसमें संदेह भी नहीं कि जर्मनी फ्रान्स अमरीका आदि के विचारकों का मत उनसे सर्वथा भिन्न था।

प्राचीनकाल में फिजियोक्रैट्स व्यापार को अनुत्पादक समझते थे। उनका विचार था कि इससे सदा ही एक न एक दल को नुकसान रहता है। यद्यपि यह सिद्धान्त पूर्णरूप से सत्य नहीं है तथापि भारत के संबंध में इसकी सत्यता किसी हद तक निस्संदिग्ध भी है। इंगलैंड व्यापार व्यवसाय प्रधान देश था अतः उसमें फिजियोक्रैट्स के विचारों ने स्वतन्त्र व्यापार की नीति का रूपांतर प्राप्त किया। परन्तु योरुपीय राष्ट्रों की आर्थिकदशा इंग्लैंड से सर्वथा भिन्न थी। यही कारण है कि वहां शनैःशनैः व्यवसायिक वाद ने उग्र रूप धारण किया। इसका परिणाम यह हुआ कि योरुप के लोग सोने चाँदी के प्राप्त करने में सन्नद्ध हो गये। व्यवसायों के समुत्थान में भी उन्होंने विशेष यत्न करना शुरू किया। जन संख्या वृद्धि को

ना छन लक्ष्य समझकर उसकी वृद्धि को दिन पर दिन जातीय समृद्धि का कारण प्रगट किया। नये नये ंग की सामुद्रिक चुंगी विदेशी व्यवसायिक माल पर लगाई गई।

व्यावसायिक वाद के सिद्धान्तों की शीघ्र ही अवहेलना शुरू हुई। क्योंकि इसके द्वारा राज्य की शक्ति बढ़ती थी। इंग्लैण्ड लोकतंत्र देश था परन्तु योरूप की यह दशा न थी। योरुपीय राष्ट्रों ने स्वराज्य को ही समृद्धि का मुख्य आधार समझा और शीघ्र ही राज्य की शक्ति को बढ़ाने के स्थानपर उसको अपने हाथ में किया। उधर इंगलैंड ने भी स्वतन्त्र व्यापार की ओर योरूपीय राष्ट्रों को प्रेरित किया जबकि नाविक व्यवसाय के संबंध में वह स्वयं बाधित व्यापार की नीति का बद योजक था।

महाशय फ्रेडरिक लिस्ट ने कुछ ही समय के बाद स्वतंत्र व्यापार की नीति का घोर विरोध किया और वह अपने यत्न में इस सीमातक सफल हुआ कि शीघ्र ही योरुप तथा अमेरिका स्वतंत्र व्यापार की नीति को सदा के लिये छोड़ बैठे।

योरुपीय राष्ट्रों की व्यावसायिक वृद्धि का औपनिवेशिक नीति के साथ घनिष्ट संबंध है। योरुपीय राष्ट्रों ने उपनिवेशों को अपनी व्यावसायिक वृद्धि का साधन बनाना चाहा। उन्होंने मातृ-भूमि का प्रेम अनुचित रूप से औपनिवेशिकों में

उत्तेजित कर अपने अपने कारखानों के माल को उनमें खपाना शुरू किया। आधीन राज्यों में भी इसी नीति को प्रचलित किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि योरूपीय राष्ट्रों में उपनिवेश तथा आधीन राज्य प्राप्त करने के उद्देश्य से भयंकर से भयंकर तथा क्रूर से क्रूर संग्रामों का सूत्रपात हुआ। इन्हीं संग्रामों का यह परिणाम है कि हालैण्ड का जावा पर और इंग्लैंड का भारत पर आधिपत्य अनुचित कार्यों का आधार बन गया। अफ्रीका तथा अमरीका के पुराने लोगों के नाश पर उपनिवेशों का बसाने का रहस्य भी उसी में छिपा है। भारतीयों को कुली बनाकर उपनिवेशों का बसाना योरूपीय राष्ट्रों की स्वतंत्रता संबंधी विचार कितने संकुचित तथा हेय हैं इसपर उचित विधिपर प्रकाश डालता है। आजकल चीन में योरुपीय राष्ट्र उत्पात बढ़ा रहे हैं और अन्तरीय झगड़ों को उत्तेजित कर रहे है। यह सब क्यों? यह इसीलिये कि चीन को कृषि प्रधान बनाकर अपने व्यावसायिक माल को वहां खपाया जाय और उसको भी भारत की तरह लूटा जाय।

साम्राज्यवाद की ओर दिन पर दिन इंग्लैंड झुक रहा है इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। प्रबल राष्ट्रों को अपने साथ मिलाकर दूसरे राष्ट्रों को पददलित करने के लिये उसने आजकल सापेक्षिक व्यापार की नीति को पुष्ट करना शुरू

किया है। मित्रराष्ट्रों को अपने साम्राज्य में व्यापार संबंधी कुछ कुछ स्वतंत्रता देकर वह अपनी शक्ति को इस सीमातक बढ़ाना चाहता है कि आधीन राज्य यदि स्वतंत्र होना भी चाहें तो संसार के बड़े बड़े राष्ट्र उनको इस पवित्र कार्य से रोकें। १६०७ में लंडन की व्यापारीय समिति में महाशय चैंबरलेन ने कहा था कि "इंग्लैंड की स्वतंत्र व्यापार-संबंधी नीति अब देश के लिए अनुकूल नहीं है। राज्य को अपनी नीति सापेक्षिक चुंगी के प्रयोग में प्रगट करनी चाहिये और साम्राज्य को इसी के आधार पर संगठित करना चाहिये। विदेशी माल पर चुंगी लगाकर इंग्लैंड को अपनी व्यवसायों की रक्षा करनी चाहिये और अपनी राजकीय आमदनी भी बढ़ानी चाहिये"*।

सापेक्षिक व्यापार की नीति को समझने के लिये बाधित व्यापार की नीति को पूर्णरूप से समझ लेना चाहिये। बाधित व्यापारीय नीति का तात्पर्य यही है कि राष्ट्र के व्यवसायों की समुन्नति में सामुद्रिकचुंगी का प्रयोग किया जाय और विदेशी सस्ते माल को राष्ट्र में आने से रोका जाय और साथ ही पारितोषक सहायता आदि अनेक तरीकों से बालक व्यवसायों को स्वावलंबी बनाने का यत्न किया जाय। जो लोग इसके विपक्ष में हैं वह स्वतन्त्र व्यापार की नीति को

* Indian Economics by V. G. Kale, p. 214.

ही पुष्ट करते हैं। उनका ख्याल है व्यापार व्यवसाय में निर्हस्ताक्षेप की नीति को ही काम में लाना चाहिये। व्यवसायों को अपने ढंगपर बढ़ने देना चाहिये और विदेशीय व्यवसायों के साथ स्पर्धा करने देना चाहिये। राज्य का यह काम नहीं है कि जनता के कार्यों में हस्तक्षेप करे। उसको जहां तक हो सके पृथक ही रहना चाहिये और जनता को प्रत्येक कार्य्य में अधिक से अधिक स्वतंत्रता देना चाहिये। इस सिद्धान्त में क्या दोष है इसको जानने के लिये राज्य के कार्य्य पर एकबार गंभीर विचार करना आवश्यक है। इसीसे वह स्पष्ट हो सकता है कि राज्य के सैकड़ों ऐसे काम हैं जोकि स्वतंत्रता तथा स्वाभाविक नियम के विरुद्ध हैं। पुलिस पोस्ट-आफिस से लेकर राज्य का प्रत्येक विभाग जनता के स्वावलम्बन को बढ़ाने के उद्देश्य से नहीं स्थापित है। उसका मुख्य उद्देश्य शान्ति तथा समृद्धि को बढ़ाना है। यदि विदेशी माल के आगमन से ही जनता को स्वावलंबन सिखाना हो तो क्यों न पुलिस विभाग को उड़ाकर जनता को चोरों से बचने के मामले में भी स्वावलंबन सिखाया जाय। यदि कोई शहर को गंदा करना चाहे या किसी की गांठ कतरे तो जनता की रक्षा में क्या नियम बनाये जांय। क्या इससे अपराधी की स्वतन्त्रता को नुकसान न पहुंचेगा। सारांश यह है कि स्वतंत्रता एक सापेक्षिक शब्द

है। पूर्ण स्वतंत्रता या पूर्णपराधीनता कोई वस्तु नहीं। सभी राष्ट्रीय कार्यों तथा नियमों से किसी न किसी अंश तक स्वतंत्रता तथा पराधीनता पैदा ही होती है। प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि कौनसा राष्ट्रीय कार्य जनता का हित करता है तथा समुत्थान में जनता को सहारा देता है और कौनसा राज्य नियम जनता के समुत्थान में सहायता नहीं पहुंचाता। यदि इस कसौटी को सामने रखकर विचार किया जाय तो स्वतन्त्र व्यापार पक्षपोषकों की स्वतन्त्रता एक कल्पित वस्तु रह जाती है। इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि बाधित व्यापार की नीति सर्वथा निर्दोष है।

स्वतंत्र तथा बाधित व्यापार की नीति का संबंध राष्ट्र की आर्थिक दशा से है। राष्ट्र की जैसी परिस्थिति हो राज्य को वैसी ही नीति का अवलंबन करना चाहिये। यदि किसी व्यवसाय में संरक्षण की कुछ भी ज़रूरत न हो तो उसके संबंध में बाधित व्यापार की नीति का अवलंबन न करना चाहिये।

गंभीर विचार करने पर यह स्पष्ट हो सकता है कि स्वतंत्र-व्यापार की नीति का संबंध सार्वभौम बंधुभाव के साथ है और बाधित व्यापार की नीति का संबंध जातीय वाद के साथ है। महाशय सैलिग्मैन ने ठीक लिखा है कि "स्वतंत्रव्यापार की नीति के पक्षपोषक इस बात का ख्याल नहीं रखते हैं कि उनकी नीति का घनिष्ठ संबंध सार्वभौम बन्धुभाव के साथ

है। वाधित व्यापार की नीति का विशेष संबंध जातीय वाद के साथ है। स्वतंत्र व्यापारी आदर्श को सामने रखते हैं और बाधित व्यापारी जातियों की वर्तमान अवस्था को सामने रख-कर काम करना चाहते हैं। सच तो यह है कि सार्वभौम लोक-तंत्र राज्य की अभी कुछ भी संभावना नहीं है। जातियों को बहुत समय तक अपना पृथक्‌अस्तित्व स्थापित करना ही पड़ेगा। क्योंकि जातियों की अवस्था समान नहीं है। प्रत्येक को प्रबल होने का यत्न करना चाहिये। समय आयगा जबकि जाति तथा देशभक्ति एक पाप बन जायगा। परन्तु अभी तक इससे बढ़कर और कोई दूसरा पुण्य नहीं है। स्वतंत्र व्यापार के पक्षपोषक इसी बात का ख्याल नहीं रखते हैं।

व्यवसाय प्रधान देशों को वाधिक व्यापार की उस सीमा तक जरूरत नहीं है जिस सीमातक कि कृषिप्रधान देशों को। निस्सन्देह वाधित व्यापार की नीति भी दोष रहित नहीं कही जा सकती। विनिमय तथा व्यापार में उचित सीमातक स्वतंत्रता होनी चाहिये। परन्तु साथ ही राज्य को दुर्बल-राष्ट्र को सबल राष्ट्रों के आर्थिक आक्रमण से बचाना चाहिये। यदि प्रबल राष्ट्र पारितोषक सहायता आदि देकर अपने देश के व्यवसायों को दूसरे देशों में सस्तेदाम पर माल बेचने के लिये उत्तेजित करें तो क्या दुर्बल राष्ट्रों को इस आक्रमण से बचने के लिए कुछ भी उपाय न करना चाहिये?

(३)

भारतीयों का विचार

द्वितीयखंड में इस विषय पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला जा चुका है कि भारतीत व्यवसायों के अधःपात में इंग्लैंड ने कितना भाग लिया और किस प्रकार भारतीय माल के आने को रोकने के लिए सामुद्रिक चुंगी की दीवारें खड़ी की गईं। भारतीयों ने इससे उत्तम शिक्षा ली। आज-कल भारतीयों की जो मानसिक दशा है उसपर महाशय लीलस्मिथ ने अच्छा प्रकाश डाला है। वह लिखते हैं कि "भारत में सार्वजनिक मत बाधित व्यापार के पक्ष में है। यदि भारत को आर्थिक स्वराज्य दे दियाजाय तो सामुद्रिक चुंगी का सबसे पहिला शिकार इंग्लैण्ड का माल ही होवेगा"। यही कारण है कि उसने अन्तिम परिणाम यह निकाला कि "भारत में स्वतंत्र व्यापार के पक्षपातियों शासकों तथा विचारकों की नितांत आवश्यकता है"। लीलस्मिथ को यह पूर्णरूप से समझ लेना चाहिये कि भारतीयों की परिस्थिति ही ऐसी है कि उनमें स्वतंत्र व्यापार के पक्ष पोषक सम्प्रदाय को प्राधान्य नहीं प्राप्त हो सकता। शुरू शुरू में भारतीय विचारक स्वतंत्रव्यापार के पक्ष में थे परन्तु समय की गति के साथ साथ उनके विचार बदल गये। १८८२ के बाद से भार-तीयों को स्पष्ट रूप से मालूम पड़ गया कि अबतक इंग्लैण्ड

का राज्य लंकाशायर के हितों को सामने रख कर ही भारत का शासन करता है। वस्त्रव्यवसाय पर उनदिनों में जो ३$\frac{1}{2}$ प्रतिशतक का कर लगाया गया था उसने भारतीयों की आंखें खोलदी। महाशय दादाभाई नौरोजी ने लार्ड सैलिस्वरी के कार्य्यों की आलोचना करते हुए लिखा है कि "मैं स्वतंत्र व्यापार को पसंद करता हूं। परन्तु भारत तथा इंग्लैएड के बीच में स्वतंत्रव्यापार ऐसाही है जैसा कि दुर्बल तथा सबल घोड़ों की घुड़ दौड़। समान शक्तिशाली देशों में ही स्वतंत्र-व्यापार किसी सीमातक उचित है। आंग्ल उपनिवेश तो इस पर भी वाधित व्यापार के ही पक्ष में हैं। अंग्रेज़ों के आर्थिक आक्रमण से अपने आपको बचाने के लिए भारत को सामुद्रिक चुंगी रूपी दिवाल की शरण लेनी ही चाहिये। यही विचार, रमेशचन्द्र दत्त के हैं। उन्होंने भी अपने प्रसिद्ध "भारत के आर्थिक इतिहास" संबंधी ग्रंथ में लिखा है कि "आजकल सभी राष्ट्र स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में हैं। महाशय चैंबरलेन इसी आंदोलन को वाधित व्यापार के द्वारा, वालफोर बदले के द्वारा और फ्रान्स जर्मनी अमरीका आंग्ल उपनिवेश आदि सामुद्रिक चुंगी के द्वारा समर्थन कर रहे हैं। हम भारतवासी आर्थिक स्वराज्य से रहित पराधीन हैं। हम स्वदेशी आंदोलन के द्वारा ही स्वदेशीय व्यवसायों को शक्ति-संपन्न बनाना चाहते हैं"। के. टी. तैलंग तक इसी बात के पक्ष

ऊ में व्याख्यान देते हुए महाशय गोखले ने भी वाधित व्यापार तथा संरक्षण की नीति को ही पुष्ट किया था।

---

(४)

सापेक्षिक व्यापार की नीति।

सापेक्षिक व्यापार की नीति का घनिष्ट संबंध आर्थिक स्वराज्य तथा वाधित व्यापार की नीति के साथ है। चिरकाल से साम्राज्य संगठन पर विचार किया जा रहा था। महाशय जोजफचैंबर्लेन ने इस बात का बीड़ा उठाया। भारत में भी लोगों ने सापेक्षिक व्यापार तथा साम्राज्य संगठन के प्रश्न पर विचार करना प्रारंभ किया। जो कुछ अन्तिम निर्णय हुआ वह यही था कि बिना आर्थिक स्वराज्य तथा लोकतन्त्र राज्य पद्धति को प्राप्त किये भारत का इस नीति को समर्थन करना उचित नहीं है। महाशय वैब्ब तक ने लिखा कि भारत का सापेक्षिक व्यापार की नीति में प्रविष्ट होना हानिकर है। इंग्लैण्ड को अवश्यमेव लाभ होगा परंतु भारत को नुकसान पहुंचेगा।

महायुद्ध ने सापेक्षिक व्यापार के प्रश्न को एक नया रूप दिया। जर्मनी युद्ध के लिये बहुत पहिले से ही तैय्यार था। युद्ध शुरू होते ही उसने आंग्ल साम्राज्य के शिथिल संगठन

को स्पष्ट रूप से प्रगट कर दिया। उसी समय से इंग्लैण्ड ने यह इरादा किया कि आगे से ऐसा न होने दिया जायगा। सापेक्षिक व्यापार की नीति को प्रचलित करने के लिये इंग्लैंड के अर्थशास्त्रज्ञों ने राज्य से प्रार्थना की। उपनिवेश तथा आधीन राज्य का साम्राज्य में क्या भाग हो इस पर विचार किया जाने लगा। सर इब्राहीम रहीमतुल्ला ने आर्थिक स्वराज्य का भारत को देना आवश्यक प्रगट किया और साथ ही कहा कि इसको प्राप्त किये बिना साम्राज्य का संगठन पूर्ण नहीं हो सकता।

बहुत विवाद तथा विचार के बाद यह तो पूर्णरूप से स्पष्ट ही होगया कि साम्राज्य के अंग स्वरूप राज्य एक दूसरे देश के पदार्थों को स्वतंत्र रूप से आने दें। और अभी विदेशीय राष्ट्रों के पदार्थों पर किसी न किसी अंश तक सामुद्रिक चुंगी का अवश्य ही प्रयोग करें। इंग्लैंड के बालक व्यवसायों को इससे लाभ पहुंचेगा और साम्राज्य के भिन्नभिन्न भाग इंग्लैंड के बालक व्यवसायों को परिपक्व रूप देने के लिये विदेशीय माल पर सामुद्रिक चुंगी लगाकर राज्य कर तथा मंहगी का भार अपने सर ढोवेंगे में इसमें भी कुछ संदेह नहीं है। परंतु उचित तो यह है कि साम्राज्य के संगठन में सभी एक सदृश भाग लें और सभी एक सदृश स्वार्थत्याग करें। भारत को आधीन राज्य समझकर निचोड़ने का यत्न करना

और संपूर्ण भार तथा क्षति उसी पर लादना कभी भी साम्राज्य के हित को नहीं कर सकता।

सापेक्षिक व्यापार की नीति साम्राज्य वाद का एक अंश है। भारत के पराधीन रहते हुए इस नीति का भारत में प्रचलित करना भयंकर हानियों तथा दुष्परिणामों को पैदा कर सकता है। भारत सापेक्षिक व्यापार की नीति के विरुद्ध नहीं है। वह तभी तक विरुद्ध है जब तक कि उसको आर्थिक स्वराज्य प्राप्त न हो जाय। वह स्वेच्छानुसार अपने बालक व्यवसायों के बचाने के उद्देश्य से सामुद्रिक चुंगी का प्रयोग कर सके। परंतु यदि बिना स्वराज्य या आर्थिक स्वराज्य को दिये सरकार सापेक्षिक व्यापार की नीति को भारत में प्रचलित करना चाहे तो यह भारतीयों की प्रसन्नता का कारण कभी भी नहीं हो सकता। १९०३ में भारत सरकार ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि "पुराने जमाने का अनुभव यह सूचित कर रहा है कि आर्थिक प्रश्नों में इंग्लैंड द्वारा भिन्नभिन्न दलों के स्वार्थों को ही भारत से सिद्ध करने का यत्न किया जायगा और भारत के स्वार्थों की पूर्णरूप से अवहेलना की जायगी"। लार्डकर्जन ने १९०८ में आंग्ल लोक सभा में व्याख्यान देते हुए भी इसी बात को पुष्ट किया था।

सारांश यह है कि भारत की आर्थिक उन्नति का आधार आर्थिक स्वराज्य है जोकि स्वयं स्वराज्य पर निर्भर है।

क्योंकि स्वराज्य तथा आर्थिक स्वराज्य सदा एक साथ ही रहते हैं। १६१३ को मार्च में सुप्रीम लैजिस्लेटिव काउन्सिल में सर गंगाधर चिटनवीस ने इंग्लैंड तथा आंग्ल उपनिवेशों के साथ सापेक्षिक व्यापार की नीति के अवलंबन करने के विषय में प्रस्ताव उपस्थित किया। परंतु साथ ही उसने आर्थिक स्वराज्य को भी आवश्यक प्रगट किया।

महाशय वी० जी काले का मत है कि सापेक्षिक व्यापार की नीति में तीन सिद्धान्तों को आधार बनाना चाहिये और जो कि इस प्रकार हैं।

(१) आर्थिक स्वराज्य। व्यापार संबंधी किसी भी नीति का अवलंबन क्यों न किया जाय, उसको प्रचलित करना जनता के बहुमत के हाथ में ही होना चाहिये। उपनिवेशों में इसी सिद्धान्त पर काम हो रहा है। इसका परिणाम यह है कि उनकी राजनैतिक स्थिति इंग्लैंड के तुल्य है। सन् १८५६ में कनाडा के आय व्यय सचिव ने इंग्लैंड को स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि राज्य कर तथा सामुद्रिक चुंगी के संबंध में वह जनता के मत का ही आदर करेंगे चाहे वह मत इंग्लैंड के स्वार्थों के प्रतिकूल ही क्यों न हो।

(२) औपनिवेशिक स्थिति। भारत को उपनिवेशों के तुल्य ही अधिकार मिलना चाहिये। राजनैतिक अधिकारों

की दृष्टि से भारत तथा उपनिवेश में किसी भी ढंग का भेद न पड़ना चाहिये। भारत को पूर्णरूप से आर्थिक स्वराज्य मिलना चाहिये ।

(३) स्वराज्य। भारत सरकार की प्रभुत्वशक्ति जनता के हाथ में होनी चाहिये । जनता का जो कुछ मत हो उसी के अनुसार भारत सरकार को काम करना चाहिये ।

यदि उपरिलिखित तीनों बातें भारत को प्राप्त हो जांय भारत बड़ी प्रसन्नता के साथ साम्राज्य के लिये अपने स्वार्थों का परित्याग करने के लिये तैय्यार होजाय। सापेक्षिक व्यापार का मुख्य उद्देश्य आर्थिक उन्नति होना चाहिये। मात्स्य न्याय तथा बली दुर्बल न्याय के आधार पर प्रचलित की गई कोई भी व्यापारीय नीति स्वीकृत नहीं की जा सकती ।

महायुद्ध से इंग्लैण्ड को यह पूर्ण रूप से शिक्षा मिली है कि साम्राज्य का प्रत्येक भाग पूर्ण रूप से एक दूसरे के साथ संगठित होना चाहिये। साम्राज्य के भिन्नभिन्न भागों को सामने रखते हुए यह कहा जा सकता है कि थोड़े से यत्न से ही साम्राज्य स्वावलम्बी हो सकता है। परन्तु साम्राज्य के भिन्नभिन्न अंगों तथा भागों के राजनैतिक तथा आर्थिक अधिकार समान नहीं है। बहुत स्थानों में तो भयंकर असंतोष है। आर्थिक संगठन हो तो कैसे हो। प्रोफेसर निकलसन ने ठीक लिखा है कि "साम्राज्य में स्वतन्त्र व्यापार की नीति

को प्रचलित किया जा सकता है। परन्तु यह आदर्श तब तक सफल नहीं हो सकता जबतक इंग्लैंड दूसरे के स्वार्थों का ख्याल न करेगा और पारस्परिक ईर्ष्या तथा द्वेष को उत्पन्न होने से न रोकेगा। उचित तो यह है कि इंग्लैण्ड साम्राज्य के भिन्न २ अंगों की जनता के राज्यकर तथा व्यापारीय नीति संबंधी अधिकारों में हस्तक्षेप न करे।

भारत सापेक्षिक व्यापार की नीति को स्वीकृत करने में अपने परावलंबन के कारण भी असमर्थ है। १९१३-१४ में ७० प्रतिशतक विदेशी माल भारत में आता था इसमें से एकमात्र ६४ प्रतिशतक इंग्लैण्ड से ही भारत में पहुंचता था। भारतीय पदार्थों का ३७·८ प्रतिशतक साम्राज्य ग्रहण करता था। इसमें से २३·७ प्रतिशतक माल एकमात्र इंग्लैण्ड लेता था। साधारणतया भारतवर्ष विदेशीय राष्ट्रों से उन्हीं पदार्थों को ग्रहण करता है जोकि उसको इंग्लैंड से नहीं प्राप्त हो सकते हैं। इस हालत में भारत सापेक्षिक व्यापार की नीति का कैसे अवलम्बन करे। जरूरत की चीजों को किस प्रकार विदेशीय राष्ट्रों से न ले। एकाधिकारीय विराष्ट्रीय पदार्थों पर सामुद्रिक चुंगी लगाने से भारत के व्यवसायों को धक्का पहुंच सकता है। दृष्टान्तस्वरूप फ्रान्स से सोने की तारें बनारस में आती हैं। बनारसी कपड़े का दारोमदार उसी तार पर है। यदि सोने की तार पर भारी

सामुद्रिक चुंगी लगा दी जाय तो परिणाम यह होगा कि सोने के तार के अपरमित सीमातक मंहगे होने से बनारसी कपड़े का व्यवसाय सदा के लिये बैठ जायगा। जूट पर सापेक्षिक सामुद्रिक चुगी का क्या प्रभाव होगा इस संबंध में लिखते हुए महाशय बैब्व ने लिखा है कि "जूट पर सापेक्षिक सामुद्रिक चुंगी लगाने से भारत के बदले इंग्लैण्ड को ही लाभ पहुंचेगा।"

सारांश यह है कि भारत को व्यापारीय नीति के चक्कर में पड़ने से पूर्व आर्थिक स्वराज्य तथा स्वराज्य के प्रश्न को तय कर लेना चाहिये। बिना इसको तय किये किसी भी आर्थिक नीति में प्रवेश करना संकट से शून्य नहीं कहा जा सकता।

दूसरा परिच्छेद

भारत में मंहगी की समस्या।

(१)

चन्द्रगुप्त मौर्य के समय से मुसल्मानी काल तक कीमतें।

ब्राह्मण ग्रन्थ तथा सूत्र ग्रन्थों के समय में भारतनिवासियों की पशु संपत्ति तथा अन्न संपत्ति अपरिमित थी। धातुओं की कमी से धातुओं की अन्न में क्रय शक्ति बहुत ही अधिक थी। पांच सौ ईस्वी पूर्व से ग्यारहवीं सदी तक भिन्नभिन्न पदार्थों का पैसों में जो भाव रहा उसका ब्योरा इस प्रकार है:—

(१) ईसा से पांच सौ वर्ष पूर्व कात्यायन के समय में बहुपदार्थ प्रणाली का प्रचार था। वैदिक काल में सभी आवश्यक पदार्थ विनमय का माध्यम थे। गौ ३२ पैसा, बछेड़ा ४ पैसा, बैल ६ पैसा, भैंस ८ पैसा, दूध देने वाली गौ १० पैसा, घोड़ा १५ पैसा, दसमासा सोना १० पैसा, कपड़ा १ पैसा, दासी ३२ पैसा, निष्क ५० पैसा, तथा हाथी

५०० पैसा, में मिलता था। कांस्यपात्र तथा बैल का दाम समान था। यूनान के सदृश ही चार पांच बैल में एक दासी मिल जाती थी। अन्न पैसे में मन भर तथा दूध भी यही भाव था।

(२) ईसा से तीन सौ साल पहिले चन्द्रगुप्त के समय में मासिक वेतन कम से कम २ पैसे से ५ पैसे तक था। एक पैसे में गेहूं तथा धान आदि अन्न बीस से तीस सेर मिलता था। घी पैसे में कम से कम दो सेर और तेल साढ़े सात सेर तक बिकता था। दूध पैसे का पचीस सेर था। कात्यायन के समय की अपेक्षया पशुओं का दाम बढ़ गया था।

(३) ईस्वी सन् के शुरू होने पर पैसे का बीस सेर अन्न मिलने लगा। पशुओं का दाम पूर्वापेक्षया और भी अधिक बढ़ गया। गौ पचीस पैसे के स्थान पर ४८ पैसे से लेकर ८० पैसे में मिलने लगी। दासी की कीमत भी ३५ पैसे के स्थान पर पांच कार्षापण अर्थात् ८० पैसा हो गई। बैल का दाम ६ पैसे के स्थान पर ९६ पैसा हो गया और इस प्रकार पूर्वापेक्षया १६ गुना चढ़ गया। चांदी का पुराण तथा सोने का दीनार विनिमय का माध्यम हो गया।

(४) विक्रमादित्य के समय में पांचवीं शताब्दी के अन्दर पैसे का पन्द्रह सेर अनाज तथा ४½ सेर तेल मिलने लगा। रंडियों की कीमत अधिक से अधिक ५०० पुराण

८००० आठ हजार पैसों-तक जा पहुंची। साधारण दासियों का दाम ८० पैसों से अधिक हो गया। पशुओं की कीमतें भी बढ़ गई।

(५) छठी शताब्दी में सौ पान के बदले १० आम और साधारण गौ बीस रूप में मिलने लगी। रूप को दो आने के बराबर यदि माना जाय तो गौ की कीमत १६० पैसा थी और यदि एक आने के बराबर माना जाय तो ८० पैसा कीमत प्राप्त होती है। षट्त्रिंशनमुनी के मत में गौ का दाम ८० पैसे से १६ पैसे तक था।

(६) सातवीं सदी में दस पैसा सैकड़ा कलमी आम तथा आठ पैसा सैकड़ा अनार था। गरम मसाला मालावार जैसे दूर देश से आने के कारण बहुत ही मंहगा था। दृष्टान्त स्वरूप ९६ पैसे सेर काली मिर्च थी। एक पैसे का दस सेर अनाज मिलता था।

(७) दसवीं सदी में ६४ पैसा सेर कालीमिर्च ४८ पैसा सेर सोंठ ७२ पैसा सेर पिप्पली मिलती थी। स्पष्ट है कि मसाला मंहगा था। साथ ही १ पैसे का ८ कलमी आम तथा ३३ कैथा मिलता था ६४० पैसा सेर चंदन मिलता था। सोलह साल की लड़की अर्थात् दासी की कीमत ६४० पैसा थी। बीस साल की लड़की की कीमत ५१२ पैसा थी। प्रकरण को देखने से यह भी मालूम पड़ता है कि दासी की कीमत

१०५५४. पैसा तथा ८१६२ पैसा क्रमशः थी। अनाज पैसे का दस सेर ही मिलता था। बार आना या आठ आना मासा सोना मिलता था।

(८) ग्यारहवीं सदी में दासी का दाम पूर्ववत ही रहा। १४६१ पैसे का आध पाव केसर, ५१२ पैसे का एक छटांक बढ़िया कपूर तथा १ पैसे का छः सेर अनाज मिलना था। ५ पैसे सैकड़ा आम और सवातीन पैसा सैकड़ा अनार था। मूंग की दाल पैसे में १२ सेर के लगभग आती थी। बैल का दाम ५१२ पैसा था।

---

(२)

मंहगी की समस्या

आंग्लकाल में अनाज की मंहगी दिन पर दिन बढ़ी है। लड़ाई के बाद से तो लगभग सभी पदार्थ मंहगे हो गये हैं। इससे सभी का ध्यान इस ओर विशेषरूप से है। सरकार भी कई बार दिलासा दे चुकी है कि इसका कुछ न कुछ शीघ्र ही उपाय किया जायगा। परंतु स्थिति दिन पर दिन चिंताजनक होती ही जा रही है।

१८७३ से १६०७ तक कीमतें जिस प्रकार चढ़ी हैं उसका ब्योरा इस प्रकार है। ब्योरे में १८७२ की कीमतों को १०० मान लिया गया है।

मंहगी का ब्यौरा

सन्	चावल	गेहूं	ज्वार	बाजरा
१८७३	१००	१००	१००	१००
१८८७	१२५	१२३	१२७	१२२
१८८८	१३५	१२४	१३१	१३४
१८८९	१४७	११८	१२२	१२८
१८९०	१४३	११६	१२३	११८
१८९१	१४९	१३५	१३८	१३७
१८९२	१७८	१५१	१३८	१४२
१८९३	१६४	१२५	१२२	१२३
१८९४	१५२	१०४	११२	११८
१८९५	१४१	११७	१२१	११९
१८९६	२१६	१५२	१५४	१६६
१८९७	२१०	२०६	२०३	२११
१८९८	१५७	१४५	१३१	११०
१८९९	१४४	१५८	१३७	१४०
१९००	१७६	१८०	२१४	२००
१९०१	१८३	१६३	१४५	१३९
१९०२	१६६	१४३	१३४	१३३
१९०३	१६२	१२९	११६	११५
१९०४	१४६	१२२	११०	१०९
१९०५	१६९	१३९	१३७	१४६
१९०६	२१३	१५९	१७३	१७४
१९०७	२३८	१६५	१६२	१५१

मंहगी की समस्या

उपरिलिखित सूची से स्पष्ट है कि भारतीयों के भोजन के मुख्य पदार्थों की कीमतें प्रति वर्ष क्रमशः चढ़ती ही रही हैं। फाइनान्समैम्बर तक की यही संमति है कि १६०४-०७ तक सुभिक्ष के दिनों में भी अनाज की कीमतें पचीस सैकड़ा चढ़ी हैं। बहुत से विचारक मंहगी को देश की समृद्धि का चिन्ह समझते हैं। परंतु वास्तविक बात यह है कि भारत में यह बात नहीं है। दादाभाई नौरोजी ने 'अपने पावर्टी आव इंडिया' नामक ग्रंथ में लिखा है कि "भारत में कीमतों के चढ़ने के कारण वह नहीं है जो कि योरुप में हैं।" यहां दुर्भिक्ष, रेल्वे, विदेशी पूजी तथा अन्न का विदेश में जाना ही मंहगी का कारण है।

मंहगी के कारण समाज के भिन्न भिन्न श्रेणियों के संबंध बहुत ही खिंचगये हैं। अमीरों, कारखानदारों, सेठसाहूकारों तथा ताल्लुकेदारों को इससे विशेषतः लाभ पहुंचा है। नुकसान उन्हीं लोगों को हुआ है जो कि ग़रीब हैं और जोकि निश्चित मेहनताने पर कारखानों या खानों में काम करते हैं। छोटी छोटी तनखाहों पर काम कारने वाले मध्य श्रेणी के लोगों की आजकल हालत बहुत ही बुरी है।

इसी प्रकार एक दूसरी मूल्य सूची है जो कि महाशय काले ने अपने भारतीय संपत्ति-शास्त्र में दी है और जोकि इस प्रकार है।

कीमतों की वृद्धि १८९१ से १९१५ तक।

सन्	गेहूं			चावल		बाजरा	
	दिल्ली	कलकत्ता	अहमदाबाद	कलकत्ता	मद्रास	दिल्ली	अहमदाबाद
१८७३	१००	१००	१००	१००	१००	१००	१००
१८९१	१३५	९८	१२२	९१	१४५	१५१	१२२
१८९३	११४	९५	१०७	१२१	१५०	९२	११६
१८९५	११०	९३	१०७	१००	१३८	१२२	१३४
१८९७	१९२	१४३	१८७	१५९	१५५	२०८	१९१
१८९९	१३०	९८	१३४	१०२	१५७	१४१	१५३
१९००	१६८	११३	१४९	११०	१८०	१४६	२०१
१९०३	१२५	९५	९४	१२८	१४६	११५	१०१
१९०४	१२०	१०१	९६	१२९	१४८	१०५	११५
१९०५	१४७	१०८	१२१	१४२	१९७	१४५	१४६
१९०६	१५०	११०	१३३	१५४	१९८	१७१	१६५
१९०७	१७०	१२६	१४४	१५५	२१३	१५६	१५९
१९०८	२३०	१६१	१६३	१९१	२२५	२२१	२०६
१९०९	२०३	१४२	१५५	१५६	२१८	१५७	१६६
१९१०	१६२	११४	१३६	१४८	२०५	१५५	१५७
१९११	१४९	११३	१४१	१४२	१८७	१५८	१६७
१९१३	१८३	१०२	१७५	१८७	२१८	१६८	१७५
१९१५	२३९	...	१८९	१९७	२०३	२२९	२०६

निस्सन्देह अनाज की मंहगी से किसानों को लाभ होना चाहिये। परन्तु दौर्भाग्य से किसानों को इसका कुछ भी भाग नहीं मिलता है। अन्य क्षेत्रों में भी यही दशा है। श्रमियों की भृति मंहगी के अनुसार नहीं बढ़ी है। भृतिका बढ़ना भारत के लिए बहुत उपयोगी नहीं है क्योंकि इससे भारतवर्ष व्यवसायिक तथा औद्योगिक उन्नति में बहुत ही पीछे रह जायगा। मंहगी के निम्नलिखित कारण कहे जा सकते हैं।

(१) दुर्भिक्ष की वृद्धि। अंग्रेजी राज्य में दुर्भिक्षों की संख्या बहुत ही अधिक बढ़ी है। पिछले प्रकरणों में इसपर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला जा चुका है।

(२) अनाज का विदेश में जाना। योरुपीय देश भारत से अन्न मंगाकर निर्वाह करते हैं। इससे भारत में अनाज मंहगा है। भारत में इतना अनाज पैदा नहीं होता है कि वह संपूर्ण संसार को पाल सके। परन्तु सरकार अनाज के विदेशी व्यापार को इंग्लैण्ड के स्वार्थों को सामने रखकर उत्तेजित कर रही है। इसका परिणाम यह है कि मंहगी दिनपर दिन बढ़ रही है और गरीब लोग भूखों मर रहे हैं।

(३) उत्पत्ति की न्यूनता। औद्योगिक उन्नति का प्रभाव भी अनाज की मंहगी में है। रुई तथा जूट् के बोने में अधिक आमदनी है। इस अधिक आमदनी के लोभ से बंगाल बाम्बे

तथा मध्यप्रांत में अन्न का उत्पन्न करना कम होगया है। देश में पहिले ही जरूरत के अनुसार अनाज नहीं पैदा हो रहा है। जूट तथा रुई की उत्पत्ति बढ़ने से अनाज की मंहगी और भी अधिक बढ़ी है। १८९७-९८ से १९०६-०७ तक अनाज की उत्पत्ति में जमीन की वृद्धि ७१/७ प्रतिशतक तथा जूट तथा रूई की उत्पत्ति में जमीन वृद्धि ५० से ७० प्रतिशतक हुई है। लड़ाई के दिनों में तो जूट तथा रुई का व्यवसाय बहुत ही आमदनी का व्यवसाय होगया। स्वाभाविक था कि अनाज और भी अधिक मंहगा होता।

(४) <u>सिक्के की वृद्धि</u>। भारत सरकार ने खर्च की तंगी तथा आमदनी के लोभ में पड़कर बहुत ही अधिक नोट तथा रुपये टकसाल से निकाले। महाशय फिशर के अनुसार सिक्कों की वृद्धि से पदार्थ मंहगे होते हैं। यही बात महाशय गोखले ने व्यवस्थापक सभा में कही थी। भारत सरकार की मुद्रा नीति' नामक परिच्छेद में इस विषय पर विस्तृत रुप से प्रकाश डाला जा चुका है कि सरकार ने प्रतिवर्ष अधिक अधिक संख्या में रुपयों को निकाला और अपनी आर्थिक शक्ति का पूर्णरूप से दुरुपयोग किया।

फिशर के राशिसिद्धांत के अनुसार सिक्के की राशि के बढ़ने के समानुपात में कीमतें बढ़ती है यदि अन्य अवस्थायें में पूर्ववत् विद्यमान हों। भारत की कीमतों के बढ़ने में भी

सिक्के का विशेष भाग है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। भारत सरकार का तो यही ख़्याल है कि उसने सिक्के जरूरत से ज्यादा नहीं निकाले। परन्तु वस्तुतः वह भ्रम में है। महाशय कीन्ज़ ने ठीक लिखा है कि "अधिक संख्या में सिक्कों के निकालने का प्रभाव बहुत दूरतक विस्तृत होता है। भारत-सरकार इसको अभीतक नहीं समझी। वह तो इसी सिद्धांत पर काम करती रही है कि यदि १९०५-०६ में सिक्कों की अधिक मांग थी तो वह मांग प्रतिवर्ष एक सदृश रहती है। सरकार समझती है कि सिक्के की मांग भोजन के सदृश प्रतिवर्ष स्थिर रहती है।" यही कारण है कि सरकार ने सिक्कों की संख्या को प्रतिवर्ष बढ़ाया है।

सरकारी टकसालों से निकले सिक्कों की संख्या

सन्	करोड़ रुपयों में	सन्	करोड़ रुपयों में
१९०२—०३	११·३८	१९०९—१०	२·१७
१९०३—०४	१६·५३	१९१०—११	२·१९
१९०४—०५	११·३७	१९११—१२	२·८०
१९०५—०६	२०·००	१९१२—१३	१९·५३
१९०६—०७	२६·०८	१९१३—१४	१३·१५
१९०७—०८	१८·११	१९१४—१५	२·१७
१९०८—०९	२·८५	१९१५—१६	१·६२
		१९१६—१७	३२·३२

उपरिलिखित सूची से स्पष्ट है किस कदर सरकार ने प्रतिवर्ष अधिक राशि में सिक्कों को टकसाल से निकाला। लड़ाई के दिनों में बढ़े हुए सैनिक खर्चों को संभाल ने के लिए देशमें बहुत ही अधिक नोटों का प्रचार किया। इसका परिणाम यह है कि अबतक देश में मंहगी पूर्ववत विद्यमान है।

(५) भूमि की उत्पादक शक्ति का घटना तथा जनसंख्या का बढ़ना। भूमि की उत्पादक शक्ति किस प्रकार घटी है और जनसंख्या बढ़ी है इस पर पूर्व परिच्छेद में प्रकाश डाला जा चुका है। मंहगी में इसका विशेष भाग है। क्योंकि पहिले से खाद्यपदार्थों की उपलब्धि कम हुई है, दूसरे से उनकी मांग बढ़ गई है। इसमें सन्देह भी नहीं है कि यदि अन्न विदेश में न जाय तो भारत की जरूरत को खाद्य पदार्थों की संपूर्ण उपलब्धि किसी सीमा तक पूरा कर सकती है।

(६) सट्टा। सट्टे के कारण भी मंहगी कुछ समय तक के लिए हो जाती है। आनुमानिक कीमत पर खरीदने के उद्देश्य से खेला गया सट्टा बहुत बुरा नहीं है। परन्तु जब इसका उद्देश्य एक मात्र जुआ होता है तबइ सका कभी भी समर्थन नहीं किया जा सकता है। अनाज के विदेश में जाने से और योरुप की कीमतों के अनुसार यहां अनाज की कीमतों के होने से देश में सट्टा अनुचित सीमातक बढ़ गया है।

(३)

मंहगी का श्रमियों तथा किसानों की पराधीनता में भाग।

मंहगी समृद्धि के सदृश ही दरिद्रता का कारण भी हो जाती है। अनाज की महगी से लाभ जमींदारों को और व्यावसायिक पदार्थों की मंहगी से लाभ पूंजीपतियों को प्राप्त होता है। किसान तथा मेहनती मज़दूर ज्यों की त्यों कष्ट में जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी पराधीनता पूर्वापेक्षया बहुत ही अधिक बढ़ जाती है। बाल बच्चों तथा पूर्वजों के खेतों को छोड़कर बिना पूंजी के एक स्थान से दूसरे स्थान में उनका जाना सुगम नहीं होता।

किसानों तथा मेहनती मज़दूरों की दशा बिगाड़ने में मंहगी ने जो भाग लिया वह अवध के किसान आन्दोलन तथा कारखानों के हड़ताल आंदोलन से स्पष्ट है। निस्सन्देह सरकार सभी मामलों में असहयोगियों के हस्तक्षेप का स्वप्न देखती है। परन्तु बिना कारण के कार्य नहीं होता। जबतक परिस्थिति अनुकूल न मिले तब तक कोई आन्दोलन सफलता नहीं प्राप्त करता।

व्यावसायिक नाश से जनता को भूमि पर खेती कर परिवार के पालन-पोषण के लिये बाध्य होना पड़ा। विदेश में अन्न के जाने से खाद्य पदार्थों की मंहगी ने भी इसको

उत्तेजित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि भूमि की मांग ज़रूरत से अधिक बढ़ गई। ताल्लुकेदारों तथा ज़मींदारों ने खेतों के विभाग में सख्तियां करनी शुरू कीं और अपनी आमदनी को बढ़ाने के उद्देश से ग़रीब लोगों का स्वातन्त्र्य अपहरण करना शुरू किया। यहां पर ही बस नहीं। ज़रूरत की चीज़ों के विदेश से आने से किसानों का बहुत सा धन वृथा को ही विदेश में पहुंचता है। गरीबों का जोवन यदि कष्टमय न हो तो वह फौजों में क्यों भरती हों? और कारखानों में क्यों जीवन नष्ट करें? मंहगी का ही यह परिणाम है कि कारखानें में भो श्रमियों मेहनती मज़दूरों की हालत बहुत ही चिंताजनक हो गई है। लड़ाई के बाद जो हड़तालें हुईं और तनख़ाह पाने वाले लोगों की ओर से तनख़ाह बढ़ाने के लिये ज़ो हाहाकार मचा वह इस बात को सूचित कर रहा है कि महाजनी राज्य प्रबंध चिरकाल तक प्रचलित नहीं रह सकता है। अंग्रेजों का जब से भारत पर राज्य आया है तब से देश की कारीगरी नष्ट हो गई है। गरीबों को भी अपनी जरूरतों के लिये विदेश का मुंह ताकना पड़ता है। दृष्टान्त स्वरूप निम्नलिखित जरूरत की चीज़ें विदेश से भारत में आती हैं।

जीवनोपयोगी पदार्थों का विदेश से आना

पदार्थ	सन् १९११-१२ लाख रुपयों में	सन् १९१२-१३ लाख रुपयों में	सन् १९१३-१४ लाख रुपयों में
शक्कर तथा शक्कर की मिठाई	९९६	१३७८	१४४७
मिट्टी का तेल	३२५	२५६	२८६
कपड़े	४१२०	५१८०	६०५४
रेशम	२१५	२५५	२५२
ऊनी कपड़े	२७९	२४०	३०६
बिसाती का सामान	२८५	२७५	३०६
जूते	५५	६५	७४
तांबा तथा सोना	१६२	१७६	२५१
दियासलाई	८८	९८	९०
साबुन	६२	७७	७४
सुपारी	१०५	११८	१२३
लोहे का सामान	२९८	८८३	५३८
कुल योग	६९९१	८४७४	९७५७
१९०८-१३ को १०० मानकर मूल्यसूची	१०८	१२५	१४४

बहुत से अर्थशास्त्रज्ञ उपरिलिखित आयात को देखकर यह समझते हैं कि भारतवर्ष क्रमशः समृद्ध हो रहा है।

इसके खंडन में महाशय रैम्जे मैकूडानल ने ठीक कहा है कि "उत्तम वस्त्र, सिगरट्, छाता, शराब, जूता आदि के विदेश से आने से यह न समझना चाहिये कि भारतवर्ष दिन पर दिन समृद्ध हो रहा है। क्योंकि जिस प्रकार शादी पर या बुड्ढे के मरने पर अधिक धन खर्च करने से कोई समृद्ध नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार भारत की दशा है †"

भारत में दूध के स्थानपर चाय का प्रयोग बढ़ना स्वास्थ के लिये हितकर नहीं कहा जा सकता। शराब तो बहुत ही बुरी वस्तु है। नीचजात के लोगों में इसका प्रयोग बहुत ही अधिक बढ़ रहा है। असहयोगियों ने शराब खोरी को बन्द करने का यत्न किया परंतु सरकार ने उनको इस काम से रोका।

दुःख की बात तो यह है कि ग़रीब लोग दिन पर दिन कर्ज से लदे जा रहे हैं। लगभग ८० प्रतिशतक श्रमी कर्जदार हैं। महाशय काले की गणना के अनुसार प्रत्येक परिवार पर कर्ज की मात्रा १२५ रुपयों तक पहुंचती है। बांम्बे में व्याज की मात्रा २५ से ३७ $\frac{1}{2}$ प्रतिशतक है। किसी किसी स्थान में तो यह ७५ प्रतिशतक तक जा पहुंचती है। बंबई

† The Awakening of India page 177-78 काले के ग्रंथ से उद्धृत।

के कारखानों में काम करने वाले श्रमी मारवाड़ियों से ७५ प्रतिशतक व्याज पर प्रायः उधार लेते हैं। कर्ज के बढ़ने का मुख्य कारण मंहगी है।

मंहगी से विशेष लाभ जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों को ही प्राप्त हुआ है। यह पूर्व में ही लिखा जा चुका है कि सरकार जमींदारों या ताल्लुकेदारों से जो धन अपने भूमि सम्बन्धी स्वत्व के कारण लेती है उसको मालगुजारी के नाम से और जमींदार तथा ताल्लुकेदार किसानों से जो धन अपने भूमि सम्बन्धी स्वत्व के कारण लेता है उसको लगान के नाम से पुकारा जाता है। सरकार ने मालगुजारी किस प्रकार बढ़ायी और उसके कारण प्रजा को जो जो कष्ट पहुँचे उस पर आगे चलकर प्रकाश डाला जायगा।

ताल्लुकेदारों तथा जमींदारों की संख्या समाज के लिए अनुपयोगी तथा हानिकर है। पुराने जमाने की अराजकता लूटमार तथा खून से ही इनकी संस्था उत्पन्न हुई थी। समयान्तर में इनकी जमीनों को अन्य लोग भी खरीद कर बड़े बड़े ताल्लुकेदार बन बैठे।

चाहे मालगुजारी हो और चाहे लगान हो दोनों ही किसानों पर अन्याय तथा अत्याचार के साधन हैं। जो खेत जोते बोये उसीका उपज पर स्वत्व है। यदि सरकार बजाजों से इन्कमटैक्स लेती है और दो हजार रुपया सालाना

धन छोड़ कर उससे अधिक धन पर टैक्स लगाती है तो किसानों के साथ भी यही क्यों न किया जाय? जिस किसान की दो हजार रुपया सालाना से कम उपज हो उसको भी बजाजों के सदृश ही क्यों न सब प्रकार के टैक्सों से मुक्त किया जाय?

किसानों की आमदनी की नौकरी पेशा लोगों की आमदनी से तुलना की जा सकती है। दोनों ही की आमदनी किसी हद तक अस्थिर है। वृष्टि न हुई तो किसान की सारी आमदनी पानी में मिल जाती है। नौकरी छूटने या बीमार पड़ने पर यही बात नौकरी पेशा लोगों के साथ होती है। इस हालत में क्यों एक लगान तथा मालगुजारी दे और दूसरा दो हजार रुपये की अधिक आमदनी पर इनकम टैक्स दे? क्यों न दोनों पर ही एक सदृश टैक्स का प्रयोग किया जाय?

पिछले ग्रन्थ में यह विस्तृत तौर पर दिखाया गया है कि भूमि पर स्वत्व एक मात्र किसानों का है। प्राचीन स्मृतिकार सूत्रकार तथा ब्राह्मण ग्रन्थ इसी बात को पुष्ट करते हैं। चीनी यात्रियों की सम्मति भी इसी का समर्थन करती है। इस हालत में लगान या मालगुजारी का देना पाप करना है और दूसरों को पाप के लिए उत्तेजित करना है। किसानों ने मुसलमानी जमाने से लगान मालगुजारी दे कर भोग विलास प्रिय आलसी लोगों की संस्था को उत्पन्न किया। यही संस्था

आज उनके जीवन का कांटा है। जब तक मालगुजारी या लगान रूपी पापमय आमदनी विद्यमान है तब तक समाज की बहु संख्या का उद्धार कठिन है।

I. ताल्लुकेदारों की लूट

भारत सरकार अवध में ताल्लुकेदारों तथा जमींदारों से लगभग 10 प्र० श० धन मालगुजारी के तौर पर और १५ प्र० श० धन एस्ससमन्ट या अववाब के तौर पर लेती है। ज़मीदार तथा ताल्लुकेदार जब लगान किसानों से बढ़ाते हैं तो उसमें सरकार भी हिस्सा लेती है। परन्तु यह उनको कब मंजूर हो सकता है? ताल्लुकेदारों तथा जिमीदारों ने इससे बचने के लिये इतने पापमय साधन निकाले हैं जो कि उनकी संस्था के स्वरूप तथा समाज उपयोगिता पर अच्छी तौर पर प्रकाश डालते हैं।

लगान के अतिरिक्त किसानों से धन चूसने के लिये जिमीदारों के पास अनेक साधन हैं। वह वेदखली के सहारे किसानों का पूरे तौर पर खून चूस रहे हैं। अवध के भूमि सम्बन्धी कानूनों के अनुसार जिमींदार या ताल्लुकेदार किसान को सात सालबाद खेत से वेदखल कर सकता है। वेदखल के समय में खेत नीलाम किये जाते हैं, और

जो अधिक बोली बोले उसको खेत नीलाम में दिये जाते हैं। बोली बोलने के साथ ही साथ खेत बाटने में नजराना तथा भिन्न २ टैक्सों को अधिक राशि में दे सकने की शर्तें रहती है जो किसान नकद नजराना नहीं दे सकता उससे कर्ज का तमस्सुक अथवा इन्दुल तलब रुक्का (Demand pronote) लिखा लिया जाता है और बहुत किसानों के साथ यह भी किया जाया है कि उनसे नजराना ले लिया जाता है और खेत का पट्टा किसी दूसरे के नाम कर दिया जाता है। काश्तकार पट्टई तथा शिकमी के भेद से काश्तकार दो प्रकार के हैं। इनमें भी प्रत्येक दो दो प्रकार के है दृष्टान्त स्वरूप काश्तकार पट्टई को ही लीजै। इसमें फर्जीपट्टेदार वह है जो कि स्वयं खेती करने के साथ ही साथ अपनी जमीन का कुछ भाग सिकमी काश्तकार को भी जोतने बोने के लिये दे दे। फर्जी पट्टेदार वही लोग होते हैं जिनके पास कुछ धन हो या जो कि ताल्लुकेदार के कृपापात्र हों। फर्जी पट्टेदार के सदृश ही कुछ लोग बेईमानी के पट्टेदार हैं। इनके नाम खेतों का पट्टा होता है परन्तु यह एक भी खेत नहीं जोतते बोते। गाँव की बढ़ियाँ जमींने इन्हीं लोगों के पास होती हैं क्योंकि यह आमतौर पर जिमींदार या ताल्लुकेदार के रिश्तेदार होते हैं।

इसी प्रकार शिकमी काश्तकार के भी दो भेद हैं असली पट्टेदार से जो जमीनें लेकर काश्त करता है वह शिकमी

काश्तकार कहाता है। बहुत बार यह भी देखा गया है कि जमींदार तथा ताल्लुकेदार बिचारे गरीब किसान से नजराना ले लेते हैं और उसके नाम पट्टा लिख देने का वचन देकर किसी दूसरे का नाम लिख देते हैं।

जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों ने फर्जी पट्टेदार का आविष्कार कई मतलब से किया है। पहिला मतलब तो सरकार को धोखा देकर किसानों को लूटना है। वह पट्टेदार के नाम जो जमीन १०० रुपये पर लिख देते हैं और उसी रकम पर जो मालगुजारी देते हैं उससे कई गुना अधिक धन किसानों से वसूल करते हैं जिसका सरकारी कागजातों में कहीं पर भी पता नहीं। और यदि कहीं पर पता भी होता है तो वह भी शिकमी काश्तकार गल्लई के नाम से लिखा होता है।

इस पाप तथा लूट की रकम को बचाने के लिये ताल्लुकेदार तथा जिमींदार पटवारियों को अपने काबू में रखते हैं। उसको खेती करने के लिये और बाग लगाने के लिये ज़मीन देते हैं। साल में घमावर तथा जड़ावर के नाम से उसको कपड़े या रुपये से पूजते हैं। आमतौर पर तालाब तथा नदी के किनारे की जमीनें पटवारियों को मुफ्त में ही दे दी जाती हैं जिनका पटवारी के रजिस्टर में कहीं पर भी दर्ज नहीं हैं। यदि कहीं पर दर्ज भी होता है तो किसी काश्तकार के नाम फर्जी दर्ज होता है और उसकी पैदावार पटवारी ही

लेता है। पटवारी के सदृश ही कानूनगो पेशकार तथा तह-सीलदार भी पूंजे जाते हैं। उनको जो धन घूँस के तौरपर दिया जाता है उसको फूल या फल के नाम से बही-खातों तथा रजिस्टरों में लिखा जाता है। दृष्टान्त स्वरूप यदि किसी ताल्लुकेदार ने रायबरेली के तहसीलदार को घूंस में १०० दिया तो वह इस रकम को अपने खाता में इस प्रकार लिखेगा।

राय.........ली

ता.........१०० फूल साल आम या कटहल के

इसी प्रकार कानूनगो का नाम ता के स्थान पर कागो से और पेशकार का नाम पेका से खातों में दर्ज किया जाता है और शेष पंक्तियां पूर्ववत् बनी रहती हैं।

कुछ एक ताल्लुकेदारों तथा जमीदारों के यहां यह जाल-साजी का काम कल्पित भाषा में लिखा जाता है जो कि अंक पहाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। उक्त पदाधिकारियों को किसानों का लूटा धन रानी महारानी की भेंट तथा डाली के नाम पर दिया जाता है।

नजराना तथा पाप की कमाई

पटवारी से लेकर उच्च राज्याधिकारियों तक जिस धन को प्राप्त करने के खातिर घूंस तथा जालसाजी का बाजार गरम किया जाता है उसका ब्योरा निम्नलिखित है:—

(१) नजर दशहराः—दशहरे में जिमींदार को या ताल्लुकेदार को एक रुपये से पचास रुपये तक पट्टे वाले काश्तकार को पट्टा पीछे एक रुपया देना पड़ता है। पच्चास से सौ रुपये तक के पट्टेदार को दो रुपया और सौ रुपया से ऊपर वाले पट्टेदार को पांच रुपया देना पड़ता है।

कहीं कहीं पर पांच रुपया सैकड़ा के हिसाब से पट्टेदारों को नजर दशहरा देना पड़ता है। कहीं कहीं पर बीस रुपये से कम के पट्टेदार से नजराना नहीं लिया जाता है।

(२) नजरहोलीः—नजर दशहरा के सदृशही।

(३) नजर रानी साहबाः—रानी साहबा तथा ठकुरानी साहबा को हर दशहरा तथा होली में गांव के प्रत्येक पट्टेदार को एक एक रुपया नजराना देना पड़ता है।

(४) सर खतियावनः—किसानों को जो छपे हुए पट्टे दिये जाते हैं या रसीद वसूल लगान की दी जाती है वह सर खतियावन के नाम से प्रसिद्ध है। अर्थात् छपाई तथा कागज के दाम फी पट्टा कहीं पर पांच आना और कहीं पर चार आना और कहीं पर दो आना लिया जाता है।

(५) हथियावनः—ताल्लुकेदार या जिमींदार जब हाथी खरीदता है तो वह उसकी कीमत किसानों से पड़ता लगाकर वसूल करता है।

(६) घुड़ावनः—इसमें घोड़े खरीदने की कीमत किसानों से ली जाती है।

(७) मुटरावनः—मोटर खरीदने की कीमत भी किसानों से वसूल की जाती है।

(८) लटियावनः—जब किसी ताल्लुकेदार के यहां लाट साहब जाते हैं और तब उनके भोजन नाच रंग तथा आतिशबाजी आदि का खर्च सबका सब गरीब किसानों तथा पट्टेदारों से लिया जाता है।

(९) नजर दरबारः—जब कोई ताल्लुकेदार का रिस्तेदार या समान दर्जे का दोस्त आता है तो उसके उपलक्ष्य में जो नाच रंग तथा दावत होती है उसका खर्च काश्तकारों से लिया जाता है।

(१०) चन्दा नुमाइशः—जिले में जो नुमाइश होती है और उसका जो चन्दा कमिश्नर आदि ताल्लुकेदारों से लेते हैं वह काश्तकारों से वसूल किया जाता है।

(११) रकूम सरकारीः—गवर्मेंट जब कोई चन्दा ताल्लुकेदारों से लेती है वह सब का सब काश्तकारों से पड़ता लगा कर लिया जाता है।

(१२) सकूनः—ताल्लुकेदारी साल जब (भादो सुदी तीज) बदलता है तो वह किसान जिसके यहाँ गाय भैंस का दही होता है, कुल्हड़ में दही लेकर उसके साथ एक

रुपया लेकर ताल्लुकेदार तथा जमींदार को हरसाल देते हैं और जि । लोगों को जिस साल नया पट्टा मिलता है वह दो रुपया उसी दिन देते हैं ।

(१३) नुकशान रसानीः—जब कोई आसामी अपने खेत के मेड़ या चरागाह का बबूल या और कोई पेड़ अपने काम के लिये काटता है तो उसकी कीमत का चौथा हिस्सा जिमींदारों को देना पड़ता है ।

(१४) हरजानाः—अगर कोरी किसान बिना पूंछे कोई लकड़ी अपनी खेती की आवश्यकता से (यानी कुहिरा गड़री अथवा कूढ़ीदाढ़ा के लिये) काट लेता है तो उससे मनमानी कीमत वसूल की जाती है ।

(१५) भेंटः—जब ताल्लुकेदार या जिमींदार दौरा पर आता है तो पट्टेदार को पाँच रुपया हर साल देना पड़ता है । जो कि मालिक दीवान, नायब, जिलेदार, पटवारी आदि पाँचों में एक एक रुपये के हिसाब से बट जाता है । इस भेंट को कहीं कहीं पर तकसीस की भेंट भी कहते हैं ।

(१६) टका बीराः—जब किसी गाँव के रहने वाले के यहां शादी होती है तो उसको एक रुपया और दो पैसा ताल्लुकेदार तथा जिमीन्दार को देना पड़ता है । जो रुपया न दे सके तो उसको दो पैसे और एक जोड़ी पान जरूर देना होता है ।

(१७) नचावनः— रंडी या भांडों का नाच जब ताल्लुकेदार

करवाता है या रंडिया अपनी तरफ से किसी ताल्लुकेदार के यहां जाती हैं तो रंडिया कहती हैं कि "गदाई को आई हैं" तो इसके खाने पीने तथा रुकसती (दक्षिणा) में जो धन खर्च होता है वह किसानों से वसूल किया जाता है।

(१८) चराईः—जिन लोगों के जानवर धरती या ऊसर जमीन पर चरते हैं उनको फी घर दो आने से आठ आने तक देना पड़ता है। कहीं कहीं पर जानवरों पर दो पैसा और एक आना फी जानवर चराई देना पड़ता है। अथवा फी घर एक सेर घी सालाना देना पड़ता है।

(१९) चिरईः—तालाबों में जो चिड़ियां पड़ती हैं उन चिड़ियों के पकड़ने के लिये जो शिकारी लोग फंदा फांसी लगाते हैं उनको एक रुपया से पाँच रुपया तक सालाना देना पड़ता है।

(२०) लोनाः—लोना (नमक) जो दीवारों से गिरता है और खेतों में खाद के तौर पर छोड़ा जाता है उसके लिये दो आना से चार आना तक सालाना किसानों को ताल्लुकेदारों तथा ज़िमीन्दारों को देना पड़ता है।

(२१) पांसः—जो लोग एक इलाके के वाशिन्दा हैं और दूसरे इलाकेदार के यहां खेती करते हैं उन लोगों को एक रुपया से पांच रुपया तक पांस की कीमत ताल्लुकेदारों को देनी पड़ती है।

(२२) खसी कमरीः—वह गड़रिये जो भेड़े रखते हैं उनको साल में फी गड़रिया एक खसी या भेड़ और एक कंबल ताल्लुकेदारों या जमीन्दारों को देना पड़ता है।

(२३) चरसाः—जब किसी किसान के यहां कोई जानवर मरता है तो उसको जो चमार ले जाते हैं और चमड़ा निका-लते हैं उन चमारों को पशु संख्या के हिसाब से एक रुपया से पचास रुपया तक सालाना टैक्स ताल्लुकेदारों को देना पड़ता है।

(२४) चढ़ाई मन्दिरः—मन्दिरों का ठेका किया जाता है। नीलामी की आमदनी जिमीन्दारों तथा ताल्लुकेदारों को मिलती है परन्तु जब मन्दिर में कोई इमारत की जरूरत पड़ती है तो वह रुपया किसानों से अथवा प्रजा से वसूल किया जाता है और इसको चढ़ाई मन्दिर के नाम से पुकारा जाता है।

(२५) उगहनी चाराः-किसानों में जो कुलीन हैं उनसे की रुपया पट्टा पर एक पैसा के हिसाब से उगहनी चारा के नाम से वसूल किया जाता है। अर्थात् जानवरों के चराने का टैक्स। आश्चर्य तो यह है कि चाहे उनके पास जानवर हों या न हों।

(२६) उगहनी रसः—जो किसान ऊख बोते हैं उनसे फी बीघा एक घड़ा के हिसाब से रस सालाना लिया जाता है।

यदि वह रस न दे सकें तो एक रुपया सालाना नगदी उनको देना पड़ता है। कहीं कहीं पर बजाय रस के या नगदी के राब और गुड़ लिया जाता है जो रातिव हाथी के नाम से प्रसिद्ध है। कहीं कहीं पर इसको रातिब घोड़ा कहते हैं।

(२७) कूत महुआः–जितने महुआ के पेड़ प्रजा के पास होते हैं उनके पैदावार गुले महुआ का कनकूत (तकमीना अन्दाजा) किया जाता है चाहे वह महुआ के पेड़ में बाग हों और चाहे वह पृथक २ कहीं पर लगे हों। जो लोग महुआ नहीं दे सकते उनसे नकदी लिया जाता है और वह पेड़ी महुआ के नाम से मशहूर है। आमतौर पर यह रकम प्रति पेड़, कम से कम चार आना होती है।

(२८) फसिल आमः–जो वृक्ष पृथक लगे होते हैं अथवा जो पेड़ प्रजा बिना आज्ञा ताल्लुकेदार या जिमींदार के लगा लेती हैं अथवा उन बागों में होते हैं जो कि किसानों की लगाए होते हैं और जो कि अत्याचारों के डर से किसी दूसरी जगह भाग जाता है, चाहे उसके और कुटुम्बी उस ग्राम में मौजूद भी हैं उनको वह पेड़ तथा बाग न देकर ताल्लुकेदार उन पर अपना कब्ज़ा कर लेते हैं और उन कब्ज़े किये बागों को नजूली बाग या वृक्ष कहते हैं। उनकी फसल को नीलाम कर देते हैं।

(२९) कटहलः—फसिल आम के सदृश।

(३०) वेरः—कटहल तथा फसिल आम के सदृश।

(३१) उगहनी तरकारी:-उगहनी तरकारी के तीन तरीके हैं। एक तो यह है कि तरकारी बोने वाले किसानों को ताल्लुकेदार या जिमींदार के जिलेदार को जो कि आमतौर पर लगान वसूल करता है प्रति दिन कम से कम पाव भर तरकारी मुफ़ में ही बिना कीमत देनी पड़ती है। दूसरा तरीका यह है कि सिर्फ जिलेदार को कम से कम पावभर और ज्यादा से ज्यादा सेर भर तरकारी देनी पड़ती है और बाकी तरकारी जब नायब, मैनेजर, मुखत्यार, कारिन्दा या हुक्काम गवर्नमेंट दौरा पर आते हैं तो उनको मुफ़ देनी पड़ती है। तीसरा तरीका यह है कि अलावा जिलेदार के सालाना छे आने से लेकर दो रुपये तक देने पड़ते हैं।

(३२) काली मिर्चा धनिया लहसुन प्याज आदि:-यह तीन प्रकार से लिया जाता है। यह जब हरे रहते हैं तब प्रतिदिन जिलेदार को बार बार देना पड़ता है। और हुक्काम ताल्लुकेदार या गवर्न्मेन्ट को भी यही देना पड़ता है। यह सब्जी के नाम से प्रसिद्ध है। कहीं कहीं पर इसे सब्ज तरकारी भी कहते हैं। इसको सब्ज तरकारी इसलिये कहते हैं कि उपरोक्त चीज़ोंके अतिरिक्त हरी मेथी सोआ पालक इत्यादि शाक का देना भी इसी में सम्मिलित है। इसी का दूसरा प्रकार यह है कि जब धनिया लहसुन प्याज मिर्चा पक आते हैं तो फी घर हर एक चीज़ फसिल की पैदावार के अनुसार

पावभर से लेकर २ $\frac{1}{2}$ सेर तक सालाना ली जाती है। इसका तीसरा प्रकार यह है कि इन चीज़ों की मनमाना कीमत लगाकर नकद लेते हैं जो कि प्रति किसान कम से कम दो आने और अधिक से अधिक पांच रुपया तक होता है। यह रकम खेत तथा पैदावार पर निर्भर है। लगभग सभी जगह इनके अतिरिक्त हल्दी और कलौंजी पकने पर देना पड़ता है या इनकी कीमत देनी पड़ती हैं। यह इसीलिये कि उनका प्रयोग कच्चे के तौर पर नहीं हैं।

(३३) तमाखू। तमाखू दो प्रकार की है। जो खाने में काम आती है उसको खुर्दनी कहते हैं और जो पीने के काम आती है उसको भेलसा कहते हैं। तमाखू बोने वालों से कम से कम दोनों प्रकार की तमाखू आध आध सेर फी किसान लीजाती है। यदि वह तमाखू न दे तो बाजार भाव लगाकर उससे तमाखू की कीमत ली जाती है (सालाना)—

(३४) खैर सुपारी—जो व्यापारी किसी ताल्लुकेदार या जिमींदार के ताल्लुके में बसे होते हैं उनको कम से कम आध सेर खैर सुपारी हर साल देनी पड़ती है। और जो खैर सुपारी नहीं देते हैं उनसे उसकी कीमत वसूल की जाती है। यह खैर सुपारी होली दशहरा के नाम से प्रसिद्ध है।

(३५) लकड़ीः—जिस किसी प्रजा के यहां लकड़ी सुखती है तो उससे लकड़ी जिलेदार ताल्लुकेदार, जिमींदार,

अमला रियासत या गवर्न्मेन्ट के लिये जबरदस्ती लेली जाती है। शादी ब्याह मूँडन छेदन के लिये भी प्रजा को लकड़ी देनी पड़ती है। होली और दशहरा के लिये भी लकड़ी उनसे मांगी जाती है। हरी लकड़ी जिस प्रजा की हो, वह जबर्दस्ती इमारत के लिये लेली जाती है।

(३६) लढ़ियाः–जिमींदार की लकड़ियों को तथा कुल सामान को ढोने के लिये जिन काश्तकारों के पास लढ़िया होती है उनसे नगदी आठ आना फी गाड़ी सालाना के हिसाब से लिया जाता है। और उसको लढ़वाना कहते हैं। इसके अतिरिक्त बेगार में भी लढ़िया पकड़ी जाती है।

(३७) टट्टूः–जिन व्यापारियों के पास टट्टू होते हैं उनको फी टट्टू दो आना बेगार के अतिरिक्त नगद देना पड़ता है।

(३८) गन्जावनः—जो लोग ऊख या बाजरा बोते हैं उनसे फी बीघा पांच आनो सालाना के हिसाब से गन्जावन लिया जाता है। इसको गन्जावन इसलिये कहते हैं कि यह चीज़ें जब हाथी के सामने आती हैं तो हाथी उनको मींज डालता है। इसीलिये इसका नाम गन्जावन जिसका अर्थ (उलझावन) है।

(३९) सालमाल बेबाकीः—जब किसान अपने पट्टे का कुल लगान बेवाक कर देता है तो कम से कम एक रुपया और ज्यादा से ज्यादा पांच रुपया तक बजरिये जिलेदार के

सालाना वसूल किया जाता है जिसमें से एक रुपया फी पट्टा जिलेदार को मिलता है और शेष रकम जिमींदार या ताल्लुकेदार लेता है। कहीं कहीं पर इसको हक जिलेदार भी कहते हैं।

(४०) चन्दा—जितने प्रकार के चन्दे गवर्मेन्ट को जिमींदार या ताल्लुकेदार देते हैं वह सब रकमें पड़ता के हिसाब से किसानों से वसूल की जाती हैं। कहीं २ पर जब चन्दा नहीं देना होता है तो भी फी रुपया एक पैसा पट्टे पर चन्दा सरकारी के नाम से वसूल करते हैं।

(४१) फसई:—जहां कहीं पर फसई धान (एक किसम का धान) पैदा होता है उसको ताल्लुकेदार नीलाम कर देते हैं और उसकी कीमत वसूल कर लेते हैं। कहीं कहीं पर बटाई की जाती है और वह बटाई तीकुर के नाम से प्रसिद्ध है। तीकुर का मतलब यह है कि तीन हिस्से में एक हिस्सा जमींदार लेता है और दो हिस्सा किसानें। कहीं कहीं पर इससे विपरीत जिमींदार दो हिस्सा और किसान एक हिस्सा लेता है।

(४२) नरई—जहां कहीं जिन तालाबों में नरई या गोंद (इसकी चटाई बनती है) पैदा होती है उसको नीलाम कर कीमत वसूल करते हैं और जहां पर प्रजा में एकता है और गोंद या नरई को खरीदना पाप समझते हैं वहां पर मनमाना

कीमत का अन्दाजा लगा कर उसकी कीमत प्रजा से वसूल की जाती है।

(४३) सलाबोः—तालाबों में जो सांवां या जिठुआ धान होता है उस पर लगान या बटाई के अनुसार फी बीघा १ रुपया या २ रुपया लेते हैं और उसको मर्गों के नाम से पुकारते हैं।

(४४) आब पाशीः-तालाबों तथा कुओं से जो किसान पानी खींचने के लिये ले जाते हैं उनसे फी बीघा चार आना से लेकर एक रुपया वसूल किया जाता है। कुआं चाहे किसी किसान का हो परन्तु उससे यदि कोई दूसरा किसान पानी लेगा तो उसकी सिंचाई ज़मींदार को देनी पड़ेगी न कि उस किसान को जिसने कि वह कुआं अपने खर्च से बनाया है। कहीं कहीं, जहाँ पर एक ही तालाब है और सिंचाई ज़्यादा है वहां जो ज़्यादा कीमत पानी की देता है उसी के हांथ पानीकी बार बेंच देते हैं और वह एक दोगला या दो दोगला इत्यादि पानी ले जाने के नाम से प्रसिद्ध है।

(४५) तिनीः—तिनी उस घास को कहते हैं जो छप्पड़ छाने के काम लाई जाती है और वह बागों या तालाबों के आसपास पैदा होती है। इस पर खरही (ढ़ेर) के हिसाब से या बोझ के हिसाब से फी खरही एक रुपया या फी बोझ दो पैसा महसूल लेते हैं।

(४६) झाऊः—दरिया के किनारे जो झाऊ पैदा होती है उसको नीलाम कर किसानों से कीमत वसूल करते हैं और जहां नीलाम नहीं होती वहां उसका धन किसानों से जबरन लिया जाता है।

(४७) सींकः—गांडर से सींक निकलती है। सींक की कीमत नीलाम कर वसूल की जाती है और कहीं कहीं पर १ सेर से लेकर ५ सेर तक सींक फी किसान पैदावार के हिसाब से वसूल की जातो है। जहां कहीं नीलाम में किसान नहीं लेते हैं वहां उसका धन सारे गांव से वसूल किया जाता है। गांडर की जो जड़ निकलता है वह खस कहलाती है। और वह किसानों से बिना कीमत खुदवाई जाती है। उसको ताल्लुकेदार साहब अपने काम में लाते हैं, हुक्कामों को नजर भेजते हैं और जहां कहीं पर खस नहीं खुदाया जाता है वहां पर फी हल एक आना या फी पट्टा एक आना जबरन् खस की कीमत वसूल की जाती है।

(४८) बकवटः—ढ़ाक (छ्यूल) की जड़ का नाम बकवट है। इसको कूटकर रस्सी बनायी जाती है। यह रस्सी वारिस में काम में लाई जाती है। यह बकवट किसानों के द्वारा खुद-वाया जाता है और उसको कीमत उनको नहीं दी जाती है और न बकवट उनको दिया जाता है। यह घोड़ों की अगाड़ी तथा पिछाड़ी की गरज से विशेष तौर पर काम में लाया

जाता है। जहां कहीं पर बकवट होता है और उसको किसान अपने काम में लाना चाहते हैं तो उसके बजाय आध आना हल पीछे वसूल किया जाना है। इसी महसूल को खासकर बकवट कहते हैं। यह बहुत भयंकर अत्याचार समझा जाता है।

(४६) बाड़ाः—जंगल के इर्द गिर्द या ऊसर पर किसी परती जमीन में जहां पर जानवरों के रखने के लिये बाड़ा (Fencing) बनाया जाता है उसके लिये जो धन लिया जाता है उसको बाड़ा कहते हैं। यह धन गांव पीछे आठ आने से ५ रुपये तक तक लिया जाता है।

(५०) हकमालकानाः—जब कोई काश्तकार नया मकान बनाता है अथवा अपने दरवाजे पर छप्पर या चबूतरा बनाता है अथवा कोई उजाड़ खड़हर में कोई इमारत खड़ा करता है तो जो रुपया इसके लिए वसूल किया जाता है इसको हक मालकाना के नाम से कहा जाता है।

(५१) क ब्याहः—जब किसी जमींदार या ताल्लुकेदार की लड़की का ब्याह होता है तो बजरिये जिलेदार एक हल्दी की गांठ हर प्रजा के पास (जो अछूत न हों) बांटी जाती है और उनसे एक रुपया से ले कर पांच रुपया तक वसूल किया जाता है। विशेष कर उन लोगों से सख्ती के साथ ब्याह का कर लिया जाता है जिनके पास कुछ खेत माफी या बाग जिमींदार के बुजुर्गों की ओर दिये होते हैं।

(५२) मुंहदिखाई खः—जब किसी जमींदार या ताल्लुकेदार की नयी बधू घर में प्रवेश करती है तो प्रत्येक प्रजा से कम से कम एक रुपया १) के हिसाब से मुँह दिखाई ली जाती है । विशेष कर किसानों को एक रुपया अवश्य ही देना पड़ता है।

(५३) सिंहाड़ाः—तालाबों में जो बुड़िया या कहार सिंहाड़े बोते हैं उनसे तालाब के फी बीघेपर धन लिया जाता है। और यदि बरसात न हुई अथवा होकर कम हुई और सिंहाड़े की फसल को नुकसान पहुंचा अथवा पानी आबपाशी में भेजा गया तो सिंहाड़े का नुकसान परता के हिसाब से सभी किसानों से वसूल किया जाता है ।

(५४) कीकविटीः—कीकविटी भी सिंहाड़े के सदृश ही तालाब में कुदरती पैदा होती है । इसको नीलाम किया जाता है । यदि कोई नीलाम में न ले तो इसका हरजाना गाँव के लोगों से परता के हिसाब से लिया जाता है ।

(५५) चूनाः—जो मिट्टी या कंकड़ (जिससे चूना बनता है) खाझे के लिये या मकान की इमारत के लिये हो तो मिट्टी का दाम फी टोकरा दो पैसे के हिसाब से कीमत वसूल की जाती है और कंकड़ का महसूल नाप के हिसाब से वसूल किया जाता है ।

(५६) पानः—तंबोलियों को लाख में छै ढोली पान घर पीछे

ताल्लुकेदार या जिमींदार को देना पड़ता है। जो पान न दे सके तो १) से २) तक नकदी दे।

(५७) कंहड़ा (वंम्हनी या पेठाः-) प्रत्येक तंबोली को दो पेठे ताल्लुकेदार को हरसाल देना पड़ता है। और यदि वह पेठा नदें तो सालाना ।) नकदी ताल्लुकेदार को दें। इसी टैक्स नाम वंम्हनी है।

(५८) रातिवः-तेलियों को प्रति दिन नम्बर वार टका भर (तोल में) तेल जिलेदार को देना पड़ता है। यदि कोई तेली तेल का रोजगार न करता हो और उसके यहां तेल पेरने का कोल्हू न हो तो उससे कुछ धन सालाना वसूल किया जाता है। इस रोजाना तेल देने को रातिब कहते हैं।

(५९) कोल्हूः-जो तेली कोल्हू गाड़े रहते हैं और उसमें तेल पैरते हैं तो उनको रातिव के अतिरिक्त एक रुपया फी कोल्हू ताल्लुकेदारों को देना पड़ता है।

(६०) वलहरीः-जिस मकान पर ताल्लुकेदार का जिलेदार या लगान वसूल करनेवाला कार्य्य कर्त्ता रहता है उसको जिल्ला या डेरा कहते हैं। इसकी हिफाजत के लिये जो मनुष्य रहता है उसको वलाहर कहते हैं। और वह उसी गांव का रहने वाला होता हैं। वलाहर से ही गांव का सब प्रकार का कामलिया जाता है इसको ज़्यादा से ज़्यादा ६) से १२ तक सालाना जिमींदार तनखाह देता है परन्तु हर प्रजा को हर

त्याहार पर बलाहर को खाना देना पड़ता है और जब खरीफ रब्बी तैय्यार होती है तो पट्टा पीछे डेढ़ पाव फी किसान (फसल गल्ला) वसूल किया जाता है। उस गल्ले को बेंचकर बलाहर को तनखाह दी जाती है। जो रुपया बच जाता है वह ताल्लुकेदार के घर पहुंचता है। कहीं कहीं पर पट्टा पीछे एक आना से ढाई आना तक धन लिया जाता है। यह धन बलाहर को दिया जाता है और इसका नाम बलहरी है।

(६०) चौकीदारीः—बलहरी के सदृशही चौकीदारी का भी कर लिया जाता है। इसको २॥/-) गवर्नमेंन्ट से महीना में मिलता है। इसके अतिरिक्त हर त्योहार पर किसानों को इसे खाना देना पड़ता है, व्याह और शादी में इनाम देना पड़ता है। और रास (उत्पन्न गेहूं के ढेर) पीछे एक अन्जुली अनाज हर पट्टेदार को देना पड़ता है। कहीं कहीं पर यह अन्जुली न लेकर दो पैसा फी पट्टा वसूल किया जाता है। और जो जी में आता है चौकीदार को जिमींदार देता है और शेष धन घर में रख लेता है।

(६१) मट्टीः-जो लोग मकान बनाने के लिये तालाबों से या किसी दूसरे स्थान से मट्टी लेते हैं फी गाड़ी डेढ़ पैसा उनको जमींदार को देना पड़ता है।

(६२) रेहूंः-जो रेहूं कपड़े के धोने के काम में लाया जाती

है उसकी कीमत धोबियों से २ आने से पांच आने तक सालाना वसूल की जाती है।

(६३) शोराः—जहां कहीं पर शोरा वाली मिट्टी होती है वह शोरा बनाने वालों के हाथ नीलाम की जाती है और यदि शोरा बनानेवालों ने मिट्टी न ली तो उसका दाम गरीब किसान से परता के हिसाब से वसूल किया जाता है।

(६४) लाहः—पीपल या ढ़ाक में जो लाह पैदा होती है उसको खटिक लोग नीलाम में खरीदते हैं और यदि वह लाह किसी साल नीलाम नहीं होती तो उसकी कीमत गरीब किसानों से पट्टा पीछे वसूल की जाती है। यदि दैवात् बारिस न हुई और पीपल के पत्ते जानवरों को चारे के शकल में दिये गये तो उसकी कीमत लाह के नाम से वसूल की जाती है और गरीब किसानों पर यह दोष लगाया जाता है कि उन्होंने लाह का नुकसान किया।

(६५) चहरुमः—जब कोई किसान कोई लकड़ी, बाग या फल (फलत) किसी दूसरे के हांथ बेंचता है तो जो कीमत उसको मिलती है उसका चौथाई हिस्सा ताल्लुकेदार लेता है।

(६६) चिथड़ाः—मशाल या बत्ती जो ताल्लुकेदारों या जिमींदारों के यहां जलाये जाते है उसमें जो कपड़ा लगता है वह धोबियों से लिया जाता है। और यदि वह चिथड़ा न दें

तो सालाना फी धोती एक आना वसूल किया जाता है। इस आमदनी को चिथड़ा पुकारा जाता है।

(६७) तामीनः—जब कोई जिमींदार या ताल्लुकेदार अपना मकान, इमारत, कुंआ या फुलवाड़ी, नहर या बाँध बनवाता है तो उसमें जो खर्चा लगता है वह पट्टी पीछे चौदह आना सालाना वसूल किया जाता है। इसका नाम तामीर है।

(६८) तामीर चाहः—जब कोई किसान या प्रजा सिंचाई या पानी पीने की गरज से कुंआ बनाना चाहता है तो उसको कुआँ बनाने पर जिमींदार को टैक्स देना पड़ता है जिसका नाम हकतामीरचाह है। कहीं कहीं इसी को हकमालकाना भी कहते हैं।

(६९) दोना पतरीः—जो पत्ते दोना पत्तल के काम के लिये तोड़े जाते हैं उसकी कीमत सालाना एक आना से चार आना वसूल की जाती है।

(७०) हंड़िया गगरीः—कुम्हारों से हंड़िया गगरी नाम का कर वसूल किया जाता है और यह प्रत्येक कुम्हार ~) =) से चार आना तक होता है।

(७१) चुंगीः—चुंगी तीन प्रकार की है। (i) हटिया (ii) मेला (iii) बाजार। जो सौदागर जिस प्रकार का सौदा बेंचने के लिए आते हैं उनकी हैसियत के अनुसार चुँगी वसूल की जाती है।

(७२) उतराईः—जहां कहीं पर नाला या नदी वजरिये डोगीं धनई या छोटी किश्ती से उतरी जाती है वहां उसकी उतराई का महसूल नाव वालों से जिमींदार लेना है। किसी साल यदि उसमें कमी पड़ती है तो कमी को जिमींदार करके तौर पर किसानों से वसूल करता है।

(७३) दूधः—जिन लोगों के यहां दूध है यदि वह अछूत नहीं तो उनसे वारी वारी करके दूध लिया जाता है।

(७४) दहीः—जिन लोगों के यहां दही होता है उनसे दूध के सदृशही दही भी लिया जाता है।

(७५) घीः—बाजारी भाव से ड्योढ़े दाम पर घी जिमींदार लोग लेते हैं यदि वह न दें तो एक रुपया के बजाय ड़ेढ़ रुपया सालाना वसूल किया जाता है।

(७६) ऊँटः—जिन लोगों के पास ऊँट होता है उन ऊंटों की चराई का महसूल सालाना फी ऊँट सवा रुपया के हिसाब वसूल किया जाता है और इस कर को ऊट-वस कहते हैं।

(७७) घरवाना—(१) जब किसी किसान के यहां नयी बधू व्याह कर आती है तो उस से पांच आना लिया जाता है।

(२) वह जगह जहां पर कण्डे पांथे जाते हैं उस पाथने वाली जगह के महसूल को घरवाना कहते हैं।

(७८) किलिक स्याहीः—किलिक और स्याही के रोजगारियों को, जमींदार के यहां जो स्याही तथा किलकें खर्च

होती हैं वह सब देनी पड़ती है अथवा धेला की पट्टी के हिसाब से किसानों को देना पड़ता है (यह उस गांव में होता है जहां रोजगारी नहीं है)।

(७६) दवाई (शराब)--दवाई अर्थात् शराब महमान दारी में जो खर्च होती है वह कलवारों को देनी पड़ती है। और यदि वह दवाई नहीं दे सकते तो रुपया फी घर कलवार-से वसूल किया जाता है। इस लूट के धन का नाम दवाई है।

(८०) चंदा अस्पताल—जो अस्पताल जमींदारों के यहां बने हैं और उनका जो खर्चा सरकार ताल्लुकेदारों से लेती है वह खर्चा जमीन्दार या ताल्लुकेदार किसानों से परता के हिसाब से वसूल करते हैं। इस लूट के धन का नाम "शफा-खाना" है।

(८१) चन्दा मदरसा—मदरसों के बनवाने में जो खर्चा ताल्लुकेदार या जमीन्दार से डिस्ट्रिक्ट बोर्ड लेता है वह खर्च, जमीन्दार या ताल्लुकेदार किसानों से परता के हिसाब से वसूल करते हैं!

(८२) डलइया- सींक और मुंज से विलहरा या टोकरा या पिटारी बनती है वह एक एक दो दो घर पीछे विशेषकर ब्याह में प्रजा से लीजाती है। और अगर कहीं 'पर यह नहीं' बनते तो ग्राम पीछे ग्यारह आना परता के हिसाब से किसानों से लिया जाता है।

(८३) झउआ— झउआ या खचुली जो झाऊ या अरहर की डंठों से बनाये जाते हैं, बनाने वाले किसान को एक एक ताल्लुकेदार या जमीन्दार को देना होता है। और जहां न बनते हों वहां ।-) फी ग्राम परते के हिसाब से देना पड़ता है।

(८४) टुकनी या छोटी टोकरी-इस पर भी झाऊ की तरह टैक्स लिया जाता है।

(८५) व्याना (पंखा) सूप दौरी-यह बांस से बनाये जाते हैं। और इनको डोम बनाते हैं। बनाने वालों से साल में एक दौरी व्याना और एक सूप ताल्लुकेदार लोग लेते हैं। बहुतायत से सूप के दाम दो आने से तीन आने तक नगद लिये जाते हैं।

(८६) जूता-जो चमार जूता बनाते हैं उनको साल में एक जोड़ा जूता ताल्लुकेदार या जमीन्दार को देना पड़ता है। आम तौर पर जूते की कीमत वसूल की जाती है। अब तक तो जूते की कीमत आठ आना ही लेते थे परन्तु अब बीस आना तक लेते हैं।

(८७) मुचियावन- जो मोची चारजामा (जीन) बनाता है उससे साल में एक चारजामा लिया जाता है। यदि वह चारजामा नहीं दे सकता है तो २।-) उससे कीमत ली जाती है।

(८८) चिट्ठी- जब कोई हांथी या घोड़ा बुड्ढा हो जाता है

तो इस पर चिट्ठी छोड़ी जाती हैं। और परते के हिसाब से दो पैसा से आना तक की चिट्ठी छोड़ी जाती। और वह महसूल चिट्ठी के नाम से प्रसिद्ध है। इस चिट्ठी की आड़ में बहुत रुपया वसूल किया जाता है और जिसके नाम चिट्ठी निकलती हैं उसको बुड्ढा घोड़ा या हाथी दे दिया जाता है। वह भी आमतौर पर इस जानवर को दान दे देता है या बेंच डालता है।

(८९) गुलुई-महुआ में जो फल लगते हैं उसको गुलुई कहते हैं। इससे तेल निकलता है। इसके फल को ताल्लुकेदार बेंच लेते हैं। (यह पेड़ आमतौर पर किसानों के होते हैं। आमतौर पर किसानों से २) से लेकर २६=) तक कीमत ले लेते हैं। जहां कहीं पर गुलुई नीलाम नहीं की जाती या किसान नहीं खरीदते वहां उसकी कीमत परता के हिसाब से वसूल की जाती है।

(९०) निमकरी-नीम के फलों के भीतर से जो गिरी तेल के लिए निकाली जाती है उसको निमकरी कहते हैं। इसके महसूल का नाम भी नीमकरी पड़ गया है। यह गांव पीछे पांच आने से लेकर एक रुपया तक परते के हिसाब से किसानों को देना पड़ता है।

(९१) खरी बिनवल—तेलियों से खरी और बेहनों (रुई धुनने वालों-धुनियों) से बिनौला लिया जाता है। जो तेली

खली या बेहना विनौला नहीं दे सकते उनसे =) से ॥-)
तक खरी बिनवल की कीमत ली जाती है। आमतौर पर
२½ सेर खरी और १½ सेर विनवल सालाना लिया जाता है।

(६२) सिंगरी-बबूलों के पेड़ों में जो फल लगते हैं उनको
सिंगरी कहते हैं। आम तौर पर सिंगरी नीलाम की जाती है,
परन्तु जहां कहीं पर सिंगरी नीलाम नहीं होती है, वहां पर
सिंगरी के दाम मन माना वसूल किये जाते हैं।

(६३) रंगाई (चमड़ा)—चमड़े की रंगाई लिये जो चमार
बबूल के वृक्षों की छाल लेते हैं उसकी कीमत चमारों को ॥=)
से लेकर १।-) तक सालाना देना पड़ता है। इस महसूल का
नाम रंगाई है।

(६४) सूत—कोरी या जुलाहों से सूत लिया जाता है।
और उस सूत के रस्से या बागडोर बनवाये जाते हैं। बागडोर
घोड़े के लगाई जाती है और रस्से खेमों में लगाये जाते हैं
अथवा अबारी या हौदा खींचने के काममें लाये जाते हैं।
बहुतायत से नकदी दाम १) से १॥-) तक फी कोरी या
जुलाहा सालाना लिया जाता है।

(६५) पलंग, चौकी, दीवट, झुमरा, मेल-बढ़इयों से ज़रूरत
के हिसाब से हर साल यह चीज़ें ली जाती हैं।बहुतायत से
नकद दाम ।=) से लेकर १।) तक फ़ी बढ़ई सालाना लिया
जाता है।

(९६) लोहरई—लोहारों से भी लोहरई ली जाती है। नकदी में यह १) से ३॥।-) तक ली जाती है।

(९७) बड़ा दिन-बड़ा दिन त्योहार अंग्रेजों का है इसमें अंग्रेजों को डलिया भेजने के लिये परता के हिसाब से गांव पीछे १) से २) तक ले लिया जाता है। आम तौर पर यह डाली की रश्मपर निर्भर है।

(९८) चंदा कवि—दशहरा होली या शादी व्याह में जो कवि लोग राजाओं की झूठी प्रशंसा करते हैं उनको ग्राम पीछे कहीं कहीं पर ॥) और कहीँ कहीँ पर १-) तक सालाना दिया जाता है। यह चंदा परता के हिसाब से किसानों से वसूल किया जाता है।

(९९) हरी—किसानों से अपनी सीर जुताने के लिये एक हल और एक जोड़ी बैल किसान पीछे सालाना लिया जाता है।

(१००) खेल तमाशा—राजाओं ताल्लुकेदारों या जमींदारों के यहां जब कोई नट नटिनि जादूगर सपेरा घुड़ दौड़; बन्दर नचैया या भालू नचाने या वायस्कोप इत्यादि का खर्चा पड़ता है तो यह खर्चा गांव पीछे प्रत्येक व्यक्ति से वसूल किया जाता है। यह =) से लेकर १) तक है। इसकी आड़ में बहुत जुल्म होते हैं।

(१०१) धुनकाई—जो बेहना रुई धुनकते हैं वह धुनिया

कहलाते हैं; वह रियासतों में हांथियों के गद्दे या घरों के गद्दे लिहाफ इत्यादि भरने में जो रुई खर्च होती है वह धुनियों से ली जाती है अथवा उसकी कीमत ~) से लेकर ।=) तक वसूल की जाती है।

(१०२) भीट—तमोली जिस जगह पान लगाते हैं उसको भीट कहते हैं। वहां पर अदरक, अतारू, करेली, परवल, कंदरू, पोई का साग तथा पेठा आदि बोया जाता है। इन चीजों के लगान के अलावा भीट में जो पानी दिया जाता है और जो तालाबों में कुओं की तरह गड्ढे खोदे जाते हैं जिसको चोहा कहते हैं उसका महसूल एक रुपया से ५ रुपये तक सालाना लिया जाता है। इस महसूल का नाम भीट है।

(१०३) हक उपरहती—सब जगह पुरोहितों से टैक्स लिया जाता है। और यदि पुरोहिताई नीलीम न हुई तो किसानों से फी घर एक आना से चार आना तक सालाना लिया जाता है इसका नाम उपरहती है।

(१०४) तुमन्दारी-गोला गोली टोपी बारूद बन्दूक में जो ख़र्च होता है वह तुमन्दारी के नाम से किसान से वसूल किया जाता है।

(१०५) मूंज पतावज—जहां कहीं सरकन्डा पैदा होता है वह चाहे किसान के पट्टे के अन्दर ही क्यों न हो। हर साल

नीलाम कर दिया जाता है। और यदि नीलामी न हो तो उसकी कीमत किसानों से वसूल की जाती है।

(१०६) गांडर—गांडर छप्पर छाने के काम में आता है और यह तालाब के किनारे उगता है। इसको नीलाम किया जाता है। यदि नीलाम न हुआ तो किसानों से परतेके हिसाब से उसकी कीमत वसूल की जाती है।

(१०७) इमली—जहां कहीं इमली पैदा होती है वह नीलाम की जाती है। अगर किसी ने न खरीदी तो इसका दाम गाँव के किसानों से फी पेड़ एक आना के हिसाब से कीमत वसूल करली जाती है।

(१०८) खिन्नी—इमली के सदृश ही खिन्नी नीलाम की जाती है।

(१०९) कसेरू—कसेरू तालाब में पैदा होता है। यह नीलाम किया जाता है। लोध जाति के लोग आम तौर पर इसको खरीदते हैं। यदि किसी प्रकार से दैवात् कसेरू तालाब में न पैदा हुआ हो तो इसकी कीमत लोधों से परता के हिसाब से वसूल कर ली जाती है।

(११०) जल पान—हुक्कामों तथा दोस्तों को जो गार्डन पार्टी दी जाती है उसको जल पान कहते हैं। इसका खर्च भी परता के हिसाब से गांव से वसूल किया जाता है।

(१११) मिठाई बतासाः—हलवाइयों से हैसियत के हिसाब

से आधसेर से लेकर ढाईसेर तक मिठाई बताशा लालाता लिया जाता है अथवा उसकी कीमत अन्दाज से ले ली जाती है।

(११२) बयाई (डंडीदारी):—बयाई गावों में नीलाम की जाती है। जहाँ बयाई नहीं नीलाम होती है वहाँ गाँव के प्रत्येक किसान पर पट्टे पर रुपया पीछे एक पैसे से लेकर दो आने तक बयाई वसूल की जाती है।
(बयाई गाँव की पैदावार की बिक्री में तुलवाई के टैक्स) को कहते है।

(११३) बजाईः—बाजा बजाने वालों से ।) फी घर लिया जाता है।

(११४) मूँडन, छेदन, ब्याह, गमी:—इसमें इनाम आदि में जो खर्चा होता है या जो गमी में महापात्र को दिया जाता है उसका खर्चा गाँव के असामियों से वसूल किया जाता है।

(११५) घटवाही:—जहाँ पर दर्या है और जहाँ गङ्गापुत्र लोग बैठते हैं तो उनके घाट का महसूल घटवाही के नाम से पुकारा जाता है। श्मशान का महसूल डोमों से लिया जाता है। यह भी घटवाही कहलाता है।

(११६) बँसवाही:—जहाँ कहीँ पर बाँस लगाया जाता है तो जो किसान लगाता है उसको साल में चार बाँस ताल्लुकेदार

को देना पड़ता है अथवा एक आना से आठ आना तक सालाना देना पड़ता है।

(११७) अमरूद निंबू नारंगी आदिः-इनका महसूल फुलवारी के नाम से मशहूर है और वह फलता या पैदावारी की कीमत का अन्दाज लगाकर लगाने वालों से इनका महसूल लिया जाता है। सवा रुपया सैकड़े के हिसाब से कीमत पर यह महसूल अलावा लगान के लिया जाता है। और कहीं कहीं पर चहरुम लिया जाता है जो कि २६ फी सैकड़ा होता है। यह वहीं होता है जहाँ लगान नहीं लिया जाता है।

(११८) भसीड़ः-कमल की जड़ को भसीड़ कहते हैं। जो लोग भसीड़ खोदते हैं वह आम तौर पर लोध होते हैं। उनसे =) से ।=) तक फी टोकरी ले ली जाती है।

(११९) ममाखी या गोंदः-शहद तथा बबूल की गोंद सालाना बड़ मानुसों या बनरोज़ों से ली जाती है। बनरोज तथा बड़मानुस उन्हीं को कहते हैं जो जंगल में रहते हैं और जो कि जड़ी बूटी बेचते हैं। जहाँ कहीं पर गोंद का नुकसान हो जाता है वहाँ पर सिगरी खरीदने वाले किसानों से परता के हिसाब से वसूल की जाती है।

(१२०) सामान ताल्लुकेदारीः-भोग विलास के जितने सामान ताल्लुकेदारी होते हैं उनकी कीमत किसानों से वसूल की जाती है। इसकी आड़ में अनेक अत्याचार किये जाते हैं।

(१२१) ठाठ बाटः-ठाठ बाट वह महसूल है जो कि ब्याह या शादी के मौके पर सामान माँगने के बदले में किसानों से लिया जाता है।

(१२२) घाटाः-घाटा उस महसूल को कहते हैं जो कि अब मँहगाई के नाम से प्रसिद्ध है। सिपाहियों को जो अधिक अलाउन्स दिया जाता उसका खर्च किसानों से लिया जाता है। इसी का नाम घाटा है।

(१२३) कथाः-भागवत् आदि तथा मालूद शरीफ़ की कथा जब गांव में होती है तब उसका खर्चा पट्टा पीछे मुनाफे के साथ किसानों से वसूल किया जाता है।

(१२४) पुन्नीः-जब कोई जमींदार या ताल्लुकेदार का उत्तराधिकारी बीमार होता है तो उसमें जो दान पुण्य की जाती है वह किसानों से ली जाती है परन्तु वह किसान ऐसे हों जिनके पास माफी जमीन या बाग हो।

(१२५) महतीः-महती उसको कहते हैं जो कि सब किसानों से लगान वसूल कर जिलेदार को देता है या जो लगान की जमानत कहता है। उससे सालाना महती नाम का टैक्स लिया जाता है। महती का अर्थ चौधरी है। यह टैक्स चौधरी बनाने का है। चौधरी-किसान महती का धन किसान से वसूल कर लेता है।

(१२६) मुखिया गीरीः-जो लोग सरकार की ओर से

मुखिया होते हैं उनसे १) सालाना नजराना मुखियागीरी का ताल्लुकेदार लेते हैं।

(१२७) पटवारगीरीः-जब कोई नया पटवारी मुकर्रिर होता है तो उससे एक मुश्त नजराना पटवारी की हैसियत से दस रुपया से लेकर डेढ़ सौ रुपया तक लिया जाता है। वह पटवारी इस नजराने का धन किसानों से वसूल कर लेता है।

भूसा उगहनीः-आम तौर पर भूसा किसानों से चैत में मुफ़्त लिया जाता है। और यह मोटरी या गाठरी के हिसाब से लिया जाता है। गठरी ३½ हाथ का लंबाई और २½ हाथ का चौड़ाई के वस्त्र का होता है और उसके चारों कोने में बालिस्त भर रस्सी बँधी होती है। कहीं कहीं पर पट्टा पीछे फी रुपया एक सेर भूसा लिया जाता है या बाजार भाव से उसका दाम ले लिया जाता है।

(१२८) चौकीदारीः-जब सरकार किसी को चौकीदार नियत करती है तो जमींदार उससे नजराना लेता है जिसका धन वह पुलिस या हलकारे (Circle) या कांस्टेबल द्वारा किसानों पर अत्याचार कर वसूल करता है।

(१२९) भुजाईः-भुजवा जो चवैना तथा सत्तू बनाता है उससे भुजाई का महसूल ताल्लुकेदार या जिमीदार लेता है। यह महसूल १) से २) तक होता है।

(१३०) करबीः—ज्वार के डंठे को करबी कहते हैं। उसका महसूल किसानों से फसल पर ५ पूला से १० पूला तक पट्टे पर लिया जाता है। कहीं कहीं पर उसकी कीमत ली जाती है जो।) से १) तक होती है।

(१३१) पयालः—धान के पौधे को पयाल कहते हैं। यह एक बोझ से पाँच बोझ तक या इसकी कीमत।) से ॥=) तक पट्टे पीछे ली जाती है।

(१३२) नजरदस्तीः—जब प्रजा अपने ताल्लुकेदार या जमींदार के पास अपना दुःखड़ा रोती है तो दुःखड़ा सुनने के पहिले १) नजरदस्ती के तौर पर नजर ले ली जाती है। उसके बाद उसका दुःख सुना जाता है। कहीं कहीं पर जब कोई किसान किसी मौके पर अपने जिमींदार को नजर देता है उसको भी नजरदस्ती कहते हैं।

(१३३) लकठा बाजराः—सुखा बाजरा का वृत्त लकठा कहलाता है। इसको हाथी खाता है। यह एक बोझ से लेकर आठ बोझ तक (बोझ को अवध में पूरी कहा जाता है) बाजरा बोने वालों से लिया जाता है। अथवा उसकी कीमतें ־) से लेकर १) तक ली जाती है।

(१३४) कांडीः—अरहर के डंठे कांडी के नाम से पुकारे जाते हैं। और वह छप्पर छाने के काम में आते हैं। किसानों

को कांडी देनी पड़ती है परन्तु बहुतायत से पट्टे पीछे ~)
कांडी का दाम दे दिया जाता है।

(१३५) मछली:—तालाबों की मछली सालाना नीलाम होती है। यदि वह नीलाम न हुई तो उनकी कीमत पांसियों चमारों और गोड़ियों से ली जाती है।

(१३६) हक मालकाना:—जब किसान को खेत गल्लई पर दिये जाते हैं तो उनसे फी बीघा १) हक मालकाना लिया जाता है।

(१३७) गुड़ैती:—जो गुड़ैत या बलाहर गल्लई की निगरानी के लिये तैनात किया जाता है उसको मन पीछे एक सेर दिया जाता है जो कि उसी गल्ले से वसूल किया जाता है। जिसमें से कुछ बलाहर या गुड़ैत को दिया जाता है बाकी जिमींदार लेता है।

(१३८) सहनगी:—गरीब किसान के खेतों के ताकने के लिये जो सिपाही मुकर्रिर किया जाता है उसको सहनगी मिलती है जो कि उसकी माहवारी तनख्वाह पूरा कर सके।

(१३९) आफर:—फी मन एक पाव जिमींदार या ताल्लुकेदार को आफर दिया जाता है। जिस जगह पर एक फसल काट कर लगाई जाती है और उससे दाना निकाला जाता है उस जगह को आफर कहते हैं। उसी के नाम पर इस महसूल का नाम भी आफर है।

(१४०) तौलाईः—वजन कराई फी मन आध सेर और हर दस मन पर २$\frac{1}{2}$ सेर तौलाई ली जाती है जो कि ज़मींदार लेते हैं जिसका कुछ भाग तोलने वाले को भी दे दिया जाता है।

(१४१) बेगारीः—भिन्न भिन्न पेशे के लोगों से साल में कम से कम १२ रोज काम मुफ़्त में ही लिया जाता है जो काम नहीं करते हैं उनसे प्रति दिन के हिसाब से तावद वसूल किया जाता है।

(१४२) बेगार हुक्कामः—सरकारी छोटे से बड़े कर्मचारी तक किसी न किसी रूप में काश्तकारों का खून निचोड़ते हैं। यह जब दौरे पर होते हैं तो इनको आटा दाल चावल घी तरकारी नमक शराब भांग तमाखू गांजा चरस हरी धनिया गरममसाला आदि बाजारी भाव से कम दाम में दिया जाता है। भूसा पयाल तो प्रजा को मुफ्त में ही देनी पड़ती है। घोड़ा, बैल गाड़ी तथा टट्टू भी बेगार में प्रायः पकड़ लिये जाते हैं।

अवध के सदृश ही सारे संयुक्तप्रान्त में किसानों पर अत्याचार किया जा रहा है। ताल्लुकेदार तथा जमींदार किसानों को अपने भोग विलास का साधन बना बैठे हैं। पूंजीवाद का यह रूप बहुत ही घृणित तथा अन्याय पूर्ण है। ताल्लुकेदार नाच करावें और शराब पियें और इसका खर्चा नचियावन तथा दवाई के नाम से किसानों से वसूल करें। मोटरा-

बन, हथियावन लटियावन आदि में दी गई रकमें लूट तथा डाके की रकमें हैं। इन सब का आधार क्या है? आधार एक मात्र बेदखली तथा किसानों का लगान तथा मालगुजारी को देना है। चाहे भारत सरकार हो और चाहे ताल्लुकेदार हो उनको मालगुजारी या लगान के तौर पर किसानों का धन देना पाप करना है। भारत सरकार इन्कमटैक्स ले तथा और बहुत से टैक्स ले। परन्तु वह सब के सब टैक्स समानता नियम का भंग न करते हों। यदि बजाज तथा आफिस के बाबूओं के लिये २००० रुपयों की सालाना रकम आवश्यक तथा जीवनोपयोगी है तो यही रकम किसानों तथा काश्तकारों के लिये क्यों न जीवनोपयोगी तथा आवश्यक समझी जाय। सारांश यह है कि किसानों को, ताल्लुकेदारों को लगान तथा मालगुजारी देना पाप कर्म समझ कर बन्द कर देना चाहिये और उसको भारत सरकार को प्रजा के अन्य लोगों के सदृश ही इन्कमटैक्स आदि अन्य समानता नियमों के अनुकूल टैक्स देना चाहिये।

परन्तु किसानों ने अभी तक अपने हकको नहीं समझा है। उनको पाप पुण्य का विवेक नहीं है। वह लगान तथा मालगुजारी की अन्याय युक्त रकमों को देते जारहे हैं। जब जमीनें उन्हीं की हैं और जो जोते बोये उसी की उपज है इस हालत में लगान या मालगुजारी के तौर पर क्यों किसी

को धन दिया जाय ! परन्तु किसान लोग अभी तक इस लूट के धन को दिये जा रहे हैं और अपने खून पर ताल्लुकेदारों तथा जमीन्दारों को पाल रहे हैं। परिणाम इसका यह है कि वह दिन पर दिन अधिक अधिक दरिद्र हो रहे हैं और जरा सी भी बारिश के बिगड़ते ही दुर्भिक्ष में मरने लगते हैं।

III. अन्तिम परिणाम

उपरिलिखित संदर्भ का जो कुछ निचोड़ है उसको इस प्रकार दिखाया जा सकता है।

(१) जनता का रहन सहन बहुत ही नीचे दर्जा का है। मंहगी के कारण लोग स्वच्छ कपड़े पहिनने में असमर्थ हैं और उत्तम भोजन भी नहीं प्राप्त करते हैं। उनके मकान भी स्वास्थ्य की दृष्टि से संतोषप्रद नहीं है। गांव भी स्वच्छ नहीं है। सरकार की ओर से गांवों की सफाई का कोई विशेष प्रबंध भी नहीं है।

(२) मंहगी से ताल्लुकेदारों तथा जमीदारों को विशेष लाभ पहुंचा है। व्यावसायिक नाश से और जनसंख्या की वृद्धि से जनता को अपनी आजीवका के लिये कृषि का अवलम्बन करना पड़ा। अनाज के विदेश में जाने से भी अनाज की मंहगी हुई तथा कृषि को विशेष महत्व प्राप्त हुआ। इसका

परिणाम यह हुआ कि भूमि की मांग बहुत ही अधिक बढ़ गई। इस आर्थिक परिस्थिति से लाभ उठा करने के उद्देश्य से ताल्लुकेदारों तथा जमींदारों ने नजरानों की संख्या बढ़ाकर किसानों को लूटना शुरू किया। सरकार ने इस बात को रोकने का अभी तक कुछ भी प्रबंध नहीं किया है।

(३) गांवों में विदेशीमाल का प्रयोग दिन पर दिन बढ़ रहा है। विशेषतः शराब ने बहुत ही अधिक नुकसान पहुंचाया है।

(४) मंहगी के कारण प्रायः अधिकांश कृषक तथा श्रमी कर्जदार हैं।

(५) त्योहार, शादी, मृत्यु तथा अन्य सामाजिक खर्चे भी लोगों की उन्नति में बाधक हैं। प्राचीनकाल में गृहस्थ लोगों की दशा अच्छी थी। उपरिलिखित खर्चे उनके घरेलू खर्चों के ही एक भाग थे। परंतु अब यह बात नहीं है। दरिद्रता के बढ़ने के कारण उन खर्चों का संभालना सुगम काम नहीं रहा है। मध्य श्रेणी के नौकरी पेशा लोगों की दशा तो बहुत ही अधिक चिंताजनक है।

(६) मंहगी के कारण जमीन संबंधी झगड़े बहुत ही अधिक बढ़ गये हैं। मुकदमों की संख्या बहुत बढ़ गई है। १९१३ में २०$\frac{१}{२}$ लाख मुकदमें न्यायालयों में पहुंचे थे। उनमें से ५५ प्रतिशतक मुकदमें ५० से ९५ रुपयों तक के थे।

अन्तिम परिणाम

(७) मंहगी के कारण परिवार के सब सभ्यों का एकत्र रहना कठिन हो गया है। पुरानी जायदादों का दिन पर दिन विभाग हो रहा है और पुराने घराने नष्ट हो रहे हैं।

(८) मंहगी के कारण भिखमंगों तथा असहायों की संख्या बढ़ रही है।

(९) भोजन दूध तथा दही की कमी बहुत ही शोकजनक है। देश की पशु संपत्ति भी चारे तथा भूसे के मंहगे होने के कारण घट गई है।

(१०) लोगों की साधारण आमदनी इतनी नहीं है कि घर के खर्चे सुगमता से पूरे हो सके। मध्यश्रेणी के लोगों का दिन प्रायः आर्थिक तंगी में कटता है।

———

तीसरा परिच्छेद

नहर तथा रेल्वे

(१)

प्राचीन काल में नहर तथा सड़क

प्राचीन काल में राज्य प्रबन्ध की उत्तमता की एक यह भी कसौटी थी कि किसी राज्य में जल का प्रबन्ध क्या है। कृषकों को वर्षा के जल पर ही तो निर्भर नहीं करना पड़ता है। ऋग्वेद में नहरों का वर्णन मिलता है। महाभारत में लिखा है कि नारद ने युधिष्ठिर से पूछा कि "क्या आपने कृत्रिम झील, तालाब तथा कूप संपूर्ण साम्राज्य में पर्याप्त संख्या में बनवाये हैं जिससे कृषक जनता एक मात्र मेघ जल पर ही निर्भर न करे"। इसी प्रकार मनु ने भी उपरिलिखित कार्यों के करने पर राज्य को बल दिया है। चन्द्रगुप्त के काल में नहरों का जो प्रबन्ध भारत में था उसके विषय में मैगस्थनीज़ का कथन है कि राज्य के मुख्य २ कर्मचारियों में से किसी के सुपुर्द बाज़ार रहता है और किसी के सुपुर्द सिपाही। जैसा कि मिश्र में होता है। इस तरह कुछ लोग नदियों का निरीक्षण करते हैं, भूमियों को मापते हैं और नदियों के उन मुहानों को देख भाल

करते हैं जिनसे होकर प्रधान नहरों का पानी उनकी शाखाओं में जाता है जिससे हर एक को बराबर २ पानी मिले। (Strabo XV. I 50-52. P. P. 707-709) यहां पर एक बात पाठकों को स्मरण में ही रखना चाहिये कि उन दिनों में जलसिञ्चन के कार्य को राज्य अपने लाभ तथा स्वार्थ के लिए न करता था, इसमें उसका मुख्य उद्देश्य प्रजा का ही हित होता था। इस प्रकार के कार्यों के करने वाले कृषकों को राज्य अतिशय उत्साहित करता था। शुक्रनीतिसार में लिखा है कि "यदि लोग कोई नया व्यवसाय करें अथवा तालाब, बावड़ी, नहर, तथा कुएं खोदें या किसी नयी भूमि को साफ करके उस पर कृषि करने का यत्न करें तो राजा उनसे तब तक कर न लेवे जब तक उनको खर्च से दुगुना लाभ न हो जावे" इसी प्रकार कामिन्दिकी नीति सार में कृषक प्रजा की दृष्टि से जल सिञ्चन का प्रबन्ध करना अत्यन्त आवश्यक प्रगट किया है (१)

---

(१) भूगुणैर्वर्द्धते राष्ट्रं तद्वर्द्धिनृ॑प वृद्धये
तस्माद्गुणवतीं भूमिं भूत्यै भूपस्तु कारयेत् ॥
शश्याकारवती पण्य खनिद्रव्यसमन्विता
गोहिता भूरिसलिला पुण्यैर्जन पदैर्वृता ॥
रम्या सकुञ्जरवना वारिस्थलपथान्विता
अदेवमातृका चेति शस्यते भूर्विभूतये ॥

कामि० सर्गः० श्लोकः ५०:५१:५२

अग्नि पुराण के परिच्छेद ६४ में लिखा है कि नहरों के बनाने से राजा को जो पुण्य होता है वह पुराणों के सुनने से भी अधिक है। चन्द्रगुप्त ने गिर्नार पर एक वन्द लगवा करके सुदर्शन नाम की एक झील गुजरात में बनवाई थी। अशोक के एक राज्य कर्मचारी ने इसी झील के पानी को प्रयोग में लाने के लिये एक नहर बनवायी थी जो कि भारत के प्राचीन इतिहास में आत: सिद्ध है। १५० ईस्वी में इस झील का बन्द टूट गया था अतः सम्राट् रुद्रवर्मा ने उसका फिर से निर्माण करवाया था। इसी प्रकार ५ वीं सदी में स्कन्द गुप्त के राज्य कर्मचारी चक्रपालव ने इसका सुधार किया था। काश्मीर के नहर निर्माण के विषय में सुंगपून नामी चीनी यात्री ने लिखा है कि "समुचित समय में नदियों के जल से काश्मीर में भूमि को सींचा जाता है। जिससे भूमि की नमी पूर्ववत् विद्यमान रहती है।" राजतरंगिणी में अवन्तिवर्मा के महामन्त्री सुय्या के विषय में लिखा है कि "उसने काश्मीर में नहरों के बनाने में बहुत ही अधिक ध्यान दिया था। उसने सिन्धु तथा वितस्ता के जल को ऐसा बस में किया था कि उसको जिधर चाहता था लेजाता था। यही नहीं, देश की बड़ी २ दलदलों को सुखाकर के उसने कृषकों के लिये अत्यन्त उपजाऊ भूमि निकाल दी थी और नदी के भयंकर चढ़ाव तथा प्रवाह से बरसात में भूमियों को बचाने के लिये स्थान २ पर बड़े २

बन्दों को लगा दिया था।" सुय्या के सदृश ही अन्य मन्त्रियों ने भी काश्मीर में ऐसे काम में[१] किये थे। सारांश यह है कि प्राचीनकाल में नहरों को बनाना तथा उनकी रक्षा करना राजा लोग अपना कर्तव्य समझते थे। चन्द्रगुप्त ने नहर के बन्द को नुकसान पहुंचाने वाले व्यक्ति के लिये ६ पण दण्ड रखा हुआ था।[१] उसका इसमें उद्देश्य प्रजा का ही हित था। राज्य इन पवित्र कार्यों को अपनी आमदनी के बढ़ाने के उद्देश्य से न करते थे।

मद्रास तन्जौर आदि महा प्रदेशों में भी प्राचीन आर्य-राजाओं ने बहुत ही उत्तम प्रबन्ध किया था। मद्रास प्रान्त में ४२००० के लगभग कुएं अब तक दृष्टिगोचर होते हैं। इसी प्रकार धारवाड ज़िले में ३०००, बम्बई में २५४००० पुरने कुएं अब तक देखे जा सकते हैं। नार्थ डार्काट' मदुरा तथा तिन्निवैली में तो कुओं की संख्या इस सीमा तक अधिक थी कि ऐसा मालूम पड़ता था मानों जमीन पर कुओं का जाल बिछा हो। कावेरी नदी का १००० फुट लम्बा आनिकट अब तक प्राचीन आर्यराजाओं के प्रजाहित को प्रगट करता है (Indian Publice Work W. T, thoustion P 99) इस विषय में मुसलमानों तथा सिक्खों

(२) सेतुभ्यो मुञ्चत स्तोय मपारे षड्पणोदमः
पारेवा तोय मन्येषां प्रमादेनाप रुन्धतः। कौटिल्य अर्थशास्त्र।

ने भी प्रशंसा योग्य काम किया था। रावी नदी की १३० मील लम्बी तथा यमुना की ६५० मील लम्बी नहरें मुसलमानों ने ही बनवायी थी।

नहरों के सदृश ही सड़कों के बनवाने में भी मुसलमान राजाओं का पर्याप्त ध्यान था। प्राचीन आर्यराजाओं ने भी इस विषय में कभी भी आलस्य न प्रगट किया था। यह सब होते हुए भी नहरों के निर्माण में सड़कों की अपेक्षा उन प्राचीन राजाओं का विशेष पक्षपात था। विचित्रता तो यह है कि पुराणों में तथा स्मृतियों में कुएं, तलाब, तथा नहरों के निर्माण में जो पुण्य लिखा है वह सड़कों के निर्माण में नहीं। यह क्यों? यह इसी लिये कि पानी के उचित प्रबन्ध का कृषक प्रजा के जीवन रक्षा के साथ जितना सम्बन्ध है उतना सड़कों से नहीं। सड़कें जाति की समृद्धि को व्यापार व्यवसाय के द्वारा बढ़ाती हैं परन्तु कृषकों के लिये अनाज उत्पन्न कर देने में वह समर्थ नहीं हैं। इससे पाठकों को यह न समझ लेना चाहिये कि प्राचीन काल में मार्गों का निर्माण हो उचित रीति पर न था। विषय को स्पष्ट करने के लिये पटना नगर की सड़कों की हम एक सूची दे देते हैं। जिसमें पाठकों के संपूर्ण प्रश्न स्वयं ही हल हो जावेंगे।

चन्द्रगुप्त के काल में पटना नगर की सड़कें

इस विषय को बहुत न बढ़ा कर यहां पर इतना ही

लिख देना उचित प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त कालीन राज-मार्ग बंगाल से आरम्भ हो कर पटना में से गुजरता हुआ एक ओर तो कान्धार में समाप्त होता था और दूसरी ओर पटना से चल कर महाराष्ट्रों में से गुजरता हुआ समुद्र तट पर किसी प्रसिद्ध बन्दर गाह तक पहुंचता था। संपूर्ण भारत का मुख्य व्यापार व्यवसाय इसी मार्ग के द्वारा होता था। मुसलमानी काल में भी भिन्न २ सम्राटों के काल में सड़कों के बनाने का प्रबंध किया ही जाता रहा।

इस ऊपरि लिखित संपूर्ण सन्दर्भ से हमारा जो कुछ तात्पर्य है वह यही है भारत के प्राचीन सम्राट चाहे वह यवन हों चाहे वह आर्य हों उन्होंने नहरों तथा सड़कों दोनों का ही निर्माण किया परंतु उनका विशेष ध्यान नहरों के निर्माण में ही था। इसका सब से बड़ा प्रमाण यह है कि आधे से अधिक ताम्रपत्रों में तालाब तथा कुएं के निर्माण का ही वर्णन मिलता है। हमारे कई एक मित्रों की सम्मति है कि वेदान्त की लहरों से ही भारत तबाह हो गया है परन्तु यदि इन्होंने उन प्राचीन ताम्रपत्रों का अध्ययन किया होता तो वह शायद कभी भी ऐसा न कहते।

चन्द्रगुप्त के काल में पटना नगर की सड़कें

सड़कों के नाम	सड़कों की चौड़ाई		सड़कों के खराब करने का दण्ड	सड़कों का प्रयोग
(१) राज मार्ग	३२ फीट चौ०		+	व्यापार तथा राज्य कार्य के लिये
(२) महा पशु पथ	३२	,,	२४ पण	बड़े बड़े पशुओं के चलने के लिये
(३) रथ्या	३२	,,	+	+
(४) रथ पथ	३२	,,	+	+
(५) पशु पथ	१०	,,	+	व्यापार के लिये
(६) क्षुद्र पशु पथ	४	,,	१२ पण	व्यापार के लिये
(७) खरोष्ट्र पथ	+	,,	+	,,
(८) राष्ट्र पथ	३२	,,	१००० पण	साम्राज्य के भिन्न २ प्रांते तथा जिलों में जानेवाला मार्ग
(९) विवति पथ	३२	,,	१००० ,,	चरागाहों में जानेवाला मार्ग
(१०) द्रोणमुख पथ	४०	,,	५०० पण	बड़े २ दुर्गों में जानेवाला मार्ग
(११) स्थानीय पथ	४०	,,	१००० पण	+
(१२) सयोनीय पथ	६४	,,	+	अन्न भण्डार में जानेवाला मार्ग
(१३) व्यूह पथ	६४	,,	+	छावनियोंमें जानेवाली सड़क
(१४) वन पथ	३२	,,	६०० पण	वन में जानेवाली सड़क
(१५) हस्तिक्षेत्र पथ	१६	,,	५४ ,,	हाथियों के जंगलमें जाने वाली सड़क
(१६) रथचर्य्यासञ्चार	१६	,,	+	दुर्ग से दुर्ग तक जानेवाली सड़क

सड़कों के नाम	सड़कों की चौड़ाई	सड़कों के खराब करने का दण्ड	सड़कों का प्रयोग
(१७) प्रतोली	१६ "	+	एक बुर्जसे दूसरे बुर्ज तक जानेवाली सड़क
(१८) देव पथ	८ "	+	बड़े २ मन्दिरों में जानेवाली सड़क
(१९) श्मशान पथ	६४ "	२०० पण	श्मशान में "
(२०) चक्र पथ	+ "	+	गाड़ियों की सड़क
(२१) पाद पथ	४ "	+	पगडन्डी
(२२) मनुष्य पथ	४ "	+	सड़कों के साथ साथ जाने वाला मनुष्यों का मार्ग
(२३) ग्राम पथ	६४ "	२०० पण	एक गांव से दूसरे गांव में जानेवाला मार्ग

---

(२)

भारत सरकार की रेल्वे तथा नहर के बनवाने में नीति

नौ व्यापार व्यवसाय के सदृश ही गमना गमन के साधनों का इतिहास भी बहुत ही पुराना है। प्राचीन तथा मध्य काल में रेलों का अविष्कार न हुआ था। अतः साधारण सड़कों नदियों तथा नहरों के द्वारा गमनागमन होता था। इनके निर्माण में प्राचीन राजाओं का मुख्य उद्देश्य देश के व्यापार

व्यवसाय की ही उन्नति करना था। परन्तु अब वह युग नहीं रहा है। आज कल नहरें तथा रेल की सड़कें बनती हैं। परन्तु उनके निर्माण में वह भाव काम नहीं कर रहा है। जो कि हमारे प्राचीन मुसलमान तथा हिन्दू राजाओं में काम करता था। नहरें बनाई जाती हैं परन्तु उनके द्वारा जितना आमदनी प्राप्त करने का ध्यान किया जाता है उतना प्रजा हित का ध्यान नहीं रखा जाता है। इंगलैण्ड के लोहे के कारखाने बन्द न हो जावें अतः लोहे की स्थिर मांग बनाये रखने का यत्न किया जाता है और इसी लिये अनावश्यक तौर पर रेलवे लाइन बढ़ाई जा रही है। भारत के इतिहास में यह पहिला समय है जब कि सड़कों को नहरों तथा कुएं तालावों के निर्माण पर प्रधानता दी गई है। यदि ऐसा न किया जावे तो भारत की गेहूँ तथा अनाज योरुप में भला कैसे पहुंच सके और वहां के वस्त्रादि व्यवसायिक पदार्थ भारत में आकर भारत के व्यवसायों का तहस नहस कैसे कर सकें? यदि रेलें न बढ़ायी जावें तो भारत में आंग्लराज्य स्थिर कैसे रह सके? तथा भारत में सेना द्वारा शान्ति ही कैसे स्थापित की जा सके!

भारत नौशक्ति था तथा आंग्ल काल में उसकी यह शक्ति भी किस प्रकार लुप्त हो गयी इस पर प्रकाश डाला जा चुका है। १८२८ में एच्० टी० प्रिन्सप (H. T. Prinsep) का कथन था कि

"चीन को छोड़ करके संसार की सब नदियों से अधिक गंगा नदी पर नाविक गमनागमन है। तीस हजार मल्लाहों की आजीविका का एक मात्र साधन यही है। गङ्गा नदी का कोई ऐसा भाग नहीं है जहां पर कि कोई न कोई नौका आती जाती न दिखाई देवे।" आंग्ल राज्य ने जबसे भारत में रेलों का निर्माण किया तब से भारत का नौव्यापार नष्ट हो गया। लाखों मल्लाह अपनी आजीविका के साधनों से रहित हो गये और दरिद्र मजदूरों तथा किसानों के रूप में परिवर्तित हो गये।

१८२८ में ही आंग्ल राज्य ने नहरों तथा रेलों के निर्माण के संबंध में विचार किया उसको विचार करने से प्रतीत हुआ कि नहरों के प्रति मील पर १६० पाउन्डज़ तथा रेलों के प्रति मील पर १७५ पाउन्डज़ का लाभ होगा। सरकार ने नहरों पर उतना रुपया न व्यय किया जितना कि रेलों पर। १६०० तक रेलों के निर्माण में बाइस करोड़ पच्चीस लाख पाउन्ड दरिद्र भारतीय प्रजा का रुपया खर्च किया गया जिसके बदले में भारतीयों को कानी कौड़ी भी न मिली। विपरीत इसके भारतीयों को ४ करोड़ पाउन्ड घाटे में देना पड़ा। सरकार ने नहरों के निर्माण में लाभ होते हुए भी भारतीय कृषकों के कष्टों पर समुचित ध्यान न दिया। नहरों पर १६०० तक जो रुपया व्यय किया गया वह दो करोड़ पच्चीस लाख पाउन्ड ही था।

१८ वीं सदी के भयंकरअन्तरीय युद्धों के कारण मुगल-सम्राटों की बनाई हुई नहरें किसी काम की न रहीं। १८०३ में ईस्टइंडिया कम्पनी का इस ओर ध्यान गया। १८१० में लार्ड-मिन्टो के सभापतित्व में एक समिति बनायी गयी जिसमें जमुना की पूर्वीय तथा पश्चिमीय नहरों के निर्माण के विषय में विचार किया गया। इंजीनियरों के पारस्परिक मत भेद के कारण नहरों के निर्माण का विचार ज्यों का त्यों रहा। १८१४ में लार्डहेस्टिंग्ज़ ने इस विषय पर पुनः ध्यान दिया। जिस समय वह संयुक्त प्रान्त में भ्रमण कर रहा था उसने लिखा कि नहरों के निर्माण से देश हरा भरा हो जायगा। अपने विचारों को कार्य में लाने के उद्देश्य से उसने पश्चिमीय जमना नहर के पुनरुद्धार के कार्य को लेफ्टिनन्ट ब्लेन को सुपुर्द किया। १८२३ में कर्नल जोन्ह कालिवन ने इसी कार्य को पूर्णता दी। १८३७ के दुर्भिक्ष में इस नहर ने देश की कृषि को बहुत कुछ बचाया। यह ४४५ मील लम्बी है। इसके अनतर आंग्ल सरकार का पूर्वीय जमना नहर के पुनरुद्धार की ओर भी ध्यान गया। राबर्ट स्मिथ ने १८३० में इस नहर को साधारण तौर पर बना दिया। परन्तु उसमें कुछ एक ऐसे दूषण रह गये थे जिनको दूर करना अत्यन्त आवश्यक था। महाशय वेयर्ड स्मिथ ने उन दूषणों को दूर करके इस नहर के निर्माण का यश उपलब्ध किया। यह नहर

अत्यन्त सुन्दर बनी हुई है। दोनों ओर लम्बे २ वृक्षों की छाया से सुशोभित है। इसकी लम्बाई १५५ मील है।

गङ्गा की नहर का इतिहास कम्पनी के राज्य के अन्तिम दिनों से प्रारम्भ होता है। लार्ड आक्लैंड ने इस महान कार्य को प्रारम्भ किया परन्तु उसके पिछले राज कर्मचारियों के इस विषय पर कुछ भी ध्यान न देने से वह कार्य जैसा का तैसा पड़ा रह गया। अन्त में लार्ड हार्डिन्ज ने गङ्गा की नहर फिर बनानी शुरू की। नहर समाप्त होने भी न पायी थी कि भारत से आंग्ल कंपनी का राज्य हट गया और उसके स्थान पर आंग्ल जाति का राज्य प्रारम्भ हो गया। गङ्गा की नहर हरिद्वार से रुड़की तक देखने लायक है! लार्ड डलहाजी ने १८४६ में पञ्जाब प्रान्त को विजय किया। पंजाब में भी दो प्रकार की नहरें पूर्व काल से ही विद्यमान थीं, परन्तु पिछले युद्धों के कारण उनकी दशा ठीक न रही थी। इन दो प्रकार की नहरों में से हम एक को सहायक नहर और द्वितीय को स्थिर नहर का नाम दे सकते हैं। पञ्जाब के पश्चिमी प्रांत में प्रायः सहायक नहरें ही विद्यमान थीं। जोन्हला रैम्स ने पञ्जाब में ४५० मील लम्बी वारी द्वाब कनाल का निर्माण किया। इसके लिये भारत सदा उसका कृतज्ञ रहेगा। दक्षिण प्रदेश में भी कुछ एक नहरें आंग्ल राज्य ने बनायी परन्तु वह कितनी थोड़ी हैं इसका ज्ञान पाठकों को स्वयं ही हो

जायगा। कालरून नहर तथा गोदावरी नहर यही दो प्रसिद्ध नहरें हैं जिनके निर्माण का काम भी कम्पनी ने अपने हाथ में लिया था। शोक से कहना पड़ता है कि उन नहरों के निर्माण के साथ साथ प्राचीन बिगड़े कुओं का पुनरुद्धार कम्पनी ने न करवाया। नहर के बनाने पर मद्रास में लगान इस सीमा तक बढ़ाया गया था कि वहां के कृषक पूर्वक दरिद्र के दरिद्र ही बने रहे। यह पूर्व परिच्छेदों में विस्तृत तौर पर लिखा जा चुका है कि लगान का लेना ही अन्याय युक्त है। लगान को बढ़ाना तो कोई बुद्धिमान उचित नहीं ठहरा सकता है।

नहरों तथा रेलों की उपयोगिता पर यदि एक दृष्टि डालें तो पता लग सकता है कि नहरें भारत के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। भारतीय राज्य को नहरों से लाभ ही लाभ रहा है। घाटा कभी हुआ ही नहीं है। नहरों ने कृषि उन्नति में जो भाग लिया है उसको भी भुलाया नहीं जा सकता परन्तु रेलों से इस प्रकार का कुछ भी लाभ नहीं हुआ है। रेलों से न तो कृषि उन्नति हो सकती है और न जनता के लिये अनाज ही उत्पन्न हो सकता है। विचित्रता तो यह है कि रेलों के निर्माण में सरकार को घाटा ही घाटा रहा है जो कि घाटा सरकार दरिद्र भारतीयों के रुपयों से पूरा करती रही। यह सब होते हुए भी सरकार ने रेलों की वृद्धि

न रोकी। सरकार ने जिस विधि से रेलों की भारत में वृद्धि की वह विधि भारतीयों के लिये भयंकर तौर पर हानि कर सिद्ध हुई। इस विधि को भारतीय अर्थ शास्त्र में गाइरैन्टी विधि के नाम से पुकारा जाता है।.

---

(३)

गाइरैन्टी विधि द्वारा राज्य का रेल्वे को बनाने वालों को सहायता देना

१८४५ में ईष्ट इन्डिया तथा ग्रेट इन्डिन पैनन्सुला रेल्वे गाइरैन्टी विधि से बनायी गई। गाइरैन्टी विधि के अनुसार सरकार ने उनको प्रण दिया कि यदि ५ प्र० श० से अधिक लाभ होगा तो सरकार उनसे आधा लाभ ले लेगी परन्तु यदि उनको घाटा हुआ तो सरकार उनका घाटा पूरा करेगी। आय व्यय का हिसाब छ मास में हुआ करेगा। रुपया २२ पैन्स का समझा जावेगा। इस विधि पर आंग्ल कंपनियों ने रेलें बनायीं और उनमें इतनी फजूल खर्च का सरकार को कई वर्षों तक लगा तार उनके घाटे का रुपया पूरा करना पड़ा। इसी गाइरैन्टी विधि पर कई आंग्ल कंपनियों ने भिन्न भिन्न रेलें बनायी जिनके नाम निम्न लिखित हैं।

(१) सिन्ध रेलवे कम्पनी

(२) दि बाम्बे बड़ोदा सैन्ट्रल इन्डियन रेलवे कम्पनी

(३) दि ईस्टर्न बंगाल रेलवे कम्पनी
(४) दि ग्रेट साउथ इन्डियन रेलवे कंपनी
(५) दि कलकत्ता साउथ ईस्टर्न रेलवे कम्पनी

ऊपरि लिखित गाइरैन्टी विधि पर रेलों का बनवाना सर्वथा अनुचित था। सरकार यदि ऐसा न करती तो भारत का बहुत सा रुपया बच जाता। महाशय डैन्वर्स तथा थार्न-टन आदियों की सम्मति है कि गाइरैन्टी विधि से रेल्वेज़ के प्रबन्ध में अनन्त सीमा तक फजूल खर्ची की गई । इसी प्रकार अन्य आंग्ल महाशयों की सम्मति है, जिसका संक्षेप इस प्रकार दिया जा सकता है।

नाम	गाइरैन्टी विधि पर सम्मतिः
(१) सर् जोन्ह लारैन्स	गाइरैन्टी विधि के कारण रेल्वे कम्पनियों ने बड़ी फजूलखर्ची की है। सरकार का ५ प्रतिशतक ब्याज को देने का प्रण करने से रेल्वे कम्पनियां लाभ या हानि के मामले से निश्चिन्त हो गयी। उनको अधिक व्यय की कुछ भी चिन्ता नहीं है। इतना ही होता तब भी कोई बात थी। रेल्वे कर्मचारियों का भारतीय यात्रियों के साथ व्यवहार भी बहुत ही बुरा है।

राज्य का रेल्वे बनाने वालों को सहायता देना

नाम	गाइरैन्टी विधि पर सम्मतिः
(२) महाशय चैस्ती।	गाइरन्टी विधि के कारण आंग्ल कंपनियों ने बहुत सा रुपया व्यर्थ व्यय किया है। अल्प व्यय में किसी प्रकार का भी ध्यान नहीं रखा है।
(३) विलियम एनमैसी।	गाइरैन्टी विधि द्वारा ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने रेल बनवाने में दूने से अधिक रुपया खर्च किया। रेलवे बनाने वाले ठीकेदारों को इस बात की कुछ भी परवाह नहीं थी कि खर्च अधिक हो रहा है या कम। रेलवे के बनाने में आंग्ल पूंजी-पतियों का रुपया लगा है। पांच प्रति शतक व्याज देने का भारतीय राज्य ने उनको प्रण दिया है। इससे उनको इस बात की कुछ भी चिन्ता नहीं है कि उनकी पूंजी कहां खर्च हो रही है। उसको चाहे हुगली में डाल दिया जावे चाहे उसकी ईंटे बना करके जमीन में गाड दिया जावे उनको इसकी कुछ भी पर्वाह नहीं है। इसका कारण यह है कि भारतीय सरकार की ओर से कुल पूंजी पर उनको पांच प्र० श०. व्याज मिल ही जावेगा। परिणाम इस का यह हुआ कि ईस्ट इंडिया रेलवे के प्रति मील पर ३०००० तीस हजार पाउन्ड का व्यय हुआ। इतनी फजूल खर्ची शायद ही किसी देश ने किसी काम में की हो।

गाइरैन्टी विधि का दण्ड-स्वरूप बहुत सा रुपया भारतीय राज्य को आंग्ल कंपनियों को देना पड़ा। १८४६ से १८५८ तक जो धन देना पड़ा था इसका ब्योरा इस प्रकार है।

गाइरैन्टी विधि के कारण आंग्ल राज्य ने आंग्ल कंपनियों को जो धन दिया उसकी सूची।

वर्ष		ईस्टइन्डियन रेल्वे	जी.आई.पी. रेल्वे	मद्रास रेल्वे
		पाउन्ड	पाउन्ड	पाउन्ड
१८४६	...	५६०२	...	...
१८५०	...	१७४७१	३०६३	...
१८५१	...	३७१८५	६३१६	...
१८५२	...	४५२३४	१६३१०	...
१८५३	...	५२०७१	२२८२५	...
१८५४	...	८८८८४	२५००३	६७०३
१८५५	...	१६५७३०	३०२५६	१८११५
१८५६	...	२६७३६०	६०३७०	४२५१०
१८५७	...	३५४५११	११६६१२	८११३६
१८५८	...	४३३६६८	२७५२८६	१०६२६७
कुलयोग	...	१५२८०४६	४५६०४६	२६०७३४

गाइरैन्टीड् रेल्वे पर उपरिलिखित प्रकार ही सरकार

का खर्चा दिन पर दिन बढ़ता चला गया। १८८० तक १२५ मिलियन्ज पाउन्डज़ का व्यय रेलों पर सरकार का हुआ परन्तु इस व्यय से भारत को कुछ भी लाभ न पहुंचा। यदि यही धन नहरों पर खर्च किया जाता तो भारत के कष्ट कुछ समय तक के लिये कम हो सकते थे। १८८० तक नहरों पर भारत में केवल ३० मिलियन्ज पाउन्डज़ ही खर्च किये गये थे जोकि दाल में नमक के भी बराबर नहीं है। लार्ड जार्ज हैमिल्टन ने १८६८ में जो सभा बैठायी थी उसमें सर आर्थर काटन ने रेल तथा नहर के विषय पर बहुत ही अधिक प्रकाश डाला था। उसका कथन था कि भारतीय राज्य को रेल्वे के निर्माण से तीन मिलियन्ज़ का वार्षिक घाटा रहा है परन्तु नहरों से भारतीयराज्य को $\frac{१}{२}$ मिलियन्ज़ का वार्षिक लाभ रहा है।

१८७३ में एक राजकीय पुस्तक में लिख दिया गया था कि "रेल्वे पर्य्याप्त तौर पर बन चुकी है। अतः उसके निर्माण के बन्द कर देने पर भारत की आर्थिक अवस्था बहुत कुछ सुधर सकती है" इसी प्रकार के प्रस्ताव सर आर्थर काटन ने लार्ड जार्ज हैमिल्टन की १८६८ की सभा में किये थे और सरकार पर बल दिया था कि वह रेल्वेज़ के निर्माण को बन्द करके अपना ध्यान अधिकतर नहरों की ओर दे। परन्तु उपरिलिखित संपूर्ण विचार पानी पर

लकीर के सदृश हुए और उन पर कुछ भी कार्य नहीं किया गया। इसका कारण यह है कि इंगलैण्ड की जनता का स्वार्थ भारत में रेल्वेज़ के विस्तार में अधिकतर था और अभी तक है। भारत में रेलों के बनने से आंग्ल माल सस्ते दामों पर दूर दूर तक पहुंच सकता है। लोहे के आंग्ल कारखानों का संचालन भी रुक नहीं सकता है। दादाभाई नौरोजी के अनुसार ३८½ प्रतिशतक रेल्वेज़ निर्माण का व्यय लोहे के सामान खरीदने में ही होता है। इतना अधिक रुपया इंगलैंड के लोह व्यवसायियों को ही प्राप्त होता है। नहरों के निर्माण में उपरिलिखित लाभ इंगलैंड को नहीं हो सकते हैं।

१८७१-७४ तक की आयव्यय समिति के विचारों के अनुसार भारतीय सरकार ने चलना स्वीकार किया और गारैन्टी विधि पर रेलों का निर्माण बन्द करके स्वयं ही इस कार्य को अपने हाथ में लिया। १८६६ के दुर्भिक्ष तथा १८६८ के अफगानयुद्ध के कारण सरकार इस कार्य को सफलता पूर्वक न कर सकी और उसने पुनः उसी गाइरैन्टी विधि पर रेल्वेज़ के बनाने का इरादा किया। प्रश्न जो कुछ है वह यही है कि भारत के लिये इतनी रेल्वेज़ वृद्धि की आवश्यकता क्या है ? विचित्रता तो यह है कि जापान भारत की अपेक्षा अतिशय समृद्ध देश है परंतु वहां पर भी रेल्वेज़ की वृद्धि

इतनी नहीं है जितनी कि भारत में हुई है। जापान में ११६११ मनुष्यों के पीछे एक मील रेल है परन्तु भारत में १२२३१ मनुष्यों के पीछे ही एक मील रेल है। भारत में जिस प्रकार दिन पर दिन रेलवे लाइन बढ़ी है उसको देख करके आश्चर्य होता है।

भारत में रेल्वे लाइन की वृद्धि[1]

सन्	मील (रेल्वे लाइन)	सन्	मील (रेल्वे लाइन)	सन्	मील (रेल्वे लाइन)
१८५३	२०	१८८५	१२३७५	१९००	२४७६०
१८५६	२७३	१८९०	१६०९६	१९०१	२५३७३
१८६३	२५५०	१८९२	१७८९४	१९११	३१८३९
१८६७	३९३६	१८९४	१८९०६		
१८७७	७३२२	१८९६	२०२६२		
१८८२	१०१४४	१८९८	२२०४८		

१८६३ में ५६६४ मील तक भारत में रेल्वे थी। उस समय सरकारी रिपोर्ट ने सूचित किया था कि अब भारत में रेल्वे वृद्ध नहीं की जावेगी। परन्तु विचित्रता की बात है कि अब तक रेल्वे की लाइन दिन पर दिन बढ़ती जाती है। १९११

1 Moral and Moterial progress and condtions of India for 1911-12 P. 809). India in the Victorian Age. by Romesh Datt. P. 348)

में ३१८३९ मील तक रेल्वे लाइन पहुंच गयी थी जो कि १८६३ के वर्ष की अपेक्षा ६ गुणा अधिक कही जा सकती है। १९०१ तक रेल्वेज़ पर २२६७७३२०० पाउन्डज़ का व्यय सरकार को करना पड़ा है। कुछ एक वर्षों से आंग्ल सरकार ने भिन्न २ गाइरैन्टीड् रेल्वेज़ को खरीदना प्रारम्भ किया है जिसका क्रम इस प्रकार है।

आय व्ययसमिति के विचारों पर भारत सरकार का न चलना

वर्ष	भिन्न २ रेल्वेज़ लाईनज़ के खरीदने का क्रम
१८८०	ईस्ट इन्डिया रेल्वे
१८८४	ईस्टर्न बंगाल रेल्वे
१८८५	सिन्ध पञ्जाब देलही कम्पनी की रेल्वे लाइन्ज़
१८८८	अवध एन्ड रुहेलखंड रेल्वे
१८९०	साउथ इन्डियन रेल्वे
१९००	ग्रेट्इन्डियन पैनन्सुला रेल्वे

यह उत्तम काम जहां सरकार ने एक हाथ से किया वहां दूसरे हाथ से गाइरैन्टी विधिपर अन्य रेल्वे कम्पनियां खड़ी करनी प्रारम्भ कीं। १८९२ में आसाम बंगाल रेल्वे को इसी गाइरैन्टी विधिपर ठेका दिया गया। १८९७ में वर्मा रेल्वे कम्पनी ने इसी विधिपर रेल्वे लाइन बनाना प्रारम्भ किया। जो कुछ भी हो। इस विषय पर पर्य्याप्त अधिक लिखा जा

चुका है। अब कुछ शब्द नहरों के विषय में कह देना आवश्यक प्रतीत होता है।

(४)

राज्य का नहरों को बनाना

यह पूर्व ही लिखा जा चुका है कि नहरों पर सरकार ने जो कुछ रुपया ख़र्च किया है वह दाल में नमक के भी बराबर नहीं है। नहरों से सरकार को लाभ ही लाभ रहा है और भारतीयजनता के दुर्भिक्षजन्यसंकट भी कुछ न कुछ कम ही हुए हैं। सरकार ने भिन्न २ प्रान्तों में नहरों पर जो रुपया लगाया है, उसका ब्यौरा इस प्रकार है।

प्रान्त	१० लाख पाउन्डज़ में धन का व्यय	१० लाख एकड़ में नहर द्वारा सिंचित-सिंचित भूमि क्षेत्र	नहर में लगी पूंजीपर प्रतिशतक लाभ
पंजाब तथा उत्तर पश्चिमीय सीमा प्रान्त	११	६	९'४५
संयुक्तप्रान्त	७'६	२'२७	५'८७
मद्रास	७'१७	३'७८	७'५
बंगाल और बिहार	५'८	०'८९८	१'१
बाम्बे व सिन्ध	४'७	२'२	५'१५
संपूर्ण भारत	३९.४५	१६	६'२३

उपरिलिखित ब्यौरे से स्पष्ट हो गया होगा कि किस प्रकार नहरों से सरकार को लाभ ही लाभ रहा है। पञ्जाब

(Moral and mat. progr., 1910 p. 11.)

की कुछ एक नहरों ने सरकार को बहुत ही लाभ दिया है। लोअर चिनावकनाल से २५ प्रति शतक लाभ सरकार को प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार मद्रास की तीन नहरों (कावेरी, गोदावरी, कृष्णा) से २३. १६. तथा १६ प्रतिशतक लाभ रहा है। भारत की संपूर्ण नहरों से जितनी एकड़ भूमि सींची जाती है उसका व्योरा इस प्रकार है।

प्रान्त	१० लाखएकड़ में भूमि का जल से सिञ्चन	कृषि में प्रयुक्त भूमि का कितना भाग जल से सींचा जाता है।
सिन्ध	३.०	७२.६
पञ्जाब तथा उत्तर पश्चिमीय सीमा प्रान्त	१०.७८	३२.२
मद्रास	६.२	२५.३
संयुक्तप्रान्त	१०.	२३
बंगाल तथा बिहार	५.५	८.४
संपूर्ण भारत	४१.५	१६.४

इस उपरिलिखित सूची में ११-१८ मिलियन्ज एकड़ भूमिओं से ३-८ मिलियंज एकड़ भूमि तालाब से तथा १६-३१ मिलियन्ज एकड़ भूमि नहरोँ से सिञ्चित है। भारत की कृषि में प्रयुक्त संपूर्ण भूमि का १६-४ प्रतिशतक ही जल से सिञ्चित

है जिसमें से ७-२ प्र- श- नहर से, ४-२ प्र० श० कुओं से और २-३ प्र० श० तालाब से सींचो जाता है भारत में नहरों के निर्माण की अत्यन्त अधिक आवश्यकता है। दुर्भिक्ष का कष्ट कुछ सीमा तक नहरों से ही कम हो सकता है।

१८७७ के महा भयंकर मद्रास दुर्भिक्ष से सरकार को यह पता लग गया था कि भारत से दुर्भिक्ष दूर नहीं हो सकता है अतः इसके लिये दुर्भिक्ष निवारक कोष का स्थापित करना आवश्यक समझा गया। इस कार्य के लिये भारतीयों पर नवीन २ कर लगाये गये तथा प्रति वर्ष पन्द्रह लाख रुपये दुर्भिक्ष निवारक कोष में रखने के लिये स्वीकृत किये गये। जिस वर्ष इस कोष का रुपया न खर्च होता था उस वर्ष उसका व्यय अन्य दुर्भिक्ष निवारक कार्यों में तथा जातीय ऋण के संशोधन में किया जाना उचित ठहराया गया। १८७८ से पूर्वतक दुर्भिक्ष-फन्ड वार्षिक आय व्यय या बजट् में पास होता रहा परन्तु १८७९ में इसको बन्द कर दिया गया और इस फन्ड में एक भी रुपया न रखा गया। भारत में इसपर बड़ा भारी शोर मचा जिसका परिणाम यह हुआ कि १८८१ में भारत सचिव का ओर से पक्की आज्ञा हो गयी कि प्रतिवर्ष दुर्भिक्षफन्ड में १½ करोड़ रुपया भारतीय राज्य को देना चाहिये जिसका व्यय निम्नलिखित बातों में होना चाहिये।

(१) दुर्भिक्ष निवारण में।

(२) दुर्भिक्ष निवारक राष्ट्रीय कार्यों में।

(३) जातीय ऋण संशोधन में।

विचित्रता की बात है कि सरकार ने रेलों को भी दुर्भिक्ष निवारक समझ करके रेल्वे कम्पनियों को व्याज के तौर पर दुर्भिक्षफन्ड में से रुपया देना प्रारम्भ कर दिया १८९५ तक दुर्भिक्षफन्ड में २२½ करोड़ रुपया दिया गया जिसका व्यय सरकार ने इस प्रकार किया।

(१) वास्तविक दुर्भिक्ष पर	३२०६६४
(२) दुर्भिक्ष निवारक नहरों के निर्माण में	१८१३८४१
(३) रेल्वेज़	६५५०९३१
(४) इन्डियन मिडलैंड एंड बंगाल नागपुर रेल्वेज़ के व्याज़ के तौर पर	३६३१४५०
(५) जातीय ऋण संशोधन पर	५३२७२९९
	१७६४४१८५

दुर्भिक्ष फन्ड के रुपये को पूर्ण तौर पर न खर्च करना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता है, आश्चर्य की बात है कि जो रुपया इस में खर्च करने के लिये लिया गया उसका कुछ भाग रेलों में फूंक दिया गया। यह सब घटनायें किस बात की सूचक है? इन से एक ही बात का पता लगता है कि 'आय व्यय का प्रबन्ध' भारतीय जनता के अपने ही हाथ

में होना चाहिये । अपने हितों को जनता स्वयं ही देख सकती है ।

नहरों के निर्माण से भी अब जनता के कष्टों के दूर होने की संभावना नहीं हैं । इसका कारण यह है कि प्रायः भिन्न भिन्न प्रान्तीय राज्य कृषकों पर बाधित कर लेने का यत्न करते हैं । अर्थात् कोई कृषक नहर के जल को लेवे वा न लेवे यदि नहर उसके पास गुजरती होगी तो उस पर वही कर लग जावेगा जो कि कर उनसे लिये जाता है जो कि नहर के जल को प्रयोग में लाते हैं । १८६६ की बात है राज्य ने भारतीय सचिव के पास एक प्रस्ताव ("Northern India canal and Drainage Bill") भेजा जिसमें प्रार्थना की गयी थी कि जल सिञ्चन के लिए "बाधित कर" का प्रयोग करना चाहिये । परन्तु भारत सचिव ने यह न माना । इसी प्रकार १८७६ में बाम्बे प्रान्तीय राज्य की ओर से भी ऐसी ही प्रार्थना की गयी परन्तु वह भी भारत सचिव की अस्वीकृति से काम में न लायी गयी ।

अन्य प्रान्तों के सदृश ही मद्रास प्रान्तीय राज्य ने भी जल सिंचन सम्बन्धी बाधित कर लेना पास किया और उसको प्रयोग में भी लाया । मद्रास राज्य के नहरों से ६·३५ प्रतिशतक लाभ सर्वत्र था । किसी २ नहर से उसको ७·१४ प्रतिशतक तक लाभ मिलता रहा है । इस दशा में यहां

चाधित कर की क्या आवश्यकता थो ? जो कुछ भी हो। इस प्रकार को घटनायें एक ही सचाई को सूचित करती हैं। आय व्यय का प्रबन्ध जनता के अपने ही हाथ में होना चाहिये। भारत में दुर्भिक्ष तथा दारिद्र्य सदा बना रहेगा जब तक आय व्यय का प्रबन्ध भारतीय स्वयं अपने ही हाथ में न लेवेंगे। यह हो हो तब सकता है जबकि भारतीय स्वराज्य को प्राप्त कर लेवेंगे। स्वराज्य के बिना इस प्रकार के सुधार संभव नहीं कहे जा सकते हैं। इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व एक बात कह देनी उचित ही प्रतीत होती है कि भारतीय नहरों ने नौ व्यापार को किसी प्रकार की भी उत्तेजना नहीं दी है।

भारतीय नहरें भारतीय व्यापार को बढ़ाने में असमर्थ हैं

जितनी नहरें बनायी भी गयी हैं उनमें भो नौकाओं के चलने का कुछ भो ध्यान नहीं रखा गया है। इस दशा में भारतीय नौका व्यवसाय को कुछ भी उत्तेजना नहरों द्वारा नहीं मिली है। व्यापारियों को रेलों द्वारा समान भेजने में कम खर्चा पड़ता है अपेक्षा इसके कि वह नहरों द्वारा सामान भेजें। इतना ही होता तब भी कोई बात थी। प्रायः नहरें बड़े २ नगरों में से नहीं गुजरती हैं। छोटे २ अज्ञात ग्रामों जङ्गलों में से गुजरने से वैसे भी मल्लाहों तथा व्यापारियों को नाव द्वारा सामान ले जाने में अनन्त खतरे प्रतीत होते हैं।

मद्रास नहर समतल भूमिपर से गुजरती है परन्तु उपरिलिखित कारणों के प्रभाव से उसके द्वारा किसी प्रकार का भी नाविक व्यापार नहीं होता है। यही दशा बङ्गाल उड़ीसा मिदिनापुर की नहरों की है।

परन्तु संसार के अन्य देशों में ऐसी उल्टी बातें नहीं हैं। जर्मनी में रेलों की अपेक्षा नहरों को व्यापार के लिये अतिशय उत्तम समझा जाता है। इसी कारण से जर्मन राज्य का नहरों के निर्माण पर विशेष ध्यान है। भारत में भी यदि ऐसा ही हो जावे तो इंगलैंड के लोहे के कारखाने चलने न बन्द हो जावें? इंगलैंड अपने लोहे का बना हुआ सामान कहां भेजे? इन सब बातों के कारण सरकार का उद्देश्य यह है कि भारत में संपर्ण अन्तरीय व्यापार रेलों द्वारा होवे जिससे रेल्वे कम्पनियों को लाभ होवे। यह लाभ भी इंगलैंड ही पहुंचता है। स्वराज्य वाले देशों में ऐसी घटनायें नहीं हो सकती हैं। जर्मनी में नहरों की रेलों पर किस प्रकार प्रधानता है इसका वर्णन करने के लिए अब हम अगला प्रकरण प्रारम्भ करते हैं।

---

(५)

जर्मन राज्य की रेल्वे तथा नहर बनाने में नीति

इंगलैंड के सदृश जर्मनी को प्रकृति की ओर से सौभाग्य उपलब्ध नहीं है इंगलैंड चारों ओर से समुद्र से परिवेष्टित

है। उसके सम्पूर्ण व्यावसायिक नगर समुद्र तट पर हैं। जो नगर समुद्र तट से दूर भी हैं वह भो २० या ३० मील से अधिक दूर नहीं हैं। परन्तु जर्मनी की यह अवस्था नहीं है। प्रकृतिदेवी उसके लिये इतनी उदार नहीं है जितनी की वह इंगलैंड के लिए है। उसके बहुत से व्यावसायिक नगर समुद्र-तट से अत्यन्त दूर पर अवस्थित हैं। इससे होता क्या है? एशिया से तथा अमेरिकादि महा प्रदेशों से कच्चा माल जर्मन व्यवसायिक नगरों को उस आसानी से तथा न्यून व्यय से नहीं प्राप्त हो सकता है जितना कि आंग्ल व्यवसायिक नगरों को।

जर्मनी में कोयला तथा लोहा हिन्टलैंड में हैं जो कि समुद्र से बहुत दूर पर है। परिणाम इसका यह है कि जर्मनी को नौका व्यवसाय में भो बहुत ही अधिक कठिनाइओं को झेलना पड़ता है। यह दशा एक मात्र जर्मनी की ही नहीं है। इंगलैंड को छोड़ करके प्रायः योरुपियन सभी देशों की यही अवस्था है। दृष्टान्त तौर पर फ्रांस इटली आस्ट्रिया हंग्री तथा एशिया के व्यावसायिक नगर प्रायः समुद्र तट से बहुत दूर पर हैं। निम्नलिखित सूची से यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है।

व्यावसायिक नगर		समुद्रतट से दूरी
लियानज़	(Lyons)	१६०
वोहीमिया के व्यावसायिक नगर		३००
लाॾ़	(Lody)	१७०

इतना ही होता तब भी कोई बात थी। प्रकृति ने जर्मनी पर जो क्रूरतायें की है उसका लेखनी द्वारा वर्णन करना कठिन है। उसकी जलवायु कठोर है, उसके खान का कोयला निकृष्ट है, भूमि भी इंग्लैंड के सदृश उत्पादक नहीं है। परन्तु इन सब कठिनाइयों को उसने कुचलने का यत्न किया और अन्त में सफल भी हो गया है। उसकी बहुत सारी कठिनायों को दूर करने में उसकी नहरों का बड़ा भारी भाग है। जिन दिनों इंग्लैंड में रेल्वे बनने लगीं, वहां नहरों को उस उत्कट इच्छा से बनाना छोड़ दिया गया जिस से कि पहिले उनको वहां बनाया जाता था। चालीस पचास साल पूर्व की बात है कि इंग्लैंड की नहरों को सभ्यसंसार के लोग प्रशसाकी दृष्टि से देखते थे परन्तु अब यह बात नहीं रही है।

रेलवे कंपनियों ने आंग्ल नहरों पर इस तरीके से धक्का पहुंचाया कि उनके द्वारा संपूर्ण व्यापार बन्द हो गया और रेल्वे द्वारा ही होने लगा। जर्मनी ने इससे पूर्ण शिक्षा लेली है। जहां उसने स्वतन्त्र व्यापार की नीति का अवलम्बन किया है वहां उसने नहरों की उन्नति पर भी बहुत ही अधिक ध्यान लगाया है।

बहुत से संपत्ति शास्त्रज्ञों की सम्मति है कि जर्मनी के व्यापार व्यवसाय की वृद्धि बहुत कुछ उसके नहरों पर ही

निर्भर करती है। यह कैसे ? । यह इस प्रकार कि नहर द्वारा सेकड़ों मील से समुद्र तक सामान लाने में खर्चा रेलों की अपेक्षा कम पड़ता है। इग्लैण्ड का व्यापार व्यवसाय बहुत समय से अत्यन्त बढ़ा हुआ था उसको नीचा दिखाने की एक ही विधि थी कि जर्मनी भारतादि देशों में उससे भी सस्तामाल बना करके पहुंचाये। परन्तु यह रेलों द्वारा करना जर्मनी के लिये कठिन था जबकि प्रकृति भी उस पर बहुत ही अधिक क्रूर हो। उसने बड़ी बुद्धिमानी से नहरों को बनाने में ही अपना विशेष ध्यान रखा और ऐसा यत्न किया जिससे उसका बहुत सा व्यापार व्यवसाय उसी के द्वारा होवे।

१८७१ से १९०० तक देश के अन्दर १०९१ किलोमीटर लम्बी नहरें जर्मनी ने बनायी थीं। १९१२ में उसका जिन नहरों के निर्माण का विचार था उसकी सूची इस प्रकार है।

नहर	लम्बाई	व्यय (आनुभाविक)
(१) जर्मन आस्ट्रियन नहर	३६५७ किलोमीटरज़	५००००००० पाउन्ड
(२) राइन–एल्च–नहर	+	१००००००० ,,
(३) डन्यून–ओर्डर–नहर	+	(आनुमानिक व्यय)
(४) डन्यूब–एल्ब–नहर	+	,,

इन नहरों का महत्व इसी से जाना जा सकता है कि इनमें से कइयों के निर्माण में जहां कम से कम १५ वर्ष लगेंगे वहाँ कइयों के निर्माण में एक पीढ़ी की पीढ़ी पूरी लग जावेगी, जर्मनी जैसा कृपण राज्य ऐसे कार्य्यों में क्यों उतर पड़ा ?

केवल इसीलिये कि भविष्यत् में उसके व्यापार व्यवसाय को इनके द्वारा बड़ी भारी सहायता मिलेगी। जर्मनी में बहुत बड़ी २ नदियें हैं। आज से कुछ वर्ष पूर्व उनकी चौड़ाई तो बहुत ही अधिक था परन्तु उनकी गहराई इतनी न थी जिससे बड़े २ जहाज उनके द्वारा दूर २ तकके देशों में जा सकें। मनुष्य तथा राजा का यत्न क्या कर सकता है? इसको यदि देखना होवे तो जर्मनी में जा करके देखो। आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है कि जर्मनी ने इन सब नदियों को एक नहर का रूप दे दिया है जिनके द्वारा बड़े से बड़ा जहाज़ सैकड़ों मीलों दूरतक देश के अन्दर जा सकता है।

जिस देश में कोई प्रजाहित का काम राजा करना चाहे तो कैसे कर सकता है इसका यदि अनुमान लगाना होवे तो इसीसे लगाया जा सकता है कि पिछले दस वर्षों में जर्मन राज्य दश लाख पाउन्ड एकमात्र राइन नदी के मुहाने के सुधारने में ही खर्च कर चुका है। स्ट्रास वर्ग का नगर राइन नदी के तटपर समुद्र से ३०० मील दूर पर बसा हुआ है। उस तक राइन नदी द्वारा किसी बड़े जहाज़ का पहुंचना कठिन था। परन्तु नगरनिवासियों तथा जर्मन राज्य के प्रबल प्रयत्न से ६०० टन्न का जहाज भी अब इस नगर तक बहुत ही आसानी में पहुंच जाता है। राइन के सदृश ही मेन नदी को सुधारा गया है। पहिले समय में मेन की गहराई

२$\frac{3}{4}$ फीट थी परन्तु जर्मन राज्य ने चालीस लाख पाउन्ड खर्च करके २० मील तक उसकी गहराई ८$\frac{1}{4}$ फीट करदी है जिससे राइन से चला हुआ व्यापारी जहाजी मेनतटस्थ फ्रैंकफोर्ट नगर तक सहज से ही पहुंच जाता है।

कुछ समय पर्व की बात है कि यात्री लोग राइन नदी पर सैर करने के लिये इसलिये जाते थे कि वह प्राचीन दुर्गों के खंडरात तथा राइन नदी के विशाल उच्च तटों का दृश्य देखें परन्तु अब कुछ दृश्य ही और हो गया है। इस समय राइन नदी का तट बड़ी बड़ी उच्च चिम्नियों के धुओं के दृश्य को दिखाता है। स्थान स्थान पर बड़े बड़े कल कारखाने यात्रियों को दिखाई देते हैं और ऐसा मालूम पड़ता है कि संपूर्ण संसार का व्यापार व्यवसाय ने मानो राइन नदी पर ही अवतार ले लिया है। जहां देखो वहां ही जहाज भक भक करते करते गुजरते दिखाई देते हैं।

जर्मनी में रेलों की अपेक्षा नहरों के बनाने में व्यय कम हुआ है। हिसाब से मालूम पड़ता है कि जहां पहिले पर ३०००० पाउन्ड प्रति मील पर व्यय हुआ है वहा नहरों पर एकमात्र २०००० पाउंड ही हुआ है। इतना ही होता तब भी कोई बात थी। नहरों द्वारा पदार्थों का गमनागमन न्यूनव्यय पर होता है। रेल्वे द्वारा पदार्थों का भेजना सदा मंहगा पड़ता है। रेल्वे द्वारा एक समय में ही उतना भार भेजा भी नहीं

जा सकता है जितना कि जहाजों द्वारा सामान भेजा जा सकता है। बड़े भारी बन्डल जहाज़ों पर लादे जा सकते हैं परन्तु उनका रेल पर लादना कठिन होता है। यह सब कारण है जिनसे व्यापार व्यवसाय के लिये जहां तक हो सके नहरों से ही प्रयोग लेना चाहिये।

जर्मनी यदि नहरों के निर्माण में इस अनन्त सीमा तक ध्यान न देती तो उसका व्यापार व्यवसाय इस सीमा तक प्रफुल्लित दशा को न पहुंच सकता। यदि किसी दैवी घटना से आज ही जर्मनी की नहरें नष्ट हो जावें तो उसका सारा व्यापार व्यवसाय एक दम से मृतप्राय हो जावे।

राइन नदी द्वारा पदार्थों का गमनागमन किस सीमा तक बढ़ा है इसका एक ब्योरा हम पाठकों के मनोविनोद के लिये दे देते हैं।

सन्	राइन नदी के ऊपर निम्न-लिखित टन्ज में गये पदार्थ	राइन नदी के ऊपर निम्न लिखित टन्ज में गये पदार्थ
१८८९	[illegible]७९९८०० टन्ज	२५९३००० टन्ज
१८९४	४७७१५०० ,,	३१४२००० ,,
१८९७	६९२९१० ,,	३४८०२०० ,,
१९००	९०३६४०० ,,	४१२९७०० ,,
१९०६	१३४०२४०० ,,	७६७८३०० ,,
१९०९	१४८८१३०० ,,	९९६४७०० ,,

राइन नदी के सदृश ही अन्य नदियों में भी पदार्थों का गमनागमन बहुत ही अधिक बढ़ा है। भिन्न २ राज्य के जहाज़ों की संख्या किस प्रकार जर्मनी में अन्तरीय व्यापार के लिये बढ़ी इसका व्योरा इस प्रकार है।

सन्	जहाजों की संख्या	टन्ज मे भार (जो उनके द्वारा आया वा गया)
१८८२	१८७१५	१६५८२६६ टन्ज
१८८७	२०६३०	२१००७०५ ,,
१८९२	२२८४८	२७६०५६३ ,,
१८९७	२२५६४	३३७०४४७ ,,
१९०२	२४८३६	४८७३५०२ ,,
१९०७	२६२३५	५६१४०२० ,,

उपरिलिखित सूची से स्पष्ट है कि १८८२ से १९०७ तक के जर्मन के अन्तरीय व्यापारी जहाज़ों का भारवाहनत्व बहुत ही अधिक बढ़ गया है। जर्मनी का जहाज़ों द्वारा अन्तरीय व्यापार जिस सीमातक बढ़ा है उसका बाह्य व्यापार उतना नहीं बढ़ा है। दृष्टान्त तौर पर १८८२ से १९०७ तक उसका अन्तरीय नौ व्यापार १६५८२६६ टन्ज़ से ५६१४०२० टन्ज़ तक पहुंच गया है परन्तु उसका बाह्य नौ व्यापार १८८१

Modern Germany. J. Ellis Barker 4th Edition p. 5 & 6.

से १६१० तक ११६८१ ५२५ से २८५६३०७ टन्ज़ तक ही बढ़ा है।

जर्मनी में नहरों को किस प्रकार बड़े २ जहाज़ों के आवागमन के योग्य बनाया गया है यह उसके अन्तरीय नौ व्यापार की नौकाओं की भारवाहन शक्ति की वृद्धि को देखने से ही स्पष्ट हो सकता है। अतः इसी बात को प्रगट करने वाली एक सूची दी जाती है।

जर्मनी अन्तरीय नौ व्यापार की नौकाओं का वर्गीकरण

सन्	१०० टञ्ज से कम भार उठाने वाले जहाज	१००-१५० टञ्ज तक भार उठाने वाले जहाज	१५० से २५० टञ्ज तक उठाने वाले जहाज	२५०-६०० टञ्ज तक भार उठाने वाले जहाज	६०० टञ्ज से ऊपर भार उठाने वाले
१८८७	११२८१	५४६०	१७५७	१२७१	२२०
१८६२	११४३०	६३२६	२३४३	१८२२	४५७
१८६७	१०३६०	४४०५	३७५४	२७४६	६५०
१६०२	१०७६४	१७०५	३७३२	४०८७	१६६१
१६०७	१०६३०	१८५६	६३०१	४६८७	२११२

उपरिलिखित सूची से स्पष्ट है कि १५० टन्ज़ से न्यून टंज़ वाले जहाज़ों की संख्या जर्मन अन्तरीय व्यापार में कम हो गयी है। १५० टंज़ से ऊपर के टंज़ वाले जहाज़ों की संख्या बहुत ही अधिक बढ़ गयी है। इसका कारण यह है

कि अधिक टंज़ वाले जहाज़ों में सामान भेजना सस्ता पड़ता है। एक ही ऋतु में बड़े जहाज़ों तथा छोटे जहाज़ों का किराया जितना भिन्न २ होता है इसका अनुमान निम्नलिखित ब्योरे से किया जा सकता है।

	१५० टन	२०० टन	३०० टन	४०० टन	४५० टन	६०० टन	१००० ट०	१५०० ट०
किराया प्रति किलोमीटर की दूरी के अनुसार	०·७९	०६३	०४८	०४१	०·३८	०·३०	०·२३	०·२१

इन्हीं कारणों से जर्मनी में अंतरीय व्यापार में बड़े २ जहाज़ों का संचालन अधिकतर हो गया है। इससे उसको एक राजनैतिक लाभ पहुंचा है। बड़े २ जहाज़ों के द्वारा अंतरीय व्यापार के होने से दिन पर दिन वह नौ शक्ति होता जाता है। जर्मनी में रेलों की अपेक्षा नहरों द्वारा ही अधिकतर व्यापार होता है। निम्नलिखित सूची से यह पूर्ण तौर पर स्पष्ट हो सकता है।

I. जहाज़ों द्वारा पदार्थों का गमन-आगमन

सन्	पदार्थों का देश में आगमन	पदार्थों का देश से गमन
१८७५	११०००००० टन्ज़	९८००००० टन्ज़
१८८५	१४५००००० ,,	१३१००००० ,,
१८९५	२५८००००० ,,	२०९००००० ,,
१९०५	५६४००००० ,,	४७०००००० ,,

II. रेलों द्वारा पदार्थों का गमन-आगमन

सन्	पदार्थों का देश में आगमन	पदार्थों का देश से गमन
१८७५	८३५०००००० टन्ज़	८३५०००००० टन्ज़
१८८५	१०००००००० ,,	१०००००००० ,,
१८९५	१६४०००००० ,,	१६७०००००० ,,
१९०५	२९१०००००० ,,	२९७७००००० ,,

उपरिलिखित ब्योरे से स्पष्ट है कि १८७५ से १९०५ तक रेलों द्वारा व्यापार की वृद्धि २५० हुई है और जहाज़ों द्वारा वृद्धि ४०० हुई है। सारांश यह है कि पदार्थों का गमनागमन नदियों तथा नहरों द्वारा रेलों की अपेक्षा सस्ता पड़ता है। इसी कारण से जर्मन राज्य का नहरों के निर्माण में विशेष ध्यान है। नहरों द्वारा कृषि को जो लाभ पहुंचता है उसका तो कहना ही क्या है? परन्तु रेलें तो कृषि को किसी प्रकार से भी सहायता नहीं पहुंचा सकती हैं। भारत में आंग्ल राज्य सब सभ्य देशों से विपरीत काम करता है। रेल तथा नहर के प्रकरण में दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार भारतीय सरकार ने रेलों पर व्यर्थ ही भारतीय दरिद्र प्रजा का रुपया फूका है और जो नहरें बनायी भी हैं उनमें ऐसे पुल तथा कर लगा दिये हैं जिससे उनके द्वारा जो व्यापार हो ही

जा सके। इन सब कारणों के दूर करने का एक ही उपाय है और वह भी " स्वराज्य "।

अन्तिम परिणाम।

इस प्रकार हमारा जो कुछ तात्पर्य था वह बहुत कुछ पाठकों पर स्पष्ट ही हो गया होगा। संसार की सभी जातियाँ रेल्वे की अपेक्षा नदियों तथा नहरों को व्यापार व्यवसाय की बड़ा सहायक समझती हैं। नदियों को नौसंचालन के योग्य बनाने में पर्य्याप्त धन का व्यय होता है। उत्पादक शक्ति का ध्यान रखते हुए सभ्य जातियां ऐसे कार्यों में अनन्त रुपयों तक को व्यय करने पर उद्यत हो जाती हैं। जर्मनी ने ऐसा ही किया उसका वह फल भी उठा रहा है।

भारतीय आंग्लराज्य की अन्य राज्यों के सदृश नीति नहीं है। उसने रेल्वे के निर्माण में जितना प्रजा का रुपया खर्च किया है उतना शायद ही कोई राज्य ऐसा करता? इतना ही होता तब भी कोई बात थी। प्रथम तो आंग्लराज्य ने नहरों पर उतना रुपया खर्च ही नहीं किया है जितना कि उसको खर्च करना चाहिये था। विचित्रता की बात यह है कि जितनी भी उसने नहरें बनवायी है उनके द्वारा प्रजा का हित राज्य ने कितना सोचा है उसके कार्यों से ही कई बार इसपर सन्देह होता है। नहर का पानी लेने वालों तथा न

लेने वाली प्रजा पर इस सीमातक कर आ करके पड़ जाते हैं जोकि एक अत्याचार का रूप धारण कर लेते हैं।

व्यापार व्यवसाय की उन्नति के साथ नौव्यवसाय का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। नदी द्वारा सामान ले जाने वाली नौकाओं पर इतना अधिक अनावश्यक कर है जिसके द्वारा नौका द्वारा दूर दूर तक देशों में सामान भेजना ही कठिन हो गया है। राज्य ने यह भी इसीलिये किया है जिससे रेलवे कम्पनियों को लाभ होसके। यदि नौकाओं द्वारा सामान भेजना सस्ता पड़े इस अवस्था में रेलवे द्वारा सामान कोई व्यापारी क्यों भेजने लगा। इसलिये राज्य ने कर द्वारा ऐसा उपाय कर दिया है जिससे नौका द्वारा सामान भेजना सस्ता ही न रहे।

जर्मनी ने व्यापारव्यवसाय के लिये नहरों का निर्माण किया। भयंकर से भयंकर तथा उथली से उथली नदियों पर अनन्त धन लगा करके उसने उनको व्यापार व्यवसाय के योग्य बना दिया। परन्तु भारतीय राज्य के सभी कार्य विचित्र हैं। नदियों को व्यापार योग्य बनाना दूर रहा, जो नहरें बनायी हैं उनपर भी ऐसे पुल रख दिये हैं जिनसे उनके द्वारा किसी बड़े जहाज़ या बड़ी नौका का गुजरना ही असम्भव हो गया है। जर्मनी आदि में नहरों को बड़े २ व्यापारीय नगरों के समीप से गुजारने का यत्न किया गया है परन्तु भारतीय

राज्य ने नहरों को ऐसे ऐसे स्थानों से गुजारा है जहाँ पर या तो जंगल हैं और या किसानों की कुछ एक झोपड़ियाँ है। ऐसे स्थानों से गुजरने वाली नहरों में से, कौन व्यापारी ऐसा साहसी हो सकता है जोकि अपना समान भेजे।

भारत देश दुर्भिक्ष से पीड़ित है। यहाँ पर दुर्भिक्ष ने एक सर्वदा रहने वाली व्याधि का रूप धारण कर लिया है। प्राचीन काल में भारत की यह अवस्था न थी। चन्द्रगुप्त के काल में भारतवासी यह जानते तक न थे कि दुर्भिक्ष चीज क्या है। परन्तु अब यह दशा नहीं रही है। इसका सबसे मुख्य कारण एक तो यह है कि भारत के सब के सब व्यवसायों को तहसनहस कर दिया गया है। व्यवसायों के भयंकर नाश का जहाँ प्राचीन कारण कुछ और है वहाँ वर्तमान कालीन कारण स्वतन्त्र व्यापार है। सारांश यह है कि भारतीय कारीगरों के हाथ से उनकी आजीविका के पेशे छीन लिये गये हैं। और उनको कृषि में धकेल दियागया है। कृषि में राज्य की ओर से लगान इस सीमा तक बढ़ा दिया गया है जिससे उनको अपने बर्त्तन आदि बेच करके या सेठ साहूकारों से ऋण ले करके आंग्ल राज्य को लगान देना पड़ता है। इस प्रकार सब ओर से विपत्ति में पड़ कर क्षुधा से पीड़ित लाखों भारतीयों को प्रतिवर्ष मृत्यु की गोद में जाना पड़ता है।

जर्मन राज्य की रेल्वे तथा नहर बनाने में नीति

राज्य ने नहरों द्वारा जहां भूमि की उत्पादक शक्ति को बढ़ाने का यत्न किया है वहाँ उसमें दरिद्र प्रजा के हित का कुछ भी ध्यान नहीं रखा है। प्रति दश वर्ष बाद लगान बढ़ने से कृषकों के जीवन कष्टमय हो गये हैं। नहरों के पानी देने की रेट इस सीमा तक अधिक है कि एकमात्र उन्हीं के कारण उनके संपूर्ण लाभ लुप्त प्राय हो जाते हैं।

भारत में प्राचीन काल के अन्दर भी नहर, कुएं, तालाब आदि के निर्माण का राज्य पर्य्याप्त ध्यान रखते थे परन्तु उसमें उनका विशेष ध्यान प्रजा का हित ही होता था। कृषि में उन्नति करने वाले कृषिकों को उत्तेजित किया जाता था तथा जबतक उनको दुगना लाभ न हो जावे तब तक राज्य उनसे कर न लेता था।

रेल्वे के संरक्षण तथा नहरों के व्यापार अयोग्य होने से और नौका व्यापार पर कर के अधिक बढ़ जाने से भारत का नौव्यवसाय नष्ट होगया है। नौ व्यवसाय भारत का एक अति प्राचीन व्यवसाय था। इसके नष्ट हो जाने से चित्त में अतिशय कष्ट होता है। संसार में कई हजार वर्षों से भारतवर्ष नौ शक्ति था। मुसलमानी काल तक भारत का नौ व्यवसाय प्रफुल्लित दशा में रहा था। आँग्ल काल में उसपर भी प्रम का वज्रपात गिरा है और उसका सर्वदा के लिये लोप हो गया है।

चौथा परिच्छेद

सरकार की मुद्रानीति।

(१)

अंग्रेजी राज्य के आरम्भ से १८९३ तक सरकार की मुद्रा-नीति

मुद्रा मूल्य का मापक, लेनदेन का मध्यस्थ तथा विदेशी विनिमय का आधार है। उत्तम मुद्रा सभ्यता तथा समृद्धि का चिन्ह भी है। एकमात्र लोहा-कौड़ी को सिक्के के तौरपर प्रयोग करने वाले राष्ट्र असभ्य, निःशक्त तथा दरिद्र होते हैं। सोने का सिक्का चांदी के सिक्के से अच्छा समझा जाता है। सभ्य राष्ट्र चाँदी के सिक्के पर तिलाञ्जुलि देकर सोने के सिक्के को दिन पर दिन अपनाते रहे हैं। परन्तु भारत की दशा विचित्र है। अंग्रेज़ों की नीति ने व्यावसायिक भारत को कृषक देश बनाया, शस्यश्यामलसंपन्न एवं सुखी जनपद को दुर्भिक्षग्रस्त, रोगाक्रान्त एवं दुःखमय बना दिया। सोने की मुद्रा तथा सोने को खींचकर भारतीयों के गले चाँदी मढ़ी और गोरे लोगों के थूके हुए चाँदी के सिक्कों पर भारत के व्यापार-व्यावसाय की नींव रखी, शनैः शनैः भारत के मुख्य

सिक्के को भ्रष्ट कर रुपये में अठन्नी की चाँदी रखकर सरकार ने रुपये गढ़ने को आमदनी का साधन बना लिया और उस आमदनी को भारत में न रखकर लण्डन के व्यापारी-व्यवसायियों तथा क्रूर राक्षसी गोरे अंग्रेज़ी उपनिवेशों के स्वार्थ के भभकते अग्निकुण्ड में भस्मीभूत किया। अधिक संख्या में तथा अपरिमित राशि में रुपये गढ़े गये। इससे मँहगी दिन पर दिन बढ़ती गई। युद्ध के दिनों में भारत ने यूरोपीय देशों तथा युद्ध की ज़रूरतों को पूराकर बहुत अधिक धन कमाया। इस धन को भारतीय व्यवसायों की उन्नति में लगने से रोक कर भारत-सरकार ने सट्टों तथा अंग्रेज़ पूंजीपतियों की सहायता में रिवर्स काउन्सिल बेंचकर लगा दिया और दस रुपये की गिन्नी चलाने को इन्डियन कायनेज़ एक्ट द्वारा उचित ठहरा कर इसी बात को उत्तेजित किया है। विषय के महत्वपूर्ण तथा कठिन होने से अब सरकार की मुद्रा-नीति के एक एक पहलू पर विचार किया जायगा। हज़ारों वर्षों से भारत में सोने का सिक्का चल रहा था। समग्र संसार जब गाढ़ निद्रा में था तब भी भारत को सोने का ज्ञान था। ऋग्वेद में निष्क, रजत, हिरण्य आदि शब्द आते हैं[1]। अथर्ववेद तो निष्क को बहुवचन में रखकर उसके

---

१. ऋग्वेद २-३३-१०।८-४-१५।१-१२६-२।१-४६-१०।२-१५-६।४-५८-५ ७-११.१।८-५-२६।६-१०८-४

सिक्के अर्थ को सूचित करता है[१]। तैतरेय आरण्यक भी स्वर्ण की महिमा से शून्य नहीं है। सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व ईरान को भारत से ही सोने के सिक्कों में राज्यकर मिलता था। नागोद राज्य के भरहुत स्तूप[२] बुद्ध गया के महाबोधि मन्दिर[३] तथा त्रिपिटक[४] से भारत में सोने के सिक्कों का बहुराशि में होना सूचित होता है। मथुरा की वासवदत्ता नामक वेश्या ५०० पुराण लेकर आत्मविक्रय करती थी।[५] भिन्न भिन्न नगरों के खोदने पर 'निगम' (व्यापारीय समिति) नामक सिक्के मिले हैं[६]। मुद्रातत्वविद् इस विचार में सहमत हैं कि सिक्कों की टकसालें लोगों के लिए खुली थीं। भिन्न भिन्न व्यापारीय समितियाँ व्यापार की आवश्यकतानुसार सिक्कों को प्रचलित करती थीं[७]। भारत का व्यापार विदेशीय राष्ट्रों से बहुत पुराने ज़माने से उन्नति पर था। राजा क्रीसस का सिक्का बन्नू ज़िले में मिला था जो कि आजकल सद्यः

---

१. अथर्ववेद ५-१४-३।१६-५७-५।७-१०४-१।२०-१३१-५।२०- १२७-३
२. Cunningham, Stupa of Bhathut P.48. Rl. LVII
३. Cunningham. Mahabodhi P. 13, Pl. VIII.
४ त्रिपिटक
५. Cunningham, Coins of Ancient Iudia. P. 20
६. Rapson's, Indian Coins. P. 3
७. Catalogue of Coins in the Indian Museum, Vol. 1., P. 133

पुष्करिणी नामक गांव के ज़िमींदार राय श्रीयुत मृत्युञ्जय चौधरी के पास है[१]। मध्य एशिया के काशगर नगर में जो सिक्के मिले हैं उनपर एक ओर भारत की प्राकृत भाषा और दूसरी ओर चीनी भाषा है। ये सब प्रमाण इस बात को सूचित करते हैं कि अति प्राचीन काल में भारत के व्यापार तथा मुद्रा की क्या स्थिति थी।

मुसलमानी ज़माने तक भारत में सोने की मुहरें तथा चांदी का रुपया समान रूप से चलता रहा। भारत में अंग्रेज़ों के राज्य का जिस समय श्रीगणेश हुआ उस समय सोने चांदी के भिन्न भिन्न प्रकार के ९९४ सिक्के भारत में चल रहे थे। इसका मुख्य कारण भारत का भिन्न स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त होना ही था। अंग्रेज़ी राज्य में भारत के बहुत से भागों के संगठित होने पर सिक्के के एक करने का प्रश्न उठा। १८०६ में लार्ड लिवर्पूल ने साम्राज्य की मुद्राएं (The cious of the realm.) नामक एक ग्रंथ लिखा। उसने इस ग्रंथ में एकही प्रकार की प्रमाणिक मुद्रा चलाने को उपयुक्त ठहराया। इस ग्रंथ के विचारों को ईस्ट इन्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने अपनाया और उत्तर में लिखा कि 'सोने के सिक्के का बहिष्कार कर चांदी के सिक्के को चलाना हमारा उद्देश्य नहीं है। क्योंकि वही देश का प्रामाणिक सिक्का है। जहाँ चाँदी

१. Coins of the Ancient India, P 3

भारत पर चांदी की निकृष्ट मुद्रा को ठूंसा। हज़ारों वर्षों से चली सोने की मोहरों का बहिष्कार सुगम न था। यही कारण है कि १८६४ में पुनः भारतसरकार को सोने की मुहरें ख़ज़ाने में लेनी पड़ीं और उसके बदले १०) रु: ४ आना देना पड़ा। इस प्रकार की अस्थिर नीति से व्यापार व्यवसाय में दिन पर दिन विघ्न पड़ रहे थे। लाचार होकर १८७८ में भारतसरकार ने भारतसचिव से पूछा कि (१) भारत में सोने का ही प्रामाणिक सिक्का क्यों न चलाया जाय, (२) रुपये में चांदी बढ़ा दी जाय तथा चांदी की टकसालें लोगों के लिए क्यों न बन्द कर दी जांय? परन्तु स्वीकृति न मिली। चांदी दिन पर दिन दामों में गिर रही थी। १८५० से चांदी की उत्पत्ति संसार में बढ़ती गयी जिसका ब्यौरा इस प्रकार है।

१८४१	से	१८५० तक	७८०४ टन	चांदी खुदी
१८५१	से	१८६०	८९५६	,,
१८६१	से	१८७०	१२२०१	,,
१८७१	से	१८८०	२२३२६	,,
१८८१	से	१८८८	१९३३०	,,

इंग्लैंड में १८५८ में सोने का ही प्रामाणिक सिक्का था। अभी जर्मनी, फ्रांस, अमरीका आदि चांदी के सिक्के को ही प्रामाणिक सिक्के के तौर पर अपने अपने देशों में चला रहे थे। एकमात्र भारतवर्ष इंग्लैंड का साथी था। क्योंकि भारत में

अनन्तकाल से सोने का सिक्का ही प्रामाणिक सिक्का था। १८७८ में इंग्लैण्ड ने भारत सरकार को सोने का सिक्का क्यों न चलाने दिया इसका मुख्य कारण यह था कि इससे इंग्लैंड को लाभ था और भारत को भयंकर हानि थी। भारत सरकार को भारत की आमदनी चांदी में मिलती थी और उसको इंग्लैंड में धन पाउन्डों के अन्दर भेजना पड़ता था। जैसे जैसे चांदी सस्ती हो रही थी भारतसरकार की पाउन्डों में आमदनी कम हो रही थी। होम चार्जिज़ के अदा करने में भी पहिले की अपेक्षा अधिक धन लगने लगा। अंग्रेज़ नौकरशाही तथा व्यापारी-व्यवसासियों को भारत में आमदनी चांदी के रुपयों में थी; परंतु उनको अपने घर में धन पाउन्डों के अन्दर भेजना पड़ता था। एक तरीक़े से उनकी तनख्वाहें तथा लाभ दिन पर दिन घट रहे थे। बहुत से अंग्रेज़ों ने इंग्लैंड के बैंकों से धन उधार लेकर भारत में लगाया था। उनको उन बैंकों का ब्याज पाउन्डों में अदा करने में बहुत ही कठिनाई झेलनी पड़ी। इंग्लैंड के पूंजीपतियों तथा व्यापारी--व्यवसायियों को यह लाभ था कि वे भारत से रुपयों में जो चीज़ें मांगते थे, चांदी के सस्ता होने से उनका दाम चुकता करने में उनको बहुत कम पाउन्ड खर्च करने पड़ते थे। भारत का कच्चा माल सस्ता मिलने से उनके व्यवसायों का आधार दृढ़ हो रहा था। इसी स्वार्थ से प्रेरित होकर भारतसचिव ने भारत

के हित की उपेक्षा की दृष्टि से देखा और भारतीय अंग्रेज़ों के हित में मुद्रा-संबंधी सुधारों को करने का यत्न किया। १८९३ में चांदी की टकसालों के बंद होने का गुप्त रहस्य इसी के अंदर है।

भारत पर चांदी का सिक्का ठूंसने में लंडन बैंक के कर्ता-धर्ताओं का छिपा हाथ था। प्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ जीड् का कथन है कि १८६४ से पूर्व फ्रांस में चांदी तथा सोना दोनों धातुओं के सिक्के प्रामाणिक माने जाते थे। इंग्लैंड में सोने का सिक्का ही प्रामाणिक था। लंडन में एक किलोग्राम सोने के बदले में १५ किलोग्राम चांदी के मिलते थे। परन्तु लंडन बैंक वाले एक किलोग्राम सोने को पेरिस में भेजकर सोने के ३१०० फ्रैन्कस बनवाते थे और उसको चांदी के ३१०० फ्रैन्कस से बदल कर और चांदी के फ्रैन्कस को पिघलाकर १५ $\frac{1}{2}$ किलोग्राम चांदी प्राप्त कर लेते थे और इसको भारतवर्ष में भेज देते थे। सारांश यह है कि भारत में चांदी का सिक्का मुख्य करने से चांदी की स्थिर माँग थी। लन्डन बैंकवालों को एक किलोग्राम सोने के सहारे $\frac{1}{2}$ किलोग्राम चांदी मुफ़्त में ही प्राप्त होती थी और इसको भारत पर लादने का मौका था। महाशय जीड् को

1. Gide, Principles of Political Economy translated by C. William A. Veditz P. 247।

गणना से मालूम पड़ा है कि अकेले फ्रांस से ही २ अरब फ्रेन्क्स लन्डन बंक वालों ने प्राप्त कर उनको भारत की टकसालों में रुपये के अन्दर परिवर्तित किया[2]। १८६५ की २३ दिसम्बर को फ्रांस, इटली, बेल्जियम, स्विटज़लैण्ड आदि देशों ने एक लैटिन यूनियन बनाया और चांदी तथा सोना दोनों ही धातुओं के सिक्के प्रामाणिक रखने का प्रण किया। १८७१ से चांदी सस्ती होने लगी और सोना मँहगी होने लगा। ग्रीशम के सिद्धांत के अनुसार योरूपीय राष्ट्रों के अन्दर सोना दूसरे देशों में जाने लगा और उनमें चांदी भरने लगी। इंगलैंड ने तो १८१६ में ही सोने के सिक्के को प्रामाणिक सिक्का नियत कर लिया था और अपनी चाँदी भारत पर ठूस कर और भारत का सोने का सिक्का लुतकर चाँदी का सिक्का भारत में प्रामाणिक बना दिया था। इससे बढ़कर पाप तथा अन्याय और क्या हो सकता है? एक ओर स्वयं उसी बात को करना और दूसरी ओर उसी बात से भारत को वञ्चित रखना! १८१६ में स्वयं सोने का सिक्का प्रामाणिक बनाना और १८१८ में भारत पर चाँदी का सिक्का ठूंसना ये दोनों घटनाएँ इस बात को प्रकट कर रही हैं कि किस प्रकार १८१६ में सोने का सिक्का चलाने से उसकी जो चाँदी

2. During this period these Indian Mints turned into ruppes more than 2,000,000,000 Francs of French money. Ibid P. 248

बची उसे भारत में अच्छे दामों पर बेचने के लिए १८१८ में भारत के अन्दर चाँदी का सिक्का प्रामाणिक ठहराया गया।

इंग्लैण्ड की देखा देखी पोर्तगाल ने १८५४ में, जर्मनी ने १८७३ में, नार्वे, स्वीडन तथा डन्मार्क ने १८७५ में, फिन्लैन्ड ने १८७८ में, रूमानिया ने १८९० में, आष्ट्रिया-हंगरी ने १८९२ में, अमरीका ने १८९३ में, रूस, जापान तथा पेरू ने १८९७ में, चाँदी के सिक्के का तिरस्कार कर एक मात्र सोने के सिक्के को प्रामाणिक सिक्का नियत किया[3]। क्या भारतवर्ष इन देशों से गया बीता था कि उसपर १८९३ में चाँदी का सिक्का लादा गया और उसकी भी टकसालें लोगों के लिए बन्द कर दी गयीं? अति प्राचीन समय से भारतवर्ष में सोने का सिक्का चल रहा था। उसको हटा कर उस पर रद्दी, यूरोपीय राष्ट्रों की थूँकी हुई, भ्रष्ट चाँदी का सिक्का लादना अन्याय नहीं तो और क्या है? यहाँ पर ही बस नहीं, १८१८ में भारत पर चाँदी का सिक्का लादने से चाँदी के दाम के घटने के कारण सरकार की आमदनी कम होगई। सरकार ने इंग्लैण्ड को रुपया देने के लिए भारत पर भयंकर राज्य-कर बढ़ाया। अकेले होमचार्जिज़ के अदा करने के लिए ४$\frac{1}{2}$ करोड़ रुपया राज्य करके तौर पर बढ़ाना पड़ा।

---

3. Ibid P. 257

(२)

१८९३ से महायुद्ध तक सरकार की मुद्रानीति

१८९३ में टकसालों के बन्द होते ही भारतीय जनता भयभीत हो गई। विदेशीय राज्य की शक्ति का बढ़ना और उसका मुद्रा जैसी आवश्यक वस्तु का एकाधिकारी हो जाना और अनादिकाल से चले आये स्वतन्त्र मुद्रा-निर्माण-सम्बन्धी जनता के अधिकार को अपहरण करना यदि भय का कारण हो तो आश्चर्य करना वृथा है। भारत के सोने को हज़म कर; इंग्लैण्ड का भारत पर चाँदी थूकना भारतीयों को कब स्वीकृत हो सकता था? १८९३ में लार्डहर्शल की जो मुद्रा-सम्बन्धी कमीशन बैठी थी उसने सावरेन तथा अर्ध-सावरेन को प्रामाणिक सिक्का करने का निर्देश किया था; परन्तु इस पर अमल न किया गया। १८९७ में भारत-सरकार ने भारत-सचिव से स्वर्ण-मुद्रा भारत में चलाने के लिए आज्ञा माँगी; परन्तु मामला गोलमाल कर दिया गया।

१८९३ में विदेशी विनिमय की दर १ शि० २$\frac{१}{२}$ पैन्स थी। भारतसरकार इस रेट को चढ़ाना चाहती थी। इस उद्देश्य से उसने रुपयों का टकसाल से निकालना बन्द कर दिया। व्यापार में रुपयों के दुर्भिक्ष के कारण बड़ी भयंकर बाधा पड़ी। १४ पैन्स तक विनिमय की रेट चढ़ गयी। भारतीय-मुद्रा-कमीशन के सन्मुख १८९८ में मर्वन्जी रुस्तमजी ने

रुपयों के दुर्भिक्ष के कारण जो जो कठिनाइयाँ उनको झेलनी पड़ी थीं उसका बहुत ही अच्छा वर्णन किया था। उनका कथन था कि "१८९८ में रुपयों का मिलना कठिन हो गया। सरकारी काग़ज़ों के बदले कोई भी रुपया न देता था। बैंक वाले भी दो या तीन दिन में ही रुपया लौटा देने का जब प्रण करा लेते थे तब रुपया देते थे"। बम्बई बैंक वाले तो सरकारी काग़ज़ों पर १८ प्रति शतक ब्याज लेते थे, तब धन उधार देते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि १८९८ में फ़ाउलर कमेटी बैठी।

फाउलर-कमीशन के सामने लार्ड नार्थ ब्रूक ने साफ २ कहा कि 'भारत का प्राचीन सिक्का सोने का था। चाँदी का सिक्का उसपर ज़बरन ठूँसा गया। भारत ऐसा दरिद्र देश नहीं कि उसमें सोने का सिक्का न चलाया जा सके। समृद्धि में बहुत से देश भारत से पीछे हैं; परन्तु उनमें सोने का सिक्का चल रहा है'। कमीशन ने बहुत विचार के बाद यह निर्णय किया कि 'भारत में सोने का सिक्का चलाया जावे। सिक्का इंग्लैंड का पाउन्ड तथा आधा पाउन्ड ही हो। रुपये को चलतू तथा नक़ली सिक्का कर दिया जावे। सोने की टकसालें लन्डन में न खोलकर भारत में ही खोली जावें। सोने के सिक्कों को बनाने में लोगों से निर्माण-व्यय न लिया जावे। रुपये के बनाने में जो लाभ हो

वह 'स्वर्ण -कोष' (Gold Reserve Fund) में रखा जावे। सरकार को जो धन किसी को देना हो वह सोने में दे न कि चाँदी में।'

कमीशन के निर्णय के अनुसार चाँदी के रुपयों की टकसालें तो पूर्ववत् बन्द ही रहीं। रुपये के विनिमय की दर १ शि॰ ४ पेंस नियत की गयी। परन्तु सोने के सिक्के भारतवर्ष में न चलाये गये। १६१२ में सरकार ने भारतसचिव से सोने की मुद्रा निकालने की आज्ञा माँगी; परन्तु आज्ञा न मिली। रुपये निकालने की जो आमदनी थी उसको स्वर्ण-कोष में रखा गया। परन्तु वह स्वर्ण-कोष भारत में न स्थापित कर इंग्लैंड भेज दिया गया।

भारत के एंग्लो-इन्डियनों ने पिछले कुछ वर्षों से विशेष शरारत करना शुरू किया है। उन्होंने यह प्रकट किया कि यदि भारत में सोने का सिक्का चलाया गया तो यूरोपीय सभ्य राष्ट्रों को बड़ा कष्ट हो जायगा। सोना मँहगा हो जायगा और भारतवासी लोग सोने को गहने बनवाने के काम में लायँगे या ज़मीन में गाड़ देंगे। यह असत्य है। इस पर विशेष तौरपर मुद्राशास्त्र में ही प्रकाश डाला जायगा। अब हम कुछ शब्द 'स्वर्णकोष' के प्रयोग पर ही लिखेंगे।

---

(३)

स्वर्ण-कोष का गुप्त रहस्य।

फाउलर कमीशन की अच्छी सलाहों को तो भारत सरकार ने न माना। जिन बातों से भारत को नुक़सान था उन्हीं बातों को उसने किया। १ शि० ४ पैन्स विनिमय की दर होते ही भारत सरकार ने धड़ाधड़ सिक्का गढ़ना शुरू किया। १८९४ से १९०५ तक जिस प्रकार प्रतिवर्ष सिक्के सरकारी टकसालों से निकाले गये उसका ब्यौरा इस प्रकार है:—

सन्	रुपये
१८९४-९५	२०३,०००
१८९५-९६	२४,०००
१८९६-९७	×
१८९७-९८	३७,८८,०००
१८९८-९९	३७,२५,०००
१८९९-१९००	१,३२,०२,०००
१९००-०१	१६,९३,६५,०००
१९०१-०२	३,८२,४०,०००
१९०२-०३	३,२४,९८,०००
१९०३-०४	११,१५,५३,०००
१९०४-०५	७,८१,२०,०००

इन सिक्कों के गढ़ने की आय का अन्दाज़ इसी से लगाया जा सकता है कि १९०५ की जुलाई तक भारतसरकार के पास १८३७ लाख रुपया जमा हो गया था। सरकार सन् १९१२ तक आमदनी के लोभ से रुपये गढ़ती ही चली गयी। इससे मंहगी दिन पर दिन बढ़ी। यह एक प्रकार से जनता पर अप्रत्यक्ष कर था। १९१२ की पहिली फ़र्वरी के टाइम्स आव् इन्डिया में लिखा था कि 'सरकार के आमदनी के लोभ से रुपये न गढ़ना चाहिये। लन्डन का राज्याधिकारी-वर्ग भारतीय जनता के जेबों से मुद्रानिर्माण के सहारे रुपया खींच रहे हैं।' १९१२ के ३१ दिसम्बर तक स्वर्ण-कोष में ३२३१४०५९६५ रुपये जा पहुंचे। इस धन का बहुत बड़ा भाग भारतसरकार ने लन्डन में पहुँचा दिया जिसका ब्योरा इस प्रकार है—

भारत का धन	पाउन्डों में
बैंक आव् इंग्लैंड	२,५०,०००
इंग्लैण्ड के व्यापारियों को उधार दिया गया ...	१०,१३,६९०
ब्रिटिश गवर्नमेंट का २½% ब्याज का	
कान्सालिडेटिड स्टाक	४६,६५,७७०
लोकल ऋण ३% स्टाक	२,००,०००
आयरिशलैण्ड २¾ ब्याज का गारैन्टीड स्टाक...	४,३८,७२०

भारत का धन	पांउडों में
ट्रान्सवाल गवर्नमेंट ३% गारैन्टी स्टाक (१९२३-५३)	१०,९२,०२३
ब्रिटिश ट्रेजरी बिल (१९१३ में धनप्राप्ति) ...	२४,००,०००
एक्सचेन्ज बान्ड (१९१३-१६ में प्राप्त) ...	६९,३५,६००
कनाडा $३\frac{३}{४}$% बान्ड (१९१४-१९ में प्राप्त) ...	१,६१,०००
कार्पोरेशन आव लन्डन डिबेंचर्स $३\frac{१}{४}$ तथा $३\frac{१}{२}$% ब्याज का... ...	१,४५,०००
न्यूजीलैंड $३\frac{१}{२}$% डिबेन्चर्स (१९१४-१५ प्राप्त)...	२,४६,४००
क्वीन्सलैण्ड ४% बान्डस् तथा स्टाक्स् (१-७-१९१५ में प्राप्त)	१,५०,०००
न्यूसाउथवेल्स् ४% बान्डस् तथा $३\frac{१}{२}$% बान्डस् (प्राप्त १९१५-१८)	१,१७,०००
न्यूसाउथवेल्स् ट्रेजरी बिल्स (प्राप्त १६-१-१९१३)	२,५०,०००
सदर्न निगेटिया ४% बान्डस् (प्राप्त १५-८-१९१६)	१,०००००
यूनियन आव् साउथ अफ्रीका बिल्स् (प्राप्त १-४-१९१३)	६,००,०००

स्वर्णकोष के मामले में भारतीयों का असन्तोष भयंकर है। एक एक रुपये के लिए भारत तड़प रहा है। पूंजी की कमी से नयी कम्पनियाँ नहीं खुल सकती हैं और कृषि में उन्नति नहीं की जा सकती है। १९१२ में स्वर्णकोष के अन्दर

३२ करोड़ रुपया था। यदि इसका आधा धन भी सरकार भारत के कारखानों को सहायता के तौर पर देती, व्यवसायिक कर को हटाती और रेशम आदि की उत्पत्ति के लिए अमरीका के सदृश कृषकों को उत्तेजित करती तो भारतीय बेकारी का प्रश्न हल होजाता और भारतवर्ष एक स्वावलम्बी देश बन जाता। भारतसरकार यह न कर भारत के धन को इंग्लैंड के पूंजीपतियों तथा व्यवसाय-पतियों की सहायता में खर्च करती रही है। इंग्लैण्ड के लोग तो अपनी पूंजी भारत में लगाते हैं; क्योंकि इंग्लैण्ड में पूंजी के लगाने के स्थान कम हैं और व्याज भी कम मिलता है। परन्तु भारतसरकार अपनी पूंजी इंग्लैण्ड में लगा रही है जहां विशेष लाभ नहीं है। भारतवर्ष में यदि सरकार स्वर्णकोष के धन को उधार देती तो ८ से १२ प्रति शतक व्याज मिलता परन्तु इंग्लैण्ड में ३ से ४ प्रति शतक व्याजवाले कामों में भारत का धन लगाना अन्याय नहीं तो और क्या है? इस अनन्त धन से यदि भारत का जातीय ऋण चुकता किया जाता तो, भारतीयों पर राज्यकर का भार (जोकि इंग्लण्ड तथा स्काटलैंड के लोगों से १७ गुणा ज़्यादा है) कम हो जाता।

अफ्रीका में अंग्रेज़ी उपनिवेशों ने भारतीयों पर जो क्रूर अत्याचार किये हैं वह किसी से भी छिपे नहीं हैं। मुसल-

मानों ने जिस प्रकार जजिया कर लगाया था उसी प्रकार अफ्रीका में भारतीयों पर पालटैक्स लगाया गया। गोरे लोगों के अत्याचार से पीड़ित हो कर भारतीयों ने जब हड़ताल की तो वे कैद कर दिये गये, और प्रत्येक खान को जेल बना दिया गया। यहाँपर ही बस न कर इन गोरे अंग्रेजों ने भारतीयों को एक तार लगे जंगलों में तन्द कर दिया। तार में विद्युत्प्रवाह था। उस जंगल में उनपर अमानुषी अत्याचार किये जाते थे। यदि कोई भागना चाहे तो भाग नहीं सकता था। दुःखकी बात है कि भारत के स्वर्णकोष का धन इन पापी नराधम क्रूर अंग्रेजी अफ्रीकन उपनिवेशों को बहुत कम ब्याज पर उधार दिया गया। जिन्होंने भारत का घोर अपमान किया उन्हीं को भारत के धन से सहायता पहुंचाई गयी।

इंगलैण्ड में भिन्न २ फर्मों को सहायता पहुंचाने के लिए भारतधन जिस प्रकार लुटाया गया उसका व्योरा इस प्रकार है—

बिना सिक्योरिटी के निम्न बैंकों को भारत का धन दिया गया।

बैंक	धन पाउँन्डों में
ग्लाइन मिल्ज करीं एण्ड को ...	१५,५०,०००
लन्डन काउन्टी एण्ड वैस्ट मिनिस्टर बैंक...	१८,००,०००
लन्डन ज्वाइट स्टाक बैंक ...	१५,००,०००

नेशनल प्राविन्शयल बैंक आव इंग्लैएड ...	१३,००,०००
यूनियन आव लन्डन एएड स्मिथस बैंक...	१२,५०,०००

निम्नलिखित वैयक्तिक फर्मों तथा बैंकों को भारत का धन दिया गया।

वैयक्तिक फर्म तथा बैंक	भारत का धन (पाउन्डों में)
यूनियन डिस्काउन्ट को आव लन्डन	११,५०,०००
नेशनल डिस्काउन्ट को ...	११,००,०००
सैम्युएल मान्टैगू एएड को ...	१०,५०,०००
बैड् जैफर्सन एएड को ...	[illegible],५०,०००
रीव्ज़ हिव्टबर्न एएड को ...	७,००,०००
अलकजन्डर्ज एएड को ...	६,५०,०००
नेशनल बैंक आव इन्डिया ...	५,५०,१५०
ब्राइट बैन एएड को ...	५,००,०००
चार्टर्ड बैंक आव इंडिया आस्ट्रेलिया एएड चीन	५,००,०००
होलट एएड को	५,००,०००
ऐजर कन्लिफ, सन्स एएड को ...	४,५०,०००
लेजार्ड ब्रदर्स एएड को ...	२,५०,०००
मर्कन्टाइल बैंक आव इंडिया ...	२,५०,०००
रीडर मिल्स एएड को ...	२,५०,०००
स्मिथ सेन्ट आबीन एएड को ...	२,५०'०००
बेकर डनकुम्ब एएड को ...	२,००,०००

वैयक्ति फर्म तथा बैंक	भारत का धन (पांउडों में)
ब्रिस्टोवा एगड हैड	... २,००,०००
ऐंग्लो-ईजिप्शियन बैंक	... २,००,०००
जं एनिस एगड सन्स	... २,००,०००
किंग एगड को	... २,००,०००
ग्लाडन्स्टीन एगड को	... १,५०,०००
बूथ एगड पार्ट्रिज	... १,५०,०००
गिलट ब्रदर्स एगड को	... १,५०,०००
हार्म्रीचर एगड स्कूमन	... १,५०,०००
नेशनल बैंक आवन्यूजीलैएड	... १,५०,०००
स्टीथर लाफोर्ड एगड को	... १,५०,०००
टाम्किनसन ब्रन एगड को	... १,५०,०००
एलन हार्वे एगड एस	... १,००,०००
बोडमैंन एगड को	... १,००,०००
ईस्टर्न बैंक ...	... १,००,०००
लारी मिल बैंक एगड को	... १,००,०००
लीयान एगड टुकर	... १,००,०००
मैथे हैरीसन एगड को	... १,००,०००
एल मैसल ऐगड को	... १,००,०००
हैन्डी शेवुड ऐगड को	... ५०,०००

इन ऊपरिलिखित फर्मों को भारत का धन सहायता के

तौर पर दिया गया और उनसे बहुत ब्याज न लिया गया। महाशय वैब लिखते हैं कि मैसर्स सैम्युएल मांटेग्यु एण्ड को सब से अधिक आनन्द में है। उसने कुल मिलाकर बीस लाख पाउंड भारत के स्वर्णकोष से लिया। कहने में तो यह अल्प-काल के लिए लिया गया और इसीलिए उससे बहुत कम ब्याज लिया गया। परंतु वास्तव में यह धन ५ वर्ष के लम्बे समय के लिए दिया गया[१]। महाशय कीन कहते हैं कि यह दुःख का विषय है कि इस फर्म का अध्यक्ष राष्ट्र के पार्लिमेंटरी उपसचिव का बड़े पासका रिश्तेदार है।[२] इसी से यह भी स्पष्ट है कि इंगलैण्ड के अधिकारीवर्ग भारत के धन को अपने रिश्तेदारों की सहायता में भी ख़र्च करते हैं और उनसे अधिक ब्याज न लेकर किसी न किसी बहाने से कम ब्याज लेते हैं।

यहां पर ही बस नहीं, भारत के स्वर्णकोष का विनियोग इंडिया आफिस महाशय होरेस एच् स्काट के द्वारा करती है। इस कार्य के बदले में उसको जो कमीशन दिया जाता है वह वाइसराय को तनख्वाह से कुछ ही कम है। दृष्टांत स्वरूप-[३]

---

1. Mr M. D. P. Webb. Advance India, (1913) Page 65—66
2. Indian Currency and Finance by Keynes, Page 142
3. Alakhdhari, Currency organization in India, P. 137

सन्	प्रसिद्ध दलाल होरेस की दलाली पाउंडों में
१९०५-०६	१४,२१३ पाउण्ड
१९०६-०७	१०,७२७ ,,
१९०७-०८	७,११९ ,,
१९०८-०९	४,६०३ ,,
१९०९-१०	७,२९८ ,,
१९१०-११	१६,३७६ ,,
१९११-१२	९,९८० ,,
१९१२-१३	७,९६१ ,,

महाशय कीन के शब्द हैं कि—"It was slightly shocking to discover that the government broker Who is not even a wholetime officer and has a separate business of his own besides his official duties, is the highest paid official of the government with the sole exception of the viceroy. He has probably been paid too high even on current City standard."

अर्थात् "यह अत्यन्त दुःखदाई बात है कि सरकारी दलाल का वाइसराय को छोड़ कर सब से अधिक वेतन है। जबकि वह सारे दिन भारत का काम भी नहीं करता है और अपना काम पृथक तौर पर चलाता है। इतना ही बस नहीं, लण्डन नगर में दलालों की कमीशन की जो रेट है उसकी रेट उससे कहीं अधिक है। १९१३ के ३१ मार्च

तक इस दलाल को भारत के खज़ाने से १८४८१३५ लाख रुपया दिया जा चुका था।

इस दलाल के सदृश ही भारत का धन बैंक आव इंगलैंड तथा बैंक आव आयलैंण्ड के हिस्सेदारों की जेबों को भरने में काम आया। १६१२-१३ के भिन्न भिन्न महीनों में भारत के खज़ाने का निम्नलिखित धन बैंक आव् इंग्लैण्ड के पास था जिसपर बैंक कुछ भी ब्याज न देती थी।

बैंक आव् इंग्लैण्ड के पास भारत का वह धन जिसपर कि बैंक कुछ भीब्याज न देती रही है—

तारीख-मास-सन्	पाउंड
३१–३–१६१२	१३,५१,६६२
३०–४–१६१२	७,३४,१६६
३०–५–१६१२	६,६०,५८३
३०–६–१६१२	२,२६,५४,७४
३१–७–१६१२	५,६४,१२३
३१–८–१६१२	६,६२,५६३
३०–६–१६१२	१८,८६,५६२
३१–१०–१६१२	५७४,१६६
३१–११–१६१२	७५,४६,५६
३१–१२–१६१२	१८,००,२५६
३१–१–१६१३	६४,८५,२७

तारीख-मास-सन्	पांउड
२८-२-१९१३	६,००,५०८
३१-३-१९१३	१०,९५,८५२

इतने अपरिमित धन पर ब्याज न मिलने से भारत को जो आर्थिक हानि है वह तो है ही। इण्डिया आफिस अन्य तरीकों से भी भारत का धन प्रतिवर्ष बैंक आव् इंग्लैंड पर न्योछावर किया करती है। किस प्रकार भारत का धन इंग्लैण्ड में लुटाया गया और लुटाया जा रहा है उसका ब्योरा इस प्रकार है—

बैंक आव इंग्लैण्ड को भारत का धन इस प्रकार दिया गया—

प्रति १० लाख पाउन्ड के प्रबन्ध के लिए ३०० पाउन्ड पुरस्कार के हिसाब से १६,३६,०१,०७६ पा० में पाउन्ड पर बैंक आफ् इंग्लैण्ड का पुरस्कार .. ४८,६७२

प्रति १० लाख पाउन्ड पर १२५० पाउन्ड पुरस्कार के हिसाब से इंडियन स्टाक के निकालने का पुरस्कार ... — ... २,७५०

प्रति १० लाख पाउन्ड पर १२५० पाउन्ड पुरस्कार के हिसाब से इंडियन बान्ड्स के निकालने का पुरस्कार ... ...

प्रति १० लाख पाउन्ड पर २०० पाउन्ड पुरस्कार के

हिसाब से इंडियन स्टरलिंग बिल के निकालने का पुरस्कार ... ...

प्रति १० लाख पाउन्ड पर ३०० पाउन्ड पुरस्कार के हिसाब से इंडियन रेल्वे डिवेञ्चर के प्रबन्ध का पुरस्कार १,४७३

रुपये ऋण के प्रबन्ध का पुरस्कार ... ८,०००

१० रुपये के पीछे २ पैन्स के हिसाब से इंडियन इंकमटैक्स लगाने की फीस ... ६०

१० लाख टन रुपयों के पीछे ५०० पाउन्ड पुरस्कार के हिसाब से ३ प्रतिशतक ब्याज वाले रुपये ऋण के परिवर्तन का पुरस्कार ... २८

सैकड़ा पीछे $\frac{१}{८}$ दलाली के हिसाब से २०,००,००० पाउन्डों की चांदी खरीदने की दलाली ... २,५००

फी सैकड़ा $\frac{१}{३२}$ के हिसाब से पेपरकरन्सी रिज़र्व के हिसाब-किताब रखने का पुरस्कार ... १,७११

(६,६५,७४ पाउन्ड या
= १०,००,००० रुपये)

लगभग प्रतिवर्ष दश लाख रुपया बैंक आफ् इंग्लैण्ड को भारत के स्वर्णकोष के प्रबन्ध के लिए पुरस्कार के तौरपर

मिलना है। दृष्टांत स्वरूप भिन्नभिन्न वर्षों के पुरस्कार का ब्योरा इस प्रकार है—

सन्	बैंक आव् इंग्लैण्ड का पुरस्कार	
१९०७–०८	६१,४८९	पाउन्ड
१९०८–०९	६०,८४२	,,
१९०९–१०	६५,१६६	,,
१९१०–११	७२,७६७	,,
१९११–१२	६४,५३९	,,

इसी प्रकार बैंक आव आयर्लैंड को भी भारत की लूट का कुछ हिस्सा दिया गया है जिसका ब्योरा इस प्रकार है—

सन्	बैंक आव् आयर्लैण्ड का पुरस्कार		
१९०७–०८	१,९००	,,	पाउन्ड
१९०८–०९	२,०२६	,,	
१९०९–१०	२,०९१	,,	
१९१०–११	२,१६२	,,	
१९११–११	२,१२३	,,	

भारत के प्रान्तीय बैंकों में भी सरकार का धन रहता है। परन्तु उनको बैंक आव इंग्लैण्ड के पुरस्कार के सन्मुख दाल में नमक के बराबर पुरस्कार मिलता है। वास्तविक बात तो यह है ईस्ड इन्डिया कम्पनी ने जो लूटमार की वह तृण के बराबर मालूम पड़ती है जबकि हम आजकल की लूट को

देखते हैं। प्रश्न जो कुछ है वह यही कि साधारण लोगों को ऐसे कठिन तथा दूरवर्ती लूट का ज्ञान कैसे हो? आजकल की लूट के साधन पेचीदे हैं। सब कुछ लूटा जा सकता है, फिर भी लोग अन्धकार में रह सकते हैं। अब हम अगले प्रकरणों में यह दिखाने का यत्न करेंगे कि अब आगे सरकार भारत के धन का प्रयोग कैसे करना चाहती है और इन दिनों में कैसे करती रही है। मुद्रा कमीशन, रिवर्स काउन्सिल की बिक्री का गुप्त रहस्य क्या है?

---

[४]

मुद्रा-समिति और रिवर्स काउन्सिल का विक्रय।

१८९३ के बाद जो मौद्रिक घटनाएँ घटित हुई उनका वर्णन किया जा चुका है। उन दिनों भारतसरकार ने रुपये में चांदी कम न कर विनिमय की दर को ही स्थिर कर काम चलाने का यत्न किया। एक रुपया एक शिलिंग चार पेन्स के बराबर नियत किया गया। इससे सोने चांदी के क्रय-विक्रय में सरकार को अपना एकाधिकार स्थापित करना पड़ा। वह भारत में सोने चांदी के गमनागमन को इस प्रकार नियन्त्रित करती रही जिससे विनिमय की दर में विशेष विक्षोभ न उपस्थित हो सके। भारत का निर्यात

आयात से कहीं अधिक था और दो वर्षों को छोड़ इस उत्तम दशा में परिवर्तन न हुआ। सपक्ष व्यापारीय संतुलन (Favourable balance of trade) के कारण भारत को जो सोना मिलना चाहिए था वह लंडन में भारतीय स्वर्ण-कोष में जमाकर दिया जाता था। भारत में सोना न भेजकर भारत-सचिव भारत में सोने को सस्ता होने से रोकते रहे और सोना उसी राशि में भारत के अंदर भेजते थे जिससे उनको नियत की हुई विनिमय की दर स्थिर बनी रहे।

विपक्ष व्यापारीय संतुलन होने पर उनके कृत्रिम साधन निरर्थक थे, क्योंकि ऐसी हालत में भारतसरकार सोने के दाम को चढ़ने से रोकने में असमर्थ थी। निर्यात से आयात के अधिक होने पर भारतीय व्यापारी विदेश में सोना भेजने के लिए यदि बाधित हों और सोना यथेष्ट राशि में मिलता न हो तो स्वाभाविक है कि सोना मंहगा हो जाय और १ शिलिंग ४ पेन्स के बराबर एक रुपया नियत करने वाली विनिमय की दर को चकनाचूर करदे। सौभाग्य से भारत सरकार को इस भय का सामना चिरकाल तक नहीं करना पड़ा और यही कारण है कि काम चलता रहा।

युद्ध के शुरू होने के बाद ऊपर लिखा भय सोने पर न पड़ चांदी पर ज़ोर से आकर पड़ा। सहसा चांदी मँहगी हो गयी और पाउन्ड स्टर्लिंग में जो सोना था वह उसके

बाजारी भाव से बहुत कम हो गया। सारांश यह है कि युद्ध से पूर्व जो रुपये की स्थिति थी वही पाउन्ड स्टर्लिंग की स्थिति हो गयी। जिस प्रकार युद्ध से पूर्व रुपये बाजारी भाव से रुपये में चांदी कम थी उसी प्रकार पाउन्ड स्टर्लिंग के बाजारी भाव से पाउन्ड स्टर्लिंग में सोना कम हो गया। इधर संयुक्तप्रांत अमेरिका, ने क्रासरेट् पर से २० मार्च; १९१९ को अपना नियंत्रण हटा लिया। इससे लंडन न्यूयार्क रेट् का भारत पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने लगा। संसार का मौद्रिक केन्द्र (The Monetary centre) लन्डन न रहकर न्यूयार्क हो गया। चाँदी के व्यापार का केन्द्र अमेरिका है। स्वाभाविक है कि डालर-स्टर्लिंग का जो अनुपात है उसका रुपये या स्टर्लिंग के अनुपात पर प्रभाव पड़े।

प्रश्न जो कुछ था वह यही कि क्या भारतवर्ष पुनः स्टर्लिंग में अथवा सोने में रुपये की विनिमय की दर नियत कर काम करे? पहले तो स्टर्लिंग तथा सोने के दामों में फ़र्क न था; परन्तु अब यह बात नहीं हैं। इसमें तो सन्देह नहीं हैं कि वेबिंगटन स्मिथ कमीशन के सभी सभ्य स्टर्लिंग में रुपये की विनिमय दर नियत करने के विरुद्ध थे; क्योंकि भिन्न भिन्न जातियों के व्यापार के हिसाब से स्टर्लिंग का दाम भिन्न भिन्न होता है। फिर स्पष्ट है कि सोने के सिवा

कोई दूसरी चीज़ ऐसी नहीं जिससे रुपये की विनिमय-दर नियत की जा सकती।

इस निश्चय के बाद कमीशन को यह निर्णय करना था कि रुपये में चाँदी कम कर विनिमय की वही दर रहने दें अथवा रुपये में चाँदी पूर्ववत् रखते हुए विनिमय की दर बदल दें। यह भी संभव था कि सरकार सोने चाँदी के गमनागमन को कृत्रिम साधनों से नियन्त्रित कर विनिमय की पुरानी दर को ही चलती रहने देती। कुछ समय तक तो यह संभव था; परन्तु चिरकाल तक इससे सफलता की आशा करना दुराशामात्र था। कदाचित् भारतीय जनता को भी यह पसन्द न हो। क्योंकि सरकार ने अपनी मौद्रिक नीति में भारतीय-हितों की भरपूर उपेक्षा की। ऐसी सरकार के हाथ में इतनी अधिक शक्तिका होना किसको पसन्द हो सकता है? विनिमय की पूर्ववर्ती दर को स्थिर रखने के लिए रुपये में कम चाँदी कर देना भी लोगों को कदाचित् पसन्द न हो। इसमें सबसे बड़ा दोष तो यह है कि इस रद्दी सिक्के के निकलते ही पुराने, अच्छे और अधिक चाँदी वाले रुपये चलने से रुक जायँगे। उन रुपयों को कोई पिघलायेगा, कोई सन्दूकों में रख छोड़ेगा और कोई गहने गढ़वाने के काम में लावेगा। सरकार की इतनी सामर्थ्य नहीं कि वह पुराने करोड़ों रुपयों की कमी को सहसा ही पूरा कर सके। इतना ही नहीं,

पीढ़ियों से लोग रुपये को जानते हैं। रुपये की चाँदी तथा भार प्रामाणिक माना जाता है। तोल तक में रुपये का प्रयोग है। रद्दी तथा कम चाँदी वाले रुपये के निकलते ही लोगों का भड़कना स्वाभाविक है। लोग तो यही समझेंगे कि सरकार ने जनता को लूटने का एक और नया तरीका निकाला है। इस प्रकार स्पष्ट है कि विनिमय की दर को बदलने के सिवा मुद्रा-समिति के पास कोई उपाय न था।

I. वैबिंगटन स्मिथ की मुद्रा-समिति तथा उसका निर्णय।

भारतीय जनता इस बात पर बहुत ही अधिक असन्तुष्ट है कि भारतीय प्रश्नों का विचार अंग्रेज़ लोग करें और भारतीय व्यापारियों तथा व्यवसायियों से सलाह तक न लें। वैबिंगटन स्मिथ की मुद्रा-समिति इंग्लैंड में बैठी और उसमें एक ही भारतीय सदस्य था जिसके विचार समिति के अनुकूल न थे। माना कि विनिमय की दर का बदलना आवश्यक था; परन्तु वह दर हो क्या इस पर प्रबल मतभेद था। बहुतों का विचार था कि यदि विनिमय की दर १ शि. ४ पेन्स से १ शि० ८ पेन्स कर दी जाती तो वह आर्थिक परिस्थिति के प्रतिकूल न होती। दो शिलिंग पर विनिमय की दर रख कर और २ शि. १० पेन्स की बाजारी रेट से कम समझ कर

रिवर्स काउन्सिल बेचा गया। इससे भारत को जो नुकसान पहुंचा उसका वर्णन आगे चल कर किया जायगा। इस ढंग की नीति कभी भारत का हित नहीं कर सकती। आज तो यह हाल है, कल समिति झूठ मूठ ही २ शि. ६ पेन्स पर विनिमय की दर नियत कर और ३ शि. ६ पेन्स पर स्टर्लिंग के अदल बदल को कमज़ोर प्रगट कर रिवर्स काउन्सिल के विक्रय की सलाह दे, तो नुकसान किसका है? नुकसान तो भारत का ही है। इंग्लैंड के दोनों हाथों में लड्डू होंगे। मुद्रा-समिति की सलाहों से यदि विदेशीय माल कुछ प्रतिशतक तक सस्ता होता हो तो क्या यह न्याययुक्त नहीं है कि उतना ही प्रतिशतक विदेशीय माल पर बाधक सामुद्रिक कर लगा दिया जाय? उस बाधक सामुद्रिक कर से जो आमदनी हो वह उनको सहायता के तौर पर दी जावे जिनको कि सरकार की मौद्रिक नीति से नुकसान पहुंचा है। यदि सरकार नियन्त्रण तथा शान्ति की दुहाई देकर "अधिक-लाभ-कर" ले सकती है तो क्या उसके लिए यह उचित नहीँ है कि उसकी दोषपूर्ण नीति से जिन जिनको नुकसान पहुंचा हो उनका नुकसान पूरा किया जावे।

यदि असावधान होना बुरा है तो अति अधिक सावधान होना भी तो अच्छा नहीं कहा जा सकता है। चाँदी का दाम चढ़ना स्थिर नहीं है। ग्रेट ब्रिटेन तथा अन्य सभ्य देशों में

चाँदी के प्रचलित सिक्कों में चाँदी के कम करने का यत्न किया जा रहा है। भारतवर्ष में निकल की अठन्नी चला ही दी जा चुकी है। इंग्लैंड में भी निकल के सिक्कों के चलाने का प्रश्न उठा हुआ है। अमरीका में एक तथा दो डालर से कम दाम के नोटों को चलाने का यत्न हो रहा है। इन सब घटनाओं का प्रभाव यही है कि चाँदी की माँग कम हो जायगी और चांदी का दाम बहुत समय तक न चढ़ा रहेगा।[1]

चाँदी की उपलब्धि (Supply) पर विचार करने से भी यही बात स्पष्ट हो सकती है। १८६० में चाँदी की उत्पत्ति २,००,००,००० आउन्स थी। परन्तु यही उत्पत्ति युद्ध से पूर्व २३,३०,००,००० आउन्स तक जा पहुँची। इसका $\frac{३}{४}$ उत्तरीय अमरीका तथा मैक्सिको से प्राप्त होता था। कनाडा की खानों में अब चाँदी दिन पर दिन कम निकल रही हैं, परन्तु इस कमी को अमरीका की खानों ने पूरा कर दिया है। चाँदी के मामले में आस्ट्रेलिया, रूस तथा बर्मा से बहुत ही आशा की जाती है। अर्थ-तत्व-विज्ञों का ख्याल है कि मेक्सिको में शान्ति स्थापना तथा विप्लव से नष्टभ्रष्ट खानों के सुधारने के बाद संसार से चाँदी की उपलब्धि पूर्वापेक्षा बहुत ही अधिक

---

1. Journal of the Indian Economic Society, (March 1920).

2. The Pioneer, Friday, March 26, 1920.

बढ़ जायगी। सारांश यह है कि चाँदी का भविष्य बहुत भयंकर नहीं है।

इस दशा में यदि मुद्रा समिति २ शिलिंग की विनिमय दर नियत न कर १ शि० ४ पेन्स की विनियम दर नियत करती तो भारत के लिए अधिक हितकर होता। रिवर्स काउन्सिल के बेचने तथा दश रुपये की गिन्नी नियत करने के कारण देश को जो नुकसान पहुँचा है, वह नुकसान भी न पहुँचता।

॥ रिवर्स काउन्सिल का बेचना।

भारतसरकार का सोने चाँदी के गमनागमन में एकाधिकार है और किसी हद तक वह विदेशीय व्यापार का संशोधन भी करती है। चिरकाल से भारत का व्यापारीय संतुलन अनुकूल था। यही कारण है कि इग्लैण्ड के लोगों को भारत में अधिक धन भेजने के लिए भारत सचिव के पास जाना पड़ता था। वह उनसे धन लेकर उतने ही धन की भारतीय मुद्राध्यक्ष (the controller of currency) के नाम की हुन्डी दे देता था। इसी हुन्डी को अंग्रेज़ी भाषा में काउन्सिल कहते हैं। जब कभी भारतीयों को इग्लैण्ड में अधिक धन भेजने की ज़रूरत पड़ती थी तो वह भारतीय मुद्राध्यक्ष से भारतसचिव के नाम हुन्डी प्राप्त कर लेते थे और इस प्रकार

अपना धन इंग्लैण्ड में भेज देते थे। इस हुण्डी को रिवर्स काउन्सिल कहते हैं।

महायुद्ध के दिनों में भारत ने योरुप के अन्दर लगातार सामान भेजा; परन्तु अपनी ज़रूरतों के अनुसार माल न पाया। इसका यह परिणाम हुआ कि भारतवर्ष योरुप से बहुत से धन का लेनदार हो गया। भारत का अपरिमित धन भारतसचिव ने अपने हाथों में कर लिया और उसके बदले भारतीय मुद्राध्यक्ष ने भारतीयों को रुपये तथा रुपये के नोट्स पकड़ा दिये। भारतीय स्वर्ण--कोश का जो दुरुपयोग किया गया उसका विस्तृत वर्णन पहले किया जा चुका है। यहाँ पर जो कुछ लिखना है वह केवल रिवर्स काउन्सिल के विषय में ही है।

महायुद्ध के अन्त होने पर भारतसरकार तथा भारत सचिव ने सोने चाँदी के गमनागमन तथा विदेशीय विनिमय-दर से अपना नियंत्रण इस देश से उठाया जिससे भारत का करोड़ों रुपया पानी में मिल गया और भारत के बाह्य व्यापार तथा अन्तरीय व्यवसाय को भयंकर आघात पहुँचा।

बहुत से अर्थ-तत्व-विज्ञों का विचार है कि भारत की व्यापारिक स्थिति ऐसी न थी कि रिवर्स काउन्सिल्स बेचे जा सकते। यह सब भारत के धन को लूटने के लिए किया गया है। क्योंकि भारत का निर्यात पूर्ववत् आयात से

अधिक था। शर्मा महाशय के प्रश्न के उत्तर में आय-व्यय-सचिव हेली ने कहा था कि 'रिवर्स काउन्सिल की बिक्री में व्यापार की ज़रूरत एक मुख्य कारण है'; परन्तु वही २३ फर्वरी के काम्यूनिक में प्रगट करते हैं कि रिवर्स काउन्सिल्स की बिक्री का कारण व्यापार न था; किन्तु युद्ध काल में जो अधिक लाभ अंग्रेजों तथा अन्य विदेशियों को हुआ है उसको इंग्लैण्ड में पहुँचाना था'। उसी काम्यूनिक में सरकार ने यह स्वीकृत किया है कि उसके कार्यों से देश में सट्टा बढ़ गया है। यह तो स्वाभाविक ही है। क्योंकि जब सरकार अपनी विनिमय-दर में ३ से ४ पैन्स तक प्रलोभन देती हो (जोकि एक ही दिन में १० प्रतिशतक के लगभग लाभ होता है) तो सट्टा न बढ़ेगा तो होगा ही क्या? इस प्रलोभन का ही यह प्रभाव था कि भारतीय मुद्राध्यक्ष के पास अनन्त राशि में धन भेजने के लिए प्रार्थना-पत्र पहुँच गये। इस प्रकार के प्रार्थनापत्र भेजने वालों में सबको रिवर्स काउन्सिल नहीं दिये गये। ५,००० पाउन्ड से कम धन वाले प्रार्थनापत्र तो रद्दी की टोकरी में फक दिये गये। २,५०,००० पाउन्ड धन का प्रार्थनापत्र भेजना पड़ता था। और २०% के स्थान पर ५०% शतक धन पहिले ही जमा करना पड़ता था, तब रिवर्स काउन्सिल किसी को मिलता था। इतने धन का प्रार्थनापत्र सिवा अंग्रेज़ी बैंकों तथा व्यापारियों के और कौन

भेज सकता है? सारांश यह है कि रिवर्स काउन्सिल्स की विक्री में जो भारत का धन लुटाया गया वह भी भारतीयों को न मिला। योरूपीय लोगों तथा अंग्रेज़ों की ही जेबें इससे भरी गयीं।

रिवर्स काउन्सिल्स की बिक्री से भारत का कितना अधिक धन नष्ट हुआ इसका हिसाब, प्रोफेसर प्रियनाथ चटर्जी ने बहुत ही प्रामाणिक विधि पर लगाया है। उनका कहना है कि लन्डन में काउन्सिल की बिक्री से भारत सरकार को ३१·२ लाख पाउन्ड धन प्राप्त हुआ और रिवर्स काउन्सिल की बिक्री से २४·७ लाख पाउन्ड धन खर्च हुआ। इस प्रकार सरकार को कुल आमदनी ६·५ लाख पाउन्ड की हुई। इसी प्रकार भारत के ख़ज़ाने में काउन्सिलों के कारण ३४·५ करोड़ रुपयों की कमी हुई और रिवर्स काउन्सिल की बिक्री से १८·४ करोड़ रुपयों की वृद्धि हुई। सारांश यह है कि भारत के ख़ज़ाने को १६·१ करोड़ रुपयों का नुकसान पहुँचा।

१५ रुपयों का पाउन्ड मानकर यदि लंडन तथा भारत के कोश के आय-व्यय की गणना की जावे तो कुल हानि ६·३ करोड़ रुपयों की होती है। आय व्यय सचिव ने भी इस हानि को स्वीकृत किया है।

रिवर्स काउन्सिल की बिक्री का मुख्य कारण यह प्रतीत

होता है कि इंग्लैंड भारत को वह धन न दे सका जोकि उस-ने भारत से महायुद्ध के समय में लिया था। भारतसचिव ने काउन्सिलों की बिक्री की और धन की कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया। इधर भारत सरकार भी धन के न होने से परेशान थी। अतः उसने रिवर्स काउन्सिल की बिक्री का सहारा लिया।

रिवर्स काउन्सिल की बिक्री तथा पेपर करन्सी रिज़र्व का भारत में भेजना तथा सोने का खरीदना आदि अनेक बातों में भारत को ४० करोड़ रुपयों का नुकसान उठाना पड़ा है ?

उपरिलिखित धन के नुकसान के साथ साथ अन्य भी बहुत से दोष रिवर्स काउन्सिलस की बिक्री के हैं जोकि भुलाये नहीं जा सकते हैं। दृष्टान्त-स्वरूप उसके बेचने का सबसे बड़ा प्रभाव तो यह है कि भारत की अधिकांश पूंजी एकमात्र विनियम की रेट के कारण ही इंग्लैण्ड के बैंकों में जा सकती थी। क्योंकि व्यापारियों को यह तो मालूम ही था कि कुछ ही महीनों के बाद एक रुपये के बदले केवल दो ही शिलिंग मिलेंगे। यदि आज उनको एक रुपये के बदले दो शिलिंग ग्यारह पैंस मिलते हों तो कदाचित् ही कोई व्यापारी होगा जो अपने रुपयों को विदेश में न भेज दे। तीन ही मास में यदि निश्चित रूप से ग्यारह पैंस का लाभ होता हो तो

वह हाथ से क्यों निकलने दिया जाय? क्योंकि यह उसको एक प्रकार से सैकड़े से अधिक लाभ है।

भारत को अधिकतर पूंजी के विदेश में चल जाने से भारत के व्यवसायिक देश बनने में बहुत विघ्नों का होना स्वाभाविक ही है। पांच वर्ष के भयंकर युद्ध में भारत ने जो धन कमाया उससे यदि कल-यंत्र आदि खरीदे जाते तो भारत की उत्पादक शक्ति को बहुत लाभ पहुंचता। ऐसे बुरे अवसर पर हेली का रिवर्स काउन्सिल्स को बेचना न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता था। सरकार का प्रजा के समस्त धन को सट्टों तथा साहसिक लाभों में लगवा देना कहां तक उचित है। रिवर्स काउन्सिल के बेचने का भारत की व्यावसायिक उन्नति पर बुरा प्रभाव पड़ा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

भारत की उत्पादक शक्ति के सदृश ही भारत के बाह्य व्यापार को भी इससे चोट पहुंचने की संभावना है। जिन जिन व्यापारियों ने विदेश को माल रवाना किया है उनको भयङ्कर घाटा उठाना पड़ेगा। पत्रों के देखने से मालूम पड़ा है कि रिवर्स काउन्सिल्स की बिक्री के दिनों में कराँची के अन्दर सैकड़ों मन कच्चा माल पड़ा था। रिवर्स काउन्सिल्स की बिक्री के कारण वह विदेश न जा सका।

बाह्य व्यापार भारत का जीवन है। बिना अन्न बेचे भारत को एक तुच्छ पदार्थ नहीं प्राप्त हो सकता। कच्चे माल का

बाहर जाना रुकते ही भारत का व्यापारीय संतुलन बिगड़ जाना स्वाभाविक है। इससे भारत दूसरे देशों का कर्ज़दार हो जायगा। यदि भारत जितना पदार्थ विदेश से मँगावे उतना पदार्थ विदेश न भेज सके तो स्वाभाविक है कि भारत को अपना सोना और चाँदी विदेश में भेज देनापड़ेगी।

महाशय हेली का रिवर्स काउन्सिल्स बेचना और शुरू शुरू में बाजारी भाव से तीन पैंस अधिक देना भारत के लिए हितकर नहीं सिद्ध हुआ। इस समय जो रुपया कल-यंत्र के मंगाने में और देश की उत्पादक शक्ति को बढ़ाने में खर्च किया जाता वह सब रुपया करंसी कमेटी तथा हेली के रहस्य-पूर्ण चक्र में पड़कर लन्दन भेज दिया गया। इसी विचार से बम्बई के प्रसिद्ध अर्थतत्वज्ञाता महाशय बोमनजी ने यहां तक कह दिया कि भारत के धनधान्य तथा संपत्ति को लूटने के लिए सब लोग आपस में मिल गये हैं। महाशय चिन्तामणि भी बहुत सोचने के बाद इसी सिद्धांत पर पहुंचे हैं कि 'भारत की पूँजी का अर्वाचीन प्रयोग बहुत ही अन्याय-पूर्ण है। सरकार का रिवर्स काउन्सिल्स बेचना कभी भी न्याय-युक्त नहीं कहा जा सकता है'[1]। महाशय शीर्मा ने

1—We are let to support the conclusion of a critic that the sale of Reverse Councils at present is a most unjustifiable dissipation of India's resources.

The Leader, March 11, 1920

व्यवस्थापक सभा में यह स्पष्ट कहा कि भारतीयों को अपने व्यापार और व्यवसाय की उन्नति के लिए इस समय एक एक पाई की ज़रूरत है। नकली तरीकों से भारत की पूँजी ऐसे समय विदेश में ले जाना पूर्णतथा अन्याय-युक्त है।[१] पण्डित मदनमोहन मालवीय जी को भी महाशय हेली की वाक् चातुरी पसन्द नहीं आई और उन्होंने भी व्यवस्थापक सभा के भारतीय सभ्यों का ही साथ दिया। सर फजलभाई करीमभाई तो इस परिणाम पर पहुंचे कि करन्सी कमेटी की रिपोर्ट ही न्याय-युक्त नहीं है, क्योंकि सोने का दाम कुछ समय के बाद पुनः अपने स्थान पर आ पहुंचेगा अतः सरकार को विनि- मय की रेट पूर्ववत् ही रखनी चाहिये।[२] महाशय वोमन जी ने कहा है कि भारत सरकार की व्यव- साय तथा व्यापार विषयक नीति देश की उन्नति तथा हित साधन के अनुकूल नहीं है। हमारे देश के हितपर तनिक सा भी ध्यान नहीं किया जाता है[३]।

1—To allow the export of money in that artificial way from India when they wanted every pie they could to increase industry was absolutely unjustifiable.

The Statesman, March 11. 1920.

2. The Statesman an, March 1920.

3. No language is strong enough to show the utter disregard paid to our interests by each and

फजलभाई करीम भाई के विचार में एक विशेषता है जिसको कभी न भुलाना चाहिये। करेन्सी कमेटी के अनुसार यदि विनिमय की दर न बदली जाती तो भारत का व्यापारीय संतुलन सपक्षीय से विपक्षीय न होने पाता। जिस प्रकार रिवर्स काउन्सिलस की रेट भारत के बाह्य व्यापार की घातक थी और भारत की पूंजी को विदेशों में भेजती थी, उसी प्रकार विनिमय की पूर्ववर्ती रेट भारत के बाह्य व्यापार की सहायक थी और विदेशीय राष्ट्र अपनी पूंजी को भारत में भेजने को बाध्य थे। यदि यही स्थिति बनी रहती तो भारतवर्ष कुछ ही वर्षों में व्यावसायिक देश होजाता। विनिमय की रेट से इङ्गलैण्ड का बना माल भारत में न पहुंचने से भारत स्थिर तौर पर ऋणदाता बना रहता और भारत की पूंजी की कमी का प्रश्न बड़ी सुगमता से हल हो जाता।

दुःख की बात तो यह है कि भारत सरकार के हाथ में विनिमय की दर नियत करने का काम होने से उसका हस्तक्षेप भारत के व्यापार-व्यवसाय में अनुचित सीमा तक बढ़ता जाता है। जिस प्रकार स्वेच्छाचारी राज्य में जान माल की रक्षा का कुछ भी विश्वास नहीं किया जा सकता उसी प्रकार

every act of Government who post as the guardians of the interest of Indian trade and Industry. The Leader. March, 11, 1920.

भी गांवों तथा नगरों में देश के लेन देन का बड़ा भारी भाग इन्हीं लोगों के हाथ में है। यही लोग हुण्डियां अपनी २ कोठियों की ओर से निकालते हैं, जोकि बाजार में सिक्कों के सदृश ही चलती हैं। प्राचीन काल में राजा लोग युद्ध का खर्चा चलाने के लिये इन्हीं लोगों से बहुत सा धन उधार पर लिया करते थे। दृष्टान्त स्वरूप पेशवा लोगों ने इन्हीं महाजनों से बड़ी भारी सहायता प्राप्त की थी।

भारत के महाजनों के सदृश ही देश का लेनदेन इंग्लैंड में सुनार लोगों के हाथ में था। क्राम्वेलने राज्य करके आधार पर आंग्ल सुनारों से ही उधार पर धन लिया था और फिर उनको धन लौटा दिया था। चार्लस ने भी क्राम्वेल का अनुकरण किया और ८ प्र० श० व्याज पर बहुत सा धन प्राप्त किया। सारांश यह है कि नवीन काल के आरम्भ से पूर्व योरुप तथा भारत में लेन देन का काम सुनारों या महाजनों के पास ही था। महाशय फिन्डलेशर्रा (Faidlay Shissas) का कथन है कि आंग्ल काल से पूर्व भारत में देश का लेन देन तथा व्यापार बनिये लोगों के ही हाथ में था। छोटे से छोटे गांव से ले कर बड़े से बड़े नगर तक यह लोग फैले हुए थे। बाम्बे तथा गुजरात में पारसी तथा भाटिया, दक्खिन में छत्तोस और संयुक्तप्रान्त तथा बंगाल में बनिये मारवाड़ी आदि अबतक लेन देन के काम को करते हैं। महाजनी भाषा

कोही काम में लाते हैं और हुंगडीका क्रय विक्रय करते हैं * बनियों के सदृश ही आजकल लेनदेन का काम बहुत से बैंक्स करते हैं जिनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

(I) बंगाल, बम्बई तथा मद्रास के अपने अपने प्रेसी डैन्सीबैंक (प्रान्तीयबैंक)

(II) योरूपीय एक्सचेन्ज़ बैंक्स = योरूपीयविनिमय बैंक्स

(III) इन्डियन ज्वाइन्ट स्टाक बैंक्स = भारतीय मिश्रित पूंजी बैंक्स

(i) बंगाल बम्बई तथा मद्रास के प्रान्तीय बैंक। बंगाल का प्रान्तीय बैंक १८०६ में खुला। १८०६ में इसको ईष्टइन्डिया कम्पनी ने प्रमाणपत्र (charter) दिया। इसी प्रकार बम्बई बैंक ने १८४० में तथा मद्रास बैंक ने १८४३ में प्रमाणपत्र प्राप्त करके अपना २ काम शुरू किया। भिन्न प्रान्तों में पृथक् २ इन बैंकों के खुल जाने से बंगाल बैंक प्रान्तीय बैंक ही रह गया और राष्ट्रीय बैंक (Statbank) न बन सका। शुरू शुरू में प्रान्तीय बैंकों का कुछ २ सरकारी रूप था।

* Townsend Warnes : Land—marks in English Industerial History.

* Mr. Findlay Shistas : Report of a lecture delivered in Calcutta in 1914.

ईष्ट इन्डिया कम्पनी ने उसकी कुल पूंजी का $\frac{1}{5}$ भाग स्वयं दिया था और उसके तीन डाइरैक्टर्ज स्वयं नियत किये थे। गदर से पूर्व पूर्वतक कोषाध्यक्ष तथा मन्त्री के पदों पर राज्य ही कोई न कोई व्यक्ति नियत करता था। १८६२ तक बैंक को नोट् निकालने का अधिकार था। परन्तु उसके इस अधिकार में क्रमशः नवीन २ बाधायें डाली गयीं और १८३६ तथा १८६२ के बीच में उसके नोट् निकालने की संख्या परिमित कर दी गयी। १८६२ में भारतीय राज्य ने नोट निकालने का अधिकार उससे सर्वथा ही ले लिया और एक राज्य नियम के द्वारा संपूर्ण प्राईवेट बैंकों को नोट निकालने से रोक दिया। इस समय के बाद से अबतक भारत में १८६२ का राज्य नियम लग रहा है। यही कारण है कि भारत में एक भी नोट् निकालने वाला बैंक (issue Bank) नहीं है। इसमें बैंकों को जो नुकसान पहुंचा है वह अवर्णनीय है। पूर्व प्रकरणों में यह विस्तृत तौरपर दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार नोटों के सहारे बैंक अपनी पूंजी को कई गुणा बढ़ा लेते हैं। भारतीय राज्य के १८६२ के राज्य नियम से उनका नोट् निकालना रोकने से जो उनको नुकसान पहुंचा है वह स्पष्ट ही है। इससे देश को नुकसान यह पहुंचा है कि अब उसको उतनी पूंजी सुगमता से नहीं मिल सकती है जितनी पूंजी कि उसको उस समय सुगमता से मिलती जबकि

बैंकों को नोट् निकालने का अधिकार होता। यही नहीं इसमे व्याज की मात्रा के घटाव को भी धक्का पहुंचा है। १८७६ में भारतीय राज्य ने बंगाल बैंक से अपना हिस्सा निकाल लिया और उसके डाइरैक्टर नियत करने का भी अपना अधि-कार हटा लिया। इस प्रकार बंगाल बैंक का सरकारी रूप लुप्त हो गया। यही घटना मद्रास तथा बम्बई के प्रान्तीय बैंकों के साथ हुई। १८६२ के राज्य नियम के अनुसार उनका भी नोट् निकालना बन्द कर दिया गया और १८७६ के राज्य नियम के अनुसार सरकार ने उनसे भी अपना सम्बन्ध हटा लिया और उनको एक प्राइवेट बैंक का रूप दे दिया।

१८७६ का प्रान्तीय बैंक एक्ट अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि इसके द्वारा प्रान्तीय बैंकों के बहुत से अधिकार छीन लिये गये हैं। उनके अधिकारों पर निम्नलिखित बाधायें डाली गयीं हैं।

(१) विदेशीय विनिमय बिल के क्रय विक्रय के द्वारा वह लाभ उठा नहीं सकते हैं। भारत में सकारे जाने वाले विदेशीय विनिमय बिल में ही वह काम कर सकते हैं।

(२) वह विदेश में अपनी शाखा नहीं खोल सकते है। लन्डन से कम व्याज पर रुपया उधार ले करके वह भारत में नहीँ लगा सकते हैं।

(३) छः मास से अधिक समय के लिये वह किसी को भी धन उधार पर नहीं दे सकते हैं।

(४) अचल पूंजी या संपत्ति के आधार पर वह धन उधार नहीं दे सकते हैं।

(५) दो आदमियों के हस्ताक्षर बिना करवाये प्रामेसरी नोट्स के आधार पर रुपया उधार नहीं दे सकते हैं।

(६) किसी व्यक्ति को उसकी अपनी वैयक्ति साख (personal security,) पर उधार धन देना राज्य नियम विरुद्ध है।

(७) उन्हीं पदार्थों पर प्रान्तीय बैंक दूसरों को उधार धन दे सकते हैं जोकि उनके पास धरोहर में रख दिये गये हों।

इन कठोर नियमों के बदले में राज्य ने अपना धन बिना व्याज पर प्रान्तीय बैंकों में जमा करना मन्जूर कर लिया। १८६२ में प्रान्तीय बैंकों का नोट निकालने का अधिकार छीना गया था। इस नुकसान के बदले में उनको राज्य का धन बे व्याज पर मिल गया। १८७६ तक राजकीय संपूर्ण धन प्रान्तीय बैंकों में ही जमा होता था। परन्तु इससे राज्य को एक कठिनाई झेलनी पड़ती थी। बहुत वारी राज्य को जरूरत के समय में प्रान्तीय बैंकों से शीघ्र ही धन न मिला।

परिणाम इसका यह हुआ कि राज्य ने अपना स्थिर कोष स्थापित किया और प्रान्तीय बैंकों में अपना बहुत थोड़ा धन रखना शुरू किया।

१८७६ के प्रान्तीय बैंकस-एक्ट के द्वारा हानियों के साथ साथ प्रान्तीय बैंकों को लाभ भी बहुत पहुंचा है। बंगाल बैंक इतना स्थिर न रह सकता यदि उसको १८७६ के राज्य नियम के अनुसार उसको साहस के कामों में घुसने से रोका न जाता। परन्तु इसमें सन्देह भी नहीं है कि अब १८७६ के राज्य नियम का हटा देना उचित ही है। भारत में विदेशीय विनिमय में स्वर्ण के सिक्के के चल जाने से अब विदेशीय विनिमय बिल के क्रय विक्रय में कुछ भी खतरा नहीं रहा है। प्रान्तीय बैंक लन्डन तथा एशिया के अन्य भागों में अपनी शाखायें खोलना चाहते हैं और वहां से रुपया उधार लेना चाहते हैं और विनिमय बिल के क्रय विक्रय में भी भाग लेना चाहते हैं परन्तु अभी तक उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई है। उनको किसी न किसी हद तक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये आजकल प्रान्तीय बैंक भारत का अन्तरीय लेनदेन ही करते हैं। भारत तथा सीलोन में सकारने वाले विनिमय बिलों तथा हुण्डियों का क्रय विक्रय करते हैं और उनसे लाभ उठाते हैं।*

* तीनों प्रान्तीय बैंकों की स्थिति १९१६ तक इस प्रकार थी।

(ii) योरूपीय विनिमय बैंक्स (Exchange Banks) विनमय बैंक्स बड़े २ योरूपीय बैंक्स हैं जो कि एशिया तथा भारतवर्ष में अपना कारोबार करते हैं। इन बैंकों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

(क) प्रथम श्रेणी के विनिमय बैंकः प्रथम श्रेणी के योरूपीय बैंकों का कारोबार भारतवर्ष में बहुत अधिक नहीं है। इन बैंकों की अन्य एशियाटिक देशों के सदृश ही भारतवर्ष में भी शाखा ही विद्यमान हैं। इनका एक मात्र भारतवर्ष से ही सम्बन्ध नहीं है। जापान अमेरिका, जर्मनी, रूस, फ्रान्स, आदि सभी देशों में इनकी शाखायें हैं। भारत में इस प्रकार के बैंक कुल मिला करके पांच हैं*।

(i)	१९०५ लाख रुपयों में	१९१४ लाख रुपयों में	१९१६ लाख रुपयों में
पूंजी तथा कोष (Reserve)	६२३	७६४	७३५
धरोहर (Deposits)	२५३८	४५६६	४९९१
नकदी (Cash Balance)	८२३	२०८४	१७२७

(ii) पृथक् २ तौर पर तीनों बैंकों की स्थिति इस प्रकार दिखाई जा सकती है।

		३१ दिस० १९०५ में लाख रुपयों में	३१ दिस० १९१४ में लाख रुपयों में	३१ दिस० १९१६ में लाख रुपयों में
पूंजी	बंगाल बैंक	२००	२००	२००
	मद्रास बैंक	६०	७५	७५
	बाम्बे बैंक	१००	१००	१००

(ख) द्वितीय श्रेणी के विनिमय बैंक्स—द्वितीय श्रेणी के विनिमय बैंक अधिक कारोवार भारतवर्ष में ही करते हैं। इनकी अन्य देशों में भी शाखायें हैं परन्तु मुख्य दफ़्तर इनका

कोष Reserve	बंगाल बैंक	१४३	२००	२१३
	मद्रास बैंक	३३	७६	५८
	बाम्बे बैंक	१८७	११०	६०
राजकीय धरोहर Government deposite	बंगाल बैंक	१६७	२८७	२७४
	मद्रास बैंक	३७	६१	१०४
	बाम्बे बैंक	६३	१८३	१४२
अन्य धरोहर	बंगाल बैंक	१२०४	२१६१	२१४४
	मद्रास बैंक	३४६	७६२	६६०
	बाम्बे बैंक	६७६	१०८२	१३६७
नकदी Cash	बंगाल बैंक	३६७	११७०	७७३
	मद्रास बैंक	१६७	२६७	२८७
	बाम्बे बैंक	२५६	६४७	६६८
प्रयोग Investment	बंगाल बैंक	१८१	६२१	७३६
	मद्रास बैंक	६७	१३४	१६३
	बाम्बे बैंक	१५८	२०१	३१३

- इन पांचों बकों के नाम निम्नलिखित हैं।

(i) Comtoies National d'Exomptede Pasis.

(ii) To komse Specie Bank.

(iii) The Doutach-Asiatiache Bank.

(iv) The International Banking corporation.

(v) The Rusao-Asiatice Bank.

भारतवर्ष में ही है। यह कुल मिला करके छः हैं। (१) दिल्ली लन्डन बैंक (The Delhi London Bank) १८४४ (२) इन्डिया आस्ट्रेलिया तथा चीन का प्रमाणित बैंक (The Chartered Bank of India, Ausrtalia and China) १८५३. (३) दि नेशनल बैंक आव् इन्डिया (The National Bank of India) १८६३, (४) दि हांग कांग एन्ड संघाई बैंकिंग कार्परेशन (The Hong Kong and Shanghai bank of India) १८६४. (५) दिमर्कंटाइल बैंक आव् इन्डिया (The Marcantile Bank of India) १८९३. (६) दि ईस्टर्न बैंक (The Eastern bank) १९१०. । बैंकों के साथ ही साथ उनके स्थापित होने का ईस्वी सन् दे दिया गया है। इनमें से प्रमाणित बैंक तथा हांग कांग बैंक्स चीन में बड़ा भारा लेन देन का काम करते हैं। परन्तु इससे उनके भारतीय कारोबार पर कुछ भी असर नहीं पड़ता है। भारत में भी इनका बड़ा भारी लेन देन है। शेष चारों विनिमय बैंक भारत में ही विशेष तौर पर लेन देन का काम करते हैं। इन सारे के सारे बैंकों के हिस्सेदारों को बड़ा भारी लाभ मिला है। दिल्ली लन्डन बैंक ने अन्य बैंकों के सदृश उन्नति नहीं की है और ईस्टर्न बैंक तो अभी बालकावस्था में ही है। शेष बैंकों के लाभ का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि वह अपने हिस्सेदारों को २०० प्रतिशतक से भी अधिक लाभ दे

चुके हैं। यह बैंक लन्डन तथा भारत से धन उधार लेते हैं और जहां लाभ देखते हैं वहां लगाते हैं। यह बैंक स्थिर धरोहर पर ३$\frac{1}{4}$ से ४ प्रतिशतक व्याज देते हैं और चलतुधरोहर (Current Deposit) पर भी ७२ प्रतिशतक व्याज दे देते हैं। विदेशीय विनिमय विलों के क्रय विक्रय में यह बैंक स्वतन्त्र हैं और इस व्यापार से बड़ा भारी लाभ उठा रहे हैं। तारों के द्वारा लन्डन तथा भारत को विनिमय बैंकों की शाखायें परस्पर जुड़ गयी हैं। अतः किसो एक स्थान पर धरोहर में धन के कम हो जाने पर इनको कुछ भी कठिनता नहीं उठानी पड़ती है।

(iii) मिश्रित पूंजी बैंकस (Joint stock Banks) भारत में मिश्रित पूंजी बैकस का आरम्भ अति प्राचीन है। पिछले १३ वर्षों से ही इन्होंने विशेष वृद्धि की है। १८१४ तथा १५ में कुल बैंकों को संख्या ५७४ थी और उनकी गृहीत पूंजी (paid up capital) ७९८७५५०६ थी। इसी प्रकार १९१६ में कुल बैंकों की संख्या ४६० थी और उनकी गृहती पूंजी ८३४७४००० थी।

बैंकों की ऊपरिलिखित संख्या का अधिकता का एक बड़ा भारी कारण यह है कि छोटे २ महाजनों ने भी अपनी २ कोठियों का नाम बैंक रख लिया है। वास्तव में देखा जावे तो बड़े २ मिश्रित पूंजी बैंकस भारत में बहुत थोड़े हैं। १८७०

सन् से पहिले से स्थापित हुए मिश्रित पूंजी बैंकस संख्या में केवल दोही है (१) बैंक आव् अपर इन्डिया (१८६३) तथा (२) अलाहाबाद बैंक (१८६५) । १८७० तथा १८९४ में ७ मिश्रित पूंजी वाले बड़े बैंकस खुले जिनमें से केवल निम्न-लिखित चार बचे हैं ।

(१) अलायन्स बक आव् शिमला (१८७४)
(२) अवध कमर्शियल बैंक (१८८१)
(३) पञ्जाब नेशनल बैंक (१८९४)
(४) पञ्जाब बंकिंग कम्पनी (१८८९)

१८९४ से १९०४ तक कोई नवीन बैंक न खुला । १९०४ में बैंक आव् बर्मा खुला परन्तु यह बैंक १९११ में टूट गया । १०९६ में तीन बैंक और खुले जो कि इस प्रकार हैं ।

(१) बैंक आव् इन्डिया
(२) बैंक आव् रंगून
(३) इंडियन स्पीसी बैंक

१९०६के बाद ५ लाख गृहीत पूंजी वाले और बैंक भी खुले जो कि इस प्रकार हैं ।

(१) बंगाल नेशनल बैंक (१९०४)
(२) बाम्बे मर्चैन्ट्स बैंक (१९०९)
(३) क्रडिट बैंक आव् इन्डिया (१९०९)

(४) काठियावाड़ एन्ड अहमदाबाद बैंकिंग कार्पोरेशन (१९१०)

(५) सैन्ट्रल बैंक आव् इन्डिया (१९११)

१९१३ में छोटे २ बैंक्स बहुत संख्या में टूटे । इसमें दरिद्र तथा मध्य श्रेणी के लोगों को बहुत ही अधिक कष्ट उठाना पड़ा । इससे कुछ समय के लिये बैंकिङ् की उन्नति रुक गयी है । बैंकों के टूटने के निम्नलिखित कारण हैं ।

(१) बैंकों के बहुत से डाइरैक्टरर्ज बैंक के काम को सर्वथा हो नहीं समझते हैं । इस दशा में बैंकों का सञ्चालन उल्टे ढंग पर हो जाता है और बैंक टूट जाते हैं ।

(२) बहुत से धोखेबाज लोगों ने धन लूटने के उद्देश्य से बैंक स्थापित किया और दरिद्र जनता का धन खाकरके बैंक का दिवाला निकाल दिया ।

(३) हिसाब किताब रखने में बहुत से बैंकों के अन्दर पर्याप्त सावधानी न की गयी । यही नहीं उधार देने में भी विश्वास पर काम किया गया । उचित तो यह था कि उधार देते समय किसी की संरक्षित पूंजी (security) की पूर्ण तौर पर आलोचना कर ली जाती ।

(४) बैंकों का बहुत सा धन ऐसे स्थानों पर लगा दिया

बड़े २ मिश्रित पूंजी बैंक्स से तात्पर्य्य ५ लाख रुपया गृहीत पूंजी वाले बैंकों से हैं:

गया था जहां से कि वह शीघ्रता से न निकाला जा सकता था।

(५) बहुत से बैंक के प्रबन्ध कर्ताओं ने साहस के कामों को करना शुरू कर दिया था। इन्होंने व्यापार व्यवसाय के कामों में बैंक का धन लगा दिया था।

(६) हिस्सेदारों को लाभ बहुत बार उनकी गृहीत पूंजी में से बांट दिया गया और हिसाब किताब दिखाने में इस बात को जनता की आंखों से छिपाया गया।

बैंकों के टूटने से भारतीय जनता ने अब अच्छी तरह से शिक्षा लेली है। यही कारण है कि इस महायुद्ध के समय में बैंक वालों ने बड़ी सावधानी से काम किया है। यह होते हुए भी भविष्यत में ऐसी भयंकर घटनाओं से जनता को बचाने के लिए निम्नलिखित बाधाएँ [बैंकों के मामले में] डालनी आवश्यक समझी गयी हैं।

(१) बैंक के खोलने के लिये गृहीत पूंजी की अल्पतम राशि होनी चाहिये।

(२) बैंक खुलने के बाद नियत समय के बीच में नियत धन की राशि बैंकों को इकट्ठा कर लेना चाहिये।

(३) स्थिर कोष में पर्याप्त अधिक धन राशि एकत्रित होने से पूर्व तक हिस्सेदारों को लाभ बांटने से किसी हद तक बैंकों को रोका जावे।

(४) साहस के कामों में पड़ने से बैंकों को रोका जावे।

ऊपरिलिखित तथा अन्य बहुत से सुधार हैं जो कि बैंकों के मामले में करने आवश्यक हैं। यहां पर हमको जो कुछ कहना है वह यही है कि इन सुधारों को कामों में लाने में अत्यन्त अधिक सावधानी की आवश्यकता है। क्योंकि थोड़ी सी गल्ती से भी देश को बड़ा नुकसान पहुंच सकता है और देश में बैंकिग की उन्नति रूक सकती है।

पांचवां परिच्छेद

भारत सरकार की राष्ट्रीय आयव्यय नीति

(१)

भारतीय राज्य कर का स्वरूप।

सभी राष्ट्रीय आय व्ययशास्त्रवेत्ताओं का मत है कि राज्य कर देना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। राष्ट्र के ही संपूर्ण व्यक्ति अंग है। राष्ट्र के संरक्षण का मुख्य साधन राज्य है। अतः राज्य को प्रत्येक प्रकार की सहायता देनी चाहिये। यदि पराधीन राज्यों की सृष्टि न हुई होती तो उपरिलिखित सिद्धान्त सर्वथा सत्य होता। परंतु यही बात नहीं है। बहुत से राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों को पराधीन कर अपने स्वार्थों का साधन बना रहे हैं। बहुत समय हुए जबकि सबसे पहिले पहिल अमरीका ने यह बात उद्घोषित की कि जो राज्य करके रूप में धन दे उसी के प्रतिनिधि उस धन का प्रबंध करें। इसका परिणाम यह हुआ कि अमरीका ने इग्लैएड के राज्य को राज्य कर देना बन्द कर दिया और अपने आपको स्वतन्त्र उद्घोषित किया।

भारतीय राज्य कर का स्वरूप

भारत भी शनैः शनैः अमरीका की ओर पग बढ़ा रहा है। राज्य का जातीय धन का दुरुपयोग करना भारत में अन्य सब देशों से अधिक है। यही कारण है कि भारतीय राष्ट्रीय आयव्यय पर इस परिच्छेद में प्रकाश डाला जायगा।

भारत सरकार को निम्नलिखित साधनों से धन प्राप्त होता है:—

(१) रेल्वे, जंगल, राजकीय भूमि तथा खान से प्राप्त आमदनी।

(२) रेल्वे, नहर, डाकखाना, एकाधिकारीय पदार्थों का ठेका तथा अन्य औद्योगिक कार्य्यों से प्राप्त आमदनी।

(३) प्रत्यक्ष राज्य कर। इसमें भूमिकर तथा आय कर संमिलित है।

(४) अप्रत्यक्ष राज्य कर। इसमें सामुद्रिक चुंगी, व्यावसायिक, कर, स्टांप तथा रजिस्ट्रेशन कर आदि संमिलित हैं।

भारत में मुख्य राज्य तथा स्थानीय राज्य भिन्न भिन्न स्थानों तथा व्यक्तियों से कर ग्रहण करते हैं। स्थानीय राज्य के आयके स्रोत बहुत ही कम है। मुख्य राज्य की कर प्रणाली की विशेषता निम्नलिखित है।

(१) भारतीय राज्य कर प्रणाली की सब से अधिक विशेषता यह है कि भूमि पर राज्यकर का भार अपरिमित सीमातक अधिक है। यह पूर्व खंड में ही प्रगट किया जा चुका है कि

भारत सरकार का मालगुजारी लेना अन्याय युक्त है। क्योंकि भारतीय भूमियों पर सरकार का स्वत्व नहीं है। सरकार को एकमात्र आय कर ही लेना चाहिये।

(२) ज्यों ज्यों देश का व्यापार व्यवसाय बढ़ रहा है और गमनागमन के साधन उन्नत हो रहे हैं त्यों त्यों आयकर, चुंगी, व्यावसायिक कर तथा जायदाद प्राप्ति कर आदि से राज्य की आमदनी बढ़ती जायगी। भूमि से जो अनुचित सीमा तक अधिक राज्य कर लिया जाता है उसकी मात्रा को कम करना चाहिये।

(३) भारत में सामुद्रिक चुंगी से आमदनी बहुत कम प्राप्त होती है। इसमें संपूर्ण दोष भारतीय सरकार का है। यदि आंग्ल वस्त्रों लोहे के घरेलू पदार्थों तथा अन्य भोग विलास के पदार्थों पर सामुद्रिक चुंगी की मात्रा बढ़ायी जाय तो किसानों पर से राज्य कर की मात्रा कम की जा सके। किसानों के खून से कमाये धन को लेकर आंग्ल सेठों साहूकारों की जेबों को भरना कभी भी न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता।

(४) प्रान्तीय तथा स्थानीय राज्यों को प्रान्तों तथा नगरों पर धन खर्च करने के लिये पूरी स्वतंत्रता न देकर भारत सरकार ने बहुत ही अधिक देश को नुकसान पहुंचाया है। यद्यपि रिफार्मस्कीम के द्वारा इस ओर कुछ कुछ स्वतंत्रता

मिलो है परंतु एक तरह से उससे कुछ भी अर्थ नहीं सिद्ध हो सकता। क्योंकि प्रान्तों से पहिले ही इतना धन मुख्य राज्य ने मांग लिया है कि बिना राज्य कर बढ़ाये आमदनी की कोई आशा नहीं है।

(५) राज्यकर द्वारा प्राप्त धन का प्रबंध जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में नहीं है। हम लोग जिस ढंग पर अपने देश के धन को खर्च करना चाहें, खर्च नहीं कर सकते हैं। यही कारण है कि आर्थिक स्वराज्य शीघ्र ही प्राप्त करना चाहिये।

अमरीका ने आर्थिक स्वराज्य प्राप्त करने के लिये यत्न किया परन्तु जब इग्लैंड के साम्राज्यवादियों ने यह स्वीकृत न किया तो उनको राज्यक्रांति पर तैयार होना पड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्थिक स्वराज्य के साथ साथ उनको पूर्ण स्वराज्य भी मिल गया। अमरीका की अर्वाचीन समृद्धि तथा व्यावसायिक उन्नति का रहस्य इसी में है। क्या भारतवर्ष आर्थिक स्वराज्य प्राप्त किये बिना ही व्यावसायिक उन्नति कर सकता है? कभी भी नहीं? भारत सरकार की आय व्यय संबंधी नीति कितनी दोषप्रद है अब इसी पर प्रकाश डाला जायगा

भारत सरकार के आयव्यय का ब्यौरा निम्नलिखित है।

I. भारत सरकार का आमदनी।

— आमदनी के स्थान		१९१३—१४	१९१८—१९
		पाउंड	पाउंड
भूमि से प्राप्त	...	२१३९१५७५	२२३५८५००
अफीम	...	१५१४८७८	३१९१८००
नमक	...	३४४५३०५	४९२२००
स्टाम्प	...	५३१८२९३	५९२८०००
शराब से प्राप्त आय	...	८८९४३००	१०३-३७००
सामुद्रिक चुंगी	...	७५५८२२०	१०७१४४००
जलस्थान	...	५४९६१७५	१०१८३९००
		५३०२८७४६	६६२४२५००
ब्याज	...	१३५२११९	३५५२६००
डाक तथा तार	...	३५६८५१९	४७८२८००
टकसाल	...	३३६८४१	३७६०००
राजकीय आय (जुर्माना आदि)		१४०८२८६	१९५६१००
साधारण आय	...	७७२५७९	१२९५२००
रेलवे	...	१७६२५६३४	२२९८३७००
नहर	...	४७१३१५९	५३२०४००
राष्ट्रीय कार्य्य	...	२९८६४०	३०४९००
सैनिक आय	...	१३६९६५२	१५३२७००
		८५२०७१७५	१०८३४६९००

II. भारत सरकार का खर्च।

व्यय के स्थान	१९१३—१४	१९१८—१९
	पाउड	पाउंड
राज्यकर एकत्रित करने में ...	९२७४५९७	१०४३८३००
व्याज ...	१५१५६५३	७७८४३००
डाक तथा तार ...	३२७२९८४	३९३१४००
टकसाल ...	१३२६३०	१७००००
तनखाहें ...	१७९३४१९९	२२९९३०००
अन्य साधारण खर्च ...	५४०३८०४	५६४४७००
दुर्भिक्ष कोष तथा बीमा ...	१००००००	१००००००
रेलवे ...	१२८३६१०७	१३७८२०००
नहर ...	३५३१८६७	३९२८७००
राष्ट्रीय कार्य ...	७०१००३८	५९४५६००
सैनिक व्यय ...	२१२६५७६५	३०५३२७००
कुल खर्च ...	८३१७७६३८	१०६१५०७००

पिछले चालीस सालों से भारत के आयव्यय की क्या स्थिति है इस पर निम्नलिखित ब्यौरा बहुत अच्छी तरह प्रकाश डालता है।

भारत सरकार का आय व्यय

सन्	कल्पित आय	व्यय	शुद्ध आय [+१] कमी [—२]
	पांउड	पांउड मे	पांउड में
१८७५—७६	५१०१६१४०	४६०१३८७१	+ १६६८६४५
१८८०—८१	५०२२८०३८	५२६४८६६८	— २४२०६३०
१८८५—८६	४८१०५३५६	४६६७३१७४	— १८६७८१८
१८९०—९१	५४४४४६६८	५१६८५८८७	+ २४५८७८१
१८९५—९६	५६३६५३२६	५८३७२६६०	+ १०२२६६६
१९००—०१	६६८०६५७६	६५१३६३७५	+ १६७०२०४
१९०५—०६	७०८४६५६५	६८७५४३३७	+ २०६२२२८
१९१०—११	८०६८२४७३	७६७४६१८६	+ ३६३६२८७
१९१५—१६	८४४१३५३७	८५६०२१६८	— ११८८६६१

(२)

भारतीयों पर राज्यकर का भार तथा राजकीय आय

पूर्व प्रकरण में दिये गये राष्ट्रीय आय व्यय के ब्यौरे से स्पष्ट है कि भारत सरकार को बहुत ही अधिक सावधानी से काम करना चाहिये। सब ओर मितव्ययता करनी चाहिये।

सैनिक खर्चों को एकदम घटा देना चाहिये और स्थिर सेना के स्थान पर स्वतंत्र स्वयंसेवकों की सेना बनानी चाहिये। राज्यकर का व्यय जनता के प्रतिनिधियों की अनुमति के अनुसार ही करना चाहिये।

भारतीयों पर राज्यकर का भार बहुत ही अधिक है। महाशय डिग्बी के अनुसार इंग्लैंड की अपेक्षा भारत पर राज्यकर सातगुना अधिक है। बी.जी. काले भी राज्यकर कम नहीं समझते हैं।

मालगुजारी तथा लगान के रूप में जो धन ग्रहण किया जाता है उस पर प्रकाश भी डाला जा चुका है। अफीम गांजा तथा मादक द्रव्यों के एकाधिकार से भी सरकार को बहुत ही अधिक आमदनी है। यद्यपि चीन के अफीम न खरीदने से सरकार की कुछ कुछ आमदनी घटी है तौभी इसका प्रयोग भारत में दिन पर दिन बढ़ रहा है। जंगलों तथा खानों से सरकार की आमदनी दिन पर दिन बढ़ेगी इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। जंगलों के संबंध में विशेष सुधार की ज़रूरत है। जंगलात के कठोर नियमों से देश का पशु संपत्ति को विशेष हानि पहुंची है। डाक तथा तार का प्रबंध प्रशंसनीय है। परन्तु लिफाफों कार्डों का दाम तथा पार्सल भेजने का दुगुना करना बहुत ही शोकजनक है। क्योंकि इससे ज्ञान

वृद्धि तथा पारस्परिक संबंध की घनिष्टता को बहुत ही अधिक हानि पहुंचेगी।

रेलों का विस्तार भारत में दिन पर दिन बढ़ा है। शुरू शुरू में रेलों से घाटा था परन्तु अब यह बात नहीं है। १९०४ के बाद से उनसे क्रमशः अधिक अधिक आमदनी हो रही है। भारतीय रेलों पर ५३७'०७ करोड़ रुपये खर्च हो चुके हैं। संपूर्ण रेलों की लम्बाई का ७५ प्रतिशतक सरकार के प्रभुत्व में है। शेष कंपनी तथा देशी राज्य की ही मलकीयत है। रेलों का आय व्यय इस प्रकार है:—

रेलों का आय व्यय

	१९१४–१६		१९१८–१९	पाउन्ड
कुल पूंजी	३६४८५१०००	पाउन्ड	३७०११४०००	,,
कुल शुद्ध आमदनी	१७७९७०००	,,	२२९२४०००	,,
पूंजी पर प्रतिशतक आमदनी	४'८८	,,	६'१८	,,
ब्याज निकालने के बाद कुल आमदनी	४०७५०००	,,	९२००,०००	,,
शुद्ध लाभ प्रतिशतक	१'१२	,,	२'४०	,,

रेलों के सदृश ही नहरों से भी सरकार को बहुत ही अधिक आमदनी है। जनता को जो कुछ शिकायत है वह यही है कि सरकार ने नहरों के बनाने में इतना बल नहीं

किया जितना कि नहरों के बढ़ाने में । पिछले पन्द्रह वर्षों में बहुत सी नहरें बनी परंतु देश की जरूरतों को सामने रखते हुए उनको भी पर्य्याप्त नहीं कहा जा सकता है ।

नहरों के आय व्यय का ब्योरा

I. उत्पादक कार्य्य		१९१६-१७ पाउन्ड	१९१७-१८ बजट (पां०)
कुल पूंजी	...	३७१२००००	३८१०४०००
कुल आय	...	४७३ ०००	४८९७०००
कुल व्यय	...	२४८८०००	२६२४०००
शुद्ध आय	...	२२४५०००	२२७३०००
पूंजीपर प्रतिशतक आय		६.५	५.९७
II. संरक्षक कार्य्य			
कुल पूंजी	...	६२६६०००	६८९७०००
कुल नुकसान	...	१७१०००	१९८०००
III. साधारण तुच्छकार्य्य			
कुल नुकसान	...	४६४०००	६७५०,००

संसार के अन्य देशों में राजकीय आयमें सामुद्रिक चुंगी तथा साधारण चुंगी से प्राप्त आय का महत्वपूर्ण भाग है। भारत में सरकार ने स्वतंत्र व्यापार की नीति का अवलंबन किया है। प्रायः विदेशी माल पर ५ प्रतिशतक चुंगी है। मांचैस्टर के कपड़ों पर बहुत पहिले केवल $3\frac{1}{2}$ प्रतिशतक चुंगी थी परन्तु पिछले वर्षों में चुंगी बहुत अधिक

बढ़ा दी गई है। १६१६ में शक्कर जूट तथा रुई के कपड़ों पर सामुद्रिक चुंगी सरकार ने बढ़ाई। लंकाशायर के माल पर चुंगी ७$\frac{1}{2}$ प्रतिशतक कर दी गई। इसपर इङ्गलैण्ड में भयंकर शोर मचा। लंकाशायर वालों ने भारत सरकार को कई बार वाध्य किया कि भारत के रुई के कारखानों पर भी ७$\frac{1}{2}$ प्र० श० तक का व्यवसायिक कर लगा दो।

भारत अति दरिद्र देश है। राष्ट्रीय आयव्यय शास्त्रज्ञों का मत है कि दरिद्रों के उपभोग योग्य पदार्थों पर राज्यकर न लगना चाहिये। यही कारण है कि नमक सम्बन्धी राज्यकर को कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता। १८८२ में नमक के प्रतिमन पर २ रुपया राज्य कर था। इसके छः वर्ष बाद यह राज्यकर बढ़ाकर २$\frac{1}{2}$ कर दिया गया। महाशय गोखले के लगातार यत्नकरने पर भी १६०३ में नमक पर राज्य कर कम किया गया और अन्त में केवल एक रूपया रह गया। १६१६ में इस पर राज्यकर पुनः १ से १$\frac{1}{4}$ रुपया किया गया। अब भी इसपर राज्यकर बढ़ाने के ओर ही सरकार का झुकाव है।

आयकर से भी सरकार को पर्य्याप्त अधिक धन मिलता है। सरजोन्ह स्ट्रैची ने लिखा है कि भारत में आयकर बहुत ही न्याययुक्त है। परन्तु दौर्भाग्य से अमीरों पर इसकी राशि बहुत ही कम है। वह लोग अपने आपको इस कर से बचाते रहते हैं। जो कुछ भी हो। आजकल यह बात नहीं है।

१९१६-१७ से जो आयकर संबंधी नियम प्रचलित हैं उनको इस प्रकार दिखाया जा सकता है।

आय	आयकर की मात्रा	आयकर प्रतिपाउंड
५००० रुपयों से ९९९९ रुपयोंकी आयतक	–६ पा० प्रतिरुपया	तथा ७½ पैस
१०००० ,, २४९९९ ,,	—९ ,, ,,	तथा १०½ ,,
२५००० ,, अधिक आयतक	–१२ ,, ,,	तथा १ शि० ३ पैंस

लड़ाई के खतम होने के समय १९१७ में सुपरटैक्स लगाया गया जो कि इस प्रकार था:—

सुपरटैक्स की मात्रा

आय	आयकर प्रति रुपया पूर्वापेक्षया अधिक रुपयों पर
५० हजार से १ लाख की आयतक	१ आना
१ लाख से १½ लाख ,,	१½ ,,
१½ लाख से २ लाख की ,,	२ ,,
२ लाख से २½ लाख ,,	२½ ,,
२½ लाख से अधिक आय पर	३ ,,

प्रस्तावना में दिखाया जा चुका है कि भारत के राष्ट्रीय आय व्यय में किस ढंग पर संशोधन करना चाहिये। लगान तथा मालगुजारी की प्रथा उठाकर आय कर का ही वहां पर

भी प्रयोग करना चाहिये, रेलों के स्थान पर नहरों पर अधिक धन व्यय करना चाहिये, साथ ही भारत को आर्थिक स्वराज्य तथा स्वराज्य मिलना चाहिये, इत्यादि विषयों पर स्थान स्थान पर प्रकाश डाला जा चुका है। अब जातीय ऋण पर कुछ शब्द लिखकर ग्रंथ को समाप्त कर दिया जायगा।

---

(३)

जातीय ऋण

अति प्राचीन काल में भी राजा लोग कष्ट के समय में प्रजा से ऋण लेते थे परन्तु कष्ट के दूर होते ही ऋण में लिया हुआ धन प्रजा को लौटा देते थे। भारत पर अंग्रेज़ों का राज्य आने से योरुपीय राष्ट्रीय आय व्यय शैली से ही भारत में भी शासन का काम किया गया। योरुप में राष्ट्र की ओर से राज्य भिन्न भिन्न युद्धों को करते है और युद्ध का व्यय जातीय ऋण के द्वारा संभालते हैं। शनैःशनैः भारत में भी जातीय ऋण की सृष्टि हुई है।

भारत में जातीय ऋण का विकास अन्यायपूर्ण है। कंपनी से आंग्ल राज्य ने जब बंगाल को खरीदा तो उसका उसका धन भारत से ही ग्रहण किया। इसी प्रकार भारत के भिन्नभिन्न प्रांतों के विजय में जो धन खर्च किया गया वह

भी भारत के जातीय ऋण का भाग बनाया गया। इस प्रकार इंग्लेंड ने अपने आर्थिक स्वार्थों तथा साम्राज्य वृद्धि की लालच को पूरा करने के लिए न्याय से तथा अन्याय से भारत के दूर से दूरवर्ती प्रदेशों पर आधिपत्य प्राप्त किया। इस काम में जो धन खर्च हुआ उसको भारत के जातीय ऋण में संमिलित कर दिया। कंपनी के समय से १८७६ तक भारत का जातीय ऋण किस प्रकार बढ़ा इसका ब्यौरा इस प्रकार है:—

सन्	जातीय ऋण पांउडों में
१७९२	7000000
१८२९	30000000
१८५०	51000000
१८५८	69500000
१८७६	129000000

१८५७ के गदर को शांत करने में जो धन खर्च हुआ वह भी भारत के जातीय ऋण में संमिलित किया गया। सब से विचित्र बात तो यह है कि गदर के संबंध में इंग्लेंड से जो सैनिक बुलाये गये थे उनका वह खर्चा भी भारत पर डाल दिया गया जो कि इंग्लैंड पर पड़ना चाहिये था।

१८७३ में आय व्यय के सम्बन्ध में विवाद उठ खड़ा हुआ। कुछ लोग मितव्ययता के पक्ष में थे और कुछ लोग राज्य

कर बढ़ाना ही उचित समझते थे। प्रायः इंग्लैंड तथा कलकत्ता के राज्य कर्मचारी द्वितीय बात के ही पक्ष में थे। लार्ड नार्थब्रुक तथा सर विलियम के राज्य कार्य से पृथक होने के बाद १८७६ में राज्य कर बढ़ाना और साथ ही खर्च बढ़ाने का सिद्धान्त स्वीकृत किया गया और उसी पर काम किया गया। स्ट्रैची की सम्मति से १८७७ में भारतीयों पर राज्य कर बढ़ा कर दुर्भिक्ष कोष स्थापित किया गया और स्पष्ट शब्दों में कहा गया कि इस कोष के धन को अन्य किसी काम में न खर्च किया जायगा अगले वर्ष ही सरकार ने अपनी प्रतिज्ञा को भंग कया। १८७९-८० के बजट में दुर्भिक्ष कोष से दुर्भिक्ष निवारण के लिये धन राशि न नियत की गई परन्तु दुर्भिक्ष सम्बन्धी राज्यकर पूर्ववत् ज्यों का त्यों प्रचलित रखा गया। जनता में राज्य के इस कार्य के विरुद्ध आन्दोलन शुरू हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार ने डेढ़ करोड़ रुपया दुर्भिक्ष कोष में दिया और तीन प्रकार के कामों में खर्च करने का बचन दिया जो कि निम्नलिखित हैं।

(क) दुर्भिक्ष सम्बन्धी कार्य।

(ख) दुर्भिक्ष रोकने वाले कार्य।

(ग) जातीय ऋण को कम करना।

जातीय ऋण

इस प्रकार दुर्भिक्ष कोष के मुख्य उद्देश्य पर पानी फेरा गया। १८७० से १८९५ तक दुर्भिक्ष कोष के १५०००००० पाउंड धन में से केवल १०००००००० पांउड धन खर्च किया गया जो कि इस प्रकार है।

दुर्भिक्ष कोष के धन का व्यय

१८८१—१८९७ तक		पाउन्डों में
दुर्भिक्ष के संबंध में	...	२१३५७१
रेलों के संबंध में	...	४३६७२८७
नहरों के निर्माण में	...	१२०९२०७
जातीय ऋण के निवारण में	...	३५५१५३३
कुलयोग		९३४१५९८

उपरिलिखित धन व्यय पर जो कुछ आक्षेप है वह यही है कि उस कोष का बहुत सा धन बंगाल नागपुर तथा मिडलैंड रेलवे के घाटे को पूरा करने में खर्च कर दिया गया। १८९७ के बाद छै साल तक लगातार भारत में दुर्भिक्ष पड़ा और दुर्भिक्ष निवारण में बहुत सा धन भी खर्च हुआ। १८८१-८२ से १९०१-०२ तक कुल धन निम्नलिखित प्रकार खर्च हुआ।

दुर्भिक्ष कोष के धन का व्यय

१८८१-८२ से १९०१-०२	पाउन्डों में
दुर्भिक्ष के संबंध में ...	११९०६३५८
रेलों के संबंध में ...	४८२७५२२
नहरों के सम्बन्ध में ...	१३९८९५५
जातीय ऋण के निवारण में ...	४१३२९९६
कुलयोग	२२२६५८३१

इन बाईस वर्षों में बंगाल नागपुर तथा मिडलैंड रेलवे को ३२८०२३४ पाउंड घाटे के पूरा करने में दिये गये। दुर्भिक्ष कोष का जो मुख्य उद्देश्य था उसको कभी भी पूरा नहीं किया गया। वस्तुतः दुर्भिक्ष कोष रेलों के घाटों को पूरा करने के लिए न स्थापित किया गया था। यहां पर ही बस न कर १८९३-९८ से १८९८-९९ तक रुपये की शिलिंग में विनिमय की दर को बदल कर भारत के गरीब लोगों का धन बुरी तरह से खींचा गया। महाशय रमेशचन्द्र ने सिद्ध किया है कि विनिमय की दर में भेद करने के कारण ५ वर्षों में भारतीय प्रजा पर ५०००००० पाउंड का टैक्स और अधिक बढ़ गया। १८७१ के बाद से अब तक भूमि पर मालगुजारी तथा लगान इस सीमा तक अधिक बढ़ाया गया है कि किसानों की दशा बहुत ही भयंकर हो गई है। मंहगी तथा मालगुजारी

ने उनकी दशा दासों से भी अधिक दुःखजनक बना दी है नमक कर तथा व्यावसायिक कर की मात्रा बहुत ही कम होनी चाहिये । रुई के कारखानों पर मांचेस्टर के स्वार्थों को सामने रखकर राज्य कर लगाना बहुत ही घृणित है ।

१८७६ के बाद से अब तक जातीय ऋण की जो स्थिति रही उसका ब्योरा इस प्रकार है ।

१८७६ से १९१३ तक जातीय ऋण

३१ मार्च	दस लाख पाउंड में	दस लाख रुपयों में १५रु. १ पां.	कुल योग पाउंड	ब्याज पाउंडों में
१८८८	८४·१	६५·४	१४९·५	६·२
१८८३	१०६·७	६८·६	१७५·२	६·७
१८९८	१२३·८	७४·४	१९७·३	६·७
१९०३	१३३·८	७८·२	२१२·०	७·१
१९०८	१५६·५	८८·५	२४५·०	८·१
१९१३	१७९·१	९५·२	२७४·३	९·५

सरकार ने जातीय ऋण को 'साधारण तथा उत्पादक' इनदो भागों में विभक्त किया है। भिन्नभिन्न विभागों में जातीय ऋण की मात्रा निम्नलिखित हैः—

साधारण तथा उत्पादक जातीय ऋण

३१ मार्च	साधारण	उत्पादक			कुल योग
	दस लाख पांउडों में	रेलवे	नहर	कुल योग	दस लाख पांउडों में
१८८८	७३·०	५६·२	१७·३	५०·६५	१४६·५
१८६३	६५·०	६१·०	१६·३	११०·३	१७५·३
१८६८	७०·०	१०६·०	२१·७	१२७·७	१६७·७
१६०३	५६·१	१२८·१	२४·८	१५६·२	३१२·०
१६०८	३७·४	११७·७	२६·६	२०७·६	२४५·०
१६१३	२५·०	२११·८	३७·५	२४६·३	२७४·३

इन बीस वर्षों में साधारण तथा अनुत्पादक जातीय ऋण दिन पर दिन घटा है। लगभग आधे से भी कम रह गया है। १६१३ की मार्च में जातीय ऋण की जो स्थिति थी इसको इस प्रकार दिखाया जा सकता है।

१६१३ में जातीय ऋण

I. स्थिर जातीय ऋण	पाउंडों में
रेल्वे संबंधी ऋण	२११८३२८१६
नहर संबंधी ऋण	३७५५२०३०
दिल्ली पर खर्च	११६८८६
साधारण	२४६५०४७८५
राष्ट्रीय कार्य संबंधी ऋण	२४८६-७७७
कुल स्थिर जातीय ऋण	२५४४०५५१२

जातीय ऋण

II. क्षणिक या सामयिक ऋण   नहीं

कुल जातीय ऋण   २७४४०५५१२ पाउंड

महायुद्ध के शुरू होने पर इंग्लैण्ड का हाथ भारत ने भी बटाया। महायुद्ध के संबंध में जातीय ऋण संबंधी जो पहिला यत्न हुआ उसमें भारत ने ३८०००००० पाउंड धन दिया। १९१७ में महायुद्ध विषयक जातीय ऋण में सरकार को निम्नलिखित धन मिला।

I. जातीय ऋण	दस लाख पाउन्ड में
मुख्य ऋण	२८·६
पोस्टल विभाग	२·९
कैशसर्टिफिकेट	६·६
	३८·१

II. जातीय ऋण का विभाग	दस लाख पाउन्ड में
५% ब्याज पर प्रलंब कालीन ऋण १९१९ से १९४७ तक	८·३
५ १/२% ब्याज पर ३ वर्ष के वारबाण्ड्ज़	१३·२
५ १/२% ,, ५ वर्ष के वारबॉण्ड्ज़	८·०
	२९·५

जातीय ऋण

जातीय ऋण का बढ़ना और सरकार का बारबार जातीय ऋण ग्रहण करना देश की औद्योगिक उन्नति को बहुत ही अधिक धक्का पहुंचाता है। मिश्रित पूंजीवाली कंपनियां जातीय धन पर ही खड़ी होती हैं। यदि सरकार अधिक व्याज देकर जनता का धन खींचले तो व्यावसायिक कंपनियों का भविष्य बहुत ही अंधकार मय हो जाय सब से बड़ी बात तो यह है कि अधिक व्याज पर जातीय ऋण लेने से भिन्नभिन्न व्यवसायों को जरूरत पड़ने पर अधिक व्याज देकर धन ग्रहण करना पड़ता है। व्याज की मात्रा का बढ़ना व्यावसायिक उन्नति में बहुत ही अधिक रुकावटें पैदा करता है। योरूपीय राष्ट्रों में राज्य जातीय ऋण लेते समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि व्यावसायिक काम में लगने वाली पूंजी जातीय ऋण में न आवे। यही कारण है कि अमरीका आदि राष्ट्रों ने महायुद्ध में संमिलित होते ही शराब खोरी बन्द की। यह इसीलिये कि शराब न पीने से जाति का जो धन बचे, जातीय ऋण में ग्रहण किया जासके। शराब के कारखानों के बन्द होने से जो श्रमी बेकार फिरें उनको सेना में भर्ती किया जावे। सारांश यह है कि जातीय ऋण से देश की औद्योगिक उन्नति को बहुत ही अधिक हानि पहुंचती है।